महादेवभाई की डायरी

(गांधीजी के साथ २५ वर्ष)

चौथा खण्ड

[अक्तूबर १९२४ से फरवरी १९२५ तक]

सम्पादक

चन्दुलाल भगुभाई दलाल

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी-१
संस्करण : पहला
प्रतियाँ : २,०००; १५ अगस्त, १९६६
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) (६५७९-२२)
मूल्य : आठ रुपया

Title : MAHADEOBHAI KI DIARY
(GANDHIJI KE SATH 25 VARSH)
Editor : C. B. Dalal
Subject : Biography
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition : First
Copies : 2,000; 15 August, '66
Price : Rs. 8.00

प्रकाशकीय

यह वड़े हर्ष का विषय है कि सर्व सेवा संघ की ओर से महादेवभाई की डायरियाँ हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। महादेवभाई देसाई और गांधीजी का सम्बन्ध भारत में कौन नहीं जानता ? दोनों नाम राष्ट्रीय इतिहास में अभिन्न रहेंगे। सन् १९१७ में जब महादेवभाई गांधीजी के पास आये, तब से उन्होंने नियमित रूप से अपनी डायरी लिखी और सन् १९४२ में आगा खाँ महल में वे जब गांधीजी की गोद में सिर रखकर गये, तब तक उनका यह सिलसिला वरावर जारी रहा।

महादेवभाई और गांधीजी का सम्बन्ध दो अभिन्न हृदयों का सम्बन्ध था। महादेवभाई की डायरी का मतलब है, गांधीजी की डायरी। महादेवभाई की इन डायरियों में आपको गांधीजी की राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात मिलेगी। गांधीजी ने वीमारी में, सन्निपात में कुछ कहा होगा, तो उसका उल्लेख भी उसमें मिलेगा। गांधीजी के ऐतिहासिक और जगत्प्रसिद्ध व्याख्यान इन डायरियों में हैं। अगर राह चलते गांधीजी ने किसी वच्चे के साथ थोड़ा विनोद किया है, तो वह भी इन डायरियों में प्रतिविम्वित हुआ है। इतिहास में इस प्रकार के डायरी-लेखन का नमूना सिर्फ एक ही मिलता है और वह है, अंग्रेज विद्वान् वॉसवेल का, जिन्होंने डॉ० जॉनसन के जीवन के वारे में लिखा है। लेकिन डॉ० जॉनसन के लेख और महादेवभाई की डायरियों में उतना ही अन्तर है, जितना डॉ० जॉनसन और गांधीजी के जीवन में।

अपने अनेक कामों के वीच जब कभी थोड़ी-सी फ़ुरसत मिली है, महादेवभाई ने गांधीजी के वचनों के उपरान्त अन्य सामग्री से अपनी डायरियों को समृद्ध किया है। महादेवभाई के समान विशाल और गहरा अध्ययन करनेवाले लोग हमारे देश में कम ही मिलेंगे। समय-समय पर उन्होंने डायरियों में अपने व्यापक पठन की कुछ आलोचना भी लिखी है। कभी किसी नये स्थान पर गये, तो उस स्थान का वर्णन भी किया है। कभी किसी नये व्यक्ति से मिले, तो उसका थोड़ा चरित्र-चित्रण भी किया है और इन छोटे-छोटे परिच्छेदों में महादेवभाई की उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा प्रकट हुई है।

सन् १९१७ से १९४२ तक की डायरी याने भारत के अहिंसक राष्ट्रीय आन्दोलन का एक जीता-जागता दिलचस्प इतिहास । गांधीजी के विचारों के अन्तस्तल में प्रवेश कराते हुए उनसे मिलनेवाले, पत्र-व्यवहार करनेवाले हजारों लोगों का सहज स्फूर्त वर्णन कर महादेवभाई ने उस समय के राष्ट्रमानस का जो चित्र खींचा, वह अपने-आपमें एक विशेषता है ।

कुल मिलाकर महादेवभाई की डायरी के प्रकाशन से न सिर्फ भारत के, किन्तु जगत् के साहित्य को लाभ होगा । यह दुर्भाग्य का विषय रहा कि स्व० महादेवभाई अपनी डायरियों को स्वयं सम्पादित न कर सके । एक कर्मयोगी की तरह काम करते हुए वे अचानक हमारे बीच से उठ गये । अपने मित्र के अधूरे काम को पूरा करने की जिम्मेवारी स्व० नरहरिभाई परीख ने मित्र-धर्म के पालन की दृष्टि से उठायी । अपनी प्राणघातक बीमारी से जूझते हुए भी उन्होंने औसत पाँच-पाँच सौ पृष्ठों की छह डायरियों का पूरा सम्पादन किया । यह काम अपने में ही बहुत बड़ा काम था । लेकिन अभी तो वैसे ही लगभग १५ और खण्डों का सम्पादन बाकी है । आगे के खण्डों का सम्पादन श्री चन्दुलाल भगुभाई दलाल कर रहे हैं ।

बहुत समय पहले 'नवजीवन प्रकाशन ट्रस्ट' अहमदाबाद की ओर से हिन्दी में डायरी के तीन खण्ड प्रकाशित हुए थे, जो सन् १९३२-३३ के थे । बीच में स्व० महादेवभाई के पुत्र श्री नारायण देसाई तथा स्व० नरहरिभाई के पुत्र श्री मोहनभाई परीख, जो उनके वारिस भी हैं, का नवजीवन ट्रस्ट के साथ प्रकाशन-अधिकार को लेकर मतभेद हो गया और इस तरह वर्षों तक डायरियों का प्रकाशन-कार्य रुका रहा । उक्त दोनों वारिसों ने डायरी के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित करने का अधिकार सर्व सेवा संघ को निःशुल्क दिया, यह उनका सौजन्य है तथा संघ उनकी इस कृपा के लिए आभारी है ।

पूरी डायरियाँ सन् १९१७ से सन् १९४२ तक के काल की हैं । २५ वर्षों की ये डायरियाँ क्रमशः प्रकाशित होंगी और सर्व सेवा संघ ने यह काम अपने हाथ में ले लिया है । आशा है कि गांधीजी की शत-संवत्सरी सन् १९६९ तक क्रमशः सब खण्ड प्रकाशित हो जायेंगे । नवजीवन द्वारा पूर्व प्रकाशित सन् १९३२-३३ के तीनों खण्ड भी यथाक्रम प्रकाशित होंगे ।

हमें विश्वास है कि इस ऐतिहासिक डायरी का सर्वत्र स्वागत होगा ।

●

चौथा खण्ड

इस खण्ड में ता० ५-१०-'२४ से ता० २८-२-'२५ तक की डायरी ली गयी है। इस प्रकार इस खण्ड में कुल मिलाकर पाँच महीने की डायरी आ जाती है।

प्रस्तुत खण्ड की सामग्री गुजराती के छठे और सातवें खण्ड से ली गयी है। सातवें खण्ड की शेष सामग्री तथा आठवें खण्ड की कुल सामग्री मिलाकर हिन्दी के पाँचवें और छठे खण्ड प्रकाशित होंगे।

इसके पूर्व डायरी के तीन खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

कागज, छपाई तथा अन्य सब प्रकार की महँगाई के कारण प्रत्येक खण्ड का मूल्य ८ रुपया रखना पड़ा है।

१५ अगस्त सन् १९४२ के दिन महादेवभाई दिवंगत हुए थे। यह चौथा खण्ड १५ अगस्त के मौके पर प्रकाशित हो रहा है।

स्व० नरहरिभाई के पद-चिह्नों पर

संवत् २०१८ की माघ कृष्ण १३ ता० ४-३-१९६२ के रविवार की शाम को आ० स्वामी आनन्द और श्री मोहनभाई परीख मेरे यहाँ आये और उन्होंने महादेवभाई की अप्रकाशित डायरियों के सम्पादन का काम, जो स्व० नरहरिभाई के अवसान से रुक गया था, मैं स्वीकार करूँ, ऐसा सुझाव दिया—आग्रह किया।

मैं जानता था कि डायरी (गुजराती) के पाँच भागों का, जो (उस समय) प्रकाशित हो चुके थे, सम्पादन स्व० नरहरिभाई ने किया था। (छठा भाग उन्होंने अपने अवसान से पहले तैयार कर दिया था, यह इस समय मालूम हुआ) मैं यह भी जानता था कि महादेवभाई के साथ नरहरिभाई भी गांधीजी के अन्तरंग थे और दोनों दिली दोस्त थे, एक-दूसरे को पत्र लिखते तो उसमें भी 'प्रिय भाई' सम्बोधन करते थे, इसलिए नरहरिभाई के लिए महादेवभाई की डायरी का सम्पादन कठिन नहीं हो सकता था।

परन्तु मेरे लिए तो यह बहुत कठिन काम है। मुझे अपनी मर्यादाओं का भान है। महादेवभाई और दूसरे लोग गांधीजी को 'बापू' कहते थे। (एक व्यक्ति ने तो उन्हें लिखे हुए पत्र पर पता लिखा था, 'महादेवदास मोहनदास गांधी' !) और महादेवभाई के लिए तो वे गुरु भी थे। महादेवभाई की डायरी का अर्थ है तुलसीदास की रामायण। गुरु का हृदय उसका सच्चा भक्त ही जानता है। गांधीजी का हृदय महादेवभाई ही जानते थे। साधारण भक्त के लिए तुलसीदास की रामायण का सम्पादन करना जितना कठिन होगा, उससे भी अधिक कठिन यह काम मेरे लिए है, क्योंकि मैं तो गांधीजी का छोटा-सा भक्त होने का दावा भी नहीं कर सकता।

फिर भी बातचीत के अन्त में मैंने स्वीकार कर लिया। लगभग नौ वर्ष तक गांधीजी के पत्र-साहित्य के सम्पादन का कार्य कर सका, तो यह काम भी हो सकेगा, ऐसा मैंने अपने मन को समझाने का प्रयत्न किया है; और यह कहना मेरे खयाल में गलत नहीं होगा कि इस काम को स्वीकार करने में इस प्रकार का सूक्ष्म स्वार्थ भी मिल गया है कि सम्भव हो तो एक अनोखा लाभ प्राप्त होगा।

जिस दिन सुझाव आया, वह दिन महाशिवरात्रि का और समय सन्ध्या का था—पू० कस्तूरबा की मृत्यु-तिथि और समय—एक पवित्र दिवस और एक पवित्र समय और यह एक पवित्र काम। कदाचित् जिस समय यह सुझाव सामने आया, उस समय के पवित्र मुहूर्त ने ही यह काम स्वीकार करने को प्रेरित किया होगा।

आशा रखता हूँ कि नरहरिभाई के पद-चिह्नों पर पैर रखकर मैंने कोई अनुचित कार्य नहीं किया होगा।

ता० ११-१-'६५

—चन्दुलाल भगुभाई दलाल

सम्पादक के दो शब्द

मुझे पता नहीं नरहरिभाई ने महादेवभाई की डायरी के सम्पादन-कार्य में क्या पद्धति अपनायी थी; और इसके बारे में स्पष्ट जानकारी भी मुझे नहीं मिली। इसलिए (गुजराती) सातवें भाग से शुरू होनेवाली डायरी के सम्पादन-कार्य में मैंने जो पद्धति अपनायी है, उसकी थोड़ी-सी कल्पना देने का प्रयत्न करता हूँ। ऐसा करने में एक यह हेतु भी रहा है कि बाकी की सारी डायरियों का सम्पादन मैं न कर सकूँ तो—और यह बिलकुल सम्भव है, क्योंकि अभी तो कम-से-कम और दस-पन्द्रह भाग प्रकाशित करने लायक सामग्री शेष है; तो—मेरे बाद के सम्पादक को मेरी पद्धति की कल्पना हो सके।

यह नोट मैं उस समय लिख रहा हूँ, जब सन् १९२७ की डायरी का सम्पादन कर रहा हूँ। इस पुस्तक—७वें भाग—में सन् १९२५ के पहले चार मास का वर्णन है। इसके बाद ८वें भाग में उस वर्ष के बाकी समय का वर्णन होगा; ९वें भाग में सन् १९२६ का होगा और सन् १९२७ की डायरी के भी दो भाग—नं० १० और ११ होंगे, ऐसा मेरा खयाल है। इसलिए इस नोट में जो कुछ लिखा है, वह अब तक के अनुभव के परिणामस्वरूप लिखा है; और वह केवल इस सातवें भाग के सम्बन्ध में ही नहीं है।

अनुभव से यह मालूम हुआ है कि महादेवभाई की हस्तलिखित जो डायरियाँ अभी मौजूद हैं, उनमें बहुत कुछ ऐसा है कि जो 'नवजीवन' या 'यंग इण्डिया' में महादेवभाई के लेख के रूप में नहीं आया; इन दोनों पत्रों में आया हो, उस सबकी डायरियाँ मौजूद नहीं; 'यंग इण्डिया' में जो आया हो, वह सब 'नवजीवन' में नहीं आया; 'नवजीवन' में जो आया हो, वह सब 'यंग इण्डिया' में नहीं आया; और जो प्रसंग दोनों में आ जाते हैं, उन्हें दोनों में एक ही तरह से पेश नहीं किया गया। इन सबका समन्वय करके छपे हुए स्वरूप में डायरी तैयार की गयी है।

हस्तलिखित डायरी में जो-जो तारीखें लिखी गयी हैं, वे सब ज्यों-की-त्यों रखी गयी हैं, परन्तु ऐसा मालूम हुआ है कि ये तारीखें घटना होने की तारीख नहीं,

परन्तु डायरी लिखने की तारीखें हैं । कभी-कभी ऐसा हुआ है कि लेख में ही घटना की तारीख आ जाती हो; और तब यदि अनुकूल हो तो घटना उसके कालानुक्रम के अनुसार दी गयी है । 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' में छपे हुए साप्ताहिक पत्र किस तारीख को लिखे गये होंगे, यह जानकारी वहाँ नहीं दर्ज की गयी । सम्भव है, वे पिछले सोमवार को लिखे जाते होंगे । उस दिन गांधीजी का मौन होता था, इसलिए वे ज्यादातर किसीसे मुलाकात नहीं करते थे; और उनके भाषण न हों तो उनके कोई नोट लेने नहीं होते थे; इस प्रकार साप्ताहिक पत्र लिखने की अनुकूलता महादेवभाई को उसी दिन मिलती थी । ये पत्र उन्होंने अपने नोटों पर से तैयार किये होंगे; परन्तु वे तमाम नोट मूलरूप में आज मौजूद नहीं और प्रसंग भी वे अपनी अनोखी शैली में—गुजराती में और अंग्रेजी में अलग-अलग शैली में—चित्रित करते थे ।

फिर भी डायरी में मैंने कालानुक्रम कायम रखने का प्रयत्न किया है । जहाँ ठीक लगा, वहाँ साप्ताहिक पत्र के टुकड़े कर दिये हैं । और जहाँ-जहाँ प्रसंग की तारीख मिली है, वहाँ-वहाँ, यदि तारीख डायरी या साप्ताहिक पत्र में दर्ज न हुई हो तो, पादटिप्पणी में दे दी है ।

मुझे जहाँ उचित मालूम हुआ, वहाँ शब्द, प्रसंग और व्यक्ति के सम्बन्ध में पादटिप्पणी दी है । पादटिप्पणी कहाँ दी जा सकती है और कहाँ नहीं दी जा सकती, इसका कोई नियम मेरी जानकारी में नहीं है । जहाँ मुझे लगा कि अमुक शब्द का अर्थ देने की आवश्यकता है, अमुक प्रसंग कैसा था, इसका निर्देश करने की जरूरत है, अमुक व्यक्ति कौन था यह बताना जरूरी है, वहाँ-वहाँ उनसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी टिप्पणियाँ दी जा सकती थीं, वे पाद-टिप्पणियों के रूप में दी गयी हैं । पाठकों को इसमें कुछ ज्यादती मालूम हो सकती है; इसलिए स्पष्ट कर देता हूँ कि ये पादटिप्पणियाँ देने में पाठकों की नहीं, परन्तु मेरी मर्यादा का प्रदर्शन है ।

अंग्रेजी लेखों के अनुवाद ही दिये गये हैं । इसमें 'यंग इण्डिया' में से महादेवभाई के जो अंग्रेजी लेख लेने की जरूरत मालूम हुई है, उनका भी समावेश होता है । अनुवादों के पहले ¶ चिह्न लगाया गया है, जहाँ एकाध शब्द अथवा वाक्य अंग्रेजी में दिया गया हो, वहाँ ऐसा चिह्न नहीं लगाया गया और जहाँ जरूरत मालूम हुई, वहाँ मूल अंग्रेजी को पादटिप्पणी के रूप में दिया गया है । अनुवाद केवल अक्षरशः नहीं, परन्तु उसे करते समय यह ध्यान रखा है कि मूल भाव—मेरी समझ के अनुसार मूल भाव—कायम रहे ।

बंगाली लेखों का गुजराती अनुवाद दिया है, परन्तु हिन्दुस्तानी लेख ज्यों-के-त्यों रखे गये हैं। कुछ स्थानों में ये और गुजराती मिले-जुले हैं। सब जगह लिपि गुजराती रखी है।

अंग्रेजी और संस्कृत उद्धरणों के जो आधार मूल लेखों में दिये गये हैं, उनको दर्ज किया गया है; जो दर्ज नहीं किये गये, उनको ढूँढ़ने-ढुँढ़वाने के लिए प्रयत्न किये गये हैं और जो मिल सके, उन्हें पादटिप्पणी के रूप में दर्ज किया है।

'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' में जो छपा है, वह सब तो महादेवभाई ने सजाकर दिया है; और जो नहीं छपा और हस्तलिखित रूप में है, उसमें से जो उन्होंने फुरसत में स्वस्थ चित्त से लिखा है, वह सब छपी हुई डायरी में समा लेने में कुछ भी कठिनाई अनुभव नहीं हुई, क्योंकि महादेवभाई जब फुरसत से लिखते, तब उनके अक्षर मोती के दानों जैसे और हिज्जे में शुद्ध होते थे। परन्तु जब भाषणों और चर्चाओं के नोट लिये हों, तब अल्पाक्षरी में या बहुत ही तेजी से लिये होने के कारण अक्षरों और हिज्जे के बारे में तथा वाक्य-रचना के बारे में ऐसा नहीं हो सकता। ऐसे कुछ नोट पेंसिल में भी हैं और समय की लम्बी अवधि बीत जाने के कारण वे धुँधले भी हो गये हैं। ऐसे सब लेख कभी-कभी अवाच्य भी हो जाते हैं और कहीं-कहीं मेल भी बैठता नहीं लगता। ऐसे लेखों को सँवारने में ही मुझे असली दिक्कत हुई है। बोलनेवाले के मन में क्या होगा, यह इतने वर्ष बीतने के बाद निश्चित करना कठिन प्रतीत हुआ है। फिर भी यथासम्भव मेल बिठाने और भाव कायम रखने का प्रयत्न किया है। ऐसा करते समय जब नोट किये हुए शब्द अस्पष्ट हों, शब्दों का परापूर्व का सम्बन्ध जमता न हो और कुछ शब्द जोड़कर ही अर्थ बैठता हो, तब मैंने यह नीति रखी है कि जो शब्द बढ़ाने पड़ें, उन्हें समकोण कोष्ठकों में दिया जाय।

छपे या बेछपे लेखों में जब कोई भूल जैसी मालूम हुई हो, वहाँ सम्बद्ध शब्द के बाद अर्धचन्द्राकार कोष्ठकों में प्रश्न-चिह्न और जो शब्द मुझे ठीक लगा, वह शब्द रख दिया है। इसी प्रकार जब कोई शब्द निरर्थक लगा हो, तब वह शब्द ऐसे कोष्ठक में रख दिया है।

यह सब तो अनुभव से सूझा। इसलिए शुरू में शायद काफी मात्रा में ऐसा नहीं हो सका, परन्तु बाद में यह पद्धति अपनायी गयी है।

ता० ११-१-'६५

—चन्दुलाल भगुभाई दलाल

प्रस्तावना

डायरी का हिन्दी में यह चौथा खण्ड है। इस खण्ड का प्रारम्भ ५ अक्तूबर सन् १९२४ से होता है और इसमें २८ फरवरी सन् १९२५ तक की डायरी ली गयी है। इसके पहले हिन्दी में डायरी के तीन खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

गांधीजी के २१ दिन के उपवास १७-९-'२४ से शुरू हुए थे। तीसरे खण्ड में उपवास के पहले सप्ताह तक का ही विवरण दिया जा सका था। उपवास के शेष दिनों का विवरण इस खण्ड में दिया गया है। उपवास के शेष दिनों में अनेक लोग मुलाकात के लिए गांधीजी के पास आते रहे, अनेक समस्याओं पर चर्चाएँ होती रहीं, हँसी-विनोद भी चलता था। यह सब वर्णन 'नवजीवन' से लिया गया है। उपवास का उद्यापन ता० ८-१०-'२४ को हुआ। इस बीच काफी मनोमन्थन हुआ। दिल्ली से बापू कलकत्ता गये। वे कलकत्ता ४ नवम्बर को गये। अब तक वे पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए थे।

कलकत्ता में २१-२२ नवम्बर '२४ को सर्वदल-सम्मेलन हुआ। गांधीजी ने उसमें भाग लिया। इस सम्मेलन ने ऐसा संविधान तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्त की, जो सब दलों को स्वीकार हो। बाद में गांधीजी रावलपिण्डी गये। यहाँ कोहाट के साम्प्रदायिक दंगों के शिकार बने हुए और वहाँ से भागकर आये हुए हिन्दू निराश्रितों को आश्रय दिया गया था। गांधीजी ने उनके दुःख सुने, उन्हें दिलासा दिया और इस आशय की सलाह दी कि सम्मानपूर्वक जी सकने की स्थिति हो तो ही वे वापस जायँ, अन्यथा मर मिटें।

इस सारे समय एक ओर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच और दूसरी ओर स्वराज्यवादियों तथा अपरिवर्तनवादियों के बीच मेल कराने के उनके प्रयत्न जारी रहे। स्वराज्यवादियों को खुश रखने के लिए उन्होंने अपने-आप पर और अपने द्वारा अपरिवर्तनवादियों पर अंकुश लगा दिया; और स्वराज्यवादियों से लगभग इस आशय की बात कह दी कि 'देश की लगन जितनी मुझमें है, उतनी आपमें है, इससे मैं इनकार नहीं करता; फिर भी आपको मेरा रास्ता पसन्द न आता हो, तो अब आप अपने रास्ते जायँ, मैं इसमें अड़ंगा नहीं लगाऊँगा। इतना

ही नहीं, परन्तु मेरे सिद्धान्त में वाधा न पड़ती हो तो भरसक मदद करूँगा। आप अपने रास्ते चलकर स्वराज्य ले आयें तो मुझसे अधिक आनन्द और किसीको नहीं होगा।'

× × ×

सन् १९१५ में गांधीजी स्थायी रूप से भारत आ गये। उससे पहले वे दक्षिण अफ्रीका में रहते थे, फिर भी उनकी वहाँ की कारगुजारी देखकर सन् १९११ में उन्हें भारत की कांग्रेस का अध्यक्ष-पद देने का विचार किया गया था। ऐसा सोचनेवालों में गोखले प्रमुख थे। इन लोगों ने गांधीजी से सम्पर्क किया था। परन्तु गांधीजी वहाँ का काम-काज छोड़ नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने सूचित किया था कि कांग्रेस की वैठक पूरी होते ही तुरन्त ट्रांसवाल लौटने की स्वतन्त्रता हो तो मैं खुशी से अध्यक्ष-पद स्वीकार करूँगा। परन्तु वाद में इस स्थान के लिए भारत में ही खींचतान हो गयी। गांधीजी को इसका पता लगते ही अध्यक्ष-पद स्वीकार करने का उनके मन में जो थोड़ा भी विचार था, वह मिट गया था, और उन्होंने इनकार कर दिया था।

परन्तु सन् १९२४ में स्थिति भिन्न थी। वे स्वयं भारत में आकर वस गये थे, भारत की राजनीति में फँसे हुए थे, उनका नेतृत्व सवने स्वीकार किया था और स्वराज्यवादियों तथा अपरिवर्तनवादियों के वीच वे कड़ी के रूप में थे। उन्हींके प्रयास से उन दोनों के कार्य-विभाजन की व्यवस्था हुई थी। यह सही है कि सव जानते थे कि यह व्यवस्था ऊपरी ही थी और उसे सफल वनाने की किसीकी हिम्मत नहीं थी। फिर भी दोनों पक्षों को लगता था कि यदि कोई भी व्यक्ति इसे सफल वना सकता था तो वह गांधीजी थे। परिणामस्वरूप सन् १९२४ के अन्त में वेलगाम में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष-पद पर उन्हींको चुना गया।

उन्होंने देश के सामने द्विविध कार्यक्रम रखा। जिन्हें धारासभाओं में जाने के कार्यक्रम में विश्वास हो, उन्हें वैसा करने दिया जाय और उस रास्ते से भी देश के हित में काम करने का कोई भी थोड़ा-वहुत मौका मिले तो उससे पूरा लाभ उठाया जाय। और जो इस कार्यक्रम को न मानते हों, उनके सामने त्रिविध कार्यक्रम रखा: (१) खादी और चरखे का प्रचार (२) अस्पृश्यता-निवारण और (३) हिन्दू-मुस्लिम-एकता।

३० तारीख को गांधीजी वेलगाम से चले और ३१ तारीख को वम्वई आये।

उस समय देश का राजनैतिक वातावरण वड़ी डाँवाडोल स्थिति में था। गांधीजी के कारावास के दौरान असहयोग का ज्वार उतर गया था और राजनैतिक

विचारसरणी में दो मत स्पष्ट सामने आ गये थे। एक पक्ष इस राय का था कि विधान-मण्डलों का वहिष्कार करने में भूल हुई है अथवा वह वहिष्कार वदले हुए हालात में जारी रखना इष्ट नहीं और इसलिए कांग्रेसियों को विधान-मण्डलों में जाना चाहिए और वहाँ जाकर सरकार का विरोध करना चाहिए। ये लोग स्वराज्यवादी कहलाये। इनके महारथी थे पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशवन्धु चित्तरंजन दास। दूसरा पक्ष इस मत का था कि विधान-मण्डलों का जो वहिष्कार किया गया था, वह उचित था, वहाँ जाकर सरकार का सफल विरोध किसी भी तरह न सम्भव था और न है, हालात में कोई ऐसा परिवर्तन हुआ नहीं, जिससे कांग्रेसियों को वह वहिष्कार हटाकर विधान-मण्डलों में जाना चाहिए; मतलव यह कि वहिष्कार जारी रखना चाहिए। ये लोग अपरिवर्तनवादी कहलाये। इनके पक्ष में राजगोपालाचारी जैसे महारथी थे। वल्लभभाई भी थे, परन्तु उस समय वे 'सरदार' नहीं वने थे, इसलिए उस समय उनका स्थान इतना ऊँचा नहीं था, जितना 'सरदार' वनने के वाद था।

परन्तु लोगों का मानस कोई-न-कोई चमत्कार देखना चाहता था। रचनात्मक कार्य में चमक वहुत कम होती है। जो काम करना हो, उसमें पसीना वहाना पड़ता है, नीची गरदन करके काम करना होता है, उसमें भाषणों के लिए वहुत थोड़ा स्थान होता है—लच्छेदार भाषण तो होते ही नहीं। लोग उससे विमुख हो गये थे। इसलिए अपरिवर्तनवादियों की स्थिति कठिन थी; और स्वराज्यवादी कहते थे कि विधान-मण्डलों में जाकर हम यह करेंगे और वह करेंगे, इसलिए लोगों की नजर उनकी तरफ फिरी थी।

गांधीजी ने छूटने के वाद इन मतभेदों को मिटाने का प्रयास किया, परन्तु इसमें वे सफल नहीं हुए। फिर भी दोनों पक्ष यह चाहते थे कि कांग्रेस की वागडोर गांधीजी सँभालें। इसलिए कांग्रेस के इस अधिवेशन का अध्यक्ष-पद उन्होंने स्वीकार किया और दोनों पक्षों को अपना-अपना काम करने की अनुकूलता रहे, उसका काम भी देश के हित में है, यह वता देने का उसे मौका मिले और एक-दूसरे के साथ संघर्ष न हो, इस हेतु से उन्होंने अध्यक्ष-पद से देश के सामने द्विविध कार्यक्रम रखा। स्वराज्यवादियों को विधान-मण्डलों में जाने की छूट दी गयी और अपरिवर्तनवादियों को रचनात्मक कार्यक्रम में जुट जाने का सुझाव दिया गया।

गांधीजी स्वयं चुस्त असहयोगी थे; विधान-मण्डलों के वहिष्कार को मानते थे। जो समझौता उन्होंने सुझाया और अमल में लाया, वह उन्हें अनिवार्य होने पर करना पड़ा था। इसलिए रचनात्मक कार्यक्रम को अमल में लाने का

बीड़ा उन्होंने खुद उठाया, उसे सफल बनाने की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने स्वयं सँभाली और कांग्रेस के अध्यक्ष-पद पर आसीन होने के कारण भी उसे पूरा करने का दायित्व उन्होंने अपना मान लिया।

कांग्रेस के कार्यक्रम के सिलसिले में किसी भी अध्यक्ष ने जितना परिश्रम नहीं किया था, उतना उन्होंने इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए किया। उसके प्रचार के लिए उन्होंने सारे देश में भ्रमण किया। इसमें एक ही धुन थी—जो त्रिविध कार्यक्रम स्वयं उन्होंने देश के समक्ष रखा था, उसे पूरा वेग दिया जाय। लोगों के सामने देश की दरिद्रता प्रस्तुत करके खादी और चरखे का महत्त्व समझाना; हिन्दू-धर्म में घुसा हुआ अस्पृश्यता का दूषण बताना और चेतावनी देना कि यह दोष दूर नहीं किया गया तो हिन्दू-धर्म का नाश है; और भारत की सब जातियों में—खास तौर पर हिन्दू और मुस्लिम जातियों में—एकदिली कायम करना—ये तीन उनके मुख्य उद्देश्य थे।

इनमें से तीसरा कार्यक्रम–हिन्दू-मुस्लिम-एकता स्थापित करने का कार्यक्रम–सफल करने में अनेक कठिनाइयाँ थीं। इसके लिए सन् १९२४ में उन्होंने २१ दिन के उपवास किये थे। परिणामस्वरूप सर्वदल-सम्मेलन बुलाया गया था और एकता-समिति अस्तित्व में आयी थी; परन्तु वह असफल सिद्ध हुई। इसके सिवा गांधीजी के इस उपवास से पहले और बाद में भी इन दो जातियों में दिल्ली, गुलबर्गा, कोहाट, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, कलकत्ता, जबलपुर वगैरह स्थानों में टक्करें हुई थीं। इनमें सबसे अधिक भयंकर टक्कर कोहाट में हुई थी। देश के इस बार के भ्रमण में अली भाइयों में से एक भी गांधीजी के साथ नहीं था। प्रत्येक स्थान पर गांधीजी उनकी अनुपस्थिति पर अपने प्रवचनों में दुःख प्रकट करते थे। परिणामस्वरूप इस समय गांधीजी ने इस प्रश्न को बहुत नहीं छेड़ा। अपने प्रवचनों में वे कहते :

'किसलिए ये झगड़े होते हैं? आपको एकदिल होना ही पड़ेगा। सिर फोड़कर आपको इकट्ठा होना हो तो भी आप जरूर ऐसा कर सकते हैं'··'सिर फोड़कर स्वराज्य लेने में हजारों वर्ष लगेंगे'··'दोनों जातियों को समझना ही चाहिए कि एक-दूसरे के सेवक हैं, गुलाम हैं'; 'मैं स्वयं तो हार गया हूँ'·· इस समय मेरी सलाह काम नहीं आती। मेरी सलाह तो मर्द के लिए है; डरपोक के लिए नहीं। सामनेवाला गाली दे तो मैं गाली न दूँ, सामनेवाला मारे तो मैं पलटकर मारूँ नहीं, यह अपना धर्म मैं समझा नहीं सकता।'··'परन्तु एक दिन इन दोनों को इकट्ठा होना ही पड़ेगा'; 'मैं जानता हूँ कि दोनों लड़कर इकट्ठे होंगे; जो मना करने से नहीं करेंगे, वह हारकर करेंगे।'

इस प्रकार वे एक तरह का निराशात्मक आशावाद मन में रखते रहे।

परन्तु दूसरे दो मामलों—खादी और चरखा तथा अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने जबरदस्त आन्दोलन छेड़ा।

बेलगाम से लौटने के बाद गांधीजी का अधिकांश समय प्रवास में ही गया। सिर्फ २४ दिन वे साबरमती रहे। यह प्रवास मुख्यतः गुजरात-काठियावाड़ और दक्षिण में था; हां, सर्वदल-सम्मेलन द्वारा नियुक्त ऐक्य समिति की दो बैठकों के लिए थोड़ा-थोड़ा करके कोई चौदह दिन दिल्ली में ठहरना पड़ा था; और कोहाट से भागकर आये हुए हिन्दुओं के बारे में उनके और मुसलमान जाति के नेताओं के साथ चर्चा करने के लिए कोई चार दिन रावलपिण्डी ठहरना पड़ा था। गुजरात-काठियावाड़ का दौरा थोड़ा-थोड़ा करके किया था। उसके मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं—एक दक्षिण में जाने से पहले का और दूसरा उसके बाद का। दक्षिण प्रवास का विवरण डायरी के हिन्दी ५वें खण्ड में दिया जा रहा है। पहली किस्त में जो समय काठियावाड़ में बिताया, वह मुख्यतः वहाँ के रजवाड़ों के निमंत्रण के परिणामस्वरूप बिताया और दूसरी में लोगों के निमन्त्रण पर बिताया, यह कहा जा सकता है।

गुजरात के प्रवास की पहली किस्त दाहोद से प्रारम्भ हुई। पंचमहाल के भीलों से मिले और अस्पृश्यता-निवारण का जो काम वहाँ हो रहा था, उसे देखा। परन्तु मुख्य प्रसंग तो यह था कि भावनगर में हुई काठियावाड़ राजकीय परिषद् की बागडोर सँभाली। उस जमाने का काठियावाड़ अर्थात् अनेक छोटे-बड़े रजवाड़ों से छाया हुआ प्रदेश, जहाँ की प्रजा किसी-किसी राज्य में राजा की सज्जनता और सहानुभूति अनुभव करती थी, परन्तु अधिकतर तो दबी हुई और कुचली हुई थी। ऐसे प्रदेश में राजकीय परिषद् करना और उसकी कार्यवाही सुनना बहुत नाजुक काम था। परन्तु यह समय राजनैतिक आन्दोलन का नहीं था और झुकाव रचनात्मक कार्यक्रम की तरफ था, इसलिए परिषद् हुई और सफलतापूर्वक हुई। परिषद् भावनगर में हुई थी। इसमें वहाँ के दीवान सर प्रभाशंकर पट्टणी की होशियारी भी थी। उन्होंने स्वयं ही खादी कातने पर—जो गांधीजी को प्रिय थी—जोर दिया; खुद ने कातने की प्रतिज्ञा ली और दूसरे कातनेवाले तैयार करने का वचन दिया। अपने भाषण में कहा : 'आप भले ही समझें कि मैंने अपनी जिन्दगी खुशामद में बितायी है, परन्तु हुकूमत में भी गुजारी है। दोनों का सम्बन्ध एक ही है··· काठियावाड़ राजकीय परिषद् के बजाय काठियावाड़ चरखा प्रचारक परिषद् होनी चाहिए, ऐसा मेरा खयाल है। मैं मानता हूँ कि यह महात्माजी को भी पसन्द होगा।' लोग कहते थे कि पट्टणी-

जी ने गांधीजी की प्रिय खादी की वात मान ली और काठियावाड़ की राजनैतिक हलचल कम-से-कम वारह मास के लिए टाल दी। परन्तु जो समझदार थे, वे तो समझ गये कि खादी अपना ली तो यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक हलचल जीवित ही रहेगी।

राजनैतिक व्यक्ति पट्टणीजी का दूसरा पहलू भी इस दौरे में देखने में आया। गांधीजी उनके तीन दिन मेहमान रहे और इन तीन दिनों में उन्होंने अपने साहित्य-रस का काफी परिचय गांधीजी और महादेवभाई को कराया। इसके अलावा अंग्रेज शासकों के वारे में अपने मन्तव्य प्रस्तुत किये।

काठियावाड़ का दूसरा दौरा मुख्यत: लोगों के निमन्त्रण के फलस्वरूप था, यद्यपि इस वार भी पट्टणी मढड़ा आ पहुँचे और रात के वारह वजे भरी सभा में खड़े होकर भाषण करके अपने-आपको शठ वताया और यह कह सुनाया कि गांधीजी ने मुझे साधु वना दिया।

इस दूसरी यात्रा में गांधीजी पालीताणा के पहाड़ पर चढ़े और मुनिश्री कर्पूर-विजयजी के साथ चरखा कातने के वारे में चर्चा की। सच्ची अहिंसा किसमें है और सच्चा दया-धर्म कौन-सा कहलाता है, आपत्ति-धर्म किसे कहा जाय और युग-धर्म किसे माना जाय, इस विषय की वड़ी रसमय चर्चा हुई।

गुजरात के वाकी के भाग में जो दौरा किया, उसके दरमियान पेटलाद तालुके की किसान परिषद् और वेड़छी की कालीपरज परिषद् में गांधीजी उपस्थित रहे थे। इस प्रवास में एक अत्यन्त करुण घटना पीज गाँव में हुई। स्वागत-गीत गानेवाली कन्याओं ने गाया :

'मोटी खादी पहनो परदेसी कपड़ा छोड़ो,
मेरी वहनो स्वराज लेना सहल है।'

और कन्याओं में से एक के शरीर पर भी खादी नहीं थी! यह गाया गया, तव लोग खिलखिलाकर हँस रहे थे, परन्तु उसके भीतर की करुणता और दांभिकता ने गांधीजी के हृदय को वड़ा आघात पहुँचाया।

प्रवास में वारडोली भी आयी। जिस वारडोली ने सन् १९२२ में भारत की थरमोपीली की उपमा प्राप्त की थी, उसकी दुर्दशा देखकर गांधीजी को वड़ी चोट लगी। 'कहाँ '२२ की जनवरी का दिन और कहाँ आज १९२५ की जनवरी की १७ तारीख' कहकर उन्होंने अपने मन का गुवार निकाला।

भुवासण भी गये और अस्पृश्यता-निवारण के काम में वाधा डालनेवाले वहाँ के लोगों के विरुद्ध नरहरिभाई को सात दिन के उपवास करने पड़े थे, उसके वारे में दिल का दर्द प्रकट करते हुए कहा : 'उसने तुम्हारा अपराध किया! मेरा

लड़का· · ·अपराध करे तो वह मेरा अपराध माना जाय· · ·नरहरि· · ·तुम पर जब्र करने नहीं आये· · ·नरहरि ने· · ·खाना बन्द किया· · ·उसने सत्याग्रह किया· · · तुमने उसे मार डाला होता तो कोई बात नहीं, परन्तु तुमने · · ·खादी क्यों छोड़ी ?'

जैसे ये करुण प्रसंग थे, वैसे कोई-कोई मनोरंजक प्रसंग भी होते थे । एक ही उदाहरण देता हूँ । भावनगर से शामलदास कॉलेज के विद्यार्थियों की सभा में जाने में एक घण्टे की देर हो गयी । गांधीजी समय की पाबन्दी के आदी थे, इसलिए स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि 'यहाँ आने से पहले अछूत मुहल्ले में जाना था, परन्तु· · ·कोई रास्ता बतानेवाला ही न मिला !'

अहमदाबाद में जब रहे, तो वहाँ मुख्य प्रसंग गुजरात विद्यापीठ के पदवीदान-समारोह में अध्यक्ष-पद लेने का था । इस समारोह का विशेष महत्त्व था । विद्यापीठ से सम्बद्ध संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या हर साल घटती जा रही थी और वह एक प्रकार से चिन्ता का विषय था । इस बारे में चर्चा हो रही थी कि यों ही चलने दिया जाय या क्या किया जाय । अपने भाषण में गांधीजी ने इस प्रश्न की छानबीन करते हुए कहा : 'मैं निराश नहीं होता· · ·कदाचित् स्वराज्य मिल जायगा, तब भी ऐसी कितनी ही संस्थाएँ सरकार से स्वतन्त्र चलती होंगी· · · संसार में प्रत्येक प्रवृत्ति में कितने आदमी काम करते हैं, उनमें कितना खर्च होता है, इस पर से उसका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता ।'

दिल्ली में ठहरना ऐक्य परिषद् द्वारा नियुक्त समिति के सिलसिले में हुआ । उस बीच वहाँ हुई गोरक्षा परिषद् में और अछूतोद्धार परिषद् में भी भाग लिया और बोले ।

रावलपिण्डी में कोहाट से भागकर आकर रहनेवाले हिन्दुओं से मिलने गये और कोहाट से आये हुए मुसलमानों के प्रतिनिधियों के साथ समझौते के सम्बन्ध में चर्चा की । मुसलमानों के इस बार के मुख्य नेता अलीभाई थे । परन्तु इससे पहले गांधीजी और उनके बीच अन्तर पड़ गया था । फिर भी कोहाट के दंगों की जांच के समय शौकतअली गांधीजी के साथ थे । मगर चर्चा के दौरान जो बातें बाहर आयीं, उनसे मानसिक दुःख के प्रसंग अधिक मात्रा में पैदा हुए और परिणामस्वरूप अन्तर बढ़ गया । महादेवभाई का 'कोहाट का दिग्दर्शन' नामक जो लेख, मेरी जानकारी के अनुसार, अब तक अप्रकाशित रहा था और जिसका समावेश डायरी के इस भाग में किया गया है, उसमें इसका चित्रण अच्छी तरह हुआ है ।

पुस्तक मुख्यतः भाषणों से ही भरी है, पत्र बहुत ही थोड़े हैं और दूसरी टिप्पणियाँ नाममात्र को हैं । यह समय केवल प्रचार का था । शान्ति से एक जगह

बैठकर पत्र-व्यवहार निपटा सकने की तो बात ही नहीं थी। अनिवार्य पत्र-व्यवहार ही होता था। इसलिए मुख्यतः भाषण ही हैं। और सब जगह एक ही तरह की बातें कहनी होती थीं, इसलिए पुनरावृत्ति तो होती ही। अलबत्ता एक ही बात को अलग-अलग ढंग से रखा जाता था।

पुस्तक के अन्त में गांधीजी के दो लेख, कोहाट के बारे में उनका और शौकत-अली का—ये दो बयान परिशिष्ट में दिये गये हैं।

डायरी का यह चौथा खण्ड ता० ५ अक्तूबर १९२४ से शुरू होता है और ता० २८ फरवरी १९२५ तक पूरा होता है। गुजराती का छठा खण्ड ता० २९-१२-'२४ तक का है और सातवाँ खण्ड ३०-१२-'२४ से ३०-४-'२५ तक का है। अर्थात् हिन्दी चौथे खण्ड में गुजराती के छठे और सातवें खण्ड की सामग्री ली गयी है। गुजराती के सातवें खण्ड की शेष सामग्री हिन्दी के पाँचवें खण्ड में दी जायगी।

पाँचवें खण्ड में गांधीजी के दक्षिण-प्रवास का विवरण रहेगा, जिसमें चरखा, खादी और अस्पृश्यता-निवारण विषयक अनेक रोचक मुलाकातें, भाषण आदि हैं।

—चन्दुलाल भगुभाई दलाल

अनुक्रम

महादेवभाई की डायरी

(गांधीजी के साथ २५ वर्ष)

चौथा खण्ड

५-१०-१९२४ से २८-२-१९२५ तक

बापू पाप का तिरस्कार करते हैं, पापी का नहीं। परन्तु बालकों के प्रति उनके मोह और प्रेम को देखते हुए ऐसा लगता है कि वे इस एक मामले में तो पापी का तिरस्कार करते होंगे, पाप का नहीं!

× × ×

विश्वास एक महान् वस्तु है, परन्तु बापू का विश्वास प्राप्त कर लेनेवाले को खाँडे की धार पर चलना पड़ता है। यह विश्वास गँवा देने का समय आया कि समझ लीजिए, फिर सारा कारबार टूट गया और जड़ भी उखड़ गयी।

× × ×

···का नैतिक निर्णयावसर* का पत्र आया, उस दिन बापू कहते हैं: 'मैं जुलाहा ही हुआ होता और देश की राजनीति के जंजाल में न फँसा होता तो ऐसा लगता है कि यह कुछ न होता। ऐसा हुआ होता तो सब अच्छी तरह ठिकाने लग गये होते।'

---

* Moral crisis का।

दूसरा सप्ताह

(नवजीवन, ता० ५-१०-१९२४)

गत बुधवार को व्रत का एक सप्ताह पूरा हुआ। आज दूसरा पूरा होता है। स्वास्थ्य के समाचार मैं हर रोज देता ही रहा हूँ। दूसरे सप्ताह के अन्त में शरीर कुछ अधिक दुबला, परन्तु कान्ति पहले जितनी ही तेजस्वी, विशेष सौम्य मालूम होती है। प्रथम सप्ताह में खुद उठकर नहाने-धोने के लिए जाते थे, बाहर टहलने के लिए सीढ़ियाँ उतरते थे। दूसरे सप्ताह में ये दोनों चीजें बन्द हो गयी हैं। अब पलंग से उतरकर जाने की शक्ति नहीं रही, पलंग पर अपने-आप उठकर बैठने की शक्ति भी नहीं रही, इसलिए सारे दिन गांधीजी लेटे ही रहते हैं। केवल कातने के लिए संकल्प-बल का उपयोग होता मालूम होता है, क्योंकि और सारी अशक्ति के साथ हाथ बार-बार चलाने और आध घण्टे लगातार बैठने की शक्ति भी नहीं रही होगी, ऐसा डॉक्टर लोग मानते थे, इसलिए डॉक्टरों ने चरखा छोड़ने की सिफारिश की थी। परन्तु गांधीजी ने अत्यन्त आज्ञाकारी रोगी की भाँति इस मामले में डॉक्टरों को चुनौती दी। डॉक्टर हारे, आधा घंटा कातने के बाद थकावट बढ़ी नहीं, बल्कि नाड़ी अधिक अच्छी चलती मालूम हुई! इसलिए उन्हें कहना पड़ा कि यह आपके लिए एक औषधि की मात्रा है।

अशक्ति का दूसरा अपवाद है लिखने की शक्ति का। इसमें भी डॉक्टरों को ऐसा लगा कि संकल्प-शक्ति ही काम करती होगी, क्योंकि दूसरे सप्ताह में भी उन्होंने कोई ऐसा-वैसा लिखने का काम नहीं किया। डॉक्टरों ने लिखने और लिखवाने की मनाई की थी, मगर गांधीजी की सेवा करने की उत्सुकता को कौन दबा सकता है?

एकता परिषद् के सदस्यों को एक लम्बा पत्र लिखा। उसी दिन से डॉक्टरों ने देखा कि कुछ लिखना हो तो उन्हें लिखने ही देना चाहिए, क्योंकि जैसे चरखे में गांधीजी के लिए औषधि निहित है, वैसे ही कठोर तपस्या करते हुए भी वे इन लेखों द्वारा सबको अमृतौषधि दे रहे हैं।

'नवजीवन' के पाठकों को लिखा गया पत्र, परिषद् को लिखे गये दो पत्र, 'यंग इंडिया' के लिए लिखा गया छोटा-सा लेख और जो अब भी उनके हस्ताक्षर के पत्र प्राप्त करने में भाग्यशाली हैं, उनके नाम दिन-रात की-सी नियमितता से लिखे जानेवाले पत्र जिन्हें मालूम हैं, वे ही इस अमृतौषधि को परख सकते हैं। यह लिखने के लिए उनसे बैठा नहीं जा सकता। परन्तु लेटे-लेटे तकिये के सामने कागज रखकर लिखते हैं।

प्रथम सप्ताह में तो स्वयं प्रार्थना में गाते थे, इतने उत्साह से कि उनकी आवाज कई आवाजों में सुनाई देती थी। अब तो प्रार्थना के लिए सीधे बैठना और जोर से गाना असंभव हो गया है। परन्तु जोर से गाना असंभव होने के बदले में खूब सुनने का उन्होंने अब अभ्यास कर लिया है। पंडित मालवीयजी एक दिन मिलने आये। उन्होंने कोई बातें नहीं कीं, परन्तु ध्रुवोपाख्यान सुनाने की इच्छा प्रकट की और लगभग डेढ़-दो घंटे उन्होंने श्रीमद्भागवत में से ध्रुवोपाख्यान सुनाया और तपश्चरण में ध्रुव ने ईश्वर-सान्निध्य कितना प्राप्त किया था, इसकी महिमा गायी। गांधीजी अब संगीत पहले से अधिक सुनकर इस सान्निध्य का अधिकाधिक अनुभव कर रहे हैं। आज पं० मालवीयजी ने प्रह्लाद की कथा सुनायी। बालकोबा तो अब शहर से आकर हमेशा यहीं रहने लगे हैं, इसलिए जब इच्छा हो तब उनसे भजन सुना जा सकता है। पंडित मालवीयजी ने भी कुछ गानेवालों का प्रबन्ध किया है और वे शाम के ४ से ६ बजे का समय संगीत से भर देते हैं। शरीर के आहार का कितना ही त्याग करें, परन्तु आत्मा के आहार का त्याग तो अकल्प्य है। आत्मा का आहार दिन-दिन बढ़ता जाय तो ही अमृतत्व की प्राप्ति हो। **त्यागेनैकेन देवा अमृतत्व-मानशुः** का पाठ जैसे गांधीजी पढ़ा रहे हैं।

और अमृतत्व का आहार कर रहे, निरन्तर ईश्वर-चिन्तन से आत्मा को परिपुष्ट कर रहे, वे डॉक्टरों को छकायें तो आश्चर्य क्या? यह आश्चर्य पिछले सोमवार को हुआ। गांधीजी की सेवा करनेवालों में डॉक्टरों का स्थान अग्रगण्य है। डॉ० अनसारी और डॉ० अब्दुर्रहमान को गांधीजी को दो बार देख जाने में अपूर्व आनन्द आता है। परन्तु एक डॉक्टर श्री सेन के, जो हर रोज मूत्र-परीक्षा करते हैं, सेवाभाव का भी पार नहीं। एण्ड्रूज से वे एक बार कहते हैं: 'इस प्रकार गांधीजी की सेवा करने का मुझे सौभाग्य मिलेगा, ऐसी मैंने कभी आशा नहीं रखी थी।' सोमवार को सदा की भाँति डॉ० सेन के यहाँ पेशाब जाँच के लिए गया। उसमें कुछ

विषैले पदार्थ पहले से ही मालूम होते थे, परन्तु घवराहट पैदा करने जैसी कोई वात नहीं। सोमवार को उनकी मात्रा उन्हें घवरानेवाली लगी। उन्होंने दुवारा परीक्षा की तो मात्रा ज्यों की त्यों। डॉक्टरों को खवर दी गयी। सव जगह घवराहट फैली। हकीम अजमल खाँ साहव, जो नादुरुस्त तवीयत के कारण परिषद् में भी नहीं आ सकते थे, खवर लगते ही गांधीजी को देखने चल पड़े। हकीमजी और डॉक्टरों का मत हुआ कि गांधीजी थोड़ी-सी शकर लें तो जो जहर वड़ी मात्रा में दिखाई देते थे, वे वन्द हो जायँ। हकीमजी डॉक्टरों से पहले गांधीजी के पास पहुँचे। इससे पहले देशवन्धु दास और श्री वासन्तीदेवी तो पहुँचे ही हुए थे। परन्तु गांधीजी का मौनवार था। उनके साथ वहस भी किस तरह की जाय? देशवन्धु तो चुपचाप वैठे ही रहे। हकीम साहव ने खूव समझाया। उन्हें गांधीजी ने उर्दू में लिखकर वताया: 'आप मेहरवानी करके कल तक ठहर जाइये। मैं कल सव सुनाऊँगा।' हकीमजी वाले: 'आप सुनायेंगे, लेकिन हम सुनाना चाहते हैं और आपको सुनना ही होगा।' गांधीजी केवल हँस रहे थे। आखिर फिर उर्दू में लिखा: 'खुदा करेगा तो कल पेशाव में कुछ नहीं होगा।' हकीमजी खिलखिलाकर हँसकर वोले: 'आप तो वली हैं—महात्मा हैं, इसलिए यह कह सकते हैं। मैं तो तवीव हूँ। मुझे कैसे यकीन हो सकता है?' गांधीजी फिर हँसे। हकीमजी ने ही स्वयं कहा: 'अच्छा, मैं कल सुवह आऊँगा।' हकीमजी से जीतकर गांधीजी आनन्द से लेटे हुए थे कि इतने में डॉक्टर आये। डॉ० अनसारी की मुद्रा गम्भीर थी। आज तो गांधीजी को दवा लेने के लिए विवश किया ही जाय, यह निश्चय करके वे आये थे। उनके कुछ कहना शुरू करने से पहले गांधीजी ने ही कागज पर लिखकर मीठे उलहने देना शुरू किया: 'आपने नाहक क्यों उथल-पुथल कर डाली है? मूत्र-पृथक्करण से इतनी सारी घवराहट किसलिए, जव और सव वातों में आप सव जितना चाहें उससे मैं वहुत अच्छा हूँ?' डॉक्टर अब्दुर्रहमान ने कहा: 'अच्छे हैं, इससे इनकार नहीं, मगर जहर की मात्रा इस हद तक है कि जरा-सी और वढ़ जाय तो और सव अच्छापन हमारे लिए वेकार हो जायगा। उस समय नाड़ी अच्छी चले, हृदय ठीक हो, श्वासोच्छ्वास दुरुस्त हो, फिर भी दिमाग पर असर हो जाय और हम अपंग वन जायँगे। हमारे पास कोई भी उपाय न रहेगा।' डॉ० अनसारी ने समझाया: 'मैं तो आपको कह देता हूँ कि मैं स्वभाव से घवरानेवाला नहीं हूँ, यह सव स्वीकार करेंगे। परन्तु आपकी

हालत तीन-चार दिन से लगातार देख रहा हूँ। जिस चीज की हम शिकायत करते हैं, वह बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं होती। यह इसी तरह बढ़े, तब तो ऐसी स्थिति ही नहीं कि हम हाथ मलते रहें और अब इसे बढ़ने दें।'

गांधीजी ने शान्ति से लिखा: 'खैर, मगर अब कल तक राह देखें और कल की जाँच क्या बताती है, यह देखने के बाद हम चर्चा करेंगे।'

डॉ० अनसारी बोले: 'मगर आप तो वचन दे चुके हैं कि हमें जोखिम मालूम हो तो आप उपवास तोड़ देंगे। और उपवास तोड़ने को तो हम आपसे कह ही नहीं रहे। हम तो कहते हैं कि केवल एक चम्मच दवा ले लीजिए, ताकि वह जहर फैलने से रुक जाय। इस बात की हम व्यवस्था करेंगे कि इस दवा से आपके शरीर को कोई पोषण न मिले—अर्थात् इस मात्रा में देंगे कि आपके उपवास का असर कम न हो। परन्तु आप कल तक ठहरने को कहते हैं, यह कैसे होगा? हम कितनी जोखिम उठायें? अब इस जोखिम की हद आ गयी है।' डॉक्टर अनसारी के शब्दों में जो करुणा, प्रेम, जो ममता भरी थी, उसका वर्णन किया नहीं जा सकता। यह वही जाने, जिसने उस समय की उनकी चेहरे की हालत देखी हो। गांधीजी ने उत्तर दिया: 'परन्तु इस रात को तो शकर ली ही नहीं जा सकती। कारण आप जानते हैं। शाम के बाद कुछ भी न खाने-पीने की मेरी दूसरी प्रतिज्ञा है। मुझे आशा है कि कल का पृथक्करण आपको निश्चिन्त करेगा।'

अनेक प्रतिज्ञाओं का कवच धारण की हुई आत्मा के साथ किस तरह बहस की जाय? परन्तु डॉ० अनसारी नहीं हिले: 'अच्छा, मुँह के जरिये आपको दवा न दें। इंजेक्शन के द्वारा नस में दे दें तो भी उसका उतना ही असर होगा। और इसमें आपकी प्रतिज्ञा तोड़ने की बात नहीं आती। कल की अपेक्षा आज जहर की मात्रा इतनी बढ़ गयी है कि हमें रात का विश्वास नहीं हो सकता।'

गांधीजी ने फिर आश्वासन दिया: 'रात के बारे में आप निश्चिन्त रहिए। हकीमजी तक कल का पृथक्करण हो जाय, तब तक प्रतीक्षा करने का वचन दे गये हैं।'

डॉ० अनसारी: 'परन्तु हम आपको १३ दिन से देख रहे हैं, हकीमजी नहीं देखते। मैं इस बात में हकीमजी की नहीं मानूंगा। मुझे आपकी सारी प्रकृति का पता है, उन्होंने तो आज ही आपकी नाड़ी देखी।'

फिर गांधीजी ने लिखा : 'परन्तु आज तो पेशाव भी कम है, शाम के पृथक्करण में बहुत कम जहर होगा। देख लीजिए।'

इस प्रकार एक तरफ बहस में पड़कर गांधीजी के मस्तिष्क पर जोर डालने से डॉक्टर डरते थे, और दूसरी तरफ उन्हें जोखिम भी बहुत लगती थी। उनकी साँप-छछूंदरवाली गति हो रही थी। उन्हें पल-पल में यह भी महसूस हो रहा था कि कहाँ तक गांधीजी से कागज पर लिखवाते रहें? परन्तु यदि ईश्वर करे कि गांधीजी मान जायँ तो चिन्ता से छूटें। इस तरह वे मानते थे, इसलिए बहस करते रहते थे।

डॉ० रहमान बोले : 'कल का पृथक्करण अच्छा नहीं निकलेगा, यह मैं नहीं कह सकता, क्योंकि आपने तो विज्ञान को भी छका दिया है। हम जिन-जिन चिह्नों का भय रखते थे, उनमें से एक भी मालूम नहीं हुआ। हमारा पुस्तकी ज्ञान आपके सम्बन्ध में तो गलत साबित हो गया। परन्तु हम तो साधारण मनुष्य ठहरे, साधारण मनुष्यों को देखनेवाले ठहरे। उनके हिसाब से ही आपको देखने में हमारी जोखिम कम है। आप हमारी जिम्मेदारी समझिए, यही हम आपसे अनुरोध करते हैं।'

इस प्रेम के वश होवें या अचल रहें, गांधीजी की इस परेशानी की गहराई को तो कौन नाप सकेगा? उन्होंने फिर लिखा—एक दयाजनक चुभते हुए तीर की तरह का वाक्य लिखा : 'कुछ भी हो, मेहरबानी करके कल तक तो मुझ पर दया रखें।' इस गरीब गाय की करुण वाणी को डॉक्टरों के प्रेमार्द्र हृदयों ने पहचान लिया। बहुत देर तक कमरे में निःस्तब्ध शान्ति रही। डॉक्टरों की गमगीन चुप्पी देखकर, अब भगवान् के बजाय उन पर दया करके, उन्हें रिझाने के गांधीजी ने प्रयत्न शुरू किये। जरा लम्बा लिखकर उनसे धीरज रखने की प्रार्थना की : 'आप अलग-अलग खासियतों का विचार नहीं करते। दूसरे मनुष्य के लिए एक स्थिति भयंकर हो, वह मेरे लिए न भी हो। और फिर यह भी नहीं कि आप उपवास करनेवालों का अवलोकन करके किसी अनुमान पर पहुँचे हैं और न उपवास करनेवालों को देखकर कोई अन्दाज लगाये हैं। उपवास के अनेकविध प्रभावों की गहरी परीक्षा भी आपके वैद्यक-शास्त्र ने अभी तक नहीं की।'

डॉक्टर अनसारी ने कहा : 'नहीं, हम उपवास करनेवालों के अवलोकन पर से ये बात कर रहे हैं। उपवास करनेवालों के शरीर की क्रिया-प्रक्रिया की वैद्यक-शास्त्र में परीक्षा की गयी है।'

इस उत्तर के विरुद्ध तो कुछ कहा नहीं जा सकता था, सिवा इसके कि 'खैर, वे उपवास करनेवाले मेरे जैसे न होंगे। मेरा तो विशेष मामला है।' परन्तु गांधीजी ने वहस नहीं की। उन्होंने दो शब्दों में ही सब कुछ निपटा दिया और लिखने के लिए लिये हुए चश्मे को आँखों पर से उतार दिया : 'शेष कल।' चश्मा उतरने का अर्थ डॉक्टरों ने यह समझा कि अब बहस बन्द करने की सूचना है। डॉक्टर उठे। डॉ० रहमान उठते-उठते बोले : 'आपकी संकल्प-शक्ति जहर को बढ़ने से रोक दे, तो आश्चर्य नहीं।' सरल, सहज आत्म-विश्वास से—ईश्वर-श्रद्धा से—गांधीजी मुसकुरा दिये।

इस ऐतिहासिक प्रसंग का अक्षरशः वर्णन करने के लिए पाठकों से क्षमा माँगने की जरूरत भी नहीं जान पड़ती। डॉक्टर बाहर निकले। डॉ० अनसारी कहने लगे : 'मैं तो भाई, रात को यहीं सोने आऊँगा।' डॉ० रहमान का खयाल था कि सुबह तक कुछ नहीं होगा, परन्तु उन्होंने कहा : 'शाम का पृथक्करण तो देखें।' शहर में जाकर उन्होंने शाम का पृथक्करण देखा। जहर लगभग मिट गया था! डॉ० सेन बेचारे परेशानी में पड़े। सुबह इतनी अधिक मात्रा और अब कुछ भी नहीं। 'कोई भूल तो नहीं?' एक मित्र ने पूछा। अधीर होकर उन्होंने कहा : 'गांधीजी की परीक्षा में भूल करूँ, तब तो मेरा नाम नहीं।' उन्होंने फिर परीक्षा की। वही परिणाम! डॉ० अब्दुर्रहमान और डॉ० अनसारी को खबर दी। उन दोनों को आश्चर्य हुआ। रात को वे अनेक प्रकार के साधन, दवाइयाँ लेकर आने की तैयारी करके गये थे। परन्तु इस आश्चर्यजनक पृथक्करण से सन्तुष्ट होकर वे खाली-खाली आये और सुबह तक गांधीजी के पास-वाले कमरे में खूब सोये। सवेरे डॉ० रहमान जल्दी उठकर गांधीजी को देखने गये। गांधीजी हँसकर कहते हैं : 'क्यों शहर से यहाँ सोने आये तो अच्छा 'जलवायु-परिवर्तन' हो गया न?' डॉ० कहते हैं : 'अब हम रोज आयेंगे।' गांधीजी बोले : 'जरूर आइये। परन्तु थककर उकताकर आराम लेने आयें, मेरे लिए नहीं।'

इस रात गांधीजी को आध्यात्मिक भोजन की नयी सामग्री मिली। कलकत्ते के बिशप और भारत के बड़े बिशप, जो परिषद् के लिए यहाँ आये हैं, समय-समय पर गांधीजी से मिलने आते हैं, शान्ति के एक-दो वचन कहकर लौट जाते हैं। इस सोमवार की रात को सभी आये थे, बिशप को भी एण्ड्रूज ने समाचार भेजकर बुलवाया था। वे आये, इतना ही नहीं, परन्तु शाम का पृथक्करण डॉक्टर टेलीफोन से बताये, तब तक

ठहरने की उन्होंने इच्छा प्रकट की। वे दो घण्टे ठहरे, परन्तु ऊपर गांधीजी के पास जाने से साफ इनकार करते थे। 'मैं उन्हें विक्षेप हरगिज नहीं करना चाहता, मैं तो आपसे ही खबर लेने आया हूँ।' गांधीजी को पता चला। सारी धूमधाम के कारण प्रार्थना अभी तक नहीं हुई थी, मूसलाधार बरसात के कारण शहर से बालकोबा आये नहीं थे। गांधीजी ने मुझे लिखकर कहा: 'यदि बिशप 'Lead Kindly Light' गायें तो उन्हें ऊपर आकर प्रार्थना में सम्मिलित होने का अनुरोध करो।' मैं तुरन्त दौड़ा। बिशप तो हर्षोन्मत्त हो गये। वे फौरन् भजन याद करने लगे। हर्ष में उन्हें एक-दो कड़ियाँ याद नहीं आयीं। एण्ड्रूज ने कागज पर लिख दीं। परन्तु एक कड़ी में दो शब्दों के विषय में शंका थी। दोनों स्मृति को ताजा कर रहे थे। अन्त में बिशप कहते हैं: 'गांधीजी से ही पूछें।' दोनों उठे, सीढ़ी पर चढ़ते ही एण्ड्रूज बोले: 'हमने जो शब्द लिखे हैं, वही ठीक हैं। अब उन्हें तकलीफ देने की जरूरत नहीं।' प्रार्थना का सायं-स्मरण पूरा होने के बाद 'प्रेमल ज्योति' वाला अंग्रेजी भजन दोनों ईसा-भक्तों ने अत्यन्त माधुर्य से गाया और उस रात में

'मेरे एक कदम बस है'

की धुन में—'प्रेमल ज्योति' के चिन्तन में—गांधीजी सोये।

[दिल्ली, अनशन पंचदशी]

उद्यापन

ता० ८-१०-१९२४

(नवजीवन, ता० १२-१०-१९२४)

'तुम कारन तप संयम किरिया
कहो कहाँ लौं कीजे ?
तुम दर्शन बिनु सच या झूठी
अन्तर चित्त न भीजे
चेतन अब मोहे दर्शन दीजे।'

पिछले सप्ताह व्रत के दूसरे सप्ताह का क्रम वर्णन किया था। डॉक्टरों की घबराहट, गांधीजी के साथ उनकी चर्चा और गांधीजी की उन्हें दी गयी सान्त्वना—यह सब देने का प्रयत्न किया था। अब अंतिम सप्ताह की बात कहूँ।

डॉक्टर भी समझ गये थे कि इनसे खाने की बात करना मिथ्या है। गांधीजी के उन्हें दिये गये वचन का मर्म भी वे जान गये। 'आहार और प्राण के बीच चुनाव करने की नौबत आ जाय' ये शब्द गांधीजी ने काम में लिये थे। वहाँ चुनाव करना था गांधीजी को, डॉक्टरों को नहीं। डॉक्टरों ने देख लिया कि गांधीजी को गले तक विश्वास है कि इतने उपवासों से शरीर गिरेगा नहीं, इसलिए ऐसा वचन देने में उन्हें संकोच हो ही नहीं सकता था। इसके बाद उन्होंने ऐसी बातें करना ही छोड़ दिया, मानो वे भी बापू के उपवास की देखभाल करने लगे—उपवास को कायम रखना अपना धर्मकृत्य समझने लगे। जब पूना से उपवास-चिकित्सक डॉ० वेवलकर आये, तब उन्होंने तो बापू को देखकर कहा: 'यह तो आश्चर्य-जनक स्थिति है! इन्हें किसी डॉक्टर की जरूरत नहीं। मैंने ऐसा बीमार कोई नहीं देखा। इतने उपवासों की स्थिति में मनुष्य अस्थिपंजर हो जाता है और उसे मुश्किल से दो घण्टे से ज्यादा नींद आती होगी। परन्तु गांधीजी तो सात-सात घण्टे सोते हैं। इनका आत्मबल, इनकी जबर्दस्त एकाग्रता-शक्ति ही इन्हें मदद कर रही है।' जगत् को दवा सुझानेवाले को, अपने रोग की स्वयं ही औषधि करनेवाले को, कौन दवा दे?

फिर भी डॉक्टरों की सेवा अनुपम थी, यह न कहूँ तो कृतघ्नता होगी। डॉक्टर दिन प्रतिदिन प्रभात में उन्हें देखते और मुस्कुराते चेहरे से बापू को कहते हैं: 'महात्माजी, आपका काम तो अजीब है।' इस वचन में जो दवा भरी है, उससे कोई इनकार कर सकता है?

मुझे लगा कि अन्त के तीन-चार दिन बहुत मंथन के गुजरे। शरीर का कष्ट तो था ही नहीं। एक बार ही कहा था: 'कष्ट तो कुछ भी नहीं। दक्षिण अफ्रीका में दूसरे ही सप्ताह में खराब स्थिति हो गयी थी। इस बार तो मुँह में जरा खराब लगता है और पानी पीना अच्छा नहीं लगता। इतनी ही बात है। यह भी बताता है कि उपवास में कुछ-न-कुछ त्रुटि है।' शरीर को इतनी भी संज्ञा रही है, यह कैसे सहन हो? शरीर के प्रति ममता की कोई भी बात आये तो वह बापू को असह्य हो जाती है। पिछले सप्ताह में सबका खयाल हुआ कि देवदास को बुलाया जाय। मैंने एक बार बहुत आग्रह किया। कात रहे थे। चिढ़कर बोले: 'तुम तो पागल हो पागल! उस लड़के को आना नहीं है। तुमने लिखा, डॉ० अनसारी ने लिखा, फिर भी वह आग्रहपूर्वक कहता है कि मुझे अभी नहीं आना है।

फिर तुम किसलिए आग्रह कर रहे हो ? जो मोह को दवा रहा है, उसे मोह में क्यों डाल रहे हो ?' इन शब्दों के बाद हमने देवदास को बुलवाने का आग्रह छोड़ दिया।

देहात्मभाव का अध्यासमात्र निर्मूल हो, इस लगन में यह सारा सप्ताह गया, यों कहो तो हर्ज नहीं। इसके लिए प्रतिदिन श्री विनोवा से भगवद्गीता के दो-तीन अध्यायों का पाठ कराते, वालकोवा से एक से अधिक भजन गवाते। आखिरी चार दिनों से तो विनोवा सायंकाल में कठोपनिषद् का पाठ कर रहे हैं। उनको सारा कण्ठस्थ होने के कारण रोशनी की जरूरत ही क्यों हो ? अपार शान्ति के साथ वे रोज एक-एक वल्ली सुनाते हैं और उस पर विवेचन करते हैं। ब्रह्मविद्याचार्य नचिकेता का आख्यान सुनते समय वापू आसपास के जगत् के प्रति आँखें वन्द कर लेते हैं। और जव-जव स्मरण होता है कि दो-तीन दिन में तो फिर जंजाल में फँसना है, तव वे परेशान होते हैं और मन में सोचते हैं—'यह उपवास सम्पूर्ण आत्मदर्शन हो जाने तक चलता तो कितना अच्छा।' कितनी ही वार मानो अधीर होकर

'तुम कारन तप संयम क्रिया
कहो कहाँ लौं कीजे ?'

इस प्रकार प्यारे प्रभु को उपालम्भ देते मालूम होते हैं, तो कभी ऐसा जान पड़ता है कि जगत् के सारे पाप ओढ़कर **'हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंजहारी'** कहकर प्रभु से पाप-पुंज धो डालने की प्रार्थना करते हों।

इस महासागर-मंथन से अमृत निकलेगा, इस वारे में किसे शंका हो सकती है ? केवल यह मंथन भी कभी-कभी असह्य हो जाता है। इतना तप होने पर भी इतना मंथन हो तो अभी पूर्णता के लिए, आत्मौपम्य प्राप्त करने के लिए कितना कष्ट सहन करना होगा, इसके विचार में पामर बुद्धि कुण्ठित हो जाती है।

इस परेशानी में ८ तारीख को दशहरे का पुण्य दिवस भी आ पहुँचा। स्थान-स्थान से उपवास निर्विघ्न समाप्त होने के तार आने लगे। १२ वजे पहले तो नीचे की सारी मंजिल मनुष्यों से भर गयी थी। वारह वजते ही वापू ने सवको एक-एक करके वुलाना शुरू कर दिया। इमाम साहव, वालकोवा, एण्ड्रूज को पहले तलव किया गया। भाई शंकरलाल पास में खड़े आँखें भिगो रहे थे। उन्हें वगल में वुलाकर सहलाया। डॉक्टरों को वुलाने की आज्ञा हुई। 'और कोई नहीं ?'—यह पूछने पर किसीने कहा :

'नीचे तो अलीभाई, वेगम साहवा, दास साहव, उनकी पत्नी, मोतीलालजी, उनकी पत्नी, जवाहरलाल, उनकी पत्नी सव खड़े हैं।' इस पर सवको वुलाने की आज्ञा हुई। डॉ० अनसारी पास जाकर झुककर मिलने पर आँसू न रोक सके। फिर मुहम्मदअली आये। वे दूर खड़े रहे। उन्हें 'आओ, भाई आओ' कहकर वापू ने पास वुलाया। वे भी लिपट गये और रोये। सव वैठ गये। इमाम साहव को कुरान शरीफ में से खुदा की वन्दगी करने की आज्ञा हुई। उन्होंने वुलन्द आवाज में 'विस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' वाली पहली सुरा सुनायी। इसके वाद उतने ही औचित्य से एण्ड्रूज को

'When I survey the Wondrous Cross
On which the Prince of glory died'

वाला गीत गाने का हुक्म हुआ। ईसाइयों में एण्ड्रूज के अलावा सुधीर रुद्र और जॉर्ज जोसफ भी थे। थोड़ी देर के लिए क्रॉस के कष्ट और अनशन के कष्ट, ईसा के आँसू और प्रेम तथा वापू के आँसू और प्रेम के वीच सवने अभेद अनुभव किया और वहुतों की आँखों से आँसू टपकने लगे। इसके वाद श्री विनोवा को उपनिषद् में से मंत्र वोलने को कहा गया। उनके मधुर स्वर में गायी जानेवाली सत्य की महिमा से सारा हाल गूँज उठा।

यह पूरा होने के वाद वालकोवा ने 'वैष्णव जन तो' गाया। उसके अलावा 'जय जगदीश हरे' गाया और अन्त में

'रघुकुल रीति सदा चलि आई'

की धुन में प्रार्थना समाप्त हुई। तव गद्गद कंठ से वापू वोले:

'हकीम साहव और मुहम्मदअली,

ये २१ दिन के उपवास वड़ी शान्ति में गुजरे हैं। हिन्दू-मुसलिम-एकता मेरे लिए आज की वात नहीं, तीस वर्ष से मैं इसका सेवन करता हूँ, इसीकी लगन मुझे लगी हुई है। फिर भी मुझे इसमें सफलता नहीं मिली। खुदा क्या चाहता है, यह मैं नहीं जानता। मेरे २१ दिन के इस उपवास की जव मैंने प्रतिज्ञा ली, तव उसके दो भाग रखे थे। एक भाग आज सम्पूर्ण होता है, दूसरा मैंने हकीमजी और अन्य मित्रों की इच्छा से वन्द रखा था। यदि वन्द न रखा होता तो भी एकता-सम्मेलन जिस अच्छे ढंग से होने के समाचार सुनता हूँ, उसके कारण मेरे उपवास तो आज पूरे होते ही। आज मैं आपसे वचन माँग लेता हूँ—वचन तो मिला

हुआ ही है—कि आप हिन्दू-मुसलिम-एकता के लिए मरेंगे ? मेरा खयाल है कि यह एकता न हो सकी तो हिन्दू-धर्म निकम्मा है, इसलाम भी निकम्मा हो जायगा, यह कहने का साहस रखता हूँ। एकता जैसी महत्त्व की वस्तु और कोई नहीं। हमें साथ-साथ रह सकना ही चाहिए। हिन्दू वेखटके अपने मंदिर में प्रार्थना न कर सकें और मुसलमान अपनी मस्जिद में वेखटके अजान न लगा सकें, तो हिन्दू-धर्म या इसलाम कोई चीज नहीं। अव मेरा उपवास तोड़ने का वक्त आ गया है। अव फिर जंजाल में फँसूंगा, इसलिए आपका वचन तो मिल चुका है, फिर भी दुवारा आपसे अपना भार हलका करने के लिए वचन माँगता हूँ।'

हकीम साहव ने भी संक्षिप्त उत्तर दिया: 'मुझे पूरी उम्मीद है कि आपने जो तकलीफ उठायी है, उसका परिणाम वढ़िया होगा। हम आपके नेक काम में सव मिलकर मदद देने को तैयार हैं। यदि यह काम न हो तो दूसरे सव काम छोड़कर इसे पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। आपको आराम हो और खुदा आपका उपवास सफल करे।'

मौ० अवुल कलाम आजाद ने वताया कि 'हकीमजी ने यहाँ उपस्थित सव मुसलमानों की तरफ से आश्वासन दे ही दिया है। मुझे विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानों के दिल एक होंगे, जरूर होंगे और जल्दी ही होंगे। इस काम के लिए अपनी जिन्दगी देने से अधिक मनुष्य के हाथ में नहीं और मैं अपना जीवन इस काम के लिए लगाने को तैयार हूँ।'

यह हो जाने के वाद थोड़ी देर शान्ति छा गयी। उपवास तुड़वाने का पहला अधिकार किसे हो ? डॉक्टर अनसारी को ही। डॉक्टर ने नारंगी का रस लेकर वापू को दिया। तकिये के नीचे दूसरा तकिया रखकर उन्होंने लेटे-लेटे रस पीकर व्रत खोला। और उसके साथ ही जी भरकर खाने-पीनेवाले सभी के प्राणों में जैसे प्राण आ गये, सभी ने मानो लम्वे उपवास तोड़कर खाना शुरू किया।

इस तपश्चर्या को हम सव संग्रह करके रखें, इसका मर्म समझें और जाग उठें तो कृतकृत्य हो जायँ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

चौथा सप्ताह

(दिल्ली, ता० १५-१०-१९२४)

२१ दिन की तपस्या का आरम्भ हुआ, तव से आज चार सप्ताह पूरे हुए। तीसरे सप्ताह का मनोमंथन और व्रतोद्यापन वर्णन करके उपवास का प्रकरण समाप्त किया था। चौथे और पाँचवें सप्ताह के विपय में लिखने का दु:खद कर्तव्य अभी मुझे रहेगा, ऐसा लगता है, क्योंकि पन्द्रह दिन तक तो गांधीजी में ठीक-ठीक शक्ति नहीं आयेगी। व्रत खोलने के वाद सामान्य मनुष्य को सुस्ती आती है, नया आहार अच्छा लगने में देर लगती है, कई दिन से खाये विना रहे हुए को वेशुमार खाने की भी जी में आती है। वापू इनमें से एक भी चीज से पीड़ित नहीं हुए। जितनी सरलता और प्रसन्नता से उन्होंने अनशन आरम्भ किया था, उतनी ही सरलता और प्रसन्नता से उन्होंने अन्न का आरम्भ किया। १२ वजे व्रत समाप्त होता था, परन्तु फलों का रस तो प्रार्थना वगैरह होने के वाद लगभग पौन वजे चखा गया। दो दिन वाद दूध लेने लगे—थोड़ा, थोड़ा, दो औंस, तीन औंस, चार औंस—और आज २५ औंस तथा कुछ नारंगियों तक पहुँचे हैं। उपवास पूरा होने से पहले अनेक जैन मुनियों ने विशेष पत्र लिखकर अपने आशीर्वाद और वधाई भेजी थी और साथ ही साथ व्रत खोलने की अनेक तफसील भेजी थी। इनमें वड़ा प्रेम भरा था, परन्तु वापू के पाँच वस्तुओं के व्रत के कारण फलाहार के सिवा एक भी सूचना वे अमल में नहीं ला सके। अभी जो आहार चल रहा है, उसमें निद्रा वगैरह सव खूव नियमित है।

प्रार्थना-भजनादि भी नियमित चल ही रहे हैं। एक दिन एक वहन आकर आग्रहपूर्वक कहने लगीं: 'मुझे ऊपर जाने दीजिए, मुझे गांधीजी के पास जाना है, मुझे एक-दो वातें पूछनी हैं।' हमने यह सोचकर कि कोई दु:खी स्त्री होगी, और घर का या और कोई दुखड़ा रोना होगा, हम उसे जाने नहीं दे रह थे, परन्तु उसका आग्रह इतना देखा कि मजवूर होना पड़ा। उसने एक ही प्रश्न पूछा: 'महात्माजी, भक्ति किस प्रकार की जाय, मुझे महादेव की भक्ति करनी है, यह मुझे वताइए।' गांधीजी क्षणभर ठहरे और करुण स्वर में वोले: 'वहन, मैं कैसे वताऊँ? मुझे खुद को ही भक्ति करना नहीं आता। मैं तो इतना जानता हूँ और कह सकता हूँ कि भले वनें और भले काम करें।' वहन वेचारी सन्तुष्ट होकर चली गयी, परन्तु

मालूम होता है कि यह प्रश्न वापू के मन में रमता ही रहा होगा। इतने दिन भक्ति में लीन रहनेवाले को और जिसका एक-एक कार्य ब्रह्मार्पित लगता हो, ऐसे व्यक्ति को उस बहन को ऐसा उत्तर कैसे देना पड़ा होगा, यह विचार सहज ही हो सकता है। जैसे ईश्वर अनिर्वचनीय है, वैसे ही उसकी भक्ति भी अनिर्वचनीय है, यह कारण होगा ? कुछ भी हो, दूसरे दिन से वापू ने भागवत के एकादश स्कन्ध का पाठ शुरू कराया। भगवद्-गीता का पाठ तो चल ही रहा है, उसके साथ अब भागवत का पाठ और होने लगा है।

इसके सिवा के वक्त में आम तौर पर वे वाहर के लोगों से मिलते हैं। एक मित्र कहते हैं: 'अब तो कृपा करके ऐसी घोर प्रतिज्ञा कभी न लीजिए। दुनिया में दुष्टता तो थोड़ी-बहुत रहेगी ही।' वापू ने फौरन् हँसकर कहा: 'ऐसा कभी न मानिए कि मैं ऐसा गर्व रखता हूँ कि संसार से दुष्टता मिटाने का मेरा सामर्थ्य है। उपवास भी मैंने अपनी शुद्धि के लिए किया था। इतना प्रायश्चित्त करना मेरा धर्म-कृत्य था, वह हो गया। फल ईश्वराधीन है।'

वहाई पंथ की एक अंग्रेज महिला एकता-परिषद् के दिनों से बार-बार आती है और सायंकाल की प्रार्थना में शरीक होती है। तीन दिन पहले आकर उसने दो-तीन प्रश्न पूछने की अनुमति माँगी। उनमें से एक सवाल था: 'आप सारी मानव-जाति की एकता करना चाहते हैं या केवल भारतीय जातियों की ?' गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया: 'भारतीय जातियों के ऐक्य द्वारा मानव-जाति का। आज तो मैं भारतीय जातियों का भी ऐक्य नहीं करा सका, तब वाहरवालों का कहाँ विचार करूँ? मेरी मर्यादा से ऊपर की यह बात हो जायगी, इसलिए मैं केवल यहाँ की जातियों की ही एकता कराने का प्रयत्न कर रहा हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि इसे सिद्ध करने में मानव-जाति का ऐक्य कुछ अंश तक सिद्ध हो जाता है।'

इसी सप्ताह में एक कैथलिक ज्योतिषी आया। एण्ड्रूज उसे जानते थे। वह अपने ज्योतिष की कमाई का उपयोग परोपकार के लिए ही करता है और आपको देखने के लिए उत्सुक है। गांधीजी को यह कहते ही, गांधीजी बोले: 'मेरे आगे ज्योतिष की बात न करे, इस शर्त पर भले ही आये।' एण्ड्रूज ने यह शर्त उसे सुना दी। उसने बड़े आनन्द से यह शर्त मान ली और ऊपर गया। थोड़ी देर वापू को देखता रहा। फिर घुटनों के बल बैठकर कुछ प्रार्थना की, और गीली आँखें लेकर नीचे उतर आया। उतरकर

एण्ड्रूज से कहता है : 'इनके साथ किसीकी तुलना की जा सके तो वह केवल सन्त फ्रांसिस है। और कोई नजर नहीं आता। मैं इन्हें देखकर धन्य हो गया।'

ऐसा मेला चलता ही रहता है। एक दिन बहुत से मुसलमान भाई जमा हो गये। नमाज का वक्त था। सब छत पर चले गये। अजान लगायी गयी और सबने नमाज पढ़ी। घण्टेभर बाद सारी छत हिन्दुओं से भर गयी। उनमें मुहम्मदअली और दूसरे मुसलमान मित्र भी थे ही। और बालकोबा ने प्रार्थना करायी। एण्ड्रूज के भजन भी बार-बार होते हैं। मौ० मुहम्मदअली के यहाँ थे, तब भी हम बराबर समय पर प्रार्थना करते थे। कभी-कभी तो ऐसा होता कि सुबह की अजान होती और तुरन्त ही हमारी प्रार्थना शुरू हो जाती। यह दृश्य मौ० मुहम्मदअली और रा० ब० सुलतानसिंह के बंगले में ही क्यों बन्द कर दिया जाय? सारे देश में यह दृश्य नजर आये तो सब जातियों की एकता सहज ही सिद्ध हो जाय।

परन्तु दिनचर्या का वर्णन करते हुए मैं तो वातावरण बयान करने में लग गया। जिस बुधवार को उपवास आरम्भ किया, उसके बाद के बुधवार को चलना बन्द हुआ था। वह आज बुधवार को फिर शुरू हुआ है। आज सुबह डॉ० अब्दुर्रहमान का सहारा लेकर बापू कमरे से बरामदे में गये। अब थोड़ी बातचीत की तो डॉक्टरों ने इजाजत दी है। पंडित मोतीलाल, जो अब तक यहीं रहे हैं, डॉक्टरों से पूछकर ही चर्चा करने आते हैं। एकाध घण्टा चर्चा करके जाते हैं। कल तो सवेरे एण्ड्रूज के साथ, दोपहर को अकालियों के साथ और शाम को कोहाटवालों के साथ बातें कीं। थोड़ी थकावट हो गयी थी। एण्ड्रूज के साथ की बातचीत खूब उपयोगी होने के कारण यहाँ दे देता हूँ।

प्रातःकाल के पहर में भागवत के पाठ के बाद एण्ड्रूज को बुलाया गया। एण्ड्रूज एक भजन गुनगुनाते आये। आजकल वे हमारी प्रार्थना में गाये जानेवाले भजनों का अर्थ समझ लेते हैं और बाद में अपनी भजनावली में से वैसे ही निकलकर जगत् के ईश्वर-भक्तों के साम्य पर न्योछावर होते हैं। 'इतना अधिक साम्य जहाँ है, वहाँ कौन गर्व रखे कि मेरा धर्म ही अच्छा और दूसरों का बुरा है। सभी को अपने-अपने धर्म में जितना चाहिए, उतना मिल जाता है।' इस प्रकार उसी प्रातःकाल में उन्होंने मुझसे कहा था। ऊपर आकर बापू से कहते हैं : 'आज आपको ऐसा भजन सुनाना

चाहता हूँ, जैसा आपने कभी नहीं सुना होगा। बाइबिल में वह सैनिक अधिकारी अपने यहाँ के किसी बीमार को अच्छा करने का हुक्म देने के लिए ईसामसीह से कहता है। ईसा वहाँ जाने को कहते हैं। वह कहता है कि मैं इतना अधिक अधम हूँ कि मैं इसके योग्य नहीं। आप केवल इतना कहें कि वह अच्छा हो जायगा और वह जरूर अच्छा हो जायगा। यह प्रसंग है।'

इतनी भूमिका बाँधकर उन्होंने अपना भजन गाया। भजन का भाव तुलसीदास के इस भजन से बहुत ही मिलता था:

मम हृदय भवन प्रभु तोरा
तहँ आय बसे बहु चोरा।
कह तुलसिदास सुन रामा
लूटहिं तस्कर तव धामा।
चिन्ता यह मोहि अपारा
अपजस नहिं होय तुम्हारा।

ये हैं उस भजन की कुछ कड़ियाँ:

I am not worthy; cold and bare
The lodging of my soul;
How canst Thou deign to enter there?
Lord speak and make me whole.

× × ×

And fill with Thy love and power
This worthless heart of mine.

ापके भजनों से कितना मिलता है?' कहकर एण्ड्रूज रुक गये। बापू हते हैं: 'मैंने यह सुना है।' एण्ड्रूज सानन्दाश्चर्य से सुनते रहे। न् १८९३ में सुना था। तब मैं ईसाइयों के अनेक सम्प्रदायों के लोगों से लता और हर रविवार को गिरजे में जाकर प्रार्थना में शरीक होता। स समय सुना हुआ याद है।' और फिर उन ईसाई मित्रों के संस्मरण नाने लगे, जिन्हें यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। इसके बाद कहते हैं: रन्तु आपको ऊपर बुलाया था सो तो दूसरी ही बात के लिए। मैं ाहता हूँ कि आप कांग्रेस की सदस्यता के लिए कातने की शर्त लगाने के बारे में मुझसे पूरी बात सुन लें।'

गां० : 'कल के 'यंग इंडिया' में मेरा लेख आपको पसन्द नहीं आया। परन्तु मैं कहता हूँ, मेरी दलील लाजवाब है। आपको वह ठीक नहीं लगती, क्योंकि आप भूल जाते हैं कि उस टिप्पणी के अन्त में मैंने लिखा था कि यह दलील उनको लक्ष्य में रखकर की गयी है, जो स्वेच्छा से कातना देश के लिए आवश्यक समझते हों। कांग्रेस के सदस्य को तो २००० गज कातने की शर्त स्वीकार करनी चाहिए। यदि कोई आदमी कहे कि मैं अपनी इच्छा से ही कातूंगा, तो उसे जो संस्था कातने की बात को सदस्य बनने की शर्त बनाती है, उस संस्था में वह शर्त स्वीकार करके शरीक होने में आनाकानी नहीं करनी चाहिए। इसीलिए मैंने कहा कि जो देश सैनिक-शिक्षा को अत्यन्त महत्त्व की बात मानता है, जैसे फ्रांस, वह देश सैनिक-शिक्षा को अपनी राष्ट्रीय संस्था के सदस्य बनने की शर्त के तौर पर रख सकता है। भारत में कातने की शक्ति, उपयोगिता और आवश्यकता जो स्वीकार करते हों, उन्हें तो सदस्य बनने की शर्त के रूप में कातना मंजूर करना चाहिए।'

एं० : 'आपकी दलील बहुत कमजोर है। आप सैनिक-शिक्षा की तुलना करते हैं, यह मुझे भयानक लगता है। मैं तो सेना में भरती होने के बजाय जेल में जाऊँ, जैसे रसल गया था और रोलां ने देश छोड़ा था।'

गां० : 'हाँ, मैं भी जाऊँ। परन्तु इससे क्या? जिसके अन्तर में यह चीज खटकती हो, वह बर्दाश्त करे। परन्तु आम तौर पर सारा देश सैनिक-शिक्षा की जरूरत स्वीकार करता हो तो फिर उसे कानून बनाने में क्या अड़चन है?'

एं० : 'नहीं, परन्तु आपको ऐसी कमजोर उपमा मिली, यह मुझे ठीक नहीं लगता। आपको बेहतर उपमा लेनी चाहिए थी। अमेरिका में मद्य-निषेध का कानून बना। आप उसकी तुलना कर सकते थे। अमेरिका में लोगों में से ८० फी सदी ने शराब छोड़ने की तैयारी बतायी, तभी कानून बन सका। आप भी एक अखिल भारतीय कताई संस्था खोलिए और फिर ८० प्रतिशत लोगों को कातने में लगाकर अपनी शर्त रखिए। आज तो आप गाड़ी के आगे घोड़ा न रखकर घोड़े के आगे गाड़ी रख रहे हैं।'

गां० : 'नहीं, मैं शुद्ध न्याय की बात कर रहा हूँ। एक संस्था को अपने सदस्यों से कोई खास शर्त कराने का हक है या नहीं? वह शर्त किसीको न जँचती हो, परन्तु इससे शर्त रखने का हक ही नहीं, यह ठीक नहीं।'

एं० : 'अमेरिका में कानून बनने से पहले शराब पीने का हक था। अब फिर कानून रद्द करके शराब पीने का उन्हें हक है। मेरा प्रश्न यह है कि कांग्रेस में लोकमत का प्रतिबिम्ब पड़ता है या मुट्ठीभर लोगों का ही मत व्यक्त होता है ? कांग्रेस एक महान् संस्था रहेगी या एक छोटी-सी समिति बन जायगी ?'

गां० : 'महान् संस्था ही रहेगी। आप मेरे अनुभव को गलत कह सकते हैं, परन्तु एक बार यह मान लें कि कांग्रेस को अपने सदस्यों पर पाबन्दी लगाने का हक है तो फिर में आपको सब कुछ साबित करके दिखा सकता हूँ।'

एं० : 'आपको चाहिए कि कांग्रेस को एक टोली न बनने दें, एक स्वेच्छा-नियोजित मण्डल रखना चाहिए।'

गां० : 'आपको कांग्रेस की पूरी तरह कल्पना नहीं। आज वह एक अनिश्चित, अव्यवस्थित संस्था है। उसके विधान में जितनी बातें हैं, उनसे कहीं अधिक उसमें आ जाती हैं। यदि कांग्रेस को सच्ची राष्ट्रीय संस्था बनना हो, तो उसका विधान अधिक जीवनप्रद, अधिक सच्चा, राष्ट्र की आवश्यकताओं का अधिक द्योतक बनना चाहिए। संख्या की कोई जरूरत नहीं। जब मैंने चार आने की फीस रखी, तब यह आशा थी कि संस्था बड़ी-से-बड़ी होगी, परन्तु उसे अमल में लानेवाले कार्यकर्ता नहीं निकले। आज हमारा देश आलसी और प्रमादियों का देश बन गया है। यह वर्णन उन मूक दरिद्रों पर, जो गुलामी में कुचले जा रहे हैं, लागू नहीं होता, परन्तु समझदार कहलाने और बोलनेवालों पर लागू होता है। इन सबको मैं राष्ट्र-कार्य में और किस प्रकार लगा सकता हूँ ? कांग्रेस कार्यपरायण संस्था और किस तरह हो सकती है ? २००० गज कातने की फीस रखने के प्रस्ताव से मुझे आशा है कि यह नियम सफल होगा। एक कहेगा, 'मैं कुल्हाड़ी लूंगा'; दूसरा कहेगा, 'मैं कपड़े सिऊँगा'; तीसरा तीसरी बात कहेगा। इसका परिणाम शून्य आयेगा। मैं सबको एक चीज पर एकाग्र करके परिणाम लाना चाहता हूँ।'

एं० : 'मुझे भय है कि आप सूत कातने और खादी पहनने का एक नया धर्म बना देंगे। कोई भाई खादी के कपड़े पहनता है या विलायती पहनता है, इससे मेरा क्या वास्ता ? मुझे इससे काम है कि वह कैसा आदमी है। ईसा ने भी कहा था कि मनुष्य का बाह्य न देखो, अन्तर की खोज करो।'

गां० : 'ईसाई और हिन्दू आदर्शों में भेद है।'

एं० : 'आप तो यह भी कहेंगे कि अमुक खुराक खाओ तो तुममें आध्यात्मिकता बढ़ेगी। मैं यह समझता ही नहीं। विशप वेस्टकोट जैसे सज्जन को लीजिए। उसने तो शराब भी पी थी और मांस भी खाया था, परन्तु यह तो नहीं न कि वह आध्यात्मिक नहीं था?'

गां० : 'आप एक उदाहरण से साधारण नियम साबित करना चाहें तो यह नहीं हो सकता। आप आम लोगों को नहीं कह सकते कि तुम्हारी इच्छा हो सो खाओ, जी में आये सो पिओ और यह मानते रहो कि अपने अन्तर में तुम पवित्र हो।'

एं० : 'परन्तु मूल आपत्ति पर फिर आ जाऊँ। अमेरिका में कानून बनाने से पहले जितने उपाय किये गये, वे यहाँ किये गये हैं?'

गां० : 'मैं रोज कदम उठाता ही रहता हूँ। आज की स्थिति चार वर्ष का परिणाम है। आप यदि कांग्रेस के प्रस्ताव देखें तो आपको पता लगेगा कि मैं जो प्रस्ताव करना चाहता हूँ, वे कातने की आवश्यकता को दी गयी मूल स्वीकृति के फल हैं।'

एं० : 'आप जेल में गये, तब यह स्वीकार किया जाता था?'

गां० : 'मैं जेल गया, तब मूल प्रस्ताव अस्वीकृत नहीं हुआ था।'

एं० : 'अमेरिका में किया गया ढंग काम में नहीं लेंगे, तब तक आपका प्रयोग सफल नहीं होगा।'

गां० : 'अमेरिका की स्थिति और यहाँ की अलग-अलग है। वह तो शुरू से शराब पीनेवाला देश था। उन्हें शराब न पीने की बात समझाने की जरूरत थी। वहाँ उन्हें वह करना पड़ा, जो पहले कभी नहीं किया था। यहाँ तो पहले युगों तक लोग जो करते आये थे और जो बात वे कुछ वर्षों से भूल गये थे, वे फिर से करें, इतनी ही बात है। और दूसरी बात भी है, यहाँ तो

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥'

एं० : 'नाश क्यों न हो? हम सबकी भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्ति है। हमें इतना अधिक बड़ा जरूरी काम करना हो कि आध घण्टा न निकाल सकें। इस महादेव को देखता हूँ कि अपना सूत निकालने के लिए आधी रात को बैठता है, अथवा मुहम्मदअली जैसे मध्य रात्रि में बैठें, तब मुझे लगता है कि इसका क्या अर्थ।'

गां० : 'इन लोगों को ऐसे समय बैठना पड़े, यह तो व्यवस्था और समय के प्रवन्ध की खामी जाहिर करता है। और कुछ नहीं।'

एं० : 'आधे घण्टे की वात तो एक तरफ रही। आपने जव से सूत पर एकाग्रता करनी शुरू की है, तव से दूसरी वातें भुला दी गयी हैं। इस खादी के कार्य में इतनी अधिक शक्ति का खर्च होता है कि नशीली चीजों और शराव के निषेध को सभी भूल गये हैं।'

गां० : 'मैंने तो साधारण समझ में आनेवाला एकता-पोषक कार्यक्रम तैयार कर दिया। इसमें किसी भी काम की मनाई नहीं। शराव की दूकान पर धरना लगाना तो केवल हिंसा के डर से छोड़ना पड़ा था, खादी-कार्य के लिए नहीं। और एक वात है। खादी पर जोर देना जितना अत्यावश्यक है, उतना जोर और कामों पर देना आवश्यक नहीं। इसका कारण यही है कि यह वात सव स्वीकार करते हैं कि शराव नहीं पीना चाहिए। इसमें मुझे लोगों को नया पाठ पढ़ाना पड़ता। स्वराज्य आने पर भी कुछ शरावी रहेंगे। उन्हें स्वराज्य के वाद हाथ में लेना पड़ेगा।'

एं० : 'क्या अफीम छोड़ने के वारे में वड़ा आन्दोलन मचाना जरूरी नहीं? देश इस मामले का महत्त्व समझ गया है।'

गां० : 'मैं मानता हूँ।'

एं० : 'आप जानते हैं कि मिल में काम करनेवाली स्त्रियाँ वच्चों को अफीम खिलाती हैं?'

गां० : 'हाँ, परन्तु अफीम की यह वुराई जम गयी है, यह आप न कहिए। देश इसे वढ़ने देता है, यह आप न कहिए। और वच्चों को अफीम न देने का निश्चय करने में तो मिल-मजदूरों को शिक्षा देने का प्रश्न है, वैद्यकीय प्रश्न है, स्त्रियों को मिलों में कितने समय काम करने दिया जाय, यह सवाल है।'

एं० : 'आपने अस्पृश्यता, हिन्दू-मुसलिम-एकता और खादी का त्रिविध कार्यक्रम रखा, तव मद्य-निषेध भूल गये, यह मुझे वहुत महसूस होता है।'

गां० : 'भूल नहीं गया। देश को इस मामले में नया समझाना नहीं रहा, वस इतनी ही वात है।'

एं० : 'अरे, अफीम वन्द करने के वारे में साहित्य में लोगों की दिलचस्पी पैदा करना असंभव हो गया है।'

गां० : 'यों तो आप और मैं दक्षिण और पूर्व अफ्रीका के वारे में

लिखना वन्द कर दें तो उसमें भी सव दिलचस्पी लेना वन्द कर देंगे। यहाँ तो अज्ञानी लोगों को समझाना है। परन्तु आप यह भूलते हैं कि शरावबन्दी का काम आज भी हो रहा है। जहाँ-जहाँ खादी ने घर कर लिया है, वहाँ-वहाँ उसके साथ शुद्धि का काम भी शुरू हो गया है। वोरसद, रामेसरा, वारडोली में जाकर आप देखें तो पता चलेगा। खादी के केन्द्र के आसपास मद्य-निपेध और आत्मशुद्धि के दूसरे सब काम भी हो रहे हैं।'

एं० : 'मगर यह मुझे नहीं जँचता कि आप खादी पहनने और कातने को धर्म-कार्य बना दें। लोग खादी न पहननेवालों और न कातनेवालों का वहिष्कार करेंगे।'

गां० : 'हाँ, धर्म-कार्य तो यह रहेगा ही। प्रत्येक भारतीय यदि इसे धर्म-कार्य न बना ले तो क्या वह देश का और कोई काम करेगा? परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि खादी न पहननेवालों का वहिष्कार किया जाय। खादी न पहननेवालों से मिलें, उनके साथ प्रेम करें और प्रेम करके उन्हें समझाया जा सके तो खादी पहनने को उन्हें समझायें—निन्दा करके हरगिज नहीं। मुझे आशा है कि न पहननेवालों का वहिष्कार या उन पर अत्याचार नहीं होगा। ऐसे अत्याचारों के लिए तो २१ दिन के उपवास किये। अव भी लोग नहीं समझेंगे? किसी भी काम में वहिष्कार की जरूरत पड़े, तो वह केवल एक ही किस्म का हो सकता है—उससे कोई सेवा या कोई लाभ न लिया जाय। मैं चाहता हूँ कि शराव पीनेवाले के विरुद्ध इस प्रकार का वहिष्कार हो; परन्तु खादी न पहननेवाले या न कातनेवाले के प्रति हरगिज नहीं। क्योंकि शराव पीना जैसा पाप है, वैसा पाप विदेशी कपड़े पहनना नहीं।'

एं० : 'मुझे वहुत शान्ति हो रही है। इतनी सारी वातों का आपने स्पष्टीकरण किया, इससे मुझे खूब सन्तोप हुआ। परन्तु खादी को एक नीति की कसौटी वनायें तो वह पसन्द नहीं। एक मित्र मुझे लिखते हैं कि उसने खादी पहनना वन्द कर दिया है, क्योंकि वह तो अच्छा कहलाने का एक सस्ता साधन हो गया है।'

गां० : 'उस मित्र की भूल है। कोई दंभ करे, इसलिए मुझे जो वस्तु अच्छी लगे, उसे करना वन्द कर दिया जाय? इसका अर्थ तो यह हुआ कि कोई सत्य का ढोंग करे तो हम झूठ वोलने लगें।'

एं० : 'परन्तु 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' शब्द आप इस खादी की परिभाषा में से नहीं निकाल सकते ?'

गां० : 'वस्त्र को तो जरूर 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' कहूँगा। भारतीय के शरीर पर विदेशी कपड़ा 'अशुद्ध' कहलायेगा। विलायत में वह हो तो वहाँ उसे अशुद्ध नहीं मानूँगा। परन्तु अशुद्ध कपड़ों से वह मनुष्य अशुद्ध नहीं हो जाता। इसी प्रकार शुद्ध कपड़ों से अशुद्ध जीवन शुद्ध नहीं हो सकता। शुद्ध कपड़ों का—खादी का जो आर्थिक लाभ है, वह तो होता ही है। इसीलिए वेश्या भी शुद्ध खादी पहन सकती है और देश में आनेवाला विदेशी वस्त्र उतना कम कर सकती है।'

एं० : 'विदेशी कपड़ों को आप अशुद्ध कहते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता।'

गां० : 'मैं जानता हूँ। यह भले ही हमारा मतभेद रहे। दिल्ली के मैदान की हवा भरकर शिमला में रहनेवालों के लिए भेजें तो वह हवा उनके लिए अशुद्ध कहलायेगी। विदेशी वस्त्र इस अर्थ में और इस प्रकार से अशुद्ध है।'

एं० : 'मगर यह मेरी समझ में नहीं आता। वैसे आपने जो और स्पष्टीकरण किये, उनसे मैं खुश हुआ।'

उपवास से पहले तो गांधीजी ऐसी दिल्लगी चाहे जिसके साथ करते थे। उपवास के बाद इतनी लम्बी चर्चा, मोतीलालजी के साथ की चर्चा को छोड़ दें तो, पहली ही थी। इतनी बात इस बात के महत्त्व के लिए ही और यह बताने के लिए भी दे दी है कि गांधीजी में इतनी बातें करने की शक्ति आ गयी है।

भविष्य का कार्यक्रम शक्ति आने पर आधार रखता है। शक्ति जल्दी आ जाय तो पहले कोहाट जाने का उनका विचार है।

दिल्ली, ता० १८-१०-१९२४

¶ प्रिय श्रीमती बेसण्ट,

डॉ० अनसारी ने आपका पत्र और सब कागजों के साथ आज मुझे दिया। आमंत्रण देनेवालों में भले ही मेरा नाम आप रख दें। स्थान के बारे में तटस्थ हूँ। यदि यह नवम्बर के तीसरे सप्ताह में होगा तो मैं उपस्थित रहने का भरसक प्रयत्न करूँगा। मुझे लगता है कि आपको इसकी कामचलाऊ मंत्री बनना चाहिए।

सेवक

मो० क० गांधी

पाँचवाँ सप्ताह

(दिल्ली, ता० २२-१०-१९२४)

'पाँचवाँ सप्ताह' शीर्षक से, आशा है, पाठक चौंकेंगे नहीं। गांधीजी के होते हुए भी 'नवजीवन' का भार उठाना मुझे इतना तो कठिन लगता ही है कि सप्ताहों की गिनती से मानो मैं इस भार को कम कर रहा हूँ और अपने मन को मनाता हूँ कि अधिक सप्ताह होने पर यह भार मेरे सिर पर नहीं रहेगा।

उपवास का पाँचवाँ सप्ताह हो गया, परन्तु अभी गांधीजी की शक्ति जितनी चाहिए, उतनी तो हरगिज नहीं। थोड़े-से श्रम से थक जाते हैं। पिछले सप्ताह में वे छत से नीचे उतरे, वाग में आठ-दस मिनट टहले और वाग के झूले पर उतने ही मिनट झूले। दूसरे दिन डॉक्टर उन्हें सैर के लिए वाहर ले गये। एकाध घण्टे मोटर में घूमे होंगे। इसकी थकावट उस दिन तो महसूस नहीं हुई, परन्तु दूसरे दिन खासी महसूस हुई थी। दूसरे दिन वाहर सैर के लिए जाने को जी ही नहीं हुआ।

यह वताते हुए संतोष होता है कि दूध जितना उपवास से पहले लेते थे, लगभग उतना ले रहे हैं। फल भी काफी लेते हैं। तीन दिन से डॉक्टर ने दो-तीन टोस्ट भी लेने की अनुमति दी है। विस्तर में थोड़ी देर वैठ सकते हैं। प्रार्थना और चरखे के समय पहले की तरह खास सहारा रखना नहीं पड़ता।

चरखे की वात कहते-कहते यह कह दूँ कि इनकी कातने की शक्ति कितनी वढ़ी है। तपस्या में एकाग्र कातने का यह परिणाम होगा, ऐसा ही गांधीजी मानते हैं। अव ३०० से ३२० गज तक प्रति घंटा आसानी से कात लेते हैं। कातने का समय फिर आध घण्टे से तो वढ़ा ही दिया है, क्योंकि अधिक वैठ सकते हैं और रोज एक-सा सूत और एक-सी गति!

जरूरी पत्रों पर ध्यान देते हैं, झगड़ों जैसे मामलों के विवरण कितने ही लम्वे हों तो भी स्वयं ही पढ़ने का आग्रह रखते हैं, अखवारों के पढ़ने लायक अंश नियमित सुनते हैं।

और सवके अतिरिक्त गीता और भागवत का श्रवण तो नियमित होता ही है। यह श्रवण और उस पर होनेवाला अखण्ड मनन इन्हें कितनी शान्ति देते होंगे और हम सवको कितने उपकारक हो रहे हैं, इसकी पूरी कल्पना देना असंभव है।

एक स्वजन को आज दिन में लिखा :

'यततोह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

इस वचन में कितना सारा सत्य है, और 'कौन्तेय' सम्बोधन में कितनी सारी करुणा भरी है! हम हजारों उपाय करें, परन्तु मद्यपी वानर की तरह हमारा मन हमें कहाँ से कहाँ ले जाता है। भागवत हमारे जैसों के लिए ही लिखा गया है।'

यह 'हमारे जैसों के लिए ही' शब्दों की ममता कितनी प्राणप्रद है! 'कौन्तेय' शब्द की करुणा की बात करते-करते कहते हैं : 'यहाँ दूसरा शब्द काम दे ही नहीं सकता। गीता का एक-एक शब्द चुनकर रखा गया है और फिर भी चुनने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है। यही अनुपम कला है। 'कौन्तेय' कहते-कहते यह भाव रहा है कि तू कुन्ती के पेट से जनमा है, मानव-जाति से है, अबला के पेट से पैदा हुआ है, इसलिए 'यततोह्यपि' इ० का अर्थ तुझे समझाना मुश्किल नहीं होगा। कुन्ती को भगवान् अच्छी तरह जानते थे न?' इसी सम्बन्ध में **'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति'** के भावार्थ की बात निकली। बापू बोले : 'इसका दुरुपयोग हो सकता है, यह तो स्पष्ट ही है। परन्तु इसका प्रयत्न छोड़ने की बात ही नहीं। मनुष्य प्रयत्नशील रहे, अथक प्रयत्न करे, फिर भी हिम्मत न हारे, निराश न हो, अपनी भी मर्यादा समझे, इतने के लिए यह श्लोक है। श्रीमद् राजचन्द्र जैसे का पुरुषार्थ कोई ऐसा-वैसा था? इन्हें ज्ञान होने में क्या कसर थी? फिर भी कुछ वर्ष इन्हें अखण्ड ब्रह्मचर्य प्राप्त नहीं हुआ, यह प्रकृति का दोष नहीं तो और क्या? हम असफल हों तो निराश नहीं होना है। हम इतना समझकर निराश न हों कि ऐसे असाधारण व्यक्तियों को भी प्रकृति बाधक हुई है। इसलिए हम प्रयत्नशील रहें तो काफी है। अपार प्रयत्न करने के बाद मनुष्य को शान्ति मिले, यह अर्थ है इस श्लोक का।'

यहाँ ज्वारभाटा आता ही रहता है। बहुत मित्र आ गये, बहुत आते हैं। एण्ड्रूज तो उपवास के चौथे दिन आये थे, सो ठेठ १९ तारीख तक रहे। जब उन्हें लगा कि अब गांधीजी के बारे में कोई चिन्ता की बात नहीं, तभी उन्होंने दिल्ली छोड़ी। उनकी जगह की पूर्ति असंभव है। जाते-जाते वे बापू से गले मिले। बापू बोले : 'जब-जब आपसे वियोग होता है,

तव-तव वियोग अधिक दु:सह करते जाते हैं।' वा के तो उन्होंने चरण-स्पर्श किये। जैसे देवदास या मेरी वलैया लेती हैं, वैसे ही वा ने एण्ड्रूज के माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। एण्ड्रूज तो पागल-से हो गये: 'कैसा अद्भुत! वा मुझे अपने वच्चे जैसा मानती हैं। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया।'

परन्तु एण्ड्रूज गये और भाई मणिलाल आये। उसी रात को आये। गाड़ी देर से आयी थी। रविवार था, इसलिए रात को मौन शुरू करना था। मगर वापू ने मोह को तिलांजलि दी है, कोई वात्सल्य को थोड़े ही दी है? दस वजे हम घर आये। आम तौर पर वापू के कमरे में रोशनी नौ वजे वुझा दी जाती है। किसीने ऊपर जाकर और वापस लौटकर खवर दी कि वापू सो गये हैं। 'वस, सवेरे मिलेंगे' कहकर सात वर्ष वाद पिता के दर्शनों के लिए आनेवाले पुत्र शान्ति से वैठ गये। इतने में तो ऊपर वापू ने ही किसीसे पूछा: 'मणिलाल नहीं आया?' इस पर सब ऊपर गये। चरण-स्पर्श के वाद वापू ने पूछा: 'आये कितनी देर हुई?' 'घड़ीभर हुई, परन्तु आप सो रहे हैं, यह जानकर ऊपर नहीं आया।' वापू कहते हैं: 'सोया काहे का? तेरा नाम रट रहा था।'

वापू की पहली कुशल-वार्ता काम के सम्वन्ध में थी। '"इंडियन ओपीनियन" किसे सौंप आये?' मणिभाई वोले: 'ईश्वर को। रॉयटर का तार देखा, जिसमें पढ़ा कि गांधीजी उपवास करने का इरादा रखते हैं! फिर दूसरा तार पढ़ा, जिसमें यह खवर पढ़ी कि नौ दिन के उपवास हुए हैं। इस पर मैंने आपको तार दिया, आपका जवाव आया: २१ दिन के उपवास! १४ दिन के उपवास के दौरान की स्थिति सुनी थी और उसके वाद की स्थिति देखी थी, इसलिए मुझसे कैसे रहा जाता? वस, मैं तो फिनिक्स में किसीसे मिले विना ही चला आया।' वापू के परम मित्र कैलनवैक की स्थिति वयान करते हुए कहा: 'यों कहूँगा कि कैलनवैक तो जहाज में चढ़ते-चढ़ते ही रह गये। वे तो पागल हो गये हैं। मोटर लेकर भागदौड़ मचा दी। पासपोर्ट ले आये। टिकट खरीद लिया, जरूरी व्यवस्था कर ली और अपने हिस्सेदार को खवर दे दी। 'मुझसे रहा ही कैसे जाता? अव मैं उन्हें देख पाऊँगा या न देख पाऊँगा? मैं कैसे ठहर सकता हूँ?' सवने खूव विनती की, पर माने ही नहीं। उनके सगे-सम्वन्धी अभी-अभी जर्मनी से आये थे, उनसे मिले-जुले विना, ठिकाने लगाये विना यों ही नहीं जाते, यह कहा गया, परन्तु माने ही नहीं। अन्त में उनके हिस्सेदार के

सख्त तार के कारण वे ढीले पड़े और दिसम्बर में जाने की अनुमति लेकर सन्तोष माना।'

१४ दिन उपवास के हो गये, तब भाई मणिलाल और कैलनवैक जोहानिस्वर्ग में थे। वापू ने १४ दिन शान्ति से उपवास करके आराम से उन्हें खवर दी: '१४ दिन के उपवास निर्विघ्न पूरे किये!' इस प्रकार वापू स्वजनों की परीक्षा लेते हैं। इसलिए मणिभाई मन को कैसे रोक सकते थे?

परन्तु मौन का समय तो कभी का हो गया था। 'अच्छा तो कव तक रहना है?' '१२ नवम्वर तक का वादा करके आया हूँ। रुस्तमजी सेठ को वचन देकर चला हूँ।' वापू कहते हैं: 'तुम यहाँ कोई छह महीने रहे होते, तो अच्छा था। परन्तु वचन तो वचन है। वस, १२ तारीख को जाना ही है। अव तो परसों वात करेंगे!' १०-२० वजे मौन शुरू हुआ!

कोई कहेगा कि मैं प्रेम ही प्रेम की वातें करता हूँ और वापू के पीछे पागल होकर वापू का कीर्तन करता हूँ। मैं न तो वापू का दीवाना हूँ और न प्रेम का। मैं भक्ति का विकास करने का प्रयत्न जरूर करता हूँ, और प्रत्येक उत्तम, कल्याणकारी व्यक्ति और वस्तु को देखकर मेरा हृदय द्रवित होता है। मैं वापू के गुण-गान नहीं करता, केवल प्रेम की प्रवल सत्ता की साक्षी देता हूँ और अनेक प्रसंगों से यह वताता हूँ कि वापू अपने को कितना कस रहे हैं, विकसित कर रहे हैं, कैसी परीक्षा कर रहे हैं, ताकि प्रत्येक व्यक्ति आत्मपरीक्षा करने लग जाय और आशावान् वने। अप्रत्यक्ष रूप में भी वापू की स्तुति वापू के पत्र में आये, यह मेरा दुःख है, इसमें मुझे सुख नहीं। इसी कारण मैंने प्रारम्भ में अपनी मनोव्यथा व्यक्त की है।

जिनकी मैं वात करनेवाला हूँ, उनमें से एक ने मुझे काफी शर्मिन्दा किया। ये मुसलमान भाई थे। लगातार १५-२० दिन से वे रोज सवेरे आते। 'गांधीजी काम में हैं? अन्य नेता आये हों तो मुझे मिलना नहीं', कहकर नीचे तीन-चार घंटे वैठते, कभी जाकर देख आने का मौका मिलता तो हो आते और चुपचाप चले जाते। अन्त में उनका धीरज टूटा और एक दिन अपनी सारी जायदाद गांधीजी के अर्पण करने का अपना प्रस्ताव गांधीजी को वता दिया। गांधीजी के साथ वातें हो गयीं। गांधीजी ने उनसे कहा: 'मेरे नाम पर कोई सम्पत्ति नहीं रहती। आप इसी सम्पत्ति से, इसे एक धरोहर मानकर, अपना निर्वाह कीजिये और खादी की दूकान

चलाइए, खादी का प्रचार कीजिए।' मैंने मान लिया कि इतने से उन्हें सन्तोष हो जाना चाहिए, परन्तु मुझे आकर कहते हैं कि 'मैं घर जा रहा हूँ। मुझे गांधीजी ने जो कहा, वह लिखकर भेज दें।' मैं चिढ़ा। मैंने उनसे कहा: 'यों पागल क्यों होते हैं ? आपको कहा सो आपको याद नहीं रहेगा ? आप यह क्यों मानें कि कोई आपकी बात नहीं मानेगा ?' उन्हें दुःख हुआ, परन्तु वे तो खामोशी का गुण मुझसे ज्यादा सीखे हुए थे। वे कुछ न बोले और चले गये। दूसरे दिन फिर आकर बैठ गये! मुझे अन्त में गांधीजी के पास जाकर कहना पड़ा कि वे भाई लिखित सन्देश माँगते हैं। गांधीजी ने पूछा: 'क्या वे आज भी फिर आये हैं ? जाओ, ले आओ उन्हें।' मैं उन्हें ऊपर ले गया। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उनकी आँखों से चार-चार आँसू बह रहे थे! गांधीजी ने उन्हें पास बिठाया। पत्र लिख दिया और पत्र लेकर जाने लगे। जाते-जाते कहते हैं: 'मेरे सिर पर हाथ रखिये, आशीर्वाद दीजिए कि मुझे अपना कल्याण करने का साहस मिले।' गांधीजी का दिया हुआ पत्र देखते ही, उसमें उनका उँडेला हुआ प्रेम देखकर मुझे अपनी क्षुद्रता का भान हुआ और उस भाई को विदा देते-देते मैंने कई बार उन्हें प्रणाम किया।

एक और भाई एक रात को आये थे। पंजाब के राजपूत थे। रात के नौ बजे आये थे अपने दो बच्चों को लेकर। एण्ड्रूज तो खामोशी के नमूने, और सो भी हिन्दुस्तानी में धीमे-धीमे बोलनेवाले, तब उसमें आशातीत मृदुता आती ही! उन्होंने कहा: 'नौ बजे हैं। गांधीजी अभी-अभी सोये हैं। कल नहीं आओगे ?' उन्होंने इतनी ही मृदुता से कहा: 'जरूर आऊँगा, परन्तु हम भूखे हैं, गांधीजी को देखे बिना हमारा उपवास नहीं टूटेगा।' एण्ड्रूज तुरन्त द्रवित हो गये। 'तब तो आप दूर खड़े रहकर गांधीजी को देखकर सन्तोष मानने को तैयार हों तो ले चलूँ, क्योंकि आप उनके पास जायँ तो शायद वे जाग जायँ।' वे बोले: 'हाँ, दूर से दर्शन हमारे लिए काफी है।' तुरन्त सब ऊपर गये। और दो-तीन सेकण्ड खड़े रहकर नीचे आ गये। जाते-जाते एण्ड्रूज को बुलाकर कहते हैं: 'लीजिए, ये ढाई हजार रुपये। गांधीजी को जो कार्य ठीक लगे, ये उसमें लगाने को हैं। ये देने को हम आये थे। कल तो हमसे आया नहीं जा सकता।'

एक दिन एक सफेद दाढ़ीवाला भंगी आया। एण्ड्रूज जब १२-१४ वर्ष पहले यहाँ प्रोफेसर थे, तब उनका भंगी रहा होगा। यह सुनकर कि उसके साहब गांधीजी के पास हैं, बेचारा दौड़ा-दौड़ा आया। एण्ड्रूज ने भी उसे

पहचान लिया। पुरानी पहचान ताजा की। 'अच्छा किया, मिलने आ गया', कहकर एण्ड्रूज घर में जा रहे थे कि वह वोला: 'महात्मा को कभी देखा नहीं। मुझे नहीं दिखायेंगे?' एण्ड्रूज फौरन् उसे ले गये। लौटते हुए उसका हर्ष समाता नहीं था। कृतज्ञताभरी आँखों से वह एण्ड्रूज की तरफ देखता रहा। एण्ड्रूज उससे गले मिले और एक और परिचित के नाम ले जाने को उसे एक प्रेम-पत्र दिया!

पिछले सप्ताह में गांधीजी लोगों से काफी मिले। मोतीलालजी से खूब वातें हुईं। वातें मुख्यत: २००० गज कातना कांग्रेस के प्रत्येक सदस्य के लिए लाजिमी वनाने के वारे में थीं। पंडितजी को आपत्तियाँ थीं। वे उन्होंने रखीं। अन्त में उन्होंने वताया कि यदि मेरे स्वीकार करने से नरमदली और दूसरे लोगों को भी इसे स्वीकार करने में प्रोत्साहन मिलता हो, तो मैं इसे जरूर स्वीकार कर लूँगा। परन्तु सभी स्वराज्यवादी यह चीज अच्छी तरह समझ लें और अपने विचार गांधीजी को पूरी तरह वता सकें, इसके लिए यहीं ३१ तारीख को स्वराज्यवादियों की सभा होगी। उस समय स्वराज्यवादियों के साथ गांधीजी की 'दिली गुफ्तगू' होना संभव है। जेल से निकलने के वाद सभी स्वराज्यवादियों से गांधीजी मिल चुके हों, यह वात तो है नहीं।

आजकल गांधीजी की इतनी ही साधना है कि जैसे भी संभव हो, एक-दूसरे को खूब समझकर विरोध कम हो और प्रेम वढ़े।

'ज्यारे गाढां धुमसआभ विखराशे जो
परिचय साचो थाशे हो अम तम तणो।'

इस आशय का अंग्रेजी भजन गांधीजी को अत्यन्त प्रिय है और हिमाच्छादित आकाश को साफ करके एक-दूसरे के अधिक गाढ़ परिचय में आने में ही गांधीजी गुँथे हुए हैं।

इसका दूसरा उदाहरण है ख्वाजा साहव हसन निजामी के साथ वातचीत। ख्वाजा साहव गांधीजी से मिलने कई वार आते हैं। पिछले सप्ताह भी दो वार आ गये। अन्तिम वार तो यों ही आ गये थे, परन्तु वात अनायास ही वड़ी महत्त्व की निकली।

ख्वाजा साहव कहने लगे: 'नीचे में महादेवजी को समझा रहा था कि मेरे हिन्दू-मुसलिम-एकता के वारे में क्या विचार हैं। हिन्दू-मुसलिम-एकता की वात छिड़ने के कई वरस पहले से मैं हिन्दुओं से मुहव्वत करता आया

हूँ। मेरे अनेक हिन्दू मित्र अब भी हैं। मैं वृन्दावन-गोकुल में रहा हूँ, कृष्ण-चरित्र और रामायण का अध्ययन किया है। बहुत लोग ऐसा कहते कि मैं हिन्दू बनने लगा हूँ। अब जब से मैंने 'तबलीग' का काम उठाया है, तब से बहुत मित्र मुझे कहते हैं कि यह आपने क्या किया, आपकी सारी कीर्ति खत्म हो जायगी। आप तो किया-कराया सब धूल में मिला रहे हैं! मैंने कहा, भले ही खत्म हो जाय, कीर्ति गँवाकर भी मैं अपना काम करने में लगा हूँ, यह बता देता है कि इसलाम के लिए मेरी कितनी अधिक भावना है। मैं तो साफ-साफ कहनेवाला आदमी हूँ। 'दरवेश' पाक्षिक में मैं अपने विचार सीधी-सादी भाषा में रखता हूँ। एकता परिषद् के विषय में मैंने लिखा कि इसमें जो प्रस्ताव हुए, उनमें बेहद वकालत है, उसमें ऐसी भाषा इस्तेमाल की गयी है, जैसी दण्ड-विधान की धाराओं में आड़ी टेढ़ी पेचीदा मतलब की बातें होती हैं। मैंने कहा कि साधारण मनुष्यों को आप समझाना चाहते हों तो ऐसे प्रस्ताव न कीजिये, सीधे प्रस्ताव कीजिये।'

इस पर गांधीजी बोले: 'आपका वह लेख मैंने पढ़ा है। मुझे वह ठीक नहीं लगा। इसका कारण है। आपने आलोचना की सो तो भले ही की, परन्तु आपने तो सारी परिषद् का मजाक उड़ाया है। जिस वृत्ति से नुकताचीनी करनी चाहिए, उस वृत्ति से नहीं की। उससे यह भाव निकलता है, मानो आपको एकता ही पसन्द न हो, इस परिषद् का होना ही पसन्द न हो। हम आलोचना क्यों न करें? परन्तु जो इकट्ठे हुए थे, वे किसी न किसी शुभ कार्य के लिए हुए थे, ऐसा करने का उनका प्रामाणिक प्रयत्न था, इतना तो आपको स्वीकार करना ही चाहिए। परन्तु आपने तो सिर्फ हँसी-ठट्ठे का ढंग अपनाया। और वह भी किस पत्र में? 'मुबल्लिग' पत्र में, जिसमें अब भी खासा जहर भरा है, जिसका ढंग अभी तक नहीं बदला। आप और किसी अखबार में नहीं लिख सकते थे? आप 'यंग इंडिया' को लिख सकते थे। आप परिषद् के शुभ हेतु तो स्वीकार करते। परन्तु आपने तो उस पत्र में अपना लेख लिखा, जो जहरीले और विरोधी लेख लिखता है। इसलिए किसीको यह खयाल हो सकता है कि ख्वाजा साहब एकता के भी विरोधी हैं क्या?'

सन्दर्भ मैं भूल गया, परन्तु बात में बात मस्जिद के आगे बाजे की और ऐसे ही अन्य विषय की निकली। ख्वाजा साहब ने विस्तार से अब्दुल कादिर जीलानी हजरत गोस की बात सुनायी। 'हजरत गोस का एक

पड़ोसी था। वह हर रोज नमाज के वक्त खूब बाजा बजाता, शोर मचाता, चीख़-पुकार करता। हजरत साहब के शिष्य इससे चिढ़ते और अनेक बार फरियाद भी करते थे। हजरत साहब हमेशा कहते, हम किसलिए इस शोरगुल पर ध्यान दें? हम नमाज में चित्त लगायें या इसके शोरगुल पर ध्यान दें? इस प्रकार रोज शोरगुल होता था और हजरत साहब खामोशी रखते थे। एक दिन शोरगुल सुनाई नहीं दिया। हजरत साहब ने पूछा: 'आज उसकी आवाज कैसे सुनाई नहीं देती?' मुरीदों ने कहा: 'उस पर अदालत में मुकदमा चल रहा है।' हजरत साहब तुरन्त निकल पड़े। हाकिम के पास गये और उससे माँग की: 'यह मेरा पड़ोसी है और मुझे इसकी लाज रखनी चाहिए। अगर इसने ऐसा अपराध किया हो, जिसके क्षमा करने से दूसरों का नुकसान हो, तब तो इसे सजा दीजिए, लेकिन अगर ऐसा अपराध किया हो, जिससे थोड़ा-सा जुर्माना लेकर इसे छोड़ा जा सकता हो तो कृपा करके इसे छोड़ दीजिए, मैं अपने यहाँ से रुपया दे दूंगा। हाकिम ने उसे छोड़ दिया। वह उपकार के भार से दब गया; उसे अपने काम के लिए शरम आयी और वह मुसलमान हो गया।'

गांधीजी बहुत प्रसन्न होकर बोले: 'यह तो आप अब्दुल कादिर जीलानी की ही बात कर रहे हैं न? जेल में मैंने भी उनकी बात पढ़ी थी। जब बच्चे थे, तब सफर में जाते समय उन्हें उनकी माँ ने कुछ अशरफियाँ दी थीं। बच्चे थे, इसलिए बंडी में सी दी थीं और अशरफियों के साथ एक सीख भी दी थी कि चाहे कुछ भी हो जाय, जमीन-आसमान एक हो जाय, परन्तु बेटे, सच ही बोलना, कभी झूठ मत बोलना। रास्ते में डाकू मिले। अब्दुल कादिर जिस काफिले के साथ आये थे, उसके एक-एक आदमी को लेकर लूटने लगे। अब्दुल कादिर की बारी आयी। उससे पूछा गया: 'तेरे पास क्या है?' उसने बंडी में अशरफी सी हुई बतायी। डाकू चकित हो गये और उसे छोड़ दिया, परन्तु उसके सच का असर यह हुआ कि औरों को भी उन्होंने लूट वापस दे दी।

'ऐसे उदाहरण तो इसलाम में भरे ही हैं। परन्तु आप ये मिसालें हिन्दुओं के सामने उद्धृत करें, यह ठीक नहीं। क्या ऐसे उदाहरण अकेले इसलाम में ही हैं? हिन्दू-धर्म में भी ऐसे उदाहरण कदम-कदम पर पाये जाते हैं। मगर जैसे उन उदाहरणों से किसीको अपना धर्म छोड़कर हिन्दू बनने की जरूरत नहीं, उसी तरह अब्दुल कादिर जीलानी की मिसाल से किसीको इसलाम कबूल करने की आवश्यकता नहीं। अब्दुल कादिर

जैसे मनुष्य इसलाम में वहुत होंगे और उन्हें देखकर सारा भारत मुसलमान वन जाय तो इसकी मुझे परवाह नहीं। परन्तु जैसे हिन्दुओं में श्रेष्ठ व्यक्ति भी हो गये हैं और वुरे भी, इसी तरह इसलाम में भी वुरे व्यक्ति हैं। आप अब्दुल कादिर का दृष्टान्त किसीको इसलाम स्वीकार कराने के लिए उद्धृत करें, यह मैं नहीं चाहता। आप तो हिन्दुओं को और वात कह सकते हैं। आप भंगी-चमारों को मुसलमान वनने के लिए क्यों कहें? आप हिन्दुओं से कह सकते हैं कि आपमें वड़े उदारचरित व्यक्ति हो गये हैं, आप तो प्राणिमात्र में अभेद माननेवाले हैं, आप कैसे मनुष्य को अस्पृश्य मान सकते हैं? इन्सान को अलग रखने में आपको शरम नहीं आती? इस तरह आप हिन्दू-धर्म की सेवा कर सकते हैं। मैं अब्दुल कादिर साहव की मिसाल देकर मुसलमानों से कह सकता हूँ कि ऐसे सत्य को चाहनेवाले, खामोशी चाहनेवाले, शत्रु को भी क्षमा करनेवाले आपके धर्म में मौजूद हैं। आप उन्हें वदनाम कर सकते हैं? यों कहकर मैं इसलाम की सेवा करूँगा। फिर हम अपने धर्म को इतना शुद्ध कर लेंगे कि दूसरों को उसे स्वीकार करने की इच्छा हो तो उसे रोक ही कौन सकता है?

'परन्तु किसीकी गरीवी का लाभ उठाकर कोई कहे, ले भाई, तुझे इतने रुपये दूँगा, तेरा कर्ज चुका दूँगा, तेरे धर्मवाले तुझे तंग करते हैं, आ तू हमारे पास, तो यह वुरी चीज है। इसमें वह इसलाम को चाहकर नहीं आता, रुपये की तरफ देखकर आता है। मुहम्मद साहव के पास लोग आते तो क्या उनको अच्छा खाने को मिलता था? खजूर और पानी और वह भी न मिलता तो फाका। फिर भी उनके पास उनके व्यक्तित्व का आदर करके, उनकी रूहानी शक्ति को देखकर वहुत लोग जाते और मुसलमान वनते। कोई मुहम्मद साहव पैदा हो जायँ और उनका प्रभाव देखकर जगत् मुसलमान हो जाय तो मेरा वाल भी न हिले।

'मैं जो यह सव कह रहा हूँ, वह इसीलिए कि मैं इसलाम की खूवी समझता हूँ। इसलाम तलवार से फैला है, यह मैं नहीं मानता, इसलाम तो फकीरों से फैला है। इसलाम तो सचाई, फकीरी और वहादुरी से फैला है। तलवार से इसलाम की रक्षा हुई है, यह तो सभी स्वीकार करेंगे, परन्तु उसका प्रचार करने का श्रेय तो फकीर ही ले सकते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इसलाम को जवरदस्ती से, लालच से या ऐसे ही दूसरे

उपायों से फैलाने में इसलाम की सेवा नहीं होगी, परन्तु खरावी होगी। यह भी मैं इसीलिए कहता हूँ कि मैं इसलाम को चाहता हूँ।'

ख्वाजा साहव शान्ति से सुन रहे थे। उन्होंने प्रसन्नता से कहा : 'ठीक है। काम का अमल करने का जो तरीका आपने वताया, वह मुनासिव है। आपने मेरे लेखों में मजाक के भाव के विरुद्ध जो आपत्ति की, वह भी उचित है। ये दोनों वातें मैं मंजूर करता हूँ तो आपकी शख्सियत से—व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नहीं, परन्तु इसलिए कि यह वात मेरा हृदय स्वीकार करता है। आपसे कई वातों में मैं सहमत नहीं हूँ, राजनीति में मैं पड़ ही नहीं सकता—मेरे वुजुर्गों का फरमान है—परन्तु कातने के वारे में आपका कहना ठीक है, इसलिए उसे स्वीकार करता हूँ। 'तवलीग' में मैं लगा हुआ हूँ तो मुसलमान वनाने के लिए नहीं, परन्तु मेरे वुजुर्गों ने जिन्हें मुसलमान वनाया था, उन्हें इसलाम छोड़कर 'आर्य' वनने से रोकने के लिए। वैसे, आपने जो तरीका वताया, वह मुझे पसन्द है। आज आपने जो कहा, उस पर मैं और विचार करूँगा। और फिर आपसे मिलता रहूँगा।'

गांधीजी ने कहा : 'जरूर।' जाते-जाते अपनी कुछ पुस्तकें भेज देने को कहते गये।

इसके सिवा एक और अति महत्त्व की वातचीत इसी सप्ताह की लिखनी है, मगर यह तो स्थानाभाव के कारण अव अगले सप्ताह में ही देनी होगी।

छठा सप्ताह

(दिल्ली, ता० २९-१०-१९२४)

अभी गांधीजी की प्रकृति ऐसी नहीं हुई, जो मुझे 'छठा सप्ताह' लिखने के कर्तव्य से मुक्त कर दे। परन्तु सुधार हो रहा है। तीन दिन पहले प्रतिदिन सुवह-शाम दोनों समय पचीस मिनट से आध घंटे तक टहलते हैं। चलने म तेजी नहीं आयी। शाम को एक घंटा वाहर घूमने लायक श्रम अव किया जा सकता है। परन्तु लम्वी वातचीत अयवा लगातार एक-दो घण्टे लिखने से थकान लगती है। और वातचीत के प्रसंग तो आते ही रहते हैं। दिल्ली का मामला अभी तक नहीं निपटा। अदालतें अपना काम कर ही रही हैं, वहाँ दोनों पक्ष एक-दूसरे पर आरोप लगाते

ही जा रहे हैं, गवाहियाँ पेश की ही जा रही हैं। इस प्रकार पंच के मारफत फैसला कराने की बात जैसे-जैसे समय बीत रहा है, वैसे-वैसे अधिक कठिन होती जा रही है। और ज्यों-ज्यों अधिक कठिन, त्यों-त्यों अधिक बातचीत और अधिक परिश्रम।

साप्ताहिकों के लिए लिखने की भी शायद ही शक्ति आयी है। कल 'यंग इंडिया' के लिए दो लेख लिखने पड़े। दोनों लिखे बिना काम नहीं चल सकता था। बंगाल में सरकार ने जो बम-विस्फोट किया है, उसके बारे में लिखे बिना तो रहा ही कैसा जाता? और कातने के लिए नित-नये अध्याय स्फुरित होते हैं, इसलिए लिखते ही रहते हैं।

भागवत-श्रवण और गीता-श्रवण का ज्ञान-यज्ञ जारी ही है। पहली तारीख के बाद यह यज्ञ कैसे जारी रखा जायगा, इसकी चिन्ता बापू को बनी ही रहती है। 'यहाँ से निकले कि फिर शान्ति भंग होगी', इस तरह कई बार कहते हैं। आज यहाँ के गुजराती भाई नये वर्ष पर मिलने आये थे। उन्होंने कहा : 'कुछ-न-कुछ उपदेश सुनाइए।' 'उपदेश दे-देकर थक गया' यों कहकर मौन हो गये। थोड़ी देर बाद फिर बोले : 'कुछ न करो तो शान्ति से थोड़ा रोज कातकर कांग्रेस को नियमित भेज तो सकते ही हो!' अनेक अखबारों के विशेष सन्देश के लिए तार आते हैं। 'सन्देश' भेजते ही नहीं। देशबन्धु दास के 'फॉरवर्ड' पत्र की वर्षगाँठ के अंक के लिए लगातार तार आये, तब उन्होंने यह सन्देश भेजा :

'मैं तो तुलसीदास की एक मामूली-सी नकल हूँ। तुलसीदास ने सर्वत्र राम को ही देखा। मुझे हिन्दू-मुसलिम-एकता, अस्पृश्यता-निवारण और सार्वत्रिक कताई तथा शुद्ध खादी के सार्वत्रिक उपयोग के बिना हमारे देश का उद्धार दिखाई नहीं देता।'

यहाँ के वातावरण के बारे में आज अधिक नहीं लिखूँगा। एक अति महत्त्व की बातचीत ही इस बार सारा स्थान ले लेगी। पिछले सप्ताह में यहाँ से एक भाई के जाने से बड़ी कमी हो गयी। एण्ड्रूज का वह प्रिय शिष्य बहुत दिन से यहाँ आया हुआ था। ऊपर जाने का आग्रह न रखकर केवल नीचे एण्ड्रूज और दूसरों की सेवा करके ही वह बापू की सेवा मानता था। उच्चतर शिक्षा प्राप्त होने पर भी भोजन बनाने, बरतन मलने वगैरह कामों से उसे घृणा नहीं थी। इतना ही नहीं, उनमें उसे मजा आता था। जिस दिन गये, एण्ड्रूज बापू से कह गये : 'इसका मैंने अब तक आपसे परिचय तक नहीं कराया, परन्तु अब तो यह जानेवाला, इसलिए इससे थोड़ी

बातें कीजिये, खुश होगा।' भाई रामचन्द्रन्—त्रावणकोर का होने के कारण ऐसा उसका नाम है—मंगलवार को बापू के पास जाकर खड़ा हुआ। प्रभात का समय था। अभी अँधेरा था। प्रार्थना के बाद तुरन्त बापू ने रामचन्द्रन् की भीरुता भंग करने के लिए परिचय के कुछ प्रश्न किये, इसलिए उसे प्रश्न पूछने का उत्साह हुआ। शान्तिनिकेतन के कला-मन्दिर के पुजारी को कला के ही प्रश्न सता रहे थे। उसने कला-सम्बन्धी प्रश्न पूछकर आरम्भ किया।

रा० : 'बापू, आपको अत्यन्त चाहनेवाले और बुद्धिमान् भी यह मानते हैं कि आपने जाने-अनजाने राष्ट्रीय शिक्षा में कला को स्थान नहीं दिया, यह बात सच है?'

गां० : 'इस मामले में मेरे बारे में फैली हुई गलतफहमी आम है। मैं आन्तरिक और बाह्य—दो भेद करता हूँ। प्रश्न यही है कि दो में से किस पर तुम ज्यादा जोर देते हो। मेरे लिए तो जब तक बाह्य से आन्तरिक का विकास न हो, तब तक बाह्य की कोई कीमत नहीं। कला मात्र आन्तरिक विकास का आविर्भाव है। मनुष्य की आत्मा का जितना आविर्भाव बाह्य रूप में हो, उतना ही उसका मूल्य है।'

रा० : 'तब तो, बापू, उत्तम कलाकार भी यही कहते हैं। तो कला का अर्थ है आत्मिक मन्थन के परिणामस्वरूप शब्द, रंग, रूप इत्यादि पैदा होनेवाली वस्तुएँ।'

गां० : 'हाँ, यह व्याख्या सही है। परन्तु बहुत-से कथित कलाकारों में तो यह आत्ममन्थन का अंश भी नहीं होता। उनकी कृति को कैसे कला कहूँ?'

रा० : 'आपके ध्यान में कोई उदाहरण भी है?'

गां० : 'हाँ, ऑस्कर वाइल्ड। वह जब इंग्लैण्ड में दुनिया की चर्चा का विषय बना हुआ था, तब मैं वहीं था।'

अधीरता से रामचन्द्रन् ने पूछा : 'परन्तु ऑस्कर वाइल्ड की तो आज के महा कलाकारों में गणना होती है।'

गां० : 'यही मेरी मुश्किल है, यहीं मैं कला की सामान्य कल्पना से अलग हो जाता हूँ। वाइल्ड ने बाहर के रूप और आकृति में ही कला देखी और अनीति को सुन्दर करके दिखाया। अनीति भी सुन्दर दिखाई दे तो वह कला है! कला में नीति क्या? नीति के अर्थ में नहीं, परन्तु 'कला के लिए कला' मेरी समझ के बाहर है। जो कला हमें आत्मदर्शन

करना न सिखाये, वह कला ही नहीं। और मेरा काम तो आत्मदर्शन के लिए कथित कला की वस्तुओं के विना चल सकता है। और इसीलिए तुम मेरे आसपास में बहुत-सी कलाकृतियाँ नहीं देखोगे। फिर भी मेरा दावा है कि मेरे जीवन में कला भरी हुई है। मेरे कमरे में सफेद झक दीवारें हों और सिर पर छप्पर भी न हो तो मैं कला का खूब उपभोग कर सकता हूँ। ऊपर आकाश में नक्षत्र और ग्रहों की जो अलौकिक लीला देखने को मिलती है, वह मुझे कौन-सा चित्रकार या कवि दे सकता है? फिर भी यह न समझना कि मैं 'कला' नाम से समझी जानेवाली सभी चीजों का त्याग करनेवाला हूँ। केवल जिस कला से आत्मदर्शन में सहायता मिले, उसीका मेरे लिए अर्थ है।'

रा० : 'लेकिन, वापू, कलाकार तो सौन्दर्य के द्वारा ही सत्य को देखते हैं। क्या सौन्दर्य के द्वारा सत्य देखा जा सकता है?'

गां० : 'मैं इसे उलट देता हूँ। मैं सत्य में अथवा सत्य के द्वारा सौन्दर्य देखता हूँ। मुझे तो सत्य के प्रतिविम्बवाली सभी वस्तुएँ सुन्दर लगती हैं—सच्चा चित्र, सच्चा काव्य और सच्चा गीत। आम तौर पर लोगों को सत्य में सौन्दर्य दिखाई नहीं देता। उन्हें वह भयंकर लगता है। पामर लोग सत्य को भीषण देखकर भागते हैं, क्योंकि सत्य का सौन्दर्य उन्हें सूझता नहीं। यह समझो कि मनुष्य सत्य में सौन्दर्य देखने लगा तो कला देखने लगा, कला-रसिक हुआ।'

रा० : 'परन्तु सत्य ही सौन्दर्य और सौन्दर्य ही सत्य नहीं है?'

गां० : 'नहीं, सौन्दर्य यानी क्या? यह मुझे जानना चाहिए। साधारण लोग जिसे सुन्दर कहते हैं, उसे तुम सत्य कहते हो तो सत्य और सुन्दर के बीच भारी अन्तर है। कहो न कि तुम्हें खूबसूरत स्त्री सुन्दर लगती है?'

रा० : 'हाँ।'

गां० : 'फिर उसका चरित्र खराब हो तो भी?'

रामचन्द्रन् जरा परेशान हुआ। जरा ठहरकर कहता है : 'नहीं, वापू। खराब चाल-चलन की स्त्री सुन्दर होती ही नहीं। जो सच्चा कलाकार है, वह जैसे अन्दर होगा, वैसा वाहर वता सकेगा।'

गां० : 'तव तो फिर सच्चे कलाकार की वात आयी न? सच्चा कलाकार किसे कहा जाय? यह वात है। जो अन्तर देखे, वाह्य न देखे, वह सच्चा कलाकार है। असल में सत्य से भिन्न सौन्दर्य जैसी वस्तु ही नहीं। सुकरात अपने जमाने का कुरूप-से-कुरूप मनुष्य माना जाता था, फिर भी

उसके जैसा सच्चा कौन था ? इसलिए सत्य का बाह्य रूप के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। उल्टे सुकरात को मैं सुन्दर कहूँगा। उसकी सत्यशीलता, सत्य की उसकी आजीवन खोज उसे सौन्दर्य प्रदान करती है। और फिडियास जैसे चित्रकार ने भी, जिसे बाह्य रूपों में खूब सौन्दर्य जान पड़ता था, सुकरात का सौन्दर्य स्वीकार किया है। सत्य का सौन्दर्य उसकी कला देख सकी थी।'

रा० : 'परन्तु जिनके चरित्र सदा सुन्दर नहीं थे, ऐसे लोगों ने भी सुन्दर-से-सुन्दर कृतियाँ उत्पन्न की हैं।'

गांधीजी कहते हैं : 'हाँ, इससे क्या ? इसका अर्थ इतना ही कि अक्सर सत्य और असत्य इकट्ठे हो जाते हैं; अच्छे के साथ बुरा मिला हुआ देखा जाता है।'

रामचन्द्रन् और परेशान हुआ। यदि सच्ची वस्तु ही सुन्दर हो, तब तो जिस वस्तु में कुछ भी सत्यता—कोई नीति का रंग नहीं लगता, वह कैसे सुन्दर कही जायगी ? उसने अकुलाकर कहा : 'भव्य सूर्यास्त और चन्द्रोदय के सौन्दर्य के पीछे हम पागल हो जाते हैं। उसमें कुछ सत्य भी है ?'

बापू कहते हैं : 'बेशक; उसमें सत्य भरा है, क्योंकि उसके कारण उसके पीछे रहनेवाले सरजनहार का मुझे चिन्तन होता है और दर्शन होता है। सूर्यास्त के सुन्दर रंग और चन्द्रोदय का शान्त प्रकाश देखकर मुझे आनन्द होता है, तब विश्व-विधाता की पूजा में मेरा हृदय उमड़ आता है। इस विधाता की प्रत्येक कृति में मैं उसीका दर्शन और उसकी अपार करुणा का दर्शन करने का प्रयत्न करता हूँ।

'परन्तु ये सुन्दर रंग और चन्द्रोदय भी यदि मुझे रूप से मोहित करके जगन्नियन्ता का विचार न करने दे, तो वह बाधक ही हो जायगा। हिमालय पर अनेक व्यक्ति चढ़कर आते हैं, कई उसकी ऊँचाई नापने जाते हैं, उनके लिए हिमालय एक केवल मोहिनी की तरह है। वैसे ही मोहिनी यह सूर्यास्त और चन्द्रोदय हो सकते हैं। शरीर यदि मोक्ष में बाधक हो तो वह भ्रामक वस्तु है। इसी प्रकार आत्मा की गति को रोकनेवाली प्रत्येक वस्तु भ्रामक है।'

रामचन्द्रन् को शान्ति हुई। 'यह चीज आप बार-बार युवकों को खूब समझाते रहें तो कितना अच्छा हो ? युवकों के विचार बहुत भिन्न होते हैं।'

गां० : 'यह नहीं हो सकता। मेरे ये विचार तो पक्के जमे हुए हैं।

परन्तु कला मेरा विषय न होने के कारण में उस पर बोलूँ तो अपनी मर्यादा का उल्लंघन करता हूँ।'

अब रामचन्द्रन् ने दूसरा विपय लिया। 'आप यंत्रों के बिलकुल विरुद्ध हैं?' 'कैसे हो सकता हूँ? मेरा शरीर ही एक बड़ा नाजुक यंत्र है। जब मैं ऐसा समझता हूँ, तब यंत्रों के विरुद्ध होकर मैं कहाँ जाऊँ? चरखा तक एक यंत्र है। एक छोटा-सा दतुअन भी, जिससे दाँत साफ करते हैं, यंत्र है। मेरा झगड़ा यंत्रों के पागलपन के विरुद्ध है, यंत्रों के विरुद्ध नहीं। परिश्रम की बचत करनेवाले कथित यंत्रों के पागलपन के विरुद्ध मेरा झगड़ा है। परिश्रम इस हद तक बचाया जाता है कि अन्त में हजारों और लाखों बेचारों को भूख से तड़पना पड़ता है और उन्हें शरीर ढँकने तक को कुछ नहीं मिलता। मुझे समय और परिश्रम की बचत जरूर करनी है, परन्तु वह मुट्ठीभर आदमियों के लिए नहीं, समस्त मानव-जाति के लिए; यह मुझे असह्य है कि मुट्ठीभर लोग धनवान् बनकर बैठ जायँ। मैं तो यह चाहूँगा कि सबका समय और परिश्रम बचे, सब खा सकें और ओढ़-पहन सकें। आज यंत्रों के परिणामस्वरूप लाखों की पीठ पर मुट्ठी-भर लोग सवार होकर बैठे हैं और उन्हें रगड़ते हैं, क्योंकि यंत्र चलाने की जड़ में लोभ है, धन की तृष्णा है, जन-कल्याण नहीं है।'

रा० : 'तो आप यंत्रों के दुरुपयोग के विरुद्ध हैं, सदुपयोग के विरुद्ध नहीं?'

गां० : 'हाँ, परन्तु इसे ठीक-ठीक समझ लो। पहले विज्ञान की खोजें धन-प्राप्ति का साधन नहीं रहनी चाहिए। ये धन-प्राप्ति का साधन नहीं रहेंगी, तभी यंत्रों का सदुपयोग होगा। तभी कारीगरों को काम का असह्य भार नहीं रहेगा। तब कारीगर मजदूर न रहकर मनुष्य बनेंगे। यंत्र कल्याण-साधक हों तो भले ही हों। इस प्रकार मैं यह चाहता हूँ कि यंत्रों का सर्वथा नाश न होकर उनकी मर्यादा बँध जाय।'

रा० : 'तो फिर अन्त में यह नहीं कहना होगा कि यंत्र मात्र अनिष्ट है?'

गां० : 'कदाचित् कहना पड़े। परन्तु यंत्र जब तक मनुष्य पर हमला नहीं करता, तब तक सह्य है, मनुष्य को अपंग नहीं कर डालता, तब तक सह्य है। इसलिए कुछ यन्त्र तो उपयोगी रहेंगे ही। सिंगर की सिलाई मशीन को लें। यह अत्यन्त उपकारक वस्तुओं में से एक है और उसकी खोज के आसपास कैसे प्रेम-शौर्य की कथा रही है। सिंगर ने अपनी स्त्री को कपड़े पर झुककर सारे दिन धीरे-धीरे आँखें तानते, टाँके लगाकर सीते

हुए थककर चूर होते देखा। यह बात उसे चुभती रही और अन्त में उसने अपने अत्यन्त प्रेम के बल से सीने की मशीन पैदा की। ऐसा करके उसने अपनी स्त्री की ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति की मेहनत बचा दी।'

रा०: 'लेकिन हम ऐसे यंत्र को स्वीकार करें तो फिर ऐसे यन्त्र बनानेवाले कारखानों को भी स्वीकार करना होगा न?'

गां०: 'हाँ; मगर इतना कहने योग्य 'समाजवादी' मैं जरूर हूँ कि ऐसे कारखाने किसी खानगी शख्स की सम्पत्ति नहीं होंगे, बल्कि सरकार की ही सम्पत्ति होंगे। तभी उनका व्यापार के लिए उत्पन्न होना बन्द होगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यन्त्र भले ही हों, परन्तु वे नयी समाज-रचना में ही हो सकते हैं। केवल समाज-कल्याण के लिए ही चलेंगे, इसलिए मजदूर का कल्याण भी ध्यान में जरूर रखा जायगा। जिन्हें मजदूरी करनी होगी, जिन्हें वे यन्त्र चलाने होंगे, वे तो आदर्श और मनमोहक स्थिति में काम करते ही होंगे।

'सिंगर की मशीन का तो केवल एक ही उदाहरण दिया। ऐसी और भी कई मिसालें दी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, तकुआ कई बार ठर्राता है, इससे बहुत-से कातनेवालों को परेशानी हो जाती है और उसको सीधा करने में खूब वक्त लगता है। इस तकुए को तुरन्त सीधा करनेवाला कोई यन्त्र हो तो उसे मैं अवश्य स्वीकार करूँगा। तकुए बनानेवाले तो लुहार ही रहें—लुहारों की रोजी बन्द न हो जाय, परन्तु प्रत्येक कातनेवाले के पास ही तकुए की ठर्राहट मिटानेवाला यन्त्र हो तो वह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।'

रामचन्द्रन् को बहुत सन्तोष नहीं हुआ। वह तो अब तक यही समझता था कि गांधीजी यंत्रों के विरुद्ध हैं और यह ठीक है। आज तो कुछ नयी बातें सुनीं। अभी उसे चर्चा जारी रखनी थी, मगर देर हो रही थी और उसे सुबह की गाड़ी से जाना था। परन्तु गांधीजी ने उसे धीरज दिया: 'तुम्हारी गाड़ी चली जाय तो हर्ज नहीं, कल चले जाना, मगर मैं तुम्हें पूरी तरह सन्तोष देना चाहता हूँ।'

रामचन्द्रन् को गांधीजी के विवाह-सम्बन्धी विचार भी परेशान कर रहे थे। उसने यह प्रश्न पूछा: 'आप शादी के खिलाफ हैं?'

गां०: 'मुझे इसका उत्तर जरा विस्तार से देना पड़ेगा। मनुष्य-जीवन का सार्थक्य मोक्ष है। हिन्दू के नाते मैं मानता हूँ कि मोक्ष का अर्थ है, जीवन-मरण के चक्कर से छूटना—ईश्वर-साक्षात्कार। मोक्ष के लिए

शरीर के वन्धन टूटने चाहिए। शरीर के वन्धन तोड़नेवाली प्रत्येक वस्तु पथ्य और अन्य सव अपथ्य हैं। विवाह-वन्धन तोड़ने के वजाय उल्टे उन्हें अधिक जकड़ देता है। ब्रह्मचर्य ही ऐसी वस्तु है, जो मनुष्य के वन्धन मर्यादित करके ईश्वरार्पित जीवन विताने के लिए उसे समर्थ वनाती है।'

रा० : 'तव तो ब्रह्मचर्य का आग्रह आप सभी के लिए करेंगे?'

गां० : 'हाँ।'

रा० : 'सवके लिए या कुछ के लिए ही?'

गां० : 'सवके लिए।'

रा० : 'तव तो संसार मिट जायगा?'

गां० : 'नहीं, संसार नहीं मिटेगा। ऐसी आदर्श स्थिति हो जाय तो सव मुमुक्षुओं का ही समाज वन जाय। मनुष्य मनुष्य न रहकर अतिमानुष वनकर खड़े रहें। परन्तु डरते किसलिए हो कि शादियाँ वन्द हो जायँगी। यह वन्द होनेवाली चीज ही नहीं। यह संस्था वनी ही रहेगी।'

रा० : 'मगर तव क्या कोई सज्जन हो, श्रेष्ठ पुरुष हो, कोई वड़ा कलाकार हो, उसे अपना वंश छोड़ जाना हो तो?'

गां० : 'वंश किसलिए छोड़ें? वह अकेला ही काफी नहीं होगा? और वंश छोड़ जाना हो तो वह वड़ी शिष्य-मंडली वना सकता है। ये अनेक शिष्य उसका वंश जैसा कायम रखेंगे, वैसा विवाह कायम नहीं रखेगा।'

रा० : 'परन्तु अपनी खूबियाँ तो मनुष्य अपनी सन्तानों को ही दे सकता है। वालकों में ही माता-पिता की खासियतें आ सकती हैं?'

गां० : 'नहीं। माँ-वाप अपने जैसे या अपने से घटिया ही पैदा करेंगे। और ऐसों को वढ़ाने से क्या फायदा? परन्तु इसके लिए भी शादी पर जोर देने की आवश्यकता हरगिज नहीं। विवाह-संस्था स्वयं ही फल-फूलनेवाली है, इसके लिए किसी प्रवर्तक मंडल की आवश्यकता नहीं। विवाह में तो आम तौर पर विषय-वासना की तृप्ति का ही हेतु रहता है। इसका परिणाम शुभ नहीं। ब्रह्मचर्य के परिणाम वड़े हैं। और यह मानने का तो कोई कारण ही नहीं कि ब्रह्मचर्य के प्रचार से विवाह-संस्था को कोई हानि पहुँचेगी।'

रा० : 'आप ब्रह्मचर्य पर इतना जोर देते हैं, यह मेरे 'प्रोटेस्टेंट' शिक्षक को पसन्द नहीं आता।'

गां० : 'क्यों आने लगा? प्रोटेस्टेंट पंथ ने वहुत सेवा की है, परन्तु

उसके अनिष्टों में से एक यह है कि उसने ब्रह्मचर्य की निन्दा की, उपहास किया।'

रा० : 'इसका कारण तो यह था कि उस समय के पादरी अनीति में इतने अधिक डूबे हुए थे कि और कोई उपाय नहीं था।'

गां० : 'परन्तु वे अनीति में सड़ रहे थे, यह ब्रह्मचर्य का अपराध नहीं था। ब्रह्मचर्य ही एक चीज है, जिसने 'कॅथलिक' पंथ को जीवित, नित्य नवीन रखा है।'

यह तो कुछ सिद्धान्त-चर्चा थी। अब आचार-चर्चा चली। रामचन्द्रन् ने गांधीजी को आरम्भ में ही कह दिया कि मैं नियमित कातता हूँ, यद्यपि कातना उपवास के बाद से ही अन्य दो-तीन साथियों के साथ शुरू किया। यह भी उसने स्वीकार किया। कातने का सार्वत्रिक प्रचार होना चाहिए, यह भी उसे पसन्द था। परन्तु यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कांग्रेस अपने सदस्यों को कातने के लिए मजबूर कैसे कर सकती है। अनिवार्य नहीं, स्वेच्छापूर्वक कातना हो और कातनेवाले कातकर लोगों को समझायें, यही अच्छा नहीं ? यह उसका प्रश्न था।

गां० : 'तब तो तुम एण्ड्रूज से भी आगे जाते दीखते हो ? क्योंकि एण्ड्रूज कहते हैं कि कांग्रेस कातना अनिवार्य नहीं कर सकती, परन्तु कोई कताई-संस्था जरूर बना सकती है और वे यह भी कहते थे कि मैं खुद सदस्य बनने को तैयार हूँ। परन्तु तुम तो कताई-संस्था के भी विरुद्ध होगे, नहीं ?'

रा० : 'हाँ जी, मुझे 'अनिवार्य' शब्द ही पसन्द नहीं।'

गां० : 'अच्छा, तो तुम्हें एक बात पूछूँ। क्या कांग्रेस को ऐसा प्रस्ताव करने का हक भी है कि सदस्य शराब न पियें ? यदि कांग्रेस इस हक पर अमल करे तो उसके विरुद्ध कोई आपत्ति करेगा ? कारण ? शराब की खराबी सब जानते हैं। अच्छा, तो मैं बताता हूँ कि जब भारत में आज लाखों और करोड़ों कंगाल मौजूद हैं, तब एक इंच भी विलायती कपड़ा मँगवाने में ज्यादा बुराई है। मैं उड़ीसा गया, तब एक दयालु पुलिस सुपरिंटेंडेंट के कारण मुझे वहाँ का एक बालाश्रम देखने को मिला था। उसमें बालक चटाई, टोकरी, वगैरह का काम कर रहे थे और सब कल्लोल कर रहे थे। वहाँ से थोड़ी दूर मंदिर की छाया में ही उनके माँ-बाप पड़े थे। उनको कोई चावल पकाकर खिला दे तो खायँ, नहीं तो पड़े रहें। सुपरिंटेंडेंट ने मुझे कहा कि इन लोगों की ऐसी दशा है कि इन्हें गोली

मारने की धमकी दी जाय तो भी शायद वे काम करने की अपेक्षा गोली खाना अधिक पसन्द करेंगे। ये लोग केवल साँस लेनेवाले पशुओं जैसे थे, उनमें न तो था हृदय और न थी बुद्धि। केवल भूख उनके जमुहाई ले रहे मुँह से और निस्तेज आँखों में से झाँक रही थी। इन हराम हड्डियों को कातने के लिए भी कैसे कहा जाय? शराव से भी यह आलस्य वड़ा शत्रु है। शरावी मनुष्य से, जब वह शराव पिये हुए न हो, तव तो कुछ-न-कुछ काम लिया जा सकता है, परन्तु इन हड्डियों के हराम का क्या किया जाय? इस खरावी को दूर करने के लिए यह अनिवार्य कताई का प्रस्ताव है। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप लोग कातने लगें और उसके कारण ऐसे लोगों को भी कातने की—काम करने की सूझेगी। इस कारण विदेशी कपड़े का एक भी टुकड़ा आता है तो वह ऐसे भूख से मरनेवालों के मुँह में से चुराया जानेवाला रोटी का टुकड़ा है।

'परन्तु तुम्हें तो 'अनिवार्य' शब्द से घृणा है। मान लो, एक वावा कहे कि मुझे तो कांग्रेस में विलकुल दिगम्वर वनकर आना है तो कांग्रेस उसे इनकार कर सकती है या नहीं? कोई स्त्री किसी युवक मण्डल में नग्नावस्था में जाने का आग्रह करे तो क्या कच्चे मनवाले ये युवक यह नियम नहीं वना सकते कि मंडल में सव ठीक कपड़े पहनकर आयें? कातना अनिवार्य वनाने में भी यही वस्तु निहित है। कांग्रेस में कातने को वहुत जरूरी समझनेवाले मनुष्य हैं, ऐसा कहा जाता है। वे सचमुच कातनेवाले हैं, इसकी सचाई के लिए क्या कांग्रेस प्रस्ताव नहीं कर सकती?

'और तुम शान्ति से समझाने की वातें करते हो। कांग्रेस का प्रत्येक सदस्य हर महीने कातकर भेजता रहे तो इसके जैसी समझानेवाली चीज और क्या हो सकती है? यदि कांग्रेस के सदस्य ही खुद कातनेवाले न हों तो वे औरों से कातने को कैसे कह सकते हैं?'

रा० : 'परन्तु न कातनेवाले लोग भी दूसरी तरह सेवा करनेवाले हो सकते हैं। उन्हें कैसे निकाला जा सकता है?'

गां० : 'क्यों नहीं? वे कांग्रेस से दूर रहकर सेवा करें। अन्य देशों में अनिवार्य सेवा न करनेवालों को सजा होती है। हमारे यहाँ तो सजा स्वराज्य में भी नहीं हो सकती। परन्तु कातना अनिवार्य क्यों न हो? चार आना लेना अनिवार्य कैसे हो सकता है? विलकुल मुफलिस आदमी अन्य प्रकार से सदस्य वनने के योग्य न हो, तो भी चार आने न देनेवाले को सदस्य क्यों नहीं वनाते? १८ वर्ष से ऊपरवाले को ही क्यों सदस्य

बनाते हैं ? इटली में ८ वर्ष की आयु का एक बालक सारंगी बजानेवाला है, उसकी शक्ति तो असाधारण ही होगी, परन्तु क्या उसे मत देने का अधिकार है ? जॉन स्टुअर्ट मिल सात साल की उम्र में लैटिन और ग्रीक जान गया था। उसकी शक्ति भी असाधारण थी। मगर उसे उस उम्र में मताधिकार कौन दे सकता था ? किसी भी हिसाब से मताधिकार रखा गया हो तो भी कुछ लोग तो वंचित रहेंगे ही।

'आज कदाचित् अनिवार्य कताई की मेरी शर्त बहुत लोग न मानें। परन्तु एक दिन ऐसा आयेगा, जब सब कहेंगे कि गांधी जो कहता था, वह ठीक कहता था।'

सात तो बज गये थे और रामचन्द्रन् की गाड़ी भी चली गयी थी ! दूसरे दिन प्रातः वह गांधीजी से इजाजत लेने गया। विदा होते-होते उसने फिर एक-दो बातें कर लीं।

रा० : 'तो, बापू, जैसा आप कहते हैं, सत्य ही मुख्य वस्तु है। सत्य और सौन्दर्य एक सिक्के के दो पहलू नहीं कहे जा सकते ?'

गां० : 'नहीं, भाई, सत्य ही मूल वस्तु है। परन्तु वह सत्य 'शिव' हो, 'सुन्दर' हो। सत्य-प्राप्ति के बाद तुम्हें कल्याण और सौन्दर्य दोनों मिल जायेंगे। इस प्रकार ईसामसीह को मैं बड़ा कलाकार कहता हूँ, क्योंकि उसने सत्य की उपासना करके सत्य को खोजा और सत्य को प्रकट किया। मुहम्मद भी इसी प्रकार महान् कलाकार हुए। उनका कुरान अरबी साहित्य में सुन्दर-से-सुन्दर कहा जाता है। पंडित उसे ऐसा ही वर्णन करते हैं। इसका कारण यही है कि उन्होंने सत्य को देखा और सत्य को प्रकट किया। फिर भी तुम जानते हो कि दोनों में से एक ने भी—न ईसा ने, न मुहम्मद ने—कला पर व्याख्याएँ नहीं लिखीं। मुझे ऐसे सत्य और ऐसे सौन्दर्य की लालसा रहती है, उसके लिए मैं जी रहा हूँ और उसके लिए प्राण भी दे दूँ।'

रामचन्द्र को फिर उमंग हो उठी। उसने एक अन्तिम प्रश्न पूछ लिया।

रा० : 'बापू, आप यदि सिंगर की मशीन का अपवाद करते हैं, तब तो फिर दूसरे अपवाद भी ऐसे निकलेंगे। मर्यादा कहाँ रख सकेंगे ?'

गां० : 'मर्यादा वहाँ, जहाँ यंत्र व्यक्ति को मदद देना बन्द कर दे और व्यक्ति पर हमला करे। मनुष्य को जो अपंग बना दे, वह यंत्र निकम्मा।'

रा० : 'परन्तु यह तो व्यावहारिक बात हुई। आदर्श की बात पूछ

लूँ ? आदर्श के रूप में आप यंत्रों का सर्वथा त्याग नहीं चाहते ? नहीं, तो फिर सिंगर की मशीन को जारी करके साइकिल मोटर को जारी करेंगे।'

गां० : 'नहीं, इन दोनों चीजों को मैं मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकता को पूरा करनेवाले साधन नहीं मानता। मनुष्य किसलिए दौड़धूप करे और कई मील जाय ? यह उसकी प्रारम्भिक आवश्यकता नहीं। परन्तु सूई उसकी प्रारम्भिक आवश्यकता है। उसे मैं वहुत जरूरी चीजों में से एक समझता हूँ।

'फिर भी आदर्श रूप में तो मैं स्वीकार करूँगा कि यंत्रों का सर्वथा त्याग होना चाहिए, जैसे आदर्श रूप में शरीर का भी सर्वथा त्याग आवश्यक है, क्योंकि शरीर मोक्ष में वाधक वन जाय तो वह त्याज्य ही है। और इस विचार से तो सादा-से-सादा यंत्रों का—हल और सूई जैसों का—भी मैं त्याग करूँ। परन्तु चीजें रहेंगी—जैसे शरीर रहता है—एक अनिवार्य अनिष्ट के रूप में ये वस्तुएँ रहेंगी।'

रा० : 'शरीर अनिष्ट कैसे ?'

गां० : 'जैसे वह ईश्वर का भवन है, वैसे ही शैतान का घर है, इसलिए।'

रा० : 'अन्तिम प्रश्न फिर पूछ लूँ कि कोई कलाकार ऐसे नहीं हो सकते, जिन्हें सौन्दर्य में सत्य दिखाई दे ?'

यह प्रश्न पूछकर रामचन्द्रन् ने चर्चा वन्द की।

गां० : 'हाँ; उन्हें दिखाई दे सकता है। परन्तु वात ऐसी है कि अन्यत्र की तरह यहाँ भी मैं तो करोड़ों की दृष्टि से ही वात करता हूँ। जो चीज मैं करोड़ों के आगे नहीं रख सकता, वह मेरे लिए निकम्मी है। करोड़ों को ऐसी कला का ज्ञान मैं किस प्रकार दे सकता हूँ ? वाह्य आकृति और रूपों के द्वारा सत्य को देखने की कला मैं उन्हें आसानी से नहीं दे सकता। उन्हें मैं तो सत्य पहले सिखाऊँगा और वाद में उन्हें कल्याण और सौन्दर्य मिल जायगा।

'उड़ीसा के मुझे दिन-रात सपने आते हैं, वहीं की गूँज कानों में उठती है। उन्हें जो उपयोगी हो सके, वह मेरे खयाल में सुन्दर है, नहीं तो त्याज्य है। एक वार उन्हें प्राणपोषक वस्तुएँ दे दो, फिर इन्द्रियपोषक पदार्थ—ललित वस्तुएँ—उन्हें मिल जायेंगी।'

रामचन्द्रन् तृप्त हुआ। गांधीजी के पैरों पड़कर उसने विदा ली। उसकी आँखें गीली हो गयी थीं। गद्गद कण्ठ से उसने कहा : 'यह अन्तिम वाक्य मेरे लिए शास्त्र-वाक्य है। इससे अधिक की मुझे जरूरत नहीं। इसमें सव समा जाता है।'

दिल्ली, ता० ३०-१०-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

वाइसराय ने बम* का धमाका किया, तब से मैं बहुत विचार कर रहा हूँ कि हमें क्या करना चाहिए। हमारी लाचारी से परेशान हूँ। मेरा फैसला यह है। हमें जल्दबाजी या क्रोध के आवेश में कुछ नहीं करना चाहिए। इसलिए अभी तो तूफान के सामने हमें झुक जाना चाहिए। कुछ समय तक तो हमें केवल अपनी राय जाहिर कर देनें की पुरानी प्रथा का आश्रय लेना पड़ेगा। सरकार की गैरकानूनी पद्धति के विरुद्ध सारे देश में लोकमत हम संगठित करें और सरकार जो असाधारण उपाय काम में लेने की प्रथा का प्रयोग करती है, उस पर हमला करें। और सरकार से कहें कि सन् १८१८ की तीसरी धारा भी रद्द करनी चाहिए। असाधारण परिस्थिति से निपटने के लिए उसे असाधारण सत्ता की जरूरत हो तो चुने हुए प्रतिनिधियों की राय लेकर वह ऐसा कर सकती है। मैं जानता हूँ कि ये सब भी बड़ी-बड़ी बातें हैं।

मेरे कानों को ये बेसुरी लगती हैं। परन्तु इस समय और कोई मार्ग मुझे दीखता नहीं।

यह तो हुई बात अखिल भारतीय कार्य के विषय में। अब यदि मैं आपको स्वयं और स्वराज्यवादियों को अपने मत का बना सकता हूँ तो मैं कार्यसमिति अथवा महासमिति से कहूँ कि उसे अपना सारा जोर मेरी बतायी हुई तीन बातों पर एकाग्र करना चाहिए। मुझे संगठित और अनुशासनवाली कांग्रेस दें तो मुझे सरकार के कदम का जवाब लोगों के मुकाबले के कदम से देने का उपाय सूझे। परन्तु जब तक कांग्रेस ऐसी नहीं, तब तक हिन्दू और मुसलमान एक दिल से बात नहीं करते, जब तक खादी और अस्पृश्यता-निवारण के मामले में कोई संगीन काम हम दिखा नहीं सकते, तब तक कारगर मुकाबले की कोई आशा मुझे दिखाई नहीं देती। बंगाल की गिरफ्तारियों के बाद कांग्रेस से निवृत्त होने के विचार ने मुझ पर कब्जा कर लिया है, अगर मेरे प्रस्ताव के बारे में स्वराज्यवादियों का उत्साहपूर्वक समर्थन मुझे न मिले। मुझे पहली जरूरत तो यह मालूम होती है कि हमारा तंत्र ऐसा सुसंगठित हो जाय कि वह प्रत्येक आदेश को

* बंगाल में 'आर्डिनेन्स' जारी करके अनेक मनुष्यों की मुकदमा चलाये बिना गिरफ्तारियाँ करके और उन्हें अनिश्चित काल के लिए नजरबन्दी में रखा, उसका उल्लेख है।

ठीक तरह अपना सके। यह तंत्र बहुत छोटा हो, इसकी मुझे परवाह नहीं। अन्य सब अहिंसक प्रवृत्तियाँ तो जारी ही रहती होंगी। किसी हद तक मैं उनकी उपयोगिता समझ सकता हूँ। इसका मुझे बहुत दुःख होता है और शरम आती है कि सरकार की चुनौती का हम जरा भी कारगर जवाब नहीं दे सकते। मेरा खयाल है कि मुझसे आप जो जानना चाहते हैं, वह सब मैंने आपको कह दिया है। × × ×

दासबाबू दिल्ली से गुजरे, उस समय मैंने उन्हें एक छोटी-सी चिट्ठी भेजी थी। आप उन्हें कहिये कि मैं दिल्ली में बँध गया हूँ, इसमें संकल्प का अभाव कारण नहीं। पहले मैं शायद ही अखबार देखता था। परन्तु इन गिरफ्तारियों के बाद जितने अखबार मेरे हाथ में आते हैं, उन सबमें उनके बारे में मैं शौक से पढ़ता हूँ।

आप नागपुर जा सके, इससे मैं बहुत खुश हुआ हूँ। ज्यादा तो इसलिए कि आपके और मौलाना के पंच फैसले के लिए आप सब पक्षों को समझा सके।

आपकी तबीयत अच्छी होगी।

आपका

मो० क० गांधी

सातवाँ सप्ताह

(कलकत्ते जाते हुए, ता० ३-११-१९२४)

अब तो गांधीजी यह मानने लगे हैं कि मैं पहले जैसा हो गया। पहले से अधिक चलने का प्रयत्न करते हैं और कुछ-कुछ अधिक चलते भी हैं। बातें करने के अवसर तो ज्यादा आते ही हैं और जब ऐसा होता है, तब थकावट मालूम होती है। इससे चेतावनी भी मिल जाती है कि अभी तबीयत पहले जैसी हरगिज नहीं हुई। उपवास के बाद चार पौण्ड वजन बढ़ा था अर्थात् ९२ पौण्ड हो गया था। अब वह लगभग एक सप्ताह से ज्यों का त्यों है।

प्रतिदिन संध्या को सैर के लिए जाना होता है। हकीम साहब साथ होते ही हैं। पिछले सप्ताह हकीम साहब के बड़े भाई गुजर गये। उनके घर जाने जैसी स्थिति गांधीजी की नहीं थी, इससे उन्हें अफसोस हुआ और

पत्र लिखकर सन्तोष माना; इतने में हकीम साहब खुद आ गये और वातों ही वातों में छोटे-छोटे मीठे मजाक से उल्टे गांधीजी को प्रसन्न करने लगे। हकीम साहब की स्वयं की तबीयत निहायत गिरी हुई है और वे खुद भी मानते हैं कि गांधीजी के उपवास के दिनों में कहा था कि उपवास के वाद आपसे मैं ज्यादा ताजा हो जाऊँगा, उनका यह वचन सच्चा सावित हो गया, क्योंकि एक प्रकार से गांधीजी ने ही हकीम साहब की देखभाल शुरू कर दी। उन्हें लगा कि हकीम साहब को थोड़े समय घूमने-फिरने को वाध्य किया जाय, यह भी उनकी तबीयत यों ही सुधारने जैसा है। इसलिए इन्होंने उनसे आग्रह किया कि रोज शाम को आयें। हर रोज चार-साढ़े चार वजे अपनी-अपनी जाति के और एक-दूसरे की जाति के गौरव की रक्षा करनेवाले इन वृद्ध फकीर भाइयों को साथ वैठकर सैर के लिए जाते देखना भी एक दृश्य ही है। आश्रम में जव सन् १९१८ में गांधीजी वहुत वीमार थे, तव उनके साथ उनके वड़े भाई—मगनलाल भाई के पिताजी—खुशालचन्द भाई गाड़ी में जाते थे। इस वार हकीमजी ने वड़े भाई का पद लिया है। वहुत वातें तो होती ही हैं—खासकर आज के वड़े प्रश्न सम्बन्धी ही—एक-दूसरे के धर्म की वातें भी यों ही हो जाती हैं। इसलिए अभी-अभी हकीम साहब ने गांधीजी से गीताजी का मर्म समझने की इच्छा प्रकट की है।

गांधीजी के धार्मिक जीवन के साथ आम लोगों का सम्बन्ध आम तौर पर लेखों द्वारा ही रहता है। सन् १९२१ के सफर के दौरान जव लोग ज्यादा काम के वोझे में उनकी थोड़े समय में अपार काम पूरा कर लेने की शक्ति देखते, तव उनके नित्य जीवन की धार्मिकता देखने का उन्हें शायद ही मौका मिलता था। दिल्ली में ऐसा पहली वार हुआ है। दिल्ली में तो सायंकाल की प्रार्थना एक सार्वजनिक सामूहिक क्रिया हो गयी है। शहर से अनेक लोग केवल इस प्रार्थना में शामिल होने के लिए ही आते हैं। दूसरे टेलीफोन से प्रार्थना का समय पूछते हैं और ठीक उस समय उपस्थित होकर शान्ति से छत पर होनेवाली प्रार्थना में शरीक होकर उस समय का गांधीजी का आनन्द देखकर चले जाते हैं। भजन मंडलियाँ—जैसे राम-कथा करनेवाली प्रेम-सभा—अपनी कथा सुनाने की माँग करती हैं और धार्मिक संगीत के जानकार अपनी सेवाएँ पेश करते हैं। एक भाई आजकल आते हैं। वे सितार इतनी मधुर ढंग से वजाते हैं कि गांधीजी ने कहा :

'मो सम कौन कुटिल खल कामी।'

इसका रटन सितार जब बजता है तब और जब वह बन्द हो जाता है तब भी जारी रहता है। उन्होंने इसे बार-बार बजवाया। आत्मशुद्धि का शिखर ढूंढ़नेवाले उनके हृदय के तार को अपनी पतितता की डोंड़ी पीटकर पतितपावन की कृपा की याचना करनेवाले कवि सूर का यह भजन जितना हिला देता है, उतना और कोई नहीं हिलाता।

किसका नाश ?

आजकल मुलाकात करनेवाले बढ़ गये हैं। और जरा शक्ति लगी तो गांधीजी कैसे इनकार करें? एक मजेदार मुलाकात पंजाब के दो-तीन स्वराज्यवादियों के साथ हुई।

'परन्तु, महात्माजी, क्या आपको विश्वास है कि एकता हो जायगी?'

'मैं तो इस विश्वास के साथ ही काम कर रहा हूँ।'

'आपने जो त्रिविध कार्यक्रम बनाया है, वह भी एकता के लिए ही है?'

'हाँ।'

'मगर इससे एकता कैसे होगी? किसीको हिन्दू-मुस्लिम-एकता पैदा करने के रास्ते कुछ सूझे, किसीको उससे भिन्न सूझे। ऐसे लोगों की एकता किस तरह होगी?'

'भाई, ये ही वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनमें हम मिल सकते हैं। ऐसा मैंने माना है। न मिल सकें तो जन्नत् तो मैं प्राप्त करना नहीं चाहता।'

'नहीं, महात्माजी, प्रस्ताव करके तो हम जरूर मिल सकेंगे। आप जो प्रस्ताव बतायेंगे, वे इन तीनों मामलों में सबको पसन्द होंगे।'

'क्या अमली काम की जरूरत नहीं?'

वे हँसे।

'नहीं, परन्तु, महात्माजी, कातना अनिवार्य बनाने में आपका उद्देश्य तो यही है न कि पढ़े-लिखे लोग भी शरीर-श्रम करें?'

'यह एक हेतु है।'

'तब तो क्यों नहीं मेहनत का ही प्रस्ताव कीजिये और शरीर-श्रम का प्रकार सम्बद्ध सदस्य को चुनने की छूट दीजिये!'

'अर्थात् आप कहते हैं कि कोई आध घंटा चरखा चलाये तो कोई आध घंटा फुटबॉल खेले! तो कोई लकड़ी काटे, यही न?'

सब हँसे। 'शरीर-श्रम तो जरूर है, मगर मैं ऐसी प्रतिज्ञा कराना

चाहता हूँ कि जो शरीर-श्रम आज हमारे लिए सबसे अधिक फलदायक हो, वही प्रत्येक कांग्रेसी करे।'

'यदि चरखे से स्वराज्य लेना हो तो, महात्माजी, पहले तो तमाम जहाज, रेलगाड़ियाँ और मिलें वन्द कीजिये, फिर यह वात चल सकती है। महात्माजी, कमजोर का नाश ही है—सब अपने पाप से दुःखी होते हैं। इसमें किसीका क्या कसूर?'

'कमजोर यानी कैसे?'

'सभी तरह कमजोर।'

'और सवल अर्थात् तैमूर और नादिरशाह जैसे? तो मैं आपसे कहता हूँ कि अनेक तैमूर और नादिरशाह आ गये, परन्तु गरीब हिन्दुस्तान अभी तक खड़ा है, जब कि सवलों का नामोनिशान मिट गया है। मुझे तो निर्वलों का नाश दिखाई देता ही नहीं। कमजोर-से-कमजोर को ईश्वर ने आत्मा की अपार शक्ति दी है।'

ये मित्र वहुत प्रसन्न होकर गये, यह मैं नहीं मानता। परन्तु इस सप्ताह में अधिक मुलाकातें तो अंग्रेजों—अथवा यूरोपियनों—अथवा गोरों की ही थीं, यह कहूँ तो कोई हर्ज नहीं। अंग्रेजों में सेंट स्टीवन्स कॉलेज के प्रोफेसर थे। ये लोग जब जी में आये झाँकी कर जाते हैं, कुशल पूछ लें, थोड़ी देर बैठें और चले जायँ, परन्तु नियमित समाचार तो लेते ही हैं। यूरोपियनों में एक पादरी स्विट्जरलैंड से आये थे। भलमनसाहत उनके चेहरे पर लिखी हुई थी। अंग्रेजी टूटी-फूटी वोलते थे। गांधीजी के वाक्य समझना जरा कठिन होता था।

'मुझे क्षमा कीजिये, मैं अंग्रेजी अच्छी तरह नहीं वोल सकता।'

'मेरे लिए भी यह विदेशी भाषा है, हम दोनों इस मामले में एक-से हैं।'

'आपको यूरोप में सब जानते हैं, जर्मनी, 'स्विट्जरलैण्ड में आपका नाम गाया जाता है, क्योंकि आप अच्छे ईसाई हैं।'

गांधीजी हँसकर वोले: 'मैं ईसाई तो नहीं हूँ।'

'ईसामसीह के सिद्धान्तों पर तो आप खूब अमल करते हैं।'

'हाँ, यह सच है। परन्तु ये सिद्धान्त तो मेरे धर्म में भी हैं, दूसरे धर्मों में भी हैं।'

वे जरा परेशान हुए।

'परन्तु ईसाई-धर्म में विशेष हैं।'

'यह सवाल है। मेरा खयाल है कि सब धर्मों में कुछ सामान्य सिद्धान्त

भरे हैं—सच बोलना, किसीको हानि न पहुँचाना। इसलिए उन पर अमल करनेवाला जितना ईसाई उतना ही हिन्दू, उतना ही मुसलमान कहलायेगा। फिर भी मुझे अपने धर्म से शान्ति मिल जाती है, दूसरे से मिलती हो तो दूसरा स्वीकार कर लूं।' यह बात उनके गले नहीं उतरी। शायद अंग्रेजी ठीक न समझने के कारण भी ऐसा हुआ हो। परन्तु अन्त में यह कहकर चले गये कि 'आपसे मिल सका, इसके लिए बहुत कृतज्ञ हूँ।'

परन्तु 'यूरोपियन' कहने से मामला निपटता नहीं था। अमेरिकी भी बहुत-से मिल गये। एक अमेरिकी यात्री दो बहनों के साथ भ्रमण करता-करता आ पहुँचा था। वह स्थपति था, देश-विदेश घूमकर आया था और थोड़ी-सी बातें गांधीजी से करने की उसके मन में थी।

यह विश्वास दिलाकर कि अमेरिकी गांधीजी को जानते हैं, उसने कुछ बिलकुल छोटे और सीधे प्रश्न पूछे। गांधीजी ने उनके उतने ही संक्षिप्त उत्तर दिये।

प्र० : 'तो आप इस बारे में कोई राय नहीं देंगे कि हमारे मिशन अपना काम किस ढंग से करें?'

गां० : 'हाँ, बोलकर नहीं, परन्तु करके; लोगों को व्याख्यान देकर नहीं, परन्तु आचरण द्वारा।'

प्र० : 'अर्थात् अस्पताल, पाठशालाएँ, कॉलेज खोलकर, यही न?'

गां० : 'नहीं, यूँ यह नहीं कहना चाहता; 'क्योंकि इन संस्थाओं में हमेशा ईसा का जीवन दिखाई देता हो, सो बात नहीं। ईसा का जीवन तो प्रत्येक ईसाई के प्रत्यक्ष आचरण में दिखाई देना चाहिए। यह आचरण ही दूसरे पर असर करेगा, इसलिए धर्म-प्रचार का शुद्ध, उदात्त मार्ग आचरण ही है।'

प्र० : 'तो हम अमेरिकी आपकी सहायता किस प्रकार करें और करें या नहीं?'

गां० : 'जरूर कीजिये। एक ही रास्ता है। हमारे आन्दोलन का अच्छे ढंग से अध्ययन करके आप मदद कर सकते हैं। आज तो यहाँ की बातों को अमेरिका में कई गुनी अच्छी या बुरी चित्रित किया जाता है। निर्मल दृष्टि-बिन्दु नहीं रखा जाता। आपको तो हमारे यहाँ होनेवाली हर चीज का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और हमारी न जरूरत से ज्यादा प्रशंसा की जाय और न आवश्यकता से अधिक निन्दा की जाय।'

प्र० : 'परन्तु क्या हम भारतीय विद्यार्थियों को मदद नहीं दे सकते?'

गां० : 'हाँ; जरूर दीजिये; इससे कौन इनकार करता है ?'

प्र० : 'क्या रुपये की सहायता करें ? हमारा ईसाई मंडल इतना मालदार नहीं।'

गां० : 'नहीं, नहीं, मैं विलकुल नहीं चाहता कि मेरा देश किसी भी देश से रुपये की भीख माँगे। भिक्षा-वृत्ति को मैं किसी भी तरह उत्तेजन नहीं दूँगा। मैं तो सहायता को सलाह-समभाव के अर्थ में इस्तेमाल करता हूँ। अमेरिका जैसे महान् देश में अनजान आफत में फँस जाय, उल्टे रास्ते भी लग जाय। आपका मंडल उन्हें योग्य संस्थाएँ वताकर, स्वच्छ स्थान तलाश करके सन्मार्ग पर अग्रसर कर सकता है।'

'अवश्य, अवश्य। हम यहाँ भारतीयों के समभाव के विना भ्रमण न कर सके होते। हमें पग-पग पर भारतीयों के समभाव का मूल्य समझ में आता है। जापान में भी ऐसा ही हुआ था।'

इस पर एक वहन ने जापान की वातें छेड़ दीं। 'आपको विचित्र न लगे तो पूछूँ कि जापान के प्रति आपकी क्या वृत्ति है ?'

जरा सोचकर गांधीजी वोले : 'अलगपन और अविश्वास की।'

वह वहन चौंकी, इसलिए गांधीजी ने स्पष्टीकरण किया : 'इसीलिए कि जापान की प्रगति इतनी ज्यादा तेजी से हुई है कि वह कहाँ तक होती रहेगी, इस वारे में शंका होती है कि यह ठीक रास्ते पर हो सकती है या नहीं। और फिर जापान ने पश्चिमी ढंग इतना ज्यादा अपनाया है कि मुझे तो उससे अलग रहने की इच्छा होती है, क्योंकि इस अनुकरण में उसे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होने का भय रहता है। परन्तु इसे तो छलनेवाला जख्म ही समझें। इस राय को कोई महत्त्व न दें। जापान को न तो मैंने देखा, न उसके वारे में वहुत पढ़ा। सुनी हुई वातों पर से यह वात कह रहा हूँ।'

'नहीं, मगर आप जो कहते हैं, वह सही है। डॉ० टागोर वहाँ आये, तव मैं वहीं थी। उनका भी यही अभिप्राय था। खैर, 'एशिया एशियावासियों के लिए' के आन्दोलन के विषय में आप क्या सोचते हैं ?'

'ऐसा कोई आन्दोलन दूसरों की अवनति करके अपनी उन्नति करने-वाला हो, तो वह मुझे अच्छा नहीं लगेगा। एशिया एशियावासियों का वनकर दूसरे खण्डों के लिए खतरनाक नहीं वनना चाहिए। यदि ऐसा हो तो शायद यूरोपीय खतरे की अपेक्षा वह खुद ही अधिक भयंकर वला हो जायगा,

क्योंकि और कुछ नहीं तो इतना तो सही है ही कि एशियावासियों की संख्या ही यूरोपियनों से अत्यन्त अधिक है।'

इन सब प्रश्नों के पीछे जो रहस्य है, वह बहुत व्यक्त नहीं हो रहा था, परन्तु यह उस अन्तिम प्रश्न से व्यक्त हुआ।

'मि० गांधी, आपको आजादी मिल जाय, उसके बाद हम मिशनरी लोगों की क्या स्थिति होगी ? यहाँ आये हुए विदेशी मिशनरियों की क्या दशा होगी ?'

'सम्पूर्ण सहिष्णुता की ही वृत्ति रहेगी। सबकी धार्मिक स्वतन्त्रता की रक्षा करना ही हमारा उद्देश्य रहेगा। और कुछ नहीं तो खुद मुझसे जिस हद तक उसकी रक्षा हो सकेगी और उसे पोषण दिया जा सकेगा, उस हद तक मैं प्रयत्न करूँगा।'

जाते-जाते 'अमेरिका आयें तो हमें जरूर याद कीजिये' कहकर पता देकर विदा हुईं।

एक और अमेरिकी मि० वॉर्ड 'अहिंसा और अहिंसात्मक नीति' पर बम्बई में भाषण देकर लाहौर की तरफ आये थे। उन्होंने गांधीजी से मिलने की माँग की थी। उन्हें समय दिया गया था, परन्तु उस दिन वे दिल्ली आकर बीमार हो गये, इसलिए उनकी पत्नी उनकी ओर से क्षमा माँगने और कोई और दिन निश्चित करने आयी थीं। गांधीजी कात रहे थे। श्रीमती वॉर्ड ध्यानपूर्वक देखती रहीं। 'यह तार कैसे निकलता है, यही मुझे आश्चर्य होता है। ऐसा लगता है, जैसे सारी रूई में कहीं न कहीं तार छिपाकर रखा हो और उसको आपकी उँगली खींचकर निकालती हो।' फिर गांधीजी को कितने सारे लोग जानते हैं, इसकी बात करते-करते बोलीं : 'आपके लेखों की एक पुस्तक अमेरिका में प्रकाशित हुई है। मेरा लड़का उसे लाया और पढ़ गया। बस, तब से कहता है, 'मुझे गांधी के तमाम लेख पढ़ने हैं, उनके शब्द सुनने हैं।' मानो घंटों आपको कातते देखती रहूँ, ऐसा जी होता है' कहकर विदा ली।

श्रीमती वॉर्ड के साथ एक अंग्रेज मित्र भी आये थे। उन्होंने उठते-उठते गांधीजी के साथ बहुत पुरानी पहचान निकाली। 'एक बार लाहौर में हम मिले थे। अब तो आपको सब जानते हैं। आपने एक नया ही रास्ता निकाला है। जाति-जाति के आपसी सम्बन्ध में ही नहीं, परन्तु देश-देश के बीच के सम्बन्ध में भी इसी रास्ते जा सकते हैं, ऐसा आप बता रहे हैं।'

तीसरे दिन मि० वॉर्ड की मुलाकात रखी थी, परन्तु उस दिन भी वे बीमार थे और अस्पताल में थे। श्रीमती वॉर्ड ने कहलाया कि अब तो मिलना कठिन है, परन्तु मि० वॉर्ड को आपके लिए कोई संदेश भेजना है तो इतना बताइये कि आप कब तक दिल्ली में रहेंगे।

गांधीजी ने तुरन्त लिखा: 'मुझे अफसोस है कि अभी तक मि० वॉर्ड बीमार हैं। मैं यहाँ रहनेवाला हूँ, परन्तु मि० वॉर्ड को मेरे पास आने का विचार करने की जरूरत नहीं, मैं ही उनसे अस्पताल में मिलने जाऊँगा।'

श्रीमती वॉर्ड रविवार को गांधीजी को लेने आयीं और मि० वॉर्ड से गांधीजी अस्पताल में मिले। इस अत्यन्त महत्त्व की बातचीत का सार यहाँ दे दूं।

मि० वॉर्ड: 'अहिंसा के शिक्षण का हमारा देश पर बहुत गहरा असर हुआ है। मैं स्वयं इस सिद्धान्त का माननेवाला हूँ, परन्तु मुझे और मेरे साथियों को कुछ कठिनाइयाँ आती हैं, उनका उपाय शायद आपके आन्दोलन को अधिक समझें तो हम कर सकें; इसलिए मैं आपसे मिलने को आतुर था।'

इतनी प्रस्तावना करके उन्होंने प्रश्न पूछना शुरू किया।

प्र०: 'आपकी अहिंसात्मक प्रवृत्ति राजनैतिक साधन है, यह सच है या नहीं?'

गां०: 'राजनैतिक क्षेत्र में उसका उपयोग हो रहा है, क्योंकि राजकाज भी शुद्ध धार्मिक साधनों के जरिये ही हो सकता है, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। केवल राजनैतिक साधन के रूप में इसकी कल्पना नहीं हुई। इसका मूल तो आत्मशुद्धि में ही है।'

प्र०: 'अभी तो आप तीन ही बातों पर जोर दे रहे हैं और खास तौर पर खादी पर। क्या आप यह मानते हैं कि इतनी बातों से ही आपका देश स्वतंत्र हो सकेगा?'

गां०: 'हाँ; पहली दो बातों में देश की एकता निहित है, तीसरी बात से यानी खादी से देश का आर्थिक उद्धार होनेवाला है। मैं तो मानता हूँ कि जब तक कि आर्थिक पराधीनता नहीं मिटेगी, तब तक दूसरी पराधीनता भी बनी रहेगी। इसलिए मैंने केवल आर्थिक पराधीनता पर विशेष जोर दिया है। मेरा विश्वास है कि यह एक चीज हो जायगी तो अन्य सब वस्तुएँ भी हो जायँगी।'

प्र०: 'आप अहिंसा की तालीम देना चाहते हैं और प्रचार करना

चाहते हैं, तो आपको ऐसा नहीं लगता कि लोगों को—आम आदमियों को—अच्छी तरह शिक्षित करने की आवश्यकता है ? खूब शिक्षित हुए विना वे अहिंसा क्या समझ सकते हैं ? सत्य क्या समझ सकते हैं ?'

गां० : 'आप जिसे शिक्षा कहते हैं—अक्षर-ज्ञान की—उसकी यह कार्य करने में कुछ भी जरूरत नहीं। वैसे साधारण शिक्षा, सामान्य व्यवहार-ज्ञान, मामूली संस्कार हमारे लोगों में खूब भरे हैं। रामायण और महाभारत की कथा सब जानते हैं, गाँवों के अपढ़ लोग तो जानते ही हैं और उसमें निहित तत्त्व भी आम तौर पर समझ सकते हैं। मैं अपनी माँ की ही वात कहूँ। उसे अक्षर-ज्ञान तो कतई नहीं था, फिर भी उसकी संस्कारिता इतनी अधिक ऊँचे दरजे की थी, आध्यात्मिक ज्ञान उसका इतना ज्यादा गहरा था कि ऐसी निर्मल स्त्रियाँ मैंने वहुत थोड़ी देखी हैं। मुझ पर उत्तम और गहरे ऐसे वहुत संस्कार उसीने डाले थे। परन्तु उसे कितावी ज्ञान नहीं था। फिर भी जैसे धार्मिक वातें, वैसे ही राजकाज की वातें भी पूरी तरह समझती थीं, कई वार दरवार की साजिशों के पेच समझकर अपनी राय देतीं।'

प्र० : 'आप यह नहीं मानते कि आपका आन्दोलन कुछ समय तक अहिंसात्मक रहकर वाद में हिंसात्मक हो जायगा ?'

गां० : 'ऐसा जरूर हुआ और इसीलिए जिस रूप में वह चला, उस रूप में उसे वन्द करना पड़ा। परन्तु इस समय जो रचनात्मक कार्य मैं कर रहा हूँ, उसे यदि शिक्षित वर्ग अपना ले तो मुझे शक नहीं कि हम अहिंसात्मक मार्ग से ही स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।'

प्र० : 'परन्तु असंख्य मनुष्य ऐसा मार्ग ग्रहण कर सकते हैं ?'

गां० : 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा हो सकता है। यह काम यांत्रिक ढंग से नहीं हो सकता। इसमें तो लोगों के हृदय पर प्रभाव डालना पड़ेगा। वह भी भारतीयों पर ही नहीं, अंग्रेजों पर भी। इस शक्ति का माप साधारण ढंग का अनुसरण करके नहीं किया जा सकता। हम नहीं कह सकते कि वह कव और कैसे फैलेगी। अंग्रेजों के मन की शुद्धि ही इस लड़ाई से क्यों न हो ? मेरा पक्का विश्वास है कि इसमें असंख्य मनुष्यों की जरूरत नहीं। थोड़े ही आदमी अनन्य श्रद्धावाले निकल पड़ें तो वस है। करोड़ों उनके पीछे-पीछे चले आयेंगे। जहाँ-जहाँ मैंने सत्याग्रह का प्रयोग किया है, वहाँ मेरा यही अनुभव हुआ है। यह प्रयोग सवसे अधिक प्रवल और सवसे ज्यादा मुश्किल जरूर है, परन्तु अशक्य नहीं।

असल बात यह है कि मैं यह दावा ही नहीं कर सकता कि मेरी अहिंसा ही इतनी शुद्ध या गहरी है; नहीं तो वही काफी होगी। अपने प्रयोगों में मैं साथी खोजता ही रहता हूँ। इसका एक कारण तो मेरी अपनी अपूर्णता है ही। इस शस्त्र की सिद्धि के बारे में तो मुझे रत्तीभर भी अश्रद्धा नहीं हुई।'

मि० वॉर्ड : 'आपका कहना मैं समझ सकता हूँ। परन्तु ऐसे कार्य के लिए ईश्वर पर बड़ी श्रद्धा होनी चाहिए। हमें आपकी अपेक्षा कुछ अंशों में अधिक कठिनाई है। हमें अपने ही लोगों के विरुद्ध और फिर जहाँ उनके व्यक्तिगत स्वार्थ रहे हैं, वहाँ लड़ना है।'

गांधीजी : 'मेरी भूल हो रही होगी, परन्तु मेरा तो खयाल है कि यदि किसीको अधिक कठिनाई हो तो वह हमें है। हमें निजी स्वार्थों के विरुद्ध तो लड़ना ही है, परन्तु साथ-साथ बड़ी संगठित सत्ता के विरुद्ध भी लड़ना है। फिर भी आपके सवाल के बारे में मैं ज्यादा नहीं कह सकता। इतना ही कहूँगा कि आपको भी इसी शस्त्र से विजय प्राप्त करनी होगी।'

मि० वॉर्ड : 'हाँ, यह तो हम कभी से समझ गये हैं। इसके सिवा हमारे सामने कोई और शस्त्र है ही नहीं। यदि हम हिंसा-मार्ग ग्रहण करें तो हमारा अर्थात् पश्चिम के लोगों का नाश ही है।'

आज कलकत्ते जा रहे हैं। पंडित मोतीलालजी अलाहाबाद से साथ होंगे। देशबन्धु दास का तार आया कि 'यहाँ हमारे परामर्श हो रहे हैं, उनमें आप न आयें तो काम हरगिज नहीं चलेगा।' इस पर हकीम साहब, मौलाना और गांधीजी ने मिलकर निश्चय किया कि गांधीजी को जाना ही चाहिए। दिल्ली में मिट्टी का पिण्ड चक्कर पर चढ़ा हुआ था और दिल्ली छोड़ी नहीं जा सकती थी। फिर भी यह समझकर कि यह और भी ज्यादा न छोड़ा जा सकनेवाला मामला है, इसलिए रवाना हो गये।

इस यात्रा में जितनी उदासीनता है, उतनी शायद ही और किसीमें होगी। वहाँ जाकर क्या कर सकेंगे, इस बारे में गांधीजी को कुछ पता नहीं था। केवल कर्तव्य-बुद्धि से ही वहाँ जा रहे हैं। ईश्वर जो सुझाये, सो सही। स्वराज्य-परिषद् की सभा में कातने के प्रस्ताव का भी विचार होना ही है। ऐसे नाजुक समय में कातने का प्रस्ताव स्वीकार करने का सभी निश्चय कर सकें, तो अच्छा है। पं० मोतीलालजी से जब आखिरी बात हुई, तब लगता था कि कातने के प्रस्ताव के बारे में मतभेद इस मामले में होगा कि कुछ लोग सूत भेजने को तैयार हैं, परन्तु

चाहे जिसक हाथ से कता सूत भेजने का उनका आग्रह है । गांधीजी कहते हैं कि जो मनुष्य सशक्त हो, वह ऐसा नहीं कह सकता । अशक्त अवश्य ऐसा कह सकता है । परन्तु जो सशक्त है, फिर भी जिसकी कातने की इच्छा नहीं, वह दूसरे से कतवाकर भेजे तो उसमें कोई गौरव नहीं है ।

कलकत्ते की यात्रा

ता० ४ से ८-११-१९२४

(नवजीवन, २३-११-'२४)

पाठकों को जानकर आनंद होगा कि मैंने अपना शीर्षक बदल दिया है । यह बात नहीं कि गांधीजी में पूरी ताकत आ गयी है, परन्तु उन्होंने लगभग पहले की तरह काम शुरु कर दिया है । यह पिछले सप्ताह में हुई घटनाओं से और इस अंक में उनके लेखों से मालूम हो जायगा ।

कलकत्ते में गांधीजी कैसे गये, यह मैं बता चुका । किस वृत्ति से गये, इसका भी उल्लेख किया जा चुका । अब इस पत्र में इसकी चर्चा करना चाहता हूँ कि परिणाम क्या हुआ, कैसे हुआ और किन परिस्थितियों में हुआ । चार दिन गांधीजी कलकत्ते में रहे । इस अर्से में उन्होंने जितना काम निपटाया, उसे देखते हुए तो किसीको यह खयाल होगा कि अब उनमें अशक्ति रही ही नहीं । परन्तु प्रभात के चार बजे से रात के ग्यारह बजे तक लंबी चर्चाएँ और बातें करने के बाद कितनी थकान महसूस होती, यह मैं जानता हूँ और उस थकान का असर अब मालूम होता है ।

पहले ही दिन ४ तारीख को देशबन्धु ने गांधीजी को स्वराज्यवादियों से मिलने का निमंत्रण दिया और उनसे इस बारे में विचार प्रकट करने की प्रार्थना की गयी कि बंगाल में उत्पन्न स्थिति को देखते हुए उन्हें और देश को क्या करना चाहिए । खूब लम्बी बातचीत हुई । गांधीजी ने 'वाइसराय का बम' वाले अपने लेख में प्रकट किये विचारों की पुनरुक्ति की और हम सविनय कानून-भंग करने में समर्थ नहीं, इसलिए मौन रहकर केवल त्रिविध कार्यक्रम पर एकाग्र होने का सबसे अनुरोध किया । यह कहते हुए वे बोले थे : 'इन तीन कामों में आपको कोई उत्साह प्रेरणा न हो, लोगों को कदाचित् यह बहुत नरम कार्यक्रम

लगे, यह संभव है। मगर यह बेहतर है कि लोग ऊधम की आशा रखें और उसमें असफल होकर हमें छोड़ दें। बुरी टोलियाँ इकट्ठी हों और 'महात्मा गांधी की जय' या और कोई जय बोलें, इसमें देश का कुछ भी लाभ नहीं। ये टोलियाँ हमें छोड़ दें, इसमें उनका और हमारा लाभ है। मेरा हेतु यही है कि हम सब इन तीन चीजों में सहयोग करके बल प्राप्त करें।'

और यह बात निकलने के साथ ही कातकर मताधिकार प्राप्त करने की बातें चलीं। इसे स्वीकार न किया जाय तो? 'स्वीकार न किया जाय तो मुझे तो कांग्रेस से निकलना ही पड़ेगा और स्वराज्यवादियों को काम करने देना होगा। आपने अनुशासन दिखाया है, आपने सरकार पर असर डाला है, आपका तरीका मैं भले ही स्वीकार न करूँ, परन्तु आपने प्रभाव डाला है, इससे कैसे इनकार करूँ? इसलिए मुझे आपके काम में बाधा हरगिज नहीं डालनी है। कट्टर असहयोगी मेरी इस वृत्ति को पसन्द न करें और मेरा त्याग करें, फिर भी मुझे तो आपके प्रति यही वृत्ति रखनी है। मैं आपसे लड़ नहीं सकता।'

परन्तु गांधीजी निकल जायँ, यह स्वराज्यवादियों के लिए असह्य था। फिर भी गांधीजी की शर्तें वे स्वीकार नहीं कर सकते थे। यह भी उन्होंने बहुत स्पष्टता से साफ-साफ बता दिया। 'आप कातने की बात कहते हैं। आपके साथ बहस करने का अवकाश नहीं रहा। आपमें इस बारे में जो श्रद्धा है, वह हममें नहीं। कातने की आवश्यकता हम स्वीकार करते हैं, लेकिन हमें ही कातना चाहिए, यह बात हमारे गले नहीं उतरती और गले न उतरे तो यह शर्त हम स्वीकार कैसे कर सकते हैं?'

फिर भी स्वराज्यवादियों पर उनके किये काम को नष्ट करने के लिए सरकार ने जो बम फेंका है, क्या उसमें गांधीजी कुछ भी मदद न दें? इस नाजुक समय में गांधीजी के नेतृत्व का कुछ भी लाभ न मिले?

उस रात गांधीजी इस पहेली पर विचार करते-करते सोये। 'निर्बल के बल राम' के स्वर हृदय में बज रहे थे। कर्तव्याकर्तव्य का प्रश्न केवल प्रभु ही सुलझायेंगे, यह कहकर सोये। प्रातःकाल निश्चय करके उठे कि 'जितना त्याग हो सके, उतना किया जाय, जिस हद तक जाकर सहायता दी जा सके, उस हद तक दी जाय। कातना यदि प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य बनाना महाराष्ट्र दल को बहुत अनुचित लगे, तो भले ही अपना

काता हुआ न सही, किसीका भी काता हुआ सूत फीस के तौर पर लिया जाय। जो आदर्श स्थिति है, वह कदाचित् कायम न रखी जा सके, परन्तु प्रत्येक सदस्य किसीसे भी कतवाकर सूत भेज दे, तो आर्थिक प्रश्न का हल तो होगा ही!' इतना विचार करके उन्होंने अपनी शर्त में उपर्युक्त परिवर्तन करने का विचार व्यक्त किया। यह परिवर्तन होते ही खादी की बात आयी। पंडितजी और दूसरों ने आकर सब जगह और हर वक्त खादी पहनना मत देनेवालों के लिए अनिवार्य करने की कठिनाइयाँ बतायीं। अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनके बिना काम नहीं चलता, फिर भी वे खादी की नहीं मिलतीं। पैर के मोजों का क्या किया जाय? ठंड के दिनों में अन्दर पहनने के वस्त्र शुद्ध हाथकती और हाथबुनी ऊन के नहीं मिलते। तब क्या किया जाय? ऐसे और भी कई अवसरों की कल्पना की जा सकती है, जब खादी पहनना अथवा प्राप्त करना अशक्य हो! अपवाद करने लगें तो कितने किये जायँ? इसलिए यह नियम बनाने का विचार किया कि अमुक अवसर पर तो खादी के सिवा शरीर पर और कोई कपड़ा हरगिज न हो। बाहर भले ही पाप से न बचा जा सके, लेकिन तीर्थक्षेत्र में तो पाप न करो। बाहर अस्पृश्यता रखनी हो तो भले ही रखो, मगर देवता के पवित्र मंदिर में तो प्राणिमात्र को समान समझो, इस वृत्ति से कुछ संयोग और प्रसंग नियत किये गये, जब खादी न पहननेवाला सदस्य बन ही न सके।

परन्तु सर्वोपरि विचार तो मन में यही था कि मनुष्य किस हद तक कठोर हो सकता है? अपने प्रति मनुष्य वज्र से भी कठोर हो, परन्तु क्या दूसरों के प्रति भी उतना ही कठोर हो सकता है? लोग यह कहें कि मेरे नेतृत्व के बिना काम नहीं चल सकता, तब क्या मैं अपना नेतृत्व महँगा बना दूँ? अपने सिद्धान्त को गिराये बिना मैं अपना आदर्श जरा नीचा कर सकूँ तो क्यों न अपना आग्रह छोड़ दूँ? यह वृत्ति फूल से भी कोमल बनने की वृत्ति है। इसीसे प्रेरित होकर गांधीजी ने जिस इकरार-नामे* पर आप उनके हस्ताक्षर देखते हैं, उस पर हस्ताक्षर करने का निश्चय किया।

परन्तु यह हस्ताक्षर करने से पहले और कुछ नहीं, तो बंगाल के अपरिवर्तनवादियों के साथ भी बातें कर लेने का उन्होंने निश्चय किया।

---

* देखिये परिशिष्ट—२।

और छह तारीख की शाम को अपरिवर्तनवादियों से मिले । स्वराज्य-वादियों के साथ मैत्री करने का मुख्य कारण स्वराज्यवादियों पर किया गया सरकार का हमला था—उनकी कठिन स्थिति थी । यह कारण कितना सही है या नहीं और है तो कितना, इस पर उनके साथ खूब लम्बी चर्चा हुई । इस चर्चा का सार गांधीजी ने अपने लेख में वहुत अच्छे ढंग से दिया है । उसमें दी गयी दलीलें करने के वाद भी अपरिवर्तन-वादियों को संतोष हुआ हो, सो वात नहीं । उन्होंने एक नम्र प्रार्थना की: 'हमारे सिद्धान्त का त्याग होता है, रचनात्मक कार्यक्रम उल्टा हो जायगा, ऐसा भय हमारे मन में से जाता नहीं । आपसे प्रार्थना है कि आप एकदम इस इकरारनामे पर हस्ताक्षर न करके एक सप्ताह शान्त विचार कीजिये, सावरमती जाकर विचार कीजिये और फिर दस्त-खत कीजिये ।' गांधीजी ने इस प्रार्थना पर विचार करने का वचन दिया। घर आकर विचार करके निश्चय किया कि स्वराज्यवादियों का संकट सही है और उनके साथ खड़े रहना ही चाहिए। यह निश्चय होने के वाद उन्होंने उस इकरारनामे पर हस्ताक्षर किये । परन्तु हस्ताक्षर करने के वाद भी अपरिवर्तनवादियों को अपनी स्थिति और कर्तव्य ठीक-ठीक समझाने के लिए वे उनसे दूसरे दिन फिर मिले । इस वात का सार कुछ विस्तार से देना चाहता हूँ, क्योंकि गांधीजी के लेख के अतिरिक्त कुछ अधिक प्रकाश पड़े ।

आरम्भ में अपनी वृत्ति समझाते हुए गांधीजी ने कहा : 'मुझे खुद को अपने कार्य के औचित्य के विपय में जरा भी शक नहीं । मैं कार्या-कार्य के चक्कर में था, परन्तु अव मेरा मन हलका हो गया। मुझे विश्वास है कि मैंने जो किया, उससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकता था । अहिंसा-वादियों का धर्म ही यह है कि इतना त्याग दें कि वाद में त्यागने को कुछ रह ही न जाय । इसलिए ठेठ आखिरी सीढ़ी पर जाकर मैं वैठा हूँ । मुझे यहाँ तक त्यागना था कि सामनेवाले को यह महसूस हो कि अव तो हद हो गयी, यहाँ तक कि सामनेवाले त्याग से चकित हो जायँ । और यह मेरा पहला अनुभव नहीं । देने का धर्म ही यह वताता है । इतना दे दो, इतना दे दो कि लेनेवाला खाकर अघा जाय—यद्यपि मैंने यहाँ जो दान किया है, वह उस प्रकार का दान नहीं, उस तरह का त्याग नहीं। मैंने तो झिकझिक (खींचातानी) करके विवशता का उधार समझकर जो दिया, सो दिया है । धीरे-धीरे, आहिस्ते-आहिस्ते मैं एक-एक इंच पीछे हटा हूँ ।

हाँ, कुछ लोग यह मानते हैं कि उन्होंने जितना सोचा था, उससे भी आगे बढ़कर मैं दे चुका हूँ।

'यदि आप एक बार यह समझ लें कि असहयोग नहीं चल सकता, तो आप क्षणभर में समझ जायँगे कि मैं जहाँ तक गया हूँ, वहाँ तक गये बिना छुटकारा नहीं था। जहाँ जाता हूँ, वहाँ हिंसा के सिवा कुछ दिखता ही नहीं। लोगों के हृदयों में गहरे-गहरे हिंसा ही भरी है। यहाँ तक कि राष्ट्रीय पैमाने पर असहयोग जारी रखना अपराध होगा। परन्तु 'राष्ट्रीय' और 'व्यक्तिगत' में भेद है। इसलिए व्यक्ति तो अपना असहयोग जहाँ तक चालू रखते थे, वहाँ तक चालू ही रखेंगे, बल्कि छोड़ देंगे तो उनके लिए मूल असहयोग अर्थहीन कहा जायगा।

'मताधिकार के लिए कातने के बारे में बहुत चर्चा हुई है। आपको लगता है कि मैंने बहुत त्याग कर दिया, खादी को मैंने औपचारिक बना दिया। मगर ऐसा कुछ भी नहीं। इतिहास देखें, तो पता चलेगा कि हम कहाँ से कहाँ तक चढ़े हैं। पहले अनेक प्रतिज्ञाएँ थीं---शुद्ध, मिश्र आदि। फिर मिल के कपड़ों को तिलांजलि मिली, और खादी आयी। बाद में चरखा प्रविष्ट हुआ। फिर खादी स्वयंसेवकों के लिए अनिवार्य हुई; आगे चलकर कातने का ज्ञान प्राप्त करना लाजिमी हुआ। वहाँ से आगे चलकर सबके लिए कातने का आग्रह हुआ। फिर मजदूरों के लिए कातना अनिवार्य करने के प्रस्ताव हुए और आज हमने कातने को मत देने की शर्त में रख दिया है।

'हाँ, हरएक सदस्य नहीं कातेगा। परन्तु आज जो कातते हैं, उनका कातना बन्द नहीं होगा। उल्टे जितने अभी कातते हैं, उनसे कातनेवाले बढ़ेंगे। पैसे खर्च करके कितने कतवा सकेंगे? इसलिए अधिकतर तो अपना ही सूत देंगे। जिसका अपना दृढ़ निश्चय नहीं हुआ, उससे हम जबरन् कैसे कतवा सकते हैं, परन्तु वह दूसरे से कतवाकर सूत लाये, तो इतने से हमें सन्तोष मान लेना चाहिए। और जरा अधिक सूक्ष्म विचार कीजिये। यह सिद्धान्त तो था ही नहीं कि कांग्रेस के हर सदस्य को कातना चाहिए। यह विचार बहुतों का नहीं था, यह भी मुझे बताना चाहिए। मेरा अकेले का ही था। यह कहूँ तो हर्ज नहीं कि मेरा यह आदर्श था। हाँ, बहुत समय पहले सीलोन से एक भाई ने पत्र लिखकर मुझे पूछा जरूर था कि प्रत्येक सदस्य से अनिवार्य रूप में क्यों न कतवाया जाय? परन्तु उस समय तो इस सुझाव को असंभव मानकर मैंने उस पर

महादेवभाई की

विचार तक नहीं किया था । वाद में मुझे वह संभव लगा और मैंने उसे देश के आगे रखा । इसलिए कोई त्याग हुआ है, तो वह केवल मेरे अपने आदर्श में से, अपनी सोची चीज में से, थोड़ा त्याग करना पड़ा है, इतना ही ।

'और क्या आपको ऐसा लगता है कि खादी को औपचारिक वना दिया ? नहीं, यह भय भी मिथ्या है । पहनने का प्रस्ताव एक वात है, खादी न पहने तो कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता, यह दूसरी वात । मत देने का कार्य वहुत निश्चित वस्तु है—इसकी शर्त भी निश्चित और दुःसाध्य नहीं होनी चाहिए । मि० सुहरावर्दी—कारपोरेशन के डिप्टी मेयर—कल नखशिख तक खादी पहनकर आये थे । वे नियमित खादी नहीं पहनते, परन्तु कल का अवसर उन्हें खादी पहनने जैसा लगा । अव ऐसों को मैं कैसे कहूँ कि आप अदालत में खड़े हों, तव अपना चोगा भी खादी का वनवाइये ? मुझे आशा रखनी होगी कि राष्ट्रीय अवसरों पर वे खादी पहनेंगे तो केवल विपर्यास के मारे खानगी प्रसंगों पर वे विलायती अथवा मिल का कपड़ा पहनने नहीं लग जायँगे । जो खादी इस्तेमाल करते हैं, वे इस्तेमाल करते ही रहेंगे, जो कभी नहीं करते, उन्हें खास मौकों पर खादीशुद्ध होकर कांग्रेस के मंदिर में आने का अवसर मिलेगा । आज तो जो कांग्रेस में प्रतिनिधि वनकर आते हैं, वे भी कहाँ खादी पहनते हैं ? आज ९० प्रतिशत मनुष्य धोती तो खादी की नहीं, परन्तु मिल की पहनकर कांग्रेस में आते हैं । यह शर्त हो जाय, तव वैसा तो न हो ।'

स्वराज्यवादियों के साथ इकट्ठे होने का प्रश्न निकला । किसलिए ? इस प्रश्न की चर्चा गांधीजी ने अपने लेख में पूरी तरह की है, इसलिए मैं यहाँ नहीं करता । 'सरकार ने लोक-कल्याण का विचार करके स्वराज्यवादियों को पकड़ा है, यह जँच ही नहीं सकता, स्वराज्य दल को कुचलने के लिए ही पकड़ा है, यह मेरा निश्चय प्रतिक्षण अधिकाधिक मजवूत होता जाता है' इतना कहकर उन्होंने इस वहस को समाप्त कर दिया ।

उपसंहार करते हुए उन्होंने वताया :

'मुझे विश्वास है कि मेरा त्याग 'यंग इंडिया' में वताये हुए मेरे आदर्श का थोड़ा-सा त्याग है, किसी तत्त्व या सिद्धान्त का त्याग नहीं । मगर आपको ऐसा लगे कि मैंने तत्त्व का त्याग किया है, आपको ऐसा अनुभव हो कि मेरा त्याग अनुचित है, तो आप मेरा पूरा-पूरा विरोध

करें। मैंने श्यामबाबू को अपना उद्देश्य बता दिया था। मेरा उद्देश्य इस समय सारी अव्यवस्था मिटाकर सुव्यवस्था करना है, विवाद मिटाकर संवाद लानी है, निष्प्राण जनता को एकत्र करके उसमें सामर्थ्य और निर्भयता लानी है। यदि मैंने ऐसा दल पैदा किया हो, जो केवल अंध-श्रद्धा ही बढ़ाये, तो इसमें देश का अहित है। सामान्य वर्ग को मैं क्षमा कर सकता हूँ, परन्तु आप तो लेखक, वक्ता और चर्चा करनेवाले हैं। आप तो अपनी बुद्धि जो कहे, उसीके अनुसार करेंगे। मुझसे भूल न होती हो, सो बात नहीं। हाँ, आपसे मुझे अनुभव ज्यादा है, इसलिए शायद कम भूल करूँ। परन्तु संभव है कि जो क्वचित् ही भूल करता हो, वह जब भूल करे, तब भयंकर भूल करेगा। संभव है कि स्वराज्य-वादियों के कार्य को मैं गलत महत्त्व देता हूँ, हिन्दू-मुस्लिम एकता को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देता हूँ। तो आप बेशक नया मार्ग चुन लीजिये और उसीका अनुसरण कीजिये। ऐसा करके आप अपने को सम्मान देंगे। त्याग दो प्रकार का होता है: (१) अपने स्वतंत्र मत का और (२) तत्त्व-निश्चय का। स्व० गोखले कहते थे कि पहले का त्याग जन-कल्याण के लिए हो सकता है, दूसरे का नहीं। इस दृष्टि से आप जिस वृत्ति से काम लेना चाहें, खुशी से लीजिये।'

इसके पश्चात् खूब सवाल-जवाब हुए। थोड़े से तो दे ही दूँ।

प्रश्न: 'अब गरीबों की कांग्रेस नहीं रहेगी, अमीरों की ही रहेगी, क्योंकि अमीर तो चाहे जहाँ से सूत खरीद लेंगे।'

उत्तर: 'नहीं; पूरी तरह गरीबों की रहेगी। गरीबों को रूई पहुँचाने का काम कांग्रेस का, अपनी मेहनत देने का काम गरीबों का। आम लोग भी सूत खरीद नहीं लेंगे, कात ही लेंगे। जिन्हें कातने की अरुचि या आलस्य हो, वे भले ही दूसरों से कतवा लें।'

प्र०: 'आपने दुष्ट सरकार के साथ असहयोग शुरू किया और अब उसे धीरे-धीरे छोड़ते जा रहे हैं। परन्तु इसके सिवा अब तो दुष्टता के साथ सहयोग का उपदेश दे रहे हैं। स्वराज्यवादियों ने ऐसे प्रपंचों और असत्य का आश्रय लिया है कि उनके साथ सहयोग कैसे हो?'

उ०: 'मैंने ऐसा कहा ही नहीं कि सब जगह असहयोग कर दो। असहयोग तब करें, जब सामनेवाले के दुष्ट कार्य में हमारे भाग लेने की बात हो। आप जो आक्षेप कर रहे हैं, वे सच हों तो भी उनके असत्य में हम हिस्सा न लें। और आप भूल जाते हैं कि मैंने सरकार के साथ

तीस वर्ष सहयोग करने के बाद असहयोग किया। स्वराज्यवादियों अथवा हमारे भाइयों के साथ तो असहयोग का प्रसंग ही नहीं आया। उनके साथ सहयोग करना पड़े, उस हद तक असहयोग ही कहाँ किया है ? आज तो हिन्दू-मुसलमानों के दिल सुधारना ही मेरा काम है। इसी काम में सबकी मदद माँगता हूँ। जब उनके हृदय बदल जायँगे, तब स्वराज्य तुरंत प्राप्त करने की मेरी आशा कई गुनी बढ़ जायगी।'

प्र० : 'आप तो नरमों (मॉडरेट्स) को भी लेना चाहते हैं और जो हिंसावादी हैं, उनके लिए भी रास्ता बनाना चाहते हैं, यह क्या ? इन सबका मेल कहाँ बैठेगा ?'

उ० : 'मुझे तो सत्य के लिए जीना है और सत्य के लिए मरना है। मैं चाहता हूँ कि लोग और कुछ नहीं तो सच्चे बनें, प्रामाणिक बनें। मैं जो आदर्श स्थिति चाहता हूँ, उसे सबसे स्वीकार कराऊँ तो दम्भ पैदा हो जाय, प्रामाणिकता न बढ़े। आज जिस प्रस्ताव पर मैंने हस्ताक्षर किये हैं, उससे प्रामाणिकता बढ़ेगी। मनुष्य कम-से-कम वस्तु की प्रतिज्ञा करे और उसका पूरी तरह पालन करे, मैं इतना ही चाहता हूँ। इसीलिए मैं कहता था कि कांग्रेस के संकल्प में से 'शान्त और उचित' शब्द हटा दिये जायँ। अहिंसा की प्रतिज्ञा लेकर हिंसा का सेवन करने से अहिंसा की प्रतिज्ञा ही न लेना क्या ठीक नहीं ? मेरे आदर्श देश को पसन्द हों तो स्वीकार करे। यदि देश स्वीकार न करे तो मुझे उन्हें जेब में रखने होंगे। फिर भी जितनी चीज का त्याग नहीं किया जा सकता, उसका हरगिज नहीं ही किया। कोई हिन्दू आकर कहे कि मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकता एक उद्देश्य के रूप में नहीं चाहिए, तो क्या मैं उसे स्वीकार कर लूँ ? इसी तरह मतदान की शर्त में मिल का कपड़ा रखा गया हो तो उसे भी मैं स्वीकार नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करके तो मैं खादी का नाश ही कर देता।'

प्र० : 'एक समय आप कहते थे कि एक सहयोगी वकील की अपेक्षा ईमानदार बूट-पालिश करनेवाला अच्छा है। आज तो आप वकीलों और बड़े खाँओं के हिमायती बनने को तैयार हो रहे हैं।'

उ० : 'हाँ, आपने ठीक कहा। मैंने जो कुछ कहा था, वह शब्दशः ठीक कहा था। असहयोग आज है कहाँ ? यदि असहयोग पूरी तरह फैला हुआ हो, यदि बूट-पालिश करनेवाले जैसे भी पूरा असहयोग करते हों, तो वे सहयोगियों को दूर रख सकते हैं। परन्तु कांग्रेस का कोई मालिक नहीं।

मुझे नेता बनना हो, तो वह असंभव शर्तें लगाकर नहीं, सहजसाध्य शर्तें लगाकर ही हो सकता है। यदि झगड़े न होते, यदि जहर फैला हुआ न होता तो मैं पहले की तरह अपनी गाड़ी चलाता। परन्तु ऐसी कोई स्थिति रही नहीं, तो मुझे लगा कि अब मुझे मौन हो जाना चाहिए और लड़ाई की बात भूल जाना चाहिए।'

इस प्रकार अपरिवर्तनवादियों को सन्तोष देने का प्रयत्न करके गांधीजी लौट आये। एक अग्रगण्य भाई मुझसे कहते थे: 'यहाँ इतना अधिक जहरीला वातावरण हो गया है कि स्वराजी और अपरिवर्तनवादी एक-दूसरे को दुश्मन समझते हैं। इसलिए गांधीजी के 'प्रेमपन्थ'* की कल्पना कैसे हो सकती है? वैसे इनका कहा सारा सोचें, तो स्वराज्यवादियों से मिलने में कोई कठिनाई नजर नहीं आती।' जिस दिन इकरारनामे पर हस्ताक्षर हुए, उसके दूसरे दिन सब बिखरकर गांधीजी के पास आये और पंडितजी सबकी तरफ से कहने लगे: 'गांधीजी, अब तो आप हमें चरखे का पाठ दीजिये—हम आपसे कातना सीखकर जायेंगे।' ४ तारीख को पहले मिले, तब श्री केलकर ने कहा था: 'हम साथ बैठें। पुराने मित्र हैं न!' गांधीजी ने तुरन्त कहा: 'नहीं, पुराने दुश्मन। नये दोस्त।'

इस नयी दोस्ती का इतिहास यहीं समेट लेता हूँ।

इस इतिहास के सिलसिले में, कलकत्ते की यात्रा के सम्बन्ध में और कई बातों का उल्लेख करना है। देशबन्धु दास का घर तो अतिथि-शाला बना हुआ था। एक तरफ स्वराज्यवादियों की सभा होती रहती, दूसरी ओर गांधीजी से कई लोग मिलने आते। यह सारा पचरंगी मेला था। बंगाली बहनों का पार नहीं और देशी भाइयों का भी पार नहीं। नीचे हजारों की भीड़ इकट्ठी होती। वह केवल दर्शन प्राप्त करके शोर बन्द करती। मगर ऊपर भी इतने लोग आते कि सबसे केवल मिलना या मुलाकात करना असम्भव हो जाता। विदेशियों का भी खासा मेला लग गया था—दो अंग्रेज लम्बी चर्चा कर गये, एक फ्रेंच महिला और एक चीनी सज्जन भी मिल गये। और अन्य अनेक विदेशी केवल दर्शनार्थ आये थे। कलकत्ते से चलते समय स्टेशन पर दो अंग्रेज बहनें सिर्फ परिचय करने और हाथ मिलाने आयी थीं, एक अमेरिकी बहन हस्ताक्षर लेने आयी थीं और रास्ते में रेल में एक डेनमार्क की बहन ने मुलाकात माँग

---

* देखिये परिशिष्ट–२।

ली ! इस प्रकार मैत्री का मंत्र इतने अधिक स्थानों पर पहुँच गया है कि सब मित्र बनना चाहते हैं। जो दो अंग्रेज आये थे, वे भी इस बात की चर्चा करने आये थे कि मैत्री—केवल गांधीजी की निजी मैत्री नहीं, परन्तु भारतीयों और अंग्रेजों की मैत्री कैसे की जाय ?

इनमें से एक भाई से गांधीजी ने कहा: 'दो-तीन बातें सध जायँ, तो दोस्ती बनी-बनायी है। भारत को स्वावलम्बी बनना चाहिए। इसके लिए आर्थिक प्रश्न का निराकरण होना चाहिए। यदि विदेशी कपड़ा, जो भारत को परतन्त्र और निःसत्त्व कर रहा है, बन्द हो जाय तो उसमें निर्भय होकर खड़े रहने की ताकत आ जाय। आप कहते हैं और मैं मानता हूँ कि अंग्रेजों और भारतीयों के बीच केवल असहयोग की कल्पना नहीं की जा सकती। हमेशा मनुष्य मनुष्य के अधीन रहेगा ही। परन्तु मैं दोनों का सम्बन्ध समान करना चाहता हूँ। यदि दोनों के बीच के सम्बन्ध में मनुष्यता आ जाय, तो मुझे सन्तोष होगा। आज आप भारत को हानि पहुँचाकर जेबें भरने आते हैं, इसलिए आपका-हमारा हित-विरोध है। यहाँ एक दूसरे का सत्त्व चूसकर ही जी रहा है। यह अस्वाभाविक सम्बन्ध टूट जाय, तो मैत्री की बुनियाद डाली जा सकती है। मगर आज तो अंग्रेज अपने को भारतीयों से ऊँचे दरजे का मानते हैं। यह ऊँचेपन की भावना चली जानी चाहिए।

'अब रही हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात। कहा जाता है कि अंग्रेज इसे चाहते हैं, परन्तु इस बारे में हमेशा शंका ही रहती है। यह शक सदा बना रहता है कि इस मामले में अंग्रेज जो कहते हैं, वह उनके मन में नहीं होता। यह एकता कराने में अंग्रेजों को अपना भला मानना चाहिए, कृतकृत्यता माननी चाहिए।

'अन्तिम बात रही, शराब के टैक्स की। यह कर बन्द कराने के लिए अंग्रेजों को जी-तोड़ कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि यह अनीति का कर है। कहते हैं, इससे शिक्षा दी जाती है। मैं कहता हूँ कि भले ही शिक्षा का दिया जाना बन्द हो जाय, शराब के कर से भारत की रक्षा होती हो तो वह भी भले ही बन्द हो जाय, परन्तु यह कर अवश्य बन्द होना चाहिए।

'और यह चीज मुझे जड़ पर पहुँचा देती है। अंग्रेजों को हिन्दुस्तानियों का अविश्वास इतना अधिक है कि करोड़ों रुपये का सैनिक खर्च उन्होंने लाद रखा है। यदि अंग्रेज भारतीयों की भलमनसाहत पर रहें,

तो विदेशी सेना की कोई आवश्यकता न रहे। परन्तु आज तो सब जगह अविश्वास भरा है, सर्वत्र लोहे की दीवार खड़ी है।

'इतनी बात निश्चित हो जाय, तो मैं स्वराज-वराज की योजना की बात छोड़ दूँ, क्योंकि फिर तो स्वराज्य के आने में गिनती के दिन रह जायेंगे।'

ये भाई कुछ सुनते रहे। उन्होंने ऊँच-नीच की भावना मंजूर की। उन्होंने बताया कि बहुत हद तक यह भावना है, फिर भी यह हृदय का दोष नहीं, स्वभाव का दोष है। द्वीप में रहनेवालों के स्वभाव में घुसा हुआ घमण्ड है, इससे अधिक नहीं। शराब के कर की अनीति भी उन्होंने स्वीकार की। केवल कपड़े की और सैनिक खर्च की बात उनके गले नहीं उतरी, क्योंकि वे इस बात को मानते थे कि ईश्वर जरूरत पड़ने पर एक जाति को दूसरी के सिर पर बैठकर उसका भला करने के लिए पैदा करता है और अंग्रेजों को यह हक मिला हुआ है।

२

परन्तु इस भाई को तो बंगाल का ताजा प्रकरण परेशान कर रहा था। उन्होंने गांधीजी को नयी दिशा सुझायी।

वे : 'अभी जो अराजकता चल रही है, जो हिंसा फैली हुई है, क्या उसकी आप निन्दा नहीं करेंगे? इसकी निन्दा कर दें, तो हम अंग्रेजों और यूरोपियनों को अभयदान मिले और मैत्री करने की इच्छा हो।'

गांधीजी : 'परन्तु मैं तो निन्दा करता रहा हूँ—समय-असमय मैंने तो अपने कठोर उद्गार प्रकट किये ही हैं।'

वे : 'परन्तु आप अकेले ने ही। दूसरों ने कहाँ? मि० दास ने कहाँ प्रकट किये हैं?'

गांधीजी : 'वाह! मि० दास ने नहीं? उनके तो मैं दरजनों भाषण ऐसे बता सकता हूँ, जिनमें उन्होंने हिंसा और अराजकता की सख्त-से-सख्त ढंग से निन्दा की है।'

वे : 'मैं भी इसके विपरीत उनके उद्गार उद्धृत कर सकता हूँ। परन्तु यहाँ अभी उनकी बात नहीं। क्या आज आप हमें इतना आश्वासन नहीं दे सकते?'

गांधीजी : 'आश्वासन तो देंगे ही। क्यों नहीं देंगे? मि० दास भी आपको आश्वासन देंगे।'

वे : 'परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप आम सभा करके आश्वासन दें। इसका असर अच्छा होगा और फिर एक वात पर भारतीय और अंग्रेज एक हो सकते हैं।'

गांधीजी : 'मुझे भय है कि इससे आपको सन्तोष नहीं हो सकता। ऐसे आश्वासन से न आपका भला होगा, न हमारा। इतने से कहीं मैत्री का प्रारम्भ हो सकता है? इतना तो हम अपने स्वार्थ के लिए भी करें। हम अहिंसा की नीति स्वीकार करें या न करें, परन्तु हमारे हित के लिए तो उसे स्वीकार करना ही होगा। इसलिए इतनी-सी वात से आपको सन्तोष नहीं हो सकता। फिर, आप जो सुझाव दे रहे हैं, उसका परिणाम क्या होगा, इसकी आपको कल्पना है? इसका परिणाम यही होगा कि इस समय सरकार जो अराजकता मचा रही है, जो अनीति चला रही है, उसका हम समर्थन करें। उसने जनता की स्वतन्त्रता पर जो नाहक हमला किया है, उसकी हम हिमायत करें।'

वे : 'मगर सरकार की स्थिति आप नहीं समझते। खूब जाँच के वाद ही और वड़ी अराजक संस्था के वारे में यकीन होने के वाद ही उसने ये कदम उठाये।'

गांधीजी : 'विश्वास? पुलिस का विश्वास। पुलिस का विश्वास सो गवर्नर का विश्वास। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिन मनुष्यों को पकड़ा गया है, उनमें से वहुतों का अराजक दल के साथ कोई सम्वन्ध नहीं। अराजक दल तो अछूता ही रह गया। सरकार ने हमला तो स्वराज्य दल पर किया है, क्योंकि वह उसे अरुचिकर हो गया था।'

वे : 'स्वराज्यदली नहीं, परन्तु उनके काम। गोपीनाथ साहवाले प्रस्ताव ने तो उस दल को मजवूत किया और गति दी।'

गांधीजी : 'मैं नहीं मानता कि गति दी। उस प्रस्ताव के विरुद्ध महासमिति ने प्रस्ताव किया। ऐसा न हुआ होता, तो भी गोपीनाथवाले मूल प्रस्ताव के वाद तो एक भी अत्याचार नहीं हुआ।'

वे : 'परन्तु महासमिति द्वारा किया गया प्रस्ताव आज नहीं हो सकता?'

गांधीजी : 'आज उसके लिए अवसर ही नहीं। आज किसीने अराजकता या हिंसा का प्रस्ताव किया हो, तो अवश्य आवश्यकता रहती। परन्तु कारण के विना ऐसा प्रस्ताव करने लगें तो सरकार को उसकी निरंकुशता में सहारा देने के वरावर ही होगा।'

वे : 'अच्छा, यह तो ठीक। परन्तु अराजक मनुष्य सरकार के लिए

खतरनाक हों, तो सरकार क्या करे ? आप उस जगह हों तो ऐसी स्थिति में आप क्या करें ?'

गांधीजी : 'मैं ? माफ कीजिये, परन्तु यदि मैं गवर्नर होऊँ और मुझ पर लोगों का विश्वास हो, तो मैं काजी बनने के बजाय जनता के नेताओं को बुलाऊँ, अपने कान पर आयी हुई बातें उनके सामने पेश करूँ और उनसे पूछूँ कि मैं क्या करूँ ? यदि लोगों का मुझ पर विश्वास न हो तो मैं कुछ न करूँ।

'मैं चाहता हूँ कि आप मेरी बात समझें। आप जो कहते हैं, उससे मैत्री हरगिज नहीं होगी, परन्तु मैंने जो बात कही है, उससे वह सधेगी। इंग्लैण्ड का आज भारत के साथ अत्यन्त अस्वाभाविक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को सुधारने में अंग्रेजों का तो हित है, इसलिए उनके लिए यह सहज और सुलभ है। इस सम्बन्ध को अंग्रेज उलट दें, तो उनकी प्रतिष्ठा बढ़े, उनके प्रति भारतीयों की ममता बढ़े—वे सिर्फ उतना ही खोयेंगे, जिस पर उनका कभी अधिकार नहीं था।

'आप जाँच की बात करते हैं ! सुभाष बोस की क्या जाँच हुई थी ? अंग्रेजों के साथ ऐसा बर्ताव नहीं हुआ। पार्नेल पर गम्भीर आरोप थे। उसे अदालत में पेश नहीं किया गया, उसके लिए तो कमीशन बैठा। बम्बई के एक कमिश्नर—क्रॉफर्ड—पर रिश्वत के गम्भीर आरोप थे। परन्तु साधारण अदालत के सामने उसका मुकदमा चलाना तो उसकी बेइज्जती करना होता ! उसके लिए भी कमीशन बैठा। मैं कहता हूँ कि सुभाष बोस उसके जैसा ही, उसीके दरजे का आदमी था। उसे न अदालत में खड़ा किया जाता है, न जाँच होती है। पुलिस उसे नाहक, कोई कारण बताये बिना, आरोप लगाये बिना हवालात में बन्द कर देती है !'

वे : 'सुभाष बोस सुन्दर मनुष्य थे, बढ़िया अधिकारी थे और यूरोपियन भी उन्हें चाहते थे। परन्तु अराजकों के साथ सम्बन्ध हो या न हो। फिर भी जरा शंका हो तो उन्हें पकड़ना पड़ेगा। सारे कारण और कार्रवाई जाहिर करनी चाहिए, यह तो नहीं मानेंगे न ?'

गांधीजी : 'भले ही। परन्तु मुकदमा तो खुली अदालत में चलना चाहिए। फिर बड़े-बड़े जज भी क्या करते हैं ? आपको पता है कि बड़े-बड़े न्यायाधीशों ने पंजाब के मुकदमे चलाये थे और कैसे निर्दोषों को जेल में बन्द किया था ? लाला हरकिशनलाल और गाय जैसे गरीब कालीनाथ राय को किसने कैद में डाला था ? पंजाब की रिपोर्ट पढ़कर देखिए,

उसमें की एक भी वात या एक भी आरोप का खण्डन आज तक नहीं किया गया।'

और वहुत वातें हुईं। अन्त में गांधीजी ने कहा: 'मैं स्वयं तो अराजकता और हिंसा का शत्रु हूँ। उसे निर्मूल करनेवाला हूँ और अपने कार्य में लाखों और करोड़ों को शरीक करने का प्रयत्न करनेवाला हूँ—इतना आश्वासन मैं आपको देता हूँ। मगर आपसे फिर कहता हूँ कि इस आश्वासन से आपका या मेरा कुछ नहीं वनेगा। अंग्रेजों को भारतीयों के साथ सम्वन्ध सीधा और स्वच्छ वनाना ही होगा।'

एक और अंग्रेज भाई आये। उनकी सरलता और सचाई उनके चेहरे पर झलकती थी। उनकी वातचीत लगभग सारी ही दे दूँ।

प्र०: 'आपके उपवास से मैं चकित हुआ। ऐसे उपवास का पहले मुझे तो कोई ज्ञान नहीं था। आपने अपने शरीर की आवश्यकता शून्यवत् कर दी होगी।'

गांधीजी: 'क्या करूँ? मुझे जीना दूभर हो गया और जीकर कुछ न कर सकना वहुत कठिन हो गया, इसलिए उपवास का सहारा लेना पड़ा।'

प्र०: 'आप सफल भी हुए। विशप साहव के साथ मेरी वहुत वातें हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि आपके उपवास का वड़ा असर हुआ। मुझे आशा है, आप इसी तरह अंग्रेजों और भारतीयों के सम्वन्ध सुधारेंगे।'

गांधीजी: 'हाँ, यह मेरा जीवन-कार्य है।'

प्र०: 'परन्तु आशा रखता हूँ कि उसके लिए आपको उपवास नहीं करना पड़ेगा।'

गांधीजी हँसे। 'नहीं, अंग्रेजों और भारतीयों तथा हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्वन्ध भिन्न प्रकार के हैं। अंग्रेज अपने को ऊँचा समझते हैं। वे अपने को राज्यकर्ता मानते हैं। पर हिन्दुओं और मुसलमानों के वीच इस प्रकार की भावना नहीं। हिन्दू या मुसलमान ऐसा भाव नहीं रखते। अंग्रेजों का हृदय जीतने के लिए अधिक परिश्रम चाहिए।

'अंग्रेजों में मेरे वहुत-से मित्र हैं। परन्तु वे कुछ खास व्यक्ति हैं। आम तौर पर अंग्रेज के साथ वात करते हुए जरा संकोच रखकर, सँभलकर वात करनी पड़ती है। परन्तु मुसलमान या हिन्दू से मैं हृदय के उद्गार सुना सकता हूँ, क्योंकि अंग्रेज मेरे वोलने का अधिक अनर्थ कर सकते हैं। इसलिए हमेशा मेरे मन में संकोच रहता ही है।'

प्र० : 'मैं आशा रखता हूँ कि इस उपवास के वाद यह संकोच आपने छोड़ दिया होगा ।'

गांधीजी : 'नहीं, मैं अंग्रेजों की शिकायत नहीं करता । सिर्फ यही डर रहता है कि वे मुझे नहीं समझ सके । दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों को यह सावित कर देने में कि मैं प्रामाणिक हूँ, मुझे २० वर्ष लगे ! २० वर्ष मुझे उनके साथ गाढ़ परिचय में आना पड़ा, उन्हें अपना काम वताना पड़ा और अपना जीवन उनके आगे खोल देना पड़ा, तव उन्हें विश्वास हुआ कि मैं प्रामाणिक हूँ । इसलिए रास्ते चलते अंग्रेज से मैं दिल खोलकर वात कर सकूँ, ऐसी स्थिति के लिए सारा जीवन चाहिए ।'

प्र० : 'आपको ऐसा लगता है कि आज वह समय नहीं आया ?'

गांधीजी : 'नहीं, यह वात तो नहीं, उन्हें भी कहता हूँ । परन्तु हिन्दू-मुसलमानों से कहने में मुझे कुछ भी संकोच रखने की जरूरत नहीं जान पड़ती । देखिए, आर्यसमाजियों पर मैंने प्रेम से कितनी कड़ी आलोचना की, क्योंकि वे मुझे समझ सकते हैं और मैं उन्हें समझ सकता हूँ । मुसलमानों से भी मैं इसी तरह कह सकता हूँ, परन्तु अंग्रेजों से इस प्रकार नहीं कहा जा सकता । यह धर-पकड़ हुई है, इसकी मुझे परवाह नहीं, परन्तु कानून का जो विपर्यास किया गया है, वह मुझे खटकता है ।'

प्र० : 'इस मामले में मैं आपसे सहमत हूँ । मुझे खुद को भी यह खटकता है ।'

गांधीजी : 'पकड़ें, मुकदमा चलाकर कैद करें तो अच्छा लगे । मुझे पकड़कर छह वरस की सजा दी, तो उससे मुझे शान्ति हुई ।'

प्र० : 'एक वात पूछ लूँ ? क्या आपको अंग्रेजों और भारतीयों के वीच जितना अन्तर लगता है, उससे अधिक हिन्दू-मुसलमानों के वीच नहीं लगता ?'

गांधीजी : 'नहीं, हिन्दू-मुसलमानों के वीच का अन्तर ऊपरी है, गहरा नहीं । दोनों ओर मेल करने की इच्छा तो है ही । और आम लोगों में तो अन्तर भी नहीं । झगड़े होते हैं, सो मध्यम श्रेणी के लोग वदमाशों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए ही कराते हैं ।

'परन्तु अंग्रेजों और भारतीयों के वीच तो वड़ा भारी अन्तर है । कहा जा सकता है कि एक तरह से तो दोनों के वीच मेल करने की कोई भूमिका ही नहीं । एक मामूली 'टॉमी' को लीजिये । वह तो भारतीय की ओर तिरस्कार की दृष्टि से ही देखता है । भारतीय उसे देखकर

चौंकता है। एक-दूसरे के बीच मानवीय आदर की भावना ही नहीं, विश्वास ही नहीं। यह भयंकर बात है।'

प्र० : 'मुझे ऐसा नहीं लगता कि वह बढ़ती जा रही है।'

गांधीजी : 'मैं खुद भी नहीं मानता। परन्तु वह है और बहुत बड़ी मात्रा में है।'

प्र० : 'कोई रास्ता ?'

गांधीजी : 'अच्छे अंग्रेजों को इसे मिटाना अपना काम समझना चाहिए, परन्तु आज तो अच्छे-से-अच्छे अंग्रेज भी यह मानते हैं कि भारतीयों से डेढ़ कोस दूर रहने में ही उनकी सुरक्षा, उनके अस्तित्व की गारण्टी है।'

प्र० : 'इसे मिटाने की शक्ति तो आपमें भरी है। आपने इसे अपने उपवास से बता दिया है। मुझे आपके बराबर शक्ति किसी और में नहीं मालूम होती।'

गांधीजी : 'नहीं, यह काम मेरे लिए भी विकट है। मुझे अभी अंग्रेजों को साबित कर देना है कि मेरा एक-एक शब्द मेरे हृदय से निकलता है।'

प्र० : 'नहीं, शायद आपके काम करने के ढंग के बारे में उन्हें अविश्वास हो।'

गांधीजी : 'वह तो है ही, परन्तु मैं कहता हूँ, सो भी जरूर है। मेरी 'अहिंसा' को ही वे नहीं समझते। 'असहयोग' के नाम से वे क्यों चौंके ? इसकी जड़ में तो अहिंसा है। अहिंसा के बिना असहयोग मेरे लिए त्याज्य है।

'मैं इतना ही कहता हूँ कि साफ होने के लिए पहले का जितना मैल आपमें हो, उतना निकाल दो। यदि विकास-क्रम के नियम का कोई अर्थ है, तो यही है कि दुनिया अब तक जिस रास्ते पर चलती रही, जो हथियार अपनाती रही है, उसे सुधारें। हमारा यह उद्देश्य होना चाहिए कि जब हम मरें, तब दुनिया को हम आये थे उससे अधिक स्वच्छ छोड़कर जायँ।'

वे समझ गये। बहुत भावना के साथ बोले : 'मैं अपना काम करता हूँ, भरसक प्रयत्न करता हूँ, परन्तु आपकी तो सारा भारत सुनेगा, मेरी कौन सुने ?'

गांधीजी : 'यह मैं समझता हूँ। परन्तु अपनी अहिंसा के विषय में कुछ और कह लूँ। मेरे 'स्वराज्य' के विचार की जड़ में भी विश्वास ही है। इस विश्वास पर—अन्योन्य विश्वास पर—ही इसकी नींव खड़ी की जानी चाहिए।

'आज हिन्दुस्तान को अपना वतन कहकर मैं बड़ा अभिमान करता

हूँ, परन्तु यह अभिमान मेरा कहीं चला जाय, यदि भारत हिंसा का मार्ग स्वीकार करे। भारत का अर्थ अरब सागर और हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ और हिमालय के मुकुटवाला भारत ही नहीं, बल्कि वह देश है, जो सदियों से अहिंसा के सिद्धान्त का पुकार-पुकारकर उपदेश देता रहा है। अर्थात् अहिंसा के बिना उसके उद्धार की मुझे कल्पना नहीं हो सकती, मैं उसे सहन नहीं कर सकता।

'आप लोगों के लिए मैंने तो दूसरे एक भाई को तीन रास्ते बता दिये थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता में भाग लेना, विदेशी कपड़ा आने से रोकने में मदद देना और शराब का कर बन्द कराना। यह अंग्रेजों को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। इतना वे कर सकें, तो उन्हें ईश्वर का उपकार मानना चाहिए।

'आजकल बहुत-से अंग्रेज हमें लड़ते देखकर प्रसन्न होते हैं। कुछ लोगों का आरोप तो यह है कि लड़ाने का प्रयत्न करते हैं। विदेशी कपड़ों द्वारा जो रक्त-शोषण हो रहा है, उसका असर वर्णन करने के लिए शब्द नहीं। इसने भारत को निष्प्राण बना दिया है। भारत के भूखों मरनेवाले करोड़ों के हाथ से धन्धा चला गया और आज वे बेकार हैं। ये सब साल में कम-से-कम चार महीने की नाहक, अनिवार्य, अवेतन छुट्टी पर रहते हैं। ऐसी छुट्टी लेकर दुनिया में कोई जाति जीती रह सकती?

'आज तो इस सारे भारत देश में कहीं भी लोगों की काम में श्रद्धा ही नहीं रही। काम करने की वृत्ति ही नहीं रही। चरखे को सार्वत्रिक बनाकर उसे एक बार फिर सजीव कर देना चाहता हूँ। शराब से होने-वाली आय के बारे में आपसे कहने की जरूरत है?'

अत्यन्त आभार मानकर ये सज्जन बिदा हुए। ये दोनों अंग्रेज गांधीजी के अपने बताये हुए दो प्रकार के अंग्रेजों के नमूने थे। पहले के सामने जी खोलकर बात करने में संकोच होता, हमेशा यह भय बना रहता कि कहीं यह कही हुई बात का अनर्थ न करे, जब कि दूसरे के साथ खुले दिल से बात करने में विचार ही नहीं करना पड़ता। ये दूसरे प्रकार के जब तक उँगलियों पर गिने जानेवाले हैं, तब तक हमारी लड़ाई लम्बी है।

दूसरे विदेशियों में विश्वभारती से एक चीनी अध्यापक आये थे। वे परिचय करने ही आये थे। चीन की भीतरी राजनीति के बारे में बात छेड़ी, परन्तु गांधीजी चीन के विषय में क्या बात करें? एक फ्रेंच महिला भी आ गयीं। इसके सिवा मॉ० रोलां का सन्देश लेकर डॉ० कालिदास

नाग आये थे। डॉ० कालिदास यूरोपियन भाषाओं के अच्छे जानकार हैं और पेरिस विश्वविद्यालय की पदवियाँ प्राप्त की हैं। मॉ० रोलां के साथ अच्छी मित्रता रखते हैं और उनका गांधीजी से विशेष परिचय कराने में इनका प्रमुख हाथ है।

आजकल यूरोप में गांधीजी के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने को कितने लोग आतुर हैं, इसकी चर्चा उन्होंने की और बताया कि मॉ० रोलां की गांधीजी-सम्बन्धी पुस्तक का समस्त यूरोपियन भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। रूसी भाषा में मैक्सिम गॉर्की जैसे अग्रगण्य विद्वान् ने उसका अनुवाद किया है।

परन्तु आज फ्रांस देश को मॉ० रोमां रोलां जैसे महापुरुष की कीमत नहीं। उनका अहिंसा और शान्ति का सन्देश अपनाने को वहाँ कोई तैयार नहीं। आज वे परिव्राजक हैं।

वियेना में शान्ति-परिषद् का एक कार्ड उन्होंने डॉ० कालिदास के साथ गांधीजी के नाम भेजा है। उस पर एक और परिव्राजक के हस्ताक्षर हैं—हर्मन हेस। ये जर्मन भी गांधीजी को बहुत चाहते हैं। उन्हें शान्ति-प्रियता के कारण अपने देश से भगा दिया गया है।

जिस परिषद् का यह कार्ड है, वह इटली में होनेवाली थी, परन्तु शान्ति-परिषद् होने के कारण उसे होने नहीं दिया गया! इस प्रकार यूरोप शान्ति से डरता है। मॉ० रोलां का सन्देश संक्षेप में इतना ही था: 'यूरोप और भारत आपके जीवन से एकसूत्र हों।'

कलकत्ते में बिताये गये चार-पाँच दिन इस प्रकार चर्चाओं, बातचीतों और मुलाकातों से सुबह से रात तक भरे गुजरते थे। परन्तु इस सख्त काम को हल्का करनेवाली चीजें भी कम नहीं थीं।

एक रात को देर से एक देहाती अपने दो बच्चों को लेकर आया। उस बेचारे को ऊपर कौन आने दे? बाहर तो उस समय भी सैकड़ों मनुष्य होते, उनमें से किसे आने दिया जाय और किसे न आने दिया जाय? इसलिए उस बेचारे ने अपने सूत की पोटली दरवाजे पर देकर कहा कि 'इतना सूत पहुँचा दो!' गांधीजी ने पोटली देखकर तुरन्त उसे बुलवाने को कहा। बालकों और उनके पिता के आनन्द का पार नहीं रहा।

उनके उद्यम और देश-प्रेम की क्या बात कहूँ? कलकत्ते के किसी तंग और गन्दे कोने में बेचारे रहते हैं, मेहनत करके रोटी कमाते हैं, परन्तु साथ-साथ अपने और अपने गाँव (मैं भूला नहीं हूँ, तो गाजियाबाद) के

लोगों से—कलकत्ते में मजदूरी करके रहनेवाले लोगों से कतवाते हैं! पाँच सेर से अधिक सूत होगा। यह सूत इस महीने में काता हुआ था और कांग्रेस को देना तो वे जानते नहीं थे, इसलिए गांधीजी को देने के लिए लाये थे! गरीबों और कांग्रेस को एक करनेवाला सूत्र सूत का धागा है। इसका अधिक मजबूत प्रमाण क्या चाहिए?

किसी-किसी शाम को गांधीजी को प्रिय संगीत भी मिल जाता। भाई दिलीपकुमार रॉय मॉ० रोलां का एक पत्र, जो गांधीजी के बारे में आया था, लेकर आये थे। इस पत्र में गांधीजी के कला-सम्बन्धी विचारों के बारे में दिलीपकुमार के लिखे लेख की चर्चा थी। परन्तु क्या उस पत्र के पढ़े जाने से पहले संगीत सुने विना गांधीजी रह सकते थे? इसलिए दिलीपकुमार ने 'जानकीनाथ सहाय करे' के सुर से कमरा भर दिया।

पं० मोतीलालजी ने मुग्ध होकर दूसरे की माँग की तो उन्होंने अपना प्यारा

'जब प्राण तन से निकले'

ललकारा।

इसके बाद कला पर थोड़ी-सी चर्चा हुई। उसे तो दो सप्ताह पहले ही उपर्युक्त चर्चा की पूर्ति के रूप में यहाँ दे दूँ।

दिलीप बाबू की समझ में यह नहीं आ रहा था कि गांधीजी केवल सृष्टि-सौन्दर्य पर क्यों जोर देते हैं, क्या चित्रकार की कूँची में वह सौन्दर्य नहीं, शिल्पकार की मूर्ति में सौन्दर्य नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने कहा :

'मेरा काम इन सुन्दर चित्रों के विना चल सकता है, इसीलिए मैंने कहा कि मेरी दीवार चित्र-रहित हो, तो मुझे अच्छा लगता है। इसका कारण यह है कि चित्रों द्वारा प्रभु की लीला निहारने की मुझे आवश्यकता नहीं, ईश्वर ने ऐसी भूमि और आवोहवा में हमें रख दिया है कि सुन्दर सूर्योदय, सुन्दर चन्द्रिका और तारे, सुन्दर जल और स्थल के दृश्य प्रत्यक्ष देखने को मिलते हैं। लन्दन में, जहाँ दिनों तक सूरज दिखाई न दे, ऐसे चित्रों की जरूरत पड़ सकती है। इस देश में बसनेवाले गरीब लोगों से मैं ऐसे चित्र खरीदने की किसलिए सिफारिश करूँ?

'मेरा ध्येय सदा कल्याण का है, कला कल्याणकारी हो, तभी तक वह मुझे स्वीकार्य है। मैं उसे यूरोप की दृष्टि से नहीं देख सकता। और यूरोप है ही क्या चीज? पृथ्वीतल पर एक विन्दुमात्र ही तो है न!

'और भारतीय कलाकारों ने तो अपनी कला मन्दिरों और गुफाओं में उतारकर सार्वजनिक कर दी है। गरीवों को ऐसे स्थानों में जाकर जो चाहिए, सो मिल जाता है।'

'तो संगीत के विषय में क्या ? संगीत तो आप गरीव के लिए भी चाहेंगे ?'

'हाँ, क्योंकि संगीत सारी कलाओं में सर्वोपरि है, इसका अनेक प्रकार से हमारे जीवन के साथ सम्वन्ध है। वह अनेक प्रकार से कल्याणसाधक हो जाता है। गरीव-से-गरीव के लिए वह सुलभ है।'

दिलीप वावू ने यूरोप के संगीत की चर्चा चलायी, यूरोप के देवालयों के संगीत की वातें कीं। गांधीजी को उसका भी अनुभव तो था ही, इसलिए उन्होंने अपने सुने हुए कुछ सुन्दर संगीत की वातें कीं। परन्तु अन्त में सारी कलाओं के वारे में इस प्रकार उपसंहार किया :

'कलाकार जव कला को कल्याणकारी वनायें और आम लोगों के लिए सुलभ कर दें, तभी उस कला को जीवन में स्थान है। मैं मानता हूँ कि जव कला सवकी न रहकर थोड़ों की हो जाती है, तव उसका महत्त्व कम हो जाता है।'

दिलीप वावू ने यहाँ उन्हें रोका : 'तव तो इस दृष्टि से जो दर्शन लोगों की वुद्धि के लिए सहज गम्य न हो, जो काव्य या साहित्य साधारण लोगों के लिए सुवोध न हो, वह भी आपको पसन्द नहीं होगा।'

'हरगिज पसन्द नहीं होगा। वुद्धि का प्रत्येक व्यापार जिसमें कोई विशेषता अर्थात् गरीवों को अलग करने की वात हो, उसकी कीमत जो सव लोगों के लिए है, उससे कम ही है। वही काव्य और साहित्य चिरजीवी रहेगा, जो लोगों का होगा, जिसे लोग आसानी से प्राप्त कर सकते हैं, सहज ही अपना सकते हैं।'

परन्तु यह पत्र वहुत लम्वा हो गया। अव इसे किसी तरह पूरा ही कर दूँ।

आखिरी दिन देशवन्धु की एक भानजी गांधीजी से मिलने आयी। उससे गांधीजी ने मीरांवाई के भजन की माँग की। जरा भी संकोच न करके उसने मीरांवाई के दो-तीन भजन अत्यन्त मधुर कण्ठ से सुनाये।

'मीरां चित धीर न माने वेग मिलो महाराज'

यह अभी तक स्मृति से जाता नहीं।

दिल्ली, ता० १२-११-१९२४

¶ प्रिय जवाहरलाल,

मुझे ऐसे कार्यकर्ताओं के दल की आवश्यकता प्रतीत होती है, जो उड़कर जा सके। उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों हों। एक क्षण की सूचना पर वे देश के किसी संकटग्रस्त भाग में जाँच करने जाने को तैयार हों। ख्यातनामा मनुष्य वहाँ जायँ, इसकी सदा हम प्रतीक्षा नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, कल तुम्हारे पास जो मामला भेजा गया है, उसे लो। जो बयान मिले, वे सच्चे हों तो अपराधियों को सामने लाना ही चाहिए। यदि वे बयान झूठे हों, तो संवाददाताओं से जवाब करना चाहिए। जाँच जल्दी और सतर्कता के साथ होनी चाहिए। मैं महादेव को इस काम के लिए तैयार कर रहा हूँ और प्यारेलाल को भी समझाने का प्रयत्न करता हूँ। प्यारेलाल नाहक आत्मविश्वास नहीं रखते। मंजरअली यह काम कर सकेंगे? × × × उनके कातने के काम में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। उनका काम केवल संयुक्त प्रान्त तक सीमित रहे। हाँ, जब तक कार्यकर्ताओं की सेना हम खड़ी नहीं कर सकेंगे, तब तक ऐसी किसी सीमा का बन्धन रखना मैं पसन्द नहीं करूँगा। कल तुम्हें जो मामला भेजा है, उसके लिए किसी आदमी को फौरन् भेज देना। कुछ सप्ताह पहले तुम्हें एक मामला भेजा था, उसका क्या हुआ?

मैं मानता हूँ कि जल्दी नहीं तो गुरुवार को (ता० २०-११-१९२४ को) सुबह तुम पिताजी के साथ बम्बई में होगे। मैं उस दिन प्रातःकाल बम्बई पहुँच रहा हूँ। श्रीमती नायडू कल सवेरे यहाँ से रवाना हो रही हैं।

मो० क० गांधी के आशीर्वाद

¶ प्रिय मोतीलालजी,

आपके सब तार मुझे मिल गये हैं। आपका पहला सुझाव मुझे पसन्द आया। और सम्बद्ध मनुष्यों को साथ की नकल के अनुसार निजी पत्र लिखे हैं।

मैं मंगलवार की रात को एक्सप्रेस गाड़ी से बम्बई के लिए यहाँ से रवाना हो रहा हूँ। गुरुवार को सवेरे बम्बई पहुँचूँगा। हकीमजी और डॉ० अनसारी को साथ लाने का प्रयत्न करूँगा। मौ० मुहम्मद अली शुक्रवार को हमसे मिलेंगे। हम गुरुवार को चुने हुए व्यक्तियों की अनौप-चारिक बैठक करेंगे। आपका विचार मुझे पसन्द है। वहाँ हम चर्चा कर

लेंगे कि बैठक में क्या कार्यक्रम रखा जाय। पास करने के प्रस्तावों के मसविदे पर भी चर्चा कर लेंगे। मेरा यह भी खयाल है कि संयुक्त सभा के अध्यक्ष के रूप में कोई बाहरवाले हों, तो अच्छा। उदाहरण के लिए, शास्त्री या सप्रू हों तो ठीक रहेगा। मैंने अपना यह सुझाव आपके विचार के लिए रखा है। प्रत्येक योजना के बारे में कठिनाइयाँ तो हैं ही। परन्तु इस स्थगन-काल में हम कोई संयुक्त कार्रवाई करना चाहते हों, तो संयुक्त सभा के लिए कोई तटस्थ अध्यक्ष हों तो वे उपयोगी साबित होंगे।

गुरुवार को सुबह बम्बई में रहने के लिए मेरे खयाल से आपको वहाँ से मंगलवार को चलना होगा, जिससे बुधवार को दोपहर में बम्बई पहुँच जायँ। मैं मान लेता हूँ कि दासबाबू तथा अन्य मित्रों को भी आप लिखेंगे कि वे गुरुवार को बम्बई में रहें।

आपका

मो० क० गांधी

दिल्ली, ता० १२-११-१९२४

¶ प्रिय लालाजी,

आपके पत्र का जल्दी उत्तर न देने के लिए मुझे क्षमा करेंगे। आप जानते हैं कि मुझे एकदम कलकत्ते दौड़ जाना पड़ा। वहाँ मुझे लिखने को एक मिनट भी नहीं मिला। वहाँ खोयी हुई शक्ति अभी तक पूरी तरह फिर से प्राप्त नहीं हुई।

रावलपिंडी में मैं क्या कर सकूँगा? मैं देखता हूँ कि हिन्दुओं ने तो कमिश्नर की शर्तें मंजूर कर ली हैं। मैं उन्हें कोई दिलासा नहीं दे सकूँगा। मुझे सत्य भी हाथ नहीं लग सकेगा। मैं उनकी शारीरिक सुविधाओं में भी कोई वृद्धि नहीं कर सकूँगा। यह काम वहाँ विभिन्न संस्थाएँ कर रही हैं। जो एक चीज मैं कर सकता हूँ, उसे करने के लिए मुझे शक्तिहीन बना दिया गया। फिर भी आपको ऐसा लगता हो कि मुझे रावलपिंडी जाना चाहिए तो मैं जाऊँगा। परन्तु अब मैं बम्बई की सभा के बाद ही वहाँ जा सकूँगा।

अब अपनी सभा की बात। डॉ० सत्यपाल कहते हैं कि पंजाब प्रान्तीय परिषद् दिसम्बर के पहले सप्ताह में होगी। तब तक क्या आप वहाँ रहेंगे? उस समय हम मिलें या पहले मिलना है? मुझे अगले मंगलवार को यहाँ से निकलना चाहिए। क्या आप बम्बई आनेवाले है? आ सकने लायक आपकी तबीयत है?

आप वम्वई न आनेवाले हों और यह चाहते हों कि दिसम्वर से पहले हम मिलें, तो मुझे तार कीजिये। मुझे वम्वई जाने के लिए यहाँ से १८ तारीख को अर्थात् मंगलवार को निकलना चाहिए। सोमवार तो मौन का दिन है। मेरे लिए एक ही वात संभव है कि मैं यहाँ से शुक्रवार की रात को चलूँ, शनिवार का दिन आपके साथ गुजारूँ और शनिवार की रात को वहाँ से चलकर रविवार को यहाँ लौट आऊँ। यदि यह सम्भव न हो तो हम दिसम्वर के शुरू में ही मिल सकते हैं। हम वम्वई में मिल लें तो अलग वात है। अव आपको ठीक लगे, वैसा मुझे हुक्म कीजिये।

दासवावू, मोतीलालजी और मेरे हस्ताक्षरों से जो वयान प्रकाशित हुआ है, उस पर आपके विचार जानने की मुझे इच्छा रहती है। परिस्थिति अत्यन्त उलझनभरी है। और उसमें वड़ा दुःख तो यह है कि सभी उसको सुलझाने के लिए मेरी तरफ टकटकी लगाये हुए हैं, जव कि मैं कहीं वँधकर नहीं वैठ सकता। मेरी योजना हमारे अधिकांश सुशिक्षित देशवन्धुओं को बिलकुल ही अव्यावहारिक लगती है, जव कि मुझे एकमात्र व्यावहारिक योजना अपनी ही लगती है, जो देश के आगे रखी जा सके।

आपका

मो० क० गांधी

पुनश्च :

ऊपर का पत्र लिखने के वाद आपका ११ तारीख का पत्र मिला। मेरा पत्र पढ़ने के वाद आपको ऐसा लगे कि मुझे वम्वई जाने से पहले रावलपिंडी जाना चाहिए, तो मुझे वैसा तार कीजिये। मैं एकदम निकल पड़ूँगा। और यदि आप लाहौर से मेरे साथ हो जायेंगे तो हम रास्ते में वातें कर लेंगे। मेरी मौजूदा तन्दुरुस्ती को देखते हुए इसमें मुझे श्रम तो वहुत ही होगा, परन्तु यदि उसे उठाना अनिवार्य हो तो मेरे लिए वह असह्य नहीं होगा। यह पत्र मिलने पर तार दीजिये कि मैं क्या करूँ। आप यह चाहते हैं कि मैं रावलपिण्डी जाऊँ या यह चाहते हैं कि एक दिन आपके पास आ जाऊँ? आप मुझे पिण्डी भेजेंगे तो मैं वहाँ एक ही दिन रह सकूँगा, क्योंकि वम्वई समय पर पहुँचने के लिए मुझे मंगलवार की रात को तो यहाँ से निकलना ही चाहिए।

मुझे जरा भी ख्याल नहीं कि वम्वई में समझौता निश्चित हो जायगा। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि इस प्रकार जल्दवाजी में कुछ नहीं हो सकता। किसी निर्णय पर आने से पहले स्पष्ट और पूरी चर्चा और

जाँच होनी चाहिए। और ऐसा नहीं लगता कि यह सम्मेलन स्वराज्य के बारे में कुछ कर सकता है। सम्भव है कि ऐसे ही सम्मेलन के आगे पेश करने के लिए योजना का मसविदा तैयार करनेवाली एक छोटी-सी कमेटी मुकर्रर हो जाय। इस सम्मेलन में मुख्यत: यह विचार होगा कि दमन-नीति का क्या जवाब दिया जाय और सब दल कांग्रेस में शरीक हों या नहीं। जो भाई आज मुझसे मिलने आये थे, वे कहते थे कि आपका स्वास्थ्य अच्छा है और पंजाब की सख्त हवा से बम्बई की मौजूदा हवा आपको ज्यादा माफिक होगी। परन्तु इसका ठीक निर्णय आप ही कर सकते हैं कि इस समय आप बाहर निकल सकते हैं या नहीं। मैं नहीं चाहता कि आप सम्मेलन के लिए अपने स्वास्थ्य को खतरे में डालें।

मो० क० गांधी

¶ प्रिय श्वेब,

श्रीमती नायडू कहती हैं कि तुम आजकल बहुत उदास रहते हो और लगभग निराशावादी हो गये हो। किसी मनुष्य या काम पर तुम्हारी श्रद्धा नहीं रही। यदि यह बात सच हो, तो तुम्हें शोभा नहीं देती। मैंने तो तुम्हें हमेशा ईश्वर पर विश्वास रखनेवाला मनुष्य जाना है। और तुम्हारे बारे में इसी तरह सुना भी है। मैंने यह तो देखा है कि तुम जरूरत से ज्यादा भावनाशील हो। परन्तु यह भावनाशीलता तो बहुत कठिनाइ के बिना दूर की जा सकती है। हाँ, उदासी निकाल डालना आसान नहीं। क्यों ऐसे हो गये हो? हमें तो अभी लम्बी और कठिन लड़ाइ लड़ना है। ईश्वर की इच्छा होगी तो यह लड़ाई छोटी भी हो सकती है। परन्तु लड़ाई लम्बी और कठिन मालूम हो तो इससे क्या सिपाही रोता बैठेगा? सिपाही के लिए तो रोने की बात हो ही नहीं सकती। दूसरे पिछड़ जायें तो श्रद्धावान् उतना ही अधिक बलवान् बनता है। हमारे आसपास यह सारी कमजोरी और घोटाला पाया जाता है, इससे मैं तो यह चाहूँगा कि तुम अधिक बलवान् और अधिक निश्चयी बनो। इसलिए तुम तनकर खड़े हो जाओ। दिल खोलकर मुझसे बातें करो।

कृष्णदास मुझे कहते थे कि गुलबर्गा की रिपोर्ट तुमने अभी तक पूरी करके नहीं भेजी। उसे भेज दो अथवा मैं २० तारीख को वहाँ आ रहा हूँ, तब तैयार रखो। मैं १८ तारीख को एक्सप्रेस से चलने की उम्मीद रखता हूँ। बहुत सम्भव है, हकीम साहब और डॉ० अनसारी मेरे साथ होंगे।

कृष्णदास एक सप्ताह के लिए घर गये हैं। वहाँ उनकी वहुत जरूरत थी। इसलिए वे चाँदपुर गये। १८ तारीख को या उससे पहले लौट रहे हैं।

श्रीमती नायडू सम्मेलन की तैयारी के लिए कल जा रही हैं। तुम यह नहीं जानते होगे कि आजकल मैं डॉ० अनसारी के यहाँ रह रहा हूँ।

प्यार।

मो० क० गांधी के आशीर्वाद

¶ प्रिय मित्र,

कांग्रेस की महासमिति और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों के वीच वम्वई में जो सम्मेलन होनेवाला है, उसके लिए आमन्त्रण मौ० मुहम्मद अली की तरफ से आपको मिला होगा। मैं आशा रखता हूँ कि आप इस सम्मेलन में उपस्थित रह सकेंगे। विचार तो यह है कि वंगाल में हो रहे दमन के वारे में विविध विचार रखनेवाले प्रत्येक का मत संभव हो, तो संकलित किया जाय। मेरी राय है कि सरकार का दमन अराजक प्रवृत्ति की अपेक्षा वैधानिक प्रवृत्ति के विरुद्ध है, क्योंकि वह इस समय सरकार के लिए असुविधाजनक हो गयी है। सम्मेलन करने में दूसरा विचार है कि यह देखा जाय कि कांग्रेस के मंच पर सव दलों को संयुक्त मोर्चे के लिए और राष्ट्रीय विकास के साधक सामान्य रचनात्मक कार्यक्रम के लिए इकट्ठा करना संभव है या नहीं। अलवत्ता प्रत्येक दल अपना व्यक्तित्व कायम रख सकता है। मेरा विश्वास है कि यदि आप सम्मेलन में आ सकेंगे, तो सव दलों के लिए सन्तोषजनक निर्णय पर पहुँचने में आपका सहयोग और सलाह वहुत मूल्यवान् सिद्ध होंगे।

आपका

मो० क० गांधी

(यह पत्र परिपत्ररूप में लिखा गया है।)

दिल्ली, ता० १३-११-'२४

रघुवीर सिंह की अर्वाचीन पाठशाला की निरीक्षण-पुस्तिका में :

इस अर्वाचीन पाठशाला को देखकर मुझे वहोत आनन्द हुआ। पाठशाला की स्वच्छता प्रशंसनीय है। मुझे केवल एक संशय है। अर्वाचीनत्व की वाढ़ में यदी प्राचीनत्व का नाश हो जायगा तो भारतवर्ष के इन युवकों को और युवतियों को वड़ी हानि होगी। इतनी सूचना करने की

महादेवभाई की

मैं घृष्टता करता हूँ, क्योंकि इस पाठशाला की उत्पत्ति में मैं हेतु की पवित्रता देखता हूँ। और इस संस्था की मैं उन्नति चाहता हूँ ।

मोहनदास गांधी

दिल्ली, ता० १४-११-१९२४

¶ 'दि वर्ल्ड टुमॉरो', ३९६ ब्रॉड वे, न्यूयॉर्क, यू० एस० ए० को सन्देश :

अहिंसा का मैंने जो अध्ययन किया है और मुझे जो अनुभव हुआ है, उस पर से मुझे प्रतीति हुई है कि दुनिया में वह सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। सत्य को पाने के लिए सबसे निश्चित पद्धति यही है। और यह पद्धति सबसे तेज भी है, क्योंकि इसके सिवा और कोई पद्धति ही नहीं। वह शान्त रीति से, लगभग अदृश्य रूप में काम करती है। फिर भी कम निश्चितता से काम नहीं करती। हमारे आसपास अविरत विनाश जारी है। उसके बीच यही एक प्रकृति की रचनात्मक क्रिया है। वह व्यक्तिगत जीवन में ही कारगर हो सकती है, ऐसा मानने जैसा और कोई वहम नहीं। सार्वजनिक या वैयक्तिक कोई क्षेत्र ऐसा नहीं, जहाँ इस शक्ति का प्रयोग न हो सके। परन्तु यह अहिंसा सम्पूर्ण आत्मविलोपन के बिना शक्य नहीं।

मो० क० गांधी

¶ प्रिय राजगोपालाचारी,

स्वामी का मुझे तार मिला है कि समझौते[1] पर आपकी करारी चोट आयी है। वे उसे मेरे पास भेज रहे हैं। यह पत्र आपके घायल हृदय के लिए ठंडा मरहम बने। मुझे आपका मत बदलना ही चाहिए। अथवा आपके मत का बनना चाहिए। या निवृत्त हो जाना चाहिए। एक प्रकार से बारडोली[2] अहिंसा का बहुत बहादुरीभरा प्रयोग था। यह समझौता दूसरी तरह से अहिंसा का वैसा ही बहादुरीभरा प्रयोग है। बारडोली के लिए मुझे कोई अफसोस नहीं होता, क्योंकि अपना कदम पीछे हटा लेने की मुझमें हिम्मत थी। मैं आशा रखता हूँ कि मौजूदा कदम के लिए अफसोस करने का उससे भी कम कारण होगा। 'यंग इंडिया' के मेरे लेख से आपको कुछ शांति मिलेगी। मैं चाहता हूँ कि आप बम्बई आयें। परन्तु मैं आग्रह नहीं करता।

---

१. देखिए परिशिष्ट–६ 'पवित्र सप्ताह' (खण्ड २, पृष्ठ ३७७।)

२. सामूहिक सविनय भंग, जो सन् १९२२ में मुलतवी रखा गया था।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास का श्री वालजी गोविन्दजी देसाई द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद आजकल 'करेण्ट थॉट' (Current Thought) में प्रकाशित हुआ है, वह आप देखेंगे। उसे पढ़कर अनुवाद के बारे में अपनी आलोचना श्री वालजी देसाई को, शाहीबाग, अहमदाबाद के पते पर या मुझे भेज दीजिए।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। हिम्मत रखिए। बेकार के अफसोस के लिए अवकाश नहीं।

आपका

मो० क० गांधी

भाई श्री काका,

शिक्षा अंक के लिए लेख लिखने के बाद मुझे बच्चों की शिक्षा के बारे में अधिक खुजली उठ रही है। आश्रम के बालकों के बारे में हम यह प्रयोग क्यों न करें? अर्थात् यदि आपको उसमें के विचार जँचे हों तो। बालक पाठ को पाठ के रूप में जानता है, परन्तु उसे चित्रित नहीं करता। इसी तरह वह अक्षर पढ़ भले ही ले, परन्तु लिखता नहीं। नयी चीज वह पढ़ता है, उससे पहले सुनता है और जैसे सुनता है, वैसे उच्चारण करता है—बोलता है। लक्ष्मी, रसिक वगैरह बालकों से लिखना छुड़वाकर क्या पहले ड्राइंग न सिखायी जाय? अधिक तो उन्हें जबानी ही पढ़ाया जाय। अभी तो वे हाथ का उपयोग चित्रित करने में ही करेंगे। इसके लिए शिक्षकों को ड्राइंग के मूल तत्त्व जान लेने चाहिए। अब मैं गहराई में जाने लगा, इसलिए रुक जाता हूँ। अभी तो इतना विचार करें। जब मिलेंगे, तब अधिक।

बापू के आशीर्वाद

¶ प्रिय मित्र,

यद्यपि हम कभी रूबरू नहीं मिले, परन्तु मेरा ख्याल है कि पंडित मालवीयजी के मार्फत मैं आपको जानता हूँ। मेरे सामने उन्होंने आपकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और यह बताया है कि आप बहादुर, प्रामाणिक और त्यागी हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि निर्वासितों की सेवा करने में आप अपने स्वास्थ्य की जरा भी परवाह नहीं करते। यह पत्र मैं आपको और आपके द्वारा निर्वासितों को यह बताने के लिए लिख रहा हूँ कि मैं इस समय रावलपिंडी नहीं आ सकता, इसका मुझे बड़ा

महादेवभाई की

अफसोस है । मेरा उद्देश्य तो कोहाट जाने का था, परन्तु इस समय तो यह हो नहीं सकेगा । इसलिए रावलपिंडी जाने की मुझे जल्दी नहीं । मैं जानता हूँ कि पंडितजी के साथ आप बहुत निकट सम्पर्क रखते हैं । मैं यह भी जानता हूँ कि एक बार कोहाट गये बिना समझौता कराने में मैं बहुत कम मददगार हो सकता हूँ । और कोहाट भी मुझे योग्य साथियों के साथ जाना चाहिए । मैं देखता हूँ कि रावलपिंडी में भी मेरी उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है । परन्तु वहाँ आना इस समय संभव नहीं, यद्यपि पहले अवसर पर, और दिसम्बर के पहले सप्ताह से देर में नहीं, मैं वहाँ आऊँगा । बम्बई गये बिना मेरा काम नहीं चल सकता ।

इस बीच इतनी दूर से जो मैं समझ सकता हूँ, उसके अनुसार परिस्थिति के बारे में अपनी राय आपको बता दूँ । कोहाट के प्रश्न को अखिल भारतीय प्रश्न मानना चाहिए । निर्वासितों का क्या होता है, इस बारे में सारे भारत की दिलचस्पी है । इसलिए निर्वासितों को सरकार को जतला देना चाहिए कि हिन्दू और मुसलमान नेताओं से हमें जो सलाह मिलेगी, हम उसके अनुसार करेंगे; इसलिए सरकार को इन नेताओं को बुलाना चाहिए और उनके द्वारा इस प्रश्न का निर्णय कराना चाहिए । मैं आशा रखता हूँ कि निर्वासितों को जेल वगैरह की धमकियाँ दी जायँ, तो वे उनसे न घबरायें । मैं यह भी आशा रखता हूँ कि पंडितजी और लालाजी आपके पास कल या परसों पहुँच जायँगे । आप यह पत्र उनके सामने रखिये । यदि वे मेरी राय से सहमत न हों, तो आप यह पत्र अपने मन से निकाल दीजिए । यदि पंडितजी और लालाजी की राय भिन्न हो, तो मेरी राय निर्वासितों के सामने रखने की बिलकुल जरूरत नहीं ।

सेवक

मो० क० गांधी

स्वामीजी,

आप के प्रश्न मिले हैं ।

(१) तपबल का आर्थिक उपयोग करने से उसका नाश होता है ।

(२) यज्ञ बल पाने के लिये किया जाता है । ऐसी स्थिति में बाह्य रक्षा की आवश्यकता रहती है ।

(३) राम के कार्यों के वर्णन में मुझे ऐसा प्रतीत नहि हुआ कि उन्होंने शरीरबल से विजय पाया ।

(४) कृष्ण की कथा में वहोतसी वातें केवल रूपक हैं। कृष्ण की कथा से आत्मवल दृष्टिगोचर होता है, न शरीरवल।

आज भी हम देखते हैं कि पृथ्वी में शरीरवल से युक्तिवल वढता है, युक्तिवल और शरीरवल आत्मवल के सामने तुच्छसे मालूम होते हैं।

आपका

मोहनदास गांधी

दिल्ली, ता० १७-११-१९२४

¶ प्रिय लालाजी,

आपका पत्र और भरूचा तथा लाला अमीचंद के मारफत भेजे हुए आपके सन्देश मुझे मिल गये। मैं आशा रखता हूँ कि मैं आपकी माँग के अनुसार नहीं कर रहा हूँ, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। अपनी अशक्ति के कारण मैंने सार्वजनिक रूप में नहीं वताये। ऐसे अवसर भी आते हैं, जव केवल स्वास्थ्य की जोखिम ही नहीं उठानी चाहिए, वल्कि तंदुरुस्ती की कुरवानी भी देनी चाहिए। परन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता कि यह ऐसा अवसर है। मैं वरावर खुराक लेता हूँ, मुझे नींद अच्छी आती है, थोड़ा चलता हूँ, वंगाल तक जा सकता हूँ और वम्वई जानेवाला हूँ। इसलिए मैं जानता हूँ कि रावलपिंडी के सफर से मैं कोई मर नहीं जाऊँगा। और मौत आनी ही है तो भी सिपाही के लिए रणक्षेत्र में मरने से ज्यादा अच्छा और क्या होगा? परन्तु क्या सचमुच यह अवसर ऐसी जोखिम उठाने लायक है? मैं अपनी मर्यादाएँ जानता हूँ। मैं वैद्य (फिजीशियन) नहीं, परन्तु शस्त्र-क्रिया करनेवाला डॉक्टर (सर्जन) हूँ। निर्वासित लोग इस समय सर्जन का चाकू नहीं चाहेंगे। और कुछ नहीं तो मुझे ऐसा भय है। और वे चाहते हों तो भी थोड़े दिन में कुछ विगड़ नहीं जायगा। शायद उस समय सर्जन के चाकू के लिए तैयार हो जायँ। इस वीच उन्हें सँभालने की जरूरत है और सेवा की आवश्यकता है। शायद कुछ सफाई की और थोड़ी शक्तिप्रद औषधि की भी जरूरत हो। इतना रावलपिंडी के लिए।

× × ×

आपका

मो० क० गांधी

महादेवभाई की

दिल्ली, ता० १८-११-१९२४

प्रिय राजा साहब,

आपके पत्र के लिए और आपकी शुभेच्छाओं के लिए आभारी हूँ। मेरे पास जो दस्तावेजी सामग्री है, उस पर से मेरे मंत्री द्वारा की गयी टिप्पणी का आपका उत्तर मैंने पढ़ लिया। इस प्रश्न को हल करने का एकमात्र संतोषजनक मार्ग मुझे यह दिखाई देता है कि मुझे स्वयं को अथवा मेरे किसी प्रतिनिधि को राज्य में आना और खुद सारी जाँच करना चाहिए, ताकि इस विषय में सत्ताधारियों को लिखा या कहा जा सके। तदनुसार मैं आपको लिखने का विचार कर ही रहा था कि उसी समय मि० एण्ड्रूज से मुझे साथवाली सामग्री मिली है। आप जानते होंगे कि मेरे उपवास के समय से 'यंग इंडिया' का सम्पादन करने में मि० एण्ड्रूज मेरी मदद कर रहे हैं। अखबार की कतरन प्रकाशन के लिए भेजी गयी थी, परन्तु एण्ड्रूज ने मुझे पूछे बिना प्रकाशित नहीं किया। इसे पढ़कर मैंने निर्णय किया कि प्रकाशित करने से पहले आपको बता दूं। इस बीच मैं देखता हूँ कि दूसरे अखबारों ने यह समाचार छाप दिये हैं। आपको आपत्ति न हो तो मि० एण्ड्रूज को ही आपके पास भेज दूं, जिससे वे स्वयं सब कुछ देख और जान सकें। वे कहते हैं कि वे आपको अच्छी तरह जानते हैं। और वहाँ जाने को भी तैयार हैं। यदि वे वहाँ आयेंगे तो सब काम ठीक कर सकेंगे। वहाँ कोई बुराई होगी तो उसे ठीक करने में आपको मदद दे सकेंगे और प्रजा पर जुल्म होते रहने की, जो लोग मेरे सामने हमेशा शिकायत करते रहते हैं उन्हें संतोष देने में मुझे भी सहायता दे सकेंगे। मि० एण्ड्रूज को भेजने के मेरे प्रस्ताव के बारे में आप अपना जवाब मुझे साबरमती तार द्वारा दीजिए।

कनका राज्य के पक्ष में भी कुछ अखबारों में बहुत बातें आयी हैं। सत्यवादी (उड़ीसा) के 'समाज' पत्र की कतरन साथ में भेज रहा हूँ।

सेवक

मो० क० गांधी

सर्वदल-सम्मेलन

ता० २१, २२ नवम्बर, १९२४

(नवजीवन, ३०-११-१९२४)

'बंगाल अर्थात् हिन्दुस्तान का एक अंग। बंगाल का दुःख सब प्रान्तों का दुःख। बंगाल पर आयी हुई आफत मेरी आफत। इस घड़ी मैं देश-

वन्धु के साथ खड़ा न रहूँ तो मेरा देशाभिमान और देशप्रेम निकम्मे हैं।' 'अहिंसा के क्षेत्र में जैसे-जैसे गहरा जाता हूँ, वैसे-वैसे नित्य नवीन प्रदेश दिखाई देते जा रहे हैं, नया-नया प्रकाश मिलता जाता है । इसलिए मैं सब अपरिवर्तनवादियों के साथ प्रत्येक कदम पर कहाँ मशविरा करने जा सकता हूँ ? उन्हें अहिंसा प्रिय है, वे अहिंसा के तत्त्व को पूजनेवाले हैं, इसलिए मेरे अहिंसा-धर्म को और उसके अन्तर्गत, मुझे नित्य दिखाई देने-वाली नयी वातों को वे इशारे में समझ जायँगे, ऐसी मुझे हमेशा आशा रहती है ।'—इन दो उद्‌गारों में वम्वई में हुए सर्वदल-सम्मेलन को वुलाने का हेतु और गांधीजी की वर्तमान प्रवृत्ति का सम्पूर्ण परिचय मिल जाता है । सम्मेलन का परिमित हेतु वंगाल के दुःख का सारे भारत को अनुभव कराना और उसके प्रति विरोध प्रकट करना था । वे हेतु पूरे हुए । सम्मेलन का दूरवर्ती और विशाल हेतु सब दलों से वर्तमान स्थिति के निवारण के लिए एक सामान्य कार्यक्रम स्वीकार कराना था । वह सफल नहीं हुआ । परन्तु परिमित हेतु की सिद्धि में विशाल हेतु की सिद्धि की आशा है ।

× × ×

परिमित हेतु का विचार करने के वजाय विशाल हेतु का विचार पहले करने का भी प्रस्ताव आया था । इसे गांधीजी ने घोड़े के आगे गाड़ी रखने जैसी उल्टी वात वतायी और सम्मेलन के अन्त में सवने स्वीकार किया कि गांधीजी का यह कहना सही था, क्योंकि विशाल हेतु की चर्चा में सम्मेलन फँस जाता, तो शायद आज भी सम्मेलन पूरा न होता और परिणाम लाये विना विखर जाना पड़ता । उसके वजाय आज परिमित हेतु—जो वंगाल में लागू किये गये अवैध कानून की निन्दा करने का, उसे रद्द करने की माँग करने का, और स्वराज्य स्थापित करने में ही परिस्थिति का निवारण है—यह सधा है । इसलिए सब दल ऊँचे हेतु के लिए थोड़ी-वहुत आशा रखकर गये हैं । ऊँचा हेतु साधने के लिए जो कमेटी वनायी गयी है, उसके कार्य में सव दलों के अखवार भी मदद देंगे, ऐसी आशा होती है, क्योंकि नरम दल के नेता ने और उस दल के पत्रों ने सम्मेलन के कार्य के वारे में संतोष प्रकट किया है और आशा व्यक्त की है । विदुषी वेसेण्ट ने भी अतिशय सन्तोष प्रकट किया है । इतना ही नहीं, कांग्रेस में आने का वचन भी दिया है । यह निश्चित है

कि वे अपने दल के साथ कांग्रेस में शामिल होंगी । ब्राह्मणेतर दल को भी सम्मेलन के कार्य से असंतोष नहीं हुआ ।

× × ×

विदुषी वेसेण्ट का मत प्रकट करते समय एक चीज खास तौर पर उल्लेखनीय मालूम होती है । उन्होंने अपनी राय जाहिर करते हुए एक वात पर खास जोर दिया है । 'मैं वंगाल में लागू हुए फरमान के पक्ष में थी, फिर भी मेरे विचार वहुत शान्ति से सुने गये ।' यह सम्मेलन के समस्त कार्य के वारे में सच था । सम्मेलन ने कुछ भी स्पष्ट फल उत्पन्न न किया हो, तो भी जिस शान्ति और सहिष्णुता का वातावरण स्थापित किया, उसके लिए यह सम्मेलन अपूर्व कहा जा सकता है । और यह वात देखते हुए, सम्मेलन में अंग्रेज हाजिर नहीं थे—खास तौर पर यूरोपियन संस्थाओं को आग्रहपूर्ण आमंत्रण दिया गया था उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया—यह उन्होंने भूल ही की । यह उन्हें समझायेंगी । वंगाल के वेहूदा फरमान के वारे में प्रस्ताव तैयार करने को जो कमेटी मुकर्रर की गयी थी, उसमें विदुषी वेसेण्ट को अत्यंत ममता से समझाने का मि० जिन्ना और मौ० मुहम्मद अली ने जो प्रयत्न किया था, उसका उन पर वड़ा असर पड़ा, इतना वताने की मैं आज्ञा चाहता हूँ । इसमें कुछ भी शंका नहीं कि यदि अंग्रेज आये होते तो उनसे विनय करने में भी कोई कसर न छोड़ी जाती । और इस सहिष्णुता और ममता के परिणामस्वरूप ही प्रस्ताव के दूसरे भाग—१८१८ का कानून वापस लेने तथा उसकी रू से पकड़े गये लोगों पर जरूरी हो तो खुले तौर पर मुकदमा चलाने का प्रस्ताव—विदुषी वेसेंट सहित तमाम नेताओं ने स्वीकार किया ।

× × ×

नरम दल के साथ गांधीजी के वार्तालाप के तरह-तरह के विवरण अखवारों में प्रकाशित हो रहे हैं । उनमें थोड़ा-सा या अर्द्ध सत्य है । मताधिकार की शर्त के तौर पर अनिवार्य रूप में हाथकता सूत भेजने का और खादी पहनने का प्रस्ताव और भी नरम करने की गांधीजी ने इच्छा प्रकट की, इस वात में कुछ भी सचाई नहीं । मताधिकार के वारे में गांधीजी के विचार 'एकता करनी है ?' लेख में विस्तार से वताये गये हैं । इस लेख में वताये गये विचारों के सिवा उन्होंने कुछ नहीं कहा । एक वात खास वताने लायक है । यह वता दूं कि सलाह-मशविरा तो कुछ भी नहीं हुआ था । केवल एक-दूसरे के विचार

ही जान लिये गये थे । श्री शास्त्रियार को जो आपत्तियाँ थीं, उनकी चर्चा की गयी, श्री चिन्तामणि को गांधीजी ने अपने विचार वताये और अन्त में उन्होंने उनसे स्पष्ट रूप में कहा था : 'श्री शास्त्रियार को—नरम दल को—डर है कि मैंने असहयोग को सिर्फ मुल्तवी रखा है, और अवसर आने पर मैं उसे फिर शुरू कर दूंगा। कृपा करके मेरी तरफ से उनसे कहिए कि उनका यह भय सही है । मैं तो असहयोग का त्याग कर ही नहीं सकता और मैंने उसे स्थगित रखा है तो केवल प्रतिकूल वातावरण के कारण ही । अनुकूल वातावरण मिलने पर मैं उसे अवश्य प्रारम्भ कर दूंगा । परन्तु इतना भी कह दूं कि उसे फिर से शुरू करने से मुझे रोकना आपके हाथ में है । आप ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं कि मेरे लिए असहयोग करने की वात न रहे । आप सरकार को समझा सकते हैं, आप अंग्रेजों को समझा सकते हैं और उन्हें जो करना है, वह करके असहयोग को अनावश्यक वना सकते हैं ।' इतनी स्पष्ट वातचीत के वावजूद नरम दल अच्छी संख्या में उपस्थित हुआ—श्री शास्त्रियार की अध्यक्षता में वड़ा हेतु सिद्ध करने के लिए कमेटी नियुक्त करने का प्रस्ताव पेश हुआ और पास हुआ—ये सव शुभ चिह्न हैं ।

× × ×

सव दलों से एक कार्यक्रम स्वीकार कराकर उन्हें कांग्रेस में शामिल करने के लिए जो कमेटी मुकर्रर की गयी, उसमें गांधीजी ने शुरू में ही चुने हुए मनुष्यों के नाम पेश किये थे । अन्त में उनके नाम वढ़ते-वढ़ते लगभग सौ-सवा सौ तक पहुँच जाते हैं । इससे कमेटी का काम लम्वा हो जायगा, उसमें अनेक कठिनाइयाँ आना संभव है, परन्तु सहिष्णुता को पराकाष्ठा तक पहुँचाने की इच्छा रखनेवाले गांधीजी ने नाम वढ़ाने पर भी कोई आपत्ति नहीं की । २० दिसम्वर तक सव दल एक होने की अपनी-अपनी शर्तें पेश करेंगे और कांग्रेस के वेलगांव-अधिवेशन से पहले ये शर्तें पेश हो जायँगी, इसलिए वेलगांव में एकत्र होनेवाले सव दलों में चर्चा करना भी वहुत अनुकूल होना संभव है । इस वीच मताधिकार की नयी शर्तों की कांग्रेस में भी चर्चा होगी, उसके पक्ष में लोकमत कितना मजवूत है, यह देखने का सव दलों को मौका मिलेगा । इस प्रकार मार्च में सर्वदल-सम्मेलन द्वारा नियुक्त कमेटी की दिल्ली में होनेवाली वैठक के लिए काफी सामग्री तैयार हो जायगी । गांधीजी ने सम्मेलन में और इस अंक में प्रकाशित लेखों में स्पष्ट कर दिया है कि खादी और चरखे सम्वन्धी

उनकी श्रद्धा अविचल है, यह श्रद्धा गलत सावित कर दी जाय तो वे सवके साथ मिल जायँगे, गलत सावित न की जाय तो वे अपने मत के वारे में अटल रहकर कांग्रेस को वड़े दल को सौंपकर स्वयं अकेले काम करेंगे।

× × ×

महासमिति में चर्चा करने की मुख्य वस्तु तो वंगाल का समझौता ही था। गांधीजी ने उसके विवरण में जो व्याख्यान दिया, वह अत्यंत महत्त्व का था। इस अंक में उसे देने की गुंजाइश नहीं। परन्तु उसमें से मुख्य उद्‌गार दिये विना काम नहीं चल सकता। इस व्याख्यान में उन्होंने अपनी मनोदशा जितनी स्पष्टता से व्यक्त की थी, उतनी शायद ही और कहीं व्यक्त की होगी। आरम्भ में सवको अपना-अपना स्वतंत्र मत प्रकट करने को कहकर उन्होंने एक वाक्य कहा, जो उनकी इस समय की इस सारी प्रवृत्ति पर वहुत प्रकाश डालता है। 'मेरी अचल श्रद्धा है कि विश्व में किसी भी प्रवृत्ति का परिणाम उसके लिए जो साधन काम में लिये गये हों उनके अनुरूप न हुआ हो, ऐसा नहीं हुआ। इसीलिए साधन और साध्य दोनों एक ही चीज हैं। यह वात आप स्वीकार करें तो इस समझौते को मान लेने के लिए जो मैं आपसे कहता हूँ, उसे आप समझ सकेंगे।' आज साध्य की जो दशा है, वह गत वर्ष हुई साधन की शिथिलता का प्रतिविम्व है, साधन को स्वच्छ करेंगे तो साध्य को जल्दी प्राप्त कर लेंगे, यह चेतावनी अपरिवर्तनवादियों और स्वराज्यवादियों दोनों को, इस उद्‌गार द्वारा, दी गयी है।

समझौते की चर्चा करने से पहले गांधीजी ने अपरिवर्तनवादियों से थोड़ी खानगी चर्चा की थी। उस चर्चा में उन्होंने समझौते का अर्थ अच्छी तरह समझाया और अपने भाषण में उसे अधिक स्पष्ट किया। 'देश के वुद्धिमान् और शिक्षित वर्ग का वड़ा भाग आज अलग दिशा में चल पड़ा है, व्यवहारदक्ष मनुष्य के नाते मुझे उसके साथ सलाह-मशविरा करना चाहिए। उसका विरोध करने में मुझे फल दिखाई नहीं देता। कांग्रेस को वहुत समय तक एक ही मत की नहीं रख सकते—इसके कई कारण हैं, परन्तु उनमें से एक यह है कि हम सहिष्णुता को धर्म समझें। उसमें सव दल होने ही चाहिए। अव इसका पहला कदम कांग्रेस में जो दल हैं उनके वीच समझौता है। यदि कांग्रेस ने वहुमत से निश्चय किया हो कि विधानसभाओं में जायँ, तव तो थोड़े-से अपरिवर्तनवादी जव तक कांग्रेस में रहें तव तक स्वराज्यवादियों को यह घोषित करने से नहीं रोक सकते

कि वे कांग्रेस की तरफ से विधानसभाओं में जा रहे हैं; क्योंकि कांग्रेस ने उस प्रवृत्ति को स्वीकार कर लिया होगा। उस स्थिति में और आज की स्थिति में अन्तर नहीं। वहुमत से किया गया निर्णय और सलाह-मशविरे से किया गया समझौता—दोनों का परिणाम एक-सा ही है। और इसके फलस्वरूप स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों कांग्रेस में समान दरजे के भागीदार बन जाते हैं।

× × ×

मताधिकार के वारे में वहुत चर्चा हुई थी। खरीदकर सूत भेजने के अधिकार से, असहयोग का कार्यक्रम स्थगित करने से, असहयोग वन्द हो जायगा, खादी के काम को धक्का पहुँचेगा, ऐसी दलीलें दी गयी थीं। गांधीजी ने खानगी वातचीत में आवेशपूर्वक कहा: 'उस असहयोग का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं, जिसे वाह्य प्रवृत्ति की गरमी चाहिए, जिसे हरएक क्षेत्र में असहयोग का कार्यक्रम चालू होने से ही गरमी मिल सके और इस गरमी के विना जो सूख जाय। मैं तो असहयोग और खादी के वारे में यह स्थिति चाहता हूँ कि वे अपने ही प्रकाश से चमकें, अपने ही वल पर स्वतंत्र, स्वाधीन खड़े रहें।' अपने भाषण में उन्होंने इसकी चर्चा जरा लम्वी की। उन्होंने यह वताया कि मताधिकार की वदली हुई शर्त के वारे में किसीको आपत्ति हो तो वह स्वराज्यदल को ही हो सकती है, अपरिवर्तनवादियों को नहीं। और अन्त में दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर उन्होंने ये हृदयंगम उद्गार प्रकट किये: 'स्वराज्यवादियों के वारे में भले ही यह कहा जाय कि उन्होंने चरखे के काम को निर्मूल करने के लिए मताधिकार की नयी शर्त स्वीकार की। यह समझौता हम दोनों पक्षों ने माना है तो उसकी तमाम शर्तों का पालन तन-मन से करने की शर्त पर ही माना है। हमारा कार्य सफल न हो सका, इसका कारण तालीम की शिथिलता है, तालीम की न्यूनता है। यदि हम इसमें वताये गये कार्यक्रम में सारे देश की शक्ति को लगा सकें तो विजय सामने ही है। यदि भविष्य में इस समझौते के शब्दों के अर्थ के वारे में मिथ्या चर्चा हो, इसकी शर्तों के वारे में कच्ची निष्ठा हो तो मैं अपंग हो जाऊँगा। यदि अपरिवर्तन-वादियों को यह समझौता सर्वथा त्याज्य लगे तो उसे सुधारने का वे मुझसे, देशवंधु से और मोतीलालजी से आग्रह कर सकते हैं। × × × आज तो हृदय के अन्दर डुवकी मारकर देखने की जरूरत है, सारा उपालंभ अपने सिर पर ओढ़ लेने की जरूरत है। मैं तो व्यवहारदक्ष आदमी ठहरा।

यद्यपि मैं सिद्धान्त में कभी झुक नहीं सकता, फिर भी व्यवहार में मैं स्वराज्यवादियों के आगे झुका हूँ, नरम दलवालों के आगे झुक रहा हूँ। कल अंग्रेज प्रायश्चित्त करने को तैयार हो जायँ तो उनके सामने भी आप मुझे झुकता पायेंगे। मुझे तो अहिंसा के सिवा और कुछ नहीं दीखता। अहिंसा के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म मालूम नहीं होता। मेरी यह श्रद्धा है कि इस अहिंसा की सदा विजय है। जब मेरी यह प्रतीति हो जायगी कि अहिंसा असफल है, तब मेरे लिए मौत ही मेरा विराम-स्थान रहेगा।'

× × ×

एक या दो भाइयों के सिवा सबको समझौता पसंद आया। कुछ बारीक चर्चाएँ हुईं। उनके बारे में यहाँ लिखने की जरूरत नहीं। सम्मेलन का फल क्या, यह कोई नहीं पूछता। सम्मेलन का परिणाम आना बाकी है, और उसे लाना सबके हाथ में है। मौ० शौकत अली ने पहले प्रस्ताव का समर्थन करते हुए एक सवाल पूछा था! 'यह प्रस्ताव तो किया, परन्तु इसे कोई न सुने तो क्या करेंगे? इसका अमल कराने के लिए आपके पास क्या ताकत है?' यह प्रश्न तो सदा के लिए ही रहेगा। यह ताकत होती तो शायद यह सम्मेलन करने की जरूरत ही न पड़ती। इस ताकत के आने के लिए गांधीजी ने अव्यवस्था में से वापस रचना करना शुरू किया है। ऐसा जान पड़ता है कि आज दस वर्ष पीछे चले गये हैं। श्री चिन्तामणि और देशबन्धु के भाषण अत्यंत ज्ञानपूर्ण और आवेशपूर्ण थे। ऐसे भाषण रौलट कानून के समय श्री शास्त्रियार ने भी किये थे, परन्तु उस समय गांधीजी सारे देश में आग लगा सके थे। आज देश में आग लगाने की स्थिति नहीं, इसलिए प्रस्ताव करके संतोष मानने की लज्जास्पद स्थिति में हमें पड़ना पड़ा है। इस स्थिति का निवारण आगामी कांग्रेस में पेश होनेवाले कार्यक्रम में और सब दलों के उसी कार्य क्रम पर एकीकरण में निहित है।

दिल्ली जाते हुए, ता० २-१२-१९२४

एक दिलचस्प बातचीत

(नवजीवन, ता० ७-१२-१९२४)

दिल्ली के हिन्दू-मुसलमान अभी एक नहीं हुए और न उनके बीच के झगड़े समाप्त हुए। पंच के मारफत उनका निपटारा करने का प्रयत्न हो ही रहा था, उसीके लिए गांधीजी १८ नवम्बर तक दिल्ली में रहे थे। परन्तु पंच मुकर्रर होता है तो कोई न कोई विघ्न आ जाता है।

दूसरा पंच नियुक्त हो तो कोई और बाधा आ जाती है। इस तरह करते-करते इन झगड़ों से पैदा होनेवाले लगभग सभी मुकदमे अदालतों को सौंप दिये गये और फैसले दिये जा चुके। अब समझौता किस चीज का हो ? परन्तु गांधीजी के सतत सहवास का इतना फल आया कहा जा सकता है कि वहाँ, किसी भी समय भभक उठनेवाली आग उतने दिन तो नहीं भभकी। वहाँ के निवास के प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों की मेरी कल्पना कुछ ऐसी है। फिर भी मैं सहवास के परिणामों की बात यहाँ नहीं करना चाहता। आज तो वहाँ के अनेक मधुर संस्मरणों में से एक याद आता है। दिल्ली में हो रही बातचीतें मैं कई बार इन पन्नों में दे चुका हूँ। ऐसी ही एक कलकत्ता और बम्बई के लिए जगह भर जाने के कारण देनी रह गयी थी। वह आज दे रहा हूँ।

बातें करने आनेवाले सज्जन दोनों अमेरिकी अध्यापक थे। एक मानसशास्त्र के, और दूसरे समाजशास्त्र के। समाजशास्त्र के अध्यापक तो सुविख्यात हैं और उन्होंने 'Non-Violent Coercion' (अहिंसात्मक जब्र) नामक भारत में अति प्रसिद्ध हुई पुस्तक का उपोद्घात लिखा है। इस पुस्तक में 'भारत में असहयोग' शीर्षक से, अध्ययनपूर्ण तथ्यों का एक प्रकरण है। इस पुस्तक को और उसके मुझ पर पड़े हुए असर को देखते हुए मेरा खयाल था कि उसका उपोद्घात लिखनेवाले अध्यापक और उनके वृद्ध मित्र कुछ सूक्ष्म प्रश्न पूछेंगे। ऐसे बारीक सवाल तो उन्होंने नहीं पूछे। कुछ सवाल तो ऐसे थे, जो अमेरिकी प्रवासी आम तौर पर पूछते हैं। परन्तु उनके उत्तरों के लिए यह बात संग्रह करके रखने लायक है। दोनों अध्यापक जाते-जाते कहने लगे: 'इनके उत्तरों की बेधड़क स्पष्टता से हम आश्चर्यचकित हुए। ऐसी साफगोई कहीं देखने को नहीं मिली।'

आरम्भ में कुछ बातें करके बताया कि हम भारत का अध्ययन करने निकले हैं और अमृतसर में जलियाँवाला बाग देखने जाने का इरादा है।

गां०: 'आसपास का दृश्य सारा पहले जैसा ही है। आपको चारों ओर से बन्द दीवारें देखने को मिलेंगी, परन्तु जमीन—खून से रँगी हुई जमीन—देखने को नहीं मिलेगी।'

प्र०: 'आपका क्या खयाल है, वहाँ जो कार्य हुआ, वह ब्रिटिश नीति के अनुरूप था या केवल एक सिरफिरे अधिकारी की गैरजिम्मेदार हरकत थी ?'

गां० : 'ब्रिटिश सरकार की सामान्य नीति के अनुरूप था—एक आत्यंतिक आवृत्ति कही जा सकती है, क्योंकि सन् १८५७ के बाद इतनी भीषण घटना नहीं हुई। इतने बड़े पैमाने पर हुई घटना याद नहीं आती। परन्तु यह चीज इनकी नीति में ही रही है—शासित प्रजा को डराना, अत्याचार से थर्रा देना ।' (यह बातचीत तो मिश्र की अन्तिम घटनाओं के पहले हुई थी ।)

प्र० : 'आपने २५ वर्ष सहयोग किया । क्या उस सहयोग के दौरान भी आपको महसूस हुआ था कि सरकार की नीति इसी प्रकार की थी ?'

गां० : 'हाँ, मेरा यह खयाल है । फिर भी उस समय मुझे ऐसा लगता था कि इस सरकार का संविधान शुद्ध है, इसमें ऐसी बातें स्वाभाविक रूप में हैं कि जनता की असली जरूरतों को पूरा करने में बाधा नहीं आती । इसलिए मैंने तो समय-असमय राज्य संविधान की प्रशंसा की थी और उसके प्रति अपना विश्वास प्रकट किया था ।'

प्र० : 'तो क्या पंजाब ने ही आपकी आँखें खोलीं ?'

गां० : 'आँखें तो खोलीं रौलट कानूनों ने । उन कानूनों का जो हेतु था, जिस ढंग से वे स्पष्ट लोकमत के विरुद्ध पास किये गये, उससे मेरी आँखें खुलीं । परन्तु मेरा विश्वास खिलाफत और पंजाब के प्रकरण सम्बन्धी सरकार की वृत्ति से पूरी तरह नष्ट हो गया । पहला आघात मेरे विश्वास को सन् १९१७ में पहुँचा था, जब मेरे मित्र मि० एण्ड्रूज ने गुप्त संधियों की तरफ मेरा ध्यान खींचा था । परन्तु उस अवसर पर जिन हालात में मैंने कोई कदम नहीं उठाया, उनकी चर्चा में मैं पड़ना नहीं चाहता । उससे मुझे पहला आघात लगा था । फिर तो लड़ाई खत्म हो गयी। सबने अच्छे की आशा रखी थी, हमारे देश ने भी आशा रखी थी । परन्तु हमें रौलट कानून की भेंट दी गयी और उसकी भेंट देते-देते वाइसराय ने 'सिविल सर्विस' का, ब्रिटिश व्यापारियों का पंजा यावच्चन्द्रदिवाकरौ कायम रखने के वचन दे डाले । इसलिए मुझे उन कानूनों का सख्त विरोध करना पड़ा था ।'

प्र० : 'वह कानून कभी अमल में तो नहीं आया था ?'

गां० : 'अमल में तो क्या आता ? बाद में वह रद्द भी कर दिया गया । उस विरोध से सारा देश तिलमिला उठा, जैसे लम्बी नींद से जागा हो ।'

प्र० : 'आप जो यह कहते हैं कि ब्रिटिश सत्ता ने भारतवासियों को नामर्द वना दिया है, इसका क्या अर्थ ?'

गां० : 'तीन तरह से । शरीर, मन और आत्मा, तीनों में नामर्द वना डाला है । देश का सत्त्व चूस लिया गया, मुख्य उद्योग-धंधों का नाश हुआ और आज देश दिन-दिन अधिक गहरी गरीवी में डूवता जा रहा है । इस प्रकार शरीर निर्वल होने में कसर नहीं रही । सरकार जो शिक्षा देती है, वह विदेशी भाषा द्वारा । इस विदेशी भाषा द्वारा दी जानेवाली शिक्षा से हमारी शारीरिक और मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। हमारे संस्कारों में वृद्धि नहीं होती, परन्तु हम नकलची वन जाते हैं, अंग्रेजी भाषा के रूढ़ प्रयोगों के गुलाम वन रहे हैं । और अंत में देश को जवरदस्ती निःशस्त्र कर देने के कारण देश की आत्मा का हनन हो गया है ।'

मानसशास्त्र के अध्यापक वोले : 'परन्तु क्या आप इस दशा को लाभदायक न वना सकते ? आप तो अहिंसावादी ठहरे । आप लोगों को आध्यात्मिक वलवाले नहीं वना सकते ?'

गां० : 'कैसे ? एक मनुष्य अनेक प्रकार के स्वादों के लिए छटपटाता रहता हो, वहाँ दूसरा उसे कोई भी स्वाद न करने की वात कहे तो क्या वह सुनेगा ? मुझे कैदखाने का अनुभव है, और कैदियों की स्थिति मैं जानता हूँ । आम तौर पर कैदी कैदखाने से वाहर कोई वड़े स्वाद नहीं करते, तरह-तरह की चीजों के लिए छटपटाते नहीं । परन्तु जेल में उसे दूसरी कोई वस्तु मिलने की मनाही होती है । इसलिए वार-वार उसकी वृत्ति उन वस्तुओं में दौड़ती है । प्रतिवन्ध ही इस प्रकार की लालसा उसमें उत्पन्न करता है । कैदी को स्वाभाविक तौर पर अपने अभावों, अपनी कठिनाइयों और प्रतिवन्धों को वढ़ाकर देखने की आदत हो जाती है । यही वात इस देश की स्थिति के वारे में कही जा सकती है । जिन प्रतिवन्धों के कारण शस्त्र वन्द किये गये हैं, ले लिये गये हैं, उन्हीं प्रतिवन्धों के कारण वे ये शस्त्र चाहते हैं । अंग्रेज जुल्म करने में तो संकोच नहीं करते, हर तरह से भारतीयों को गुलाम वनाना चाहते हैं और इस कारण भारतीय कुदरती तौर पर वदला लेने का मार्ग ढूंढ़ने को प्रेरित होते है और उन्हें शस्त्र-प्रयोग में मजा आता है ।'

प्र० : 'तो क्या भारतीयों में कोई उन्नत, धार्मिक या आध्यात्मिक भावना नहीं रह गयी ?'

गां० : 'भारत को आप एक बड़ा कैदखाना समझ लीजिए, तब जो बात मैंने कही, वह आपकी समझ में आ जायगी । आज सचमुच वह विशाल कारागार बना हुआ है, क्योंकि लोगों को पूरी तरह निःशस्त्र और निराधार कर दिया गया है । इसका असर मन पर जाने-अनजाने हुए बिना रहता ही नहीं ।'

प्र० : 'हमारे यहाँ भी हथियार ले लिये जाते हैं । हमारे यहाँ तो ऐसा असर नहीं होता !'

गां० : 'दोनों अलग-अलग स्थितियाँ हैं । यहाँ भी आपकी तरह स्वतंत्र होकर हमारे पास एक भी हथियार न हो तो कोई चिन्ता नहीं हो सकती । परन्तु प्रतिबन्ध लगते ही कठिनाई पैदा हो जायगी । अफ्रीका और यहाँ की जेलें मिलाकर मुझे दस-बारह जेलों का अनुभव हो गया है और मैं कह सकता हूँ कि कैदियों की मनोदशा कैसी होती है ।'

प्र० : 'हूँ । तब तो आपका स्पष्टीकरण यह है कि यहाँ पराधीन मनुष्य की मनोदशा काम करती है ? खैर, आपने तो विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा को भी एक कारण बताया । क्या अंग्रेजी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती ?'

गां० : 'नहीं बन सकती । सारे यूरोप में फ्रेंच सामान्य भाषा कहलाती है, परन्तु अंग्रेज अंग्रेज के साथ कभी फ्रेंच में बात करेगा ? हिन्दुस्तान में आपको यह दयाजनक दृश्य देखने को मिलेगा । अलग-अलग प्रान्तों के ही नहीं, परन्तु एक ही प्रान्त के लोग यहाँ एक-दूसरे के साथ अंग्रेजी में बोलते हैं और लिखते-पढ़ते हैं !'

पहले वृद्ध बोले : 'आप समस्त भारत के नेता कहलाते हैं । आप भी तो अंग्रेजी ही बोलते हैं ?'

गां० : 'नहीं । आपने मुझे लोगों के आगे बोलते हुए नहीं देखा । मैं हिन्दी में ही बोलता हूँ ।'

प्र० : 'माफ कीजिए, हमें पता नहीं था । तब क्या हिन्दुस्तानी से इस प्रश्न का निराकरण हो जायगा ?'

गां० : 'क्यों नहीं ? देश के कई करोड़ लोग हिन्दुस्तानी बोलते हैं, अथवा समझ सकते हैं; जब कि दस लाख आदमी भी अंग्रेजी बोलनेवाले और लिखनेवाले नहीं ।'

प्र० : 'आपने जो उपवास किया, क्या वह उस दुःख को प्रकट करने के लिए किया, जो आपको झगड़ों से हुआ ?'

गां० : 'नहीं, वह तो एक आड़ा-टेढ़ा परिणाम है।'

प्र० : 'कैसे ?'

गां० : 'क्योंकि मेरा प्रायश्चित्त सार्वजनिक हो गया। इसे गुप्त रखा नहीं जा सकता था और मेरी इच्छा भी नहीं थी। (यहाँ उपवास का मूल कारण, असहयोग से लोगों की मनोदशा पर हुआ उल्टा असर, वगैरह के बारे में गांधीजी ने विस्तार से बात की, जो पुनरुक्ति न होने देने के हेतु से छोड़ देता हूँ।) विधि और निषेध के दोनों पापों के लिए प्रायश्चित्त करना ही पड़ता है।'

प्र० : 'तब क्या यह दूसरे के लिए नहीं है ? ईसाई धर्म की भावनानुसार आपने नहीं किया ?'

गां० : 'ईसाई धर्म का मुझ पर बड़ा ऋण है, परन्तु प्रायश्चित्त की भावना मैंने उससे नहीं सीखी। मेरा प्रायश्चित्त मेरे पाप के लिए था, दूसरे के लिए नहीं था। दूसरों पर उसका असर पड़े अथवा दूसरे के कृत्य से मेरा पापभान जाग्रत हो, यह बात अलग है। प्रायश्चित्त की भावना मुझे हिन्दू-धर्म से मिली है। हिन्दू-धर्म में तपश्चर्या के हजारों दृष्टान्त भरे हैं।'

प्र० : 'तब ईसाई धर्म के प्रति आपका ऋण कैसा ?'

गां० : 'आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आम तौर पर ईसाई धर्म का मेरा पहला परिचय कैसे हुआ और मेरी अपनी धर्म-पुस्तक के लिए मुझे कैसे दिलचस्पी हुई। मैं तो यह मानता था कि मांस खाना और शराब पीना ही ईसाई बनना है। राजकोट में ईसाई बना हुआ एक आदमी ऐसा करता था, ऐसा कहा जाता था, इसलिए मुझे उसका पहला परिचय यह हुआ। इसी खयाल में मैं लंदन गया था। दो अंग्रेजों ने मुझे अपने साथ भगवद्गीता पढ़ने को कहा। मुझे तो उस समय भगवद्-गीता का भी कोई ज्ञान नहीं था। मैंने आर्नल्ड का अनुवाद लिया। इस अनुवाद का मुझ पर बड़ा असर हुआ। उसने ग्रंथ का हार्द समझकर अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये हैं। यह मैंने देखा और मैं उस पर मुग्ध हो गया। जो श्लोक मैं शाम की प्रार्थना में बोलता हूँ, वे मेरे अह-र्निश के साथी बन गये। इसके बाद शाकाहार देनेवाले एक जलपानगृह में एक मित्र मुझे मिले, जिन्होंने मुझे बाइबल दी। पुराने करार के एक के बाद एक कांड मैं पढ़ता गया और मुझे घृणा हो गयी। मन में प्रश्न उठा : 'क्या यही वह ईसाई धर्म है ?' परन्तु मैं तो उस मित्र को वचन दे

चुका था कि मैं वाइवल को आदि से अन्त तक पढ़ लूँगा । इसलिए मैं सिर नीचा करके पढ़ता ही रहा । वचन-पालन के आग्रह ने मुझे वचाया । अन्त में गिरि-प्रवचन आया और मैंने आनन्द की साँस ली। वह मुझे परम शान्ति और आश्वासनदायक सिद्ध हुआ ।'

अमेरिकी अध्यापकों को वहुत दिलचस्पी हुई । एक ने पूछा : 'ईसा ने दूसरों का दुःख सिर पर ओढ़ा और सवका उद्धार किया, इस वारे में आपकी श्रद्धा कैसी है ?'

गां० : 'मुझ पर इस विचार का वहुत असर नहीं हुआ ।'

प्र० : 'आपको आघात पहुँचा है ?'

गां० : 'नहीं । आघात नहीं पहुँचा, हिन्दू-धर्म में भी कुछ ऐसा ही है । परन्तु वाइवल के कुछ भागों का—जॉन की सुवार्ता के कुछ सुपरिचित भागों का—अर्थ मैं दूसरी तरह करता हूँ । मैं यह मानता ही नहीं कि कोई किसीके पाप धो सकता है और मुक्त कर सकता है । परन्तु एक के दुःख अथवा पाप से दूसरा दुःखी हो और दूसरा दुःखी हो रहा है, इस भान से एक की उन्नति हो, यह मानसशास्त्र-सिद्ध वात है । परन्तु एक मनुष्य करोड़ों के लिए मर सके और उनका उद्धार कर सके, यह वात मेरे गले नहीं उतरती ।'

मानसशास्त्र के अध्यापक का मन चक्कर में पड़ा । वे तो मानसशास्त्र और तत्त्वज्ञान के प्रश्नों पर आने लगे ।

प्र० : 'आप स्वतंत्र कल्पना-शक्ति को मानते हैं ?'

गां० : 'मैं मानता हूँ कि मैं हालात के अधीन हूँ । देश-काल के वश हूँ । फिर भी थोड़ी-सी स्वतंत्रता प्रभु ने मुझे प्रदान की है और उसका मैं संग्रह कर रहा हूँ ।

'मुझे लगता है कि धर्म और अधर्म का भेद करके उसमें जो पसन्द हो, उसे ग्रहण करने की मुझे स्वतंत्रता है । मुझे कभी नहीं लगा कि स्वतंत्रता नहीं है, परन्तु किसी कार्य को करने की स्वतंत्रता वदलकर वह कर्तव्य कहाँ वन जाता है, इसका निर्णय करना कठिन है । अवशता और परवशता के वीच की मर्यादा वहुत ही सूक्ष्म है ।'

परन्तु यह पांडित्य में पड़ने जैसा था और दूसरे अध्यापक को यह वहुत कुछ पसन्द नहीं था । उन्हें तो ब्रिटिश नीति-सम्वन्धी आरोपों के विचार ही आ रहे थे ।

वे कुछ यों वोले : 'आपने ब्रिटिश नीति की बहुत निन्दा की; आप कहते हैं कि लोगों को नामर्द बनानेवाला असर होता है। पहलेवाले मुगल इनसे खराव नहीं थे ? नादिरशाह ने कितना अत्याचार किया था ? आज तो सर्वत्र शान्ति है।'

गां० : 'इतिहास में नादिरशाह के हमलों के वारे में आप जो पढ़ते हैं, उससे यथार्थ चित्र नहीं मिलता। उसके हमले से आम लोग तो अछूते रहते थे। उसके पास मशीनगनें नहीं थीं, हवाई जहाज नहीं थे, आधुनिक सुधार के अन्य साधन नहीं थे, जिनके जरिये आम लोगों का संहार किया जा सके या उन्हें बरवाद किया जा सके। मुगलों के पास संघ-शक्ति थी, एकत्रित वल था, परन्तु उन्होंने लोगों का वीर्य-नाश नहीं किया। इसलिए उन सव विदेशियों के साथ अंग्रेजों की तुलना नहीं हो सकती।'

प्र० : 'क्या मराठों ने भी लोगों का वीर्य-नाश नहीं किया ?'

गां० : 'जरा भी नहीं। आपको '५७ के गदर के समय की स्थिति का पता नहीं। उस समय की दुष्टता के साथ और किसी दुष्टता की तुलना नहीं की जा सकती। रेल, तार और डाक-रहित देश कितना सुखी था, इसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। शिवाजी के हमलों से कितनों को नुकसान हुआ होगा ! लाखों तक तो वे पहुँच भी नहीं सके होंगे, जव कि आज अंग्रेज सरकार ने सात लाख गाँवों पर अपना जाल फैला दिया है।'

प्र० : 'परन्तु ब्रिटेन की छत्रछाया में शान्ति है, यह वात सच है न ?'

गां० : 'हाँ, यह कब्र की शान्ति है।'

प्र० : 'अंग्रेज जो करते हैं, वही वातें नवाव और राजा नहीं करते ?'

गां० : 'भले ही करें। मुझे उस भय से कंपन नहीं होता। इस आफत के लिए मैं तैयार हूँ। परन्तु वह आफत आज की आफत से कई गुना अच्छी है।'

प्र० : 'पूर्वी जुआ अधिक उत्पीडक नहीं हो जाता ?'

गां० : 'नहीं; वह सह्य हो जाता है। यह पश्चिमी जुआ असह्य है, क्योंकि पूर्वी के विरुद्ध विद्रोह करने का अवसर मिल जाता है और दोनों की लड़ाई में प्रजा के जीतने की भी पचास फीसदी संभावना रहती है।'

प्र० : 'परन्तु उन्हें भी अव तो मशीनगनें मिल सकती हैं ?'

गां० : 'हाँ; मिलें, परन्तु वे उनका उपयोग नहीं करेंगे।'

प्र० : 'आपको स्वराज मिले और बाद में आज जो राजा हैं, उनमें से एकाध खड़ा होकर आपको अपने पञ्जे में नहीं ले सकता ?'

गां० : 'भले ही ले । कुछ अव्यवस्था हो सकती है, परन्तु ऐसा कोई राजा सात लाख गाँवों पर अधिकार नहीं कर सकता । मगर यह सारी कल्पना आप किसलिए करते हैं ? ब्रिटिश सत्ता नष्ट हो जायगी, परन्तु अंग्रेज हमें छोड़कर नहीं जायँगे । और ऐसा हो और हमारी कमजोरी के कारण हमारे यहाँ अंधाधुंधी हो जाय तो हम अपनी कमजोरी स्वीकार कर लेंगे । थोड़े दिनों में हमारी ही भूलें हमें दिखाई देंगी और हम शान्त हो जायँगे । और अहिंसा से ही हम स्वराज्य ले सके, तब तो कुछ भी डर नहीं । आपको कल्पना नहीं होगी कि अहिंसा से स्वराज लेने का मेरा मनोरथ रहा है ।'

प्र० : 'परन्तु क्या लोग मारकाट नहीं करेंगे ? उत्तर-पश्चिम सीमा के लोगों के लिए आप क्या कहते हैं ?'

गां० : 'यह एक हौआ अंग्रेजों का खड़ा किया हुआ है और खूबी यह है कि अफगानिस्तान को भारी रकम देने पर भी थोड़े बखेड़े तो होते ही रहते हैं ।'

प्र० : 'अफगान आयें तो ?'

गां० : 'आयेंगे तो हम सँभाल लेंगे । हमारे स्वराज्य में दूसरे देशों की प्रजा को बदलने की बात भी है । जैसे पहले दूसरे लोग इस देश में आकर रहे, वैसे अफगान आयेंगे तो उनका भी हम समावेश कर लेंगे ।'

इन बातों का अन्त नहीं था । मानसशास्त्री इससे उकता गये, इसलिए उन्होंने दूसरी बात शुरू की ।

प्र० : 'पूर्व और पश्चिम को एक-दूसरे को कितना लेना-देना है ?'

गां० : 'ब्रिटेन और भारत को ही दृष्टि में रखकर बात कर रहे हैं ?'

प्र० : 'हाँ ।'

गां० : 'मेरा खयाल है कि अंग्रेज यहाँ कुछ देने नहीं आये । उनके सहवास से हमें कुछ नहीं मिला । जो कुछ मिला दीखता है, वह सहवास के कारण नहीं, उसके बावजूद है । मेरी मान्यता के अनुसार भारत पश्चिम को अहिंसा-धर्म सिखायेगा । यह चीज वह न दे सके तो मुझे भारत के लिए अपनी जन्मभूमि के रूप में अभिमान नहीं रहेगा । यह मेरा सपना ही हो, परन्तु इस सपने का मैंने बहुत समय से पोषण किया

है । यहाँ अनेक युगों से इस धर्म की शिक्षा दी जा रही है, यहाँ का जलवायु इस धर्म के अनुकूल है, लोगों की रगों में वह आम तौर पर समाया हुआ है ।'

प्र० : 'बौद्धों के समय से ?'

गां० : 'उनसे भी पहले से । यह धर्म भुला दिया गया था, बुद्ध ने इसे प्रधानता दी । मेरा अन्तर मुझे कहता है कि संसार के लिए भारत का यही सन्देश हो सकता है ।'

समाजशास्त्री बोले :

'मैं समाजशास्त्र का विद्यार्थी हूँ । तिरस्कार, द्वेष जैसी भावनाएँ शान्ति और अहिंसा की बाधक हैं । मैं स्वीकार करता हूँ कि पश्चिम को भी अहिंसा स्वीकार करनी ही होगी । हमें अपनी नीति ही बदलनी पड़ेगी ।'

वृद्ध मानसशास्त्री ने फिर शंका की : 'अहिंसा-धर्म आपके अन्तर से निकला है या अनुभव से ?'

गां० : 'दोनों से । मैंने इसे शुद्ध नीति के रूप में निकाला है और समाज के अध्ययन के बाद और अनुभव के बाद भी मैंने यही नियम निकाला है ।'

प्र० : 'आप चमत्कार को भी मानते हैं ? आग पर चलने आदि की बातें सुनते हैं, ये क्या हैं ?'

गां० : 'ये सच हो सकती हैं । परन्तु मैंने इन पर कभी ध्यान नहीं दिया, इनमें कभी दिलचस्पी नहीं ली । हमारे शास्त्र तो इसका निषेध करते हैं । शास्त्र कहते हैं कि आप यदि इसके मोह-जाल में फँस गये तो जन्म-मरण के चक्कर में फँसे रहेंगे और फिर मुक्ति का मार्ग ही नहीं रहेगा । परन्तु मैं यह नहीं मानता कि ऐसी शक्ति प्राप्त करना अशक्य है ।'

प्र० : 'परन्तु इस चमत्कार-शक्ति का लोक-कल्याण के लिए उपयोग नहीं हो सकता ?'

गां० : 'नहीं; यदि ऐसा होता तो ऐसे चमत्कार करनेवाले लोक-कल्याण करते । और यह ऐसी शक्ति ही नहीं, जो आसानी से प्राप्त की जा सके या जिसे प्राप्त करने की आवश्यकता हो । यदि ऐसा हो तो सत्यानाश हो जाता । प्रकृति को उलट देने में क्या आनंद ? किसीको यही तरंग आ जाय कि मुझे तो सहारा के रेगिस्तान में जाकर पानी निकालना है और वह निकाल सके तो उसमें क्या है ? प्रकृति को उलट देने से क्या लाभ ?'

वृद्ध बातूनी तो होते ही हैं । उन्हें यह सूचना न दी जाती कि हमारा प्रार्थना का समय हो गया है, तो कहा नहीं जा सकता कि ये बातें कहाँ तक चलतीं । परन्तु बहुत दिनों में गांधीजी ने इतनी लम्बी बातें विविध विषयों पर कीं और विदेश से इस देश को जानने के लिए आये हुए अध्यापकों को संतुष्ट करके रवाना किया ।

पंजाब का पत्र

(रावलपिंडी, ता० १०-१२-'२४)

दिसम्बर की दूसरी तारीख को चलकर चौथी को लाहौर पहुँचे । ये चार दिन सुबह से आधी रात तक काम से भरे हुए ही बीते हैं । चौथी को लालाजी के साथ खूब बातें करने के बाद पाँच को सवेरे अमृतसर गये । अमृतसर में प्रान्तीय खिलाफत सम्मेलन था । मौ० शौकत अली तो दिल्ली से ही गांधीजी के साथ हो गये थे । हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए 'सरकार (गांधीजी) जहाँ भेज देंगे या ले जायेंगे, वहाँ जाऊँगा ।' यह वे सब जगह कहते फिरते हैं । हकीम साहब भी रामपुर गये थे । वहाँ से सीधे अमृतसर आ पहुँचे थे । मौ० मुहम्मद अली और डॉ० अनसारी ६ तारीख को लाहौर आ पहुँचे थे । पंजाब जाकर हिन्दू-मुसलमान नेताओं से जी भरकर बात कर ली जाय, उन्हें आँखों के सामने लड़ते-झगड़ते देखा जाय और झगड़े का निपटारा करने की कोशिश की जाय, इस इरादे से पंजाब पर यह बड़ा हल्ला हुआ था । यह तो नहीं कहा जा सकता कि हल्ले का परिणाम जीत में आया, परन्तु यह कहा जा सकता है कि जी हलका हुआ । लाहौर में लालाजी के घर हिन्दू-मुसलमान नेताओं के बीच जो खानगी बातचीत हुई, वह बहुत साफ दिल से, सीधी और पेट भरकर हुई ।

यहाँ अविश्वास इस हद तक पहुँच गया है कि उसकी कल्पना बाहर के प्रान्तवालों को आँखों देखे बिना नहीं हो सकती । हिन्दू-मुसलमानों के दिल ही नहीं बिगड़ गये हैं, बल्कि हिन्दुओं के विरुद्ध सिक्खों के दिल और सिक्खों के विरुद्ध हिन्दुओं के दिल भी बिगड़ गये हैं । कभी हिन्दू-मुसलमान के झगड़े से सिक्ख खुश होते हैं, लाभ उठाते हैं; कभी मुसलमान सिक्ख को एक खुदा का माननेवाला कहकर उसकी खुशामद कर लेता है । यहाँ पंजाब में हिन्दुओं के जलसों में—अथवा जहाँ हिन्दू बड़ी

संख्या में हों वहाँ—कौमी नारा (राष्ट्रीय जयकार) 'वन्दे मातरम्' पुकारा जाता है और मुसलमान जलसों में केवल 'नारये तकवीर' (ईश्वर की महाशक्ति की पुकार)—'अल्लाहो अकवर' ही पुकारा जाता है। हिन्दुओं को ऐसा लगता है कि कांग्रेस के नेताओं ने उनकी कोई सहायता नहीं की, मुलतान के समय और दूसरे दंगों के समय कोई मदद नहीं दी। मुसलमानों को राष्ट्रीय सभाओं के साथ कोई सरोकार नहीं लगता। इस सारे वातावरण में भीतर-भीतर व्यक्तिगत झगड़ोंवाले नेता परेशान होकर उस वायुमण्डल के वशीभूत हो जायँ तो भी क्या आश्चर्य!

खानगी जलसे ६ और ७ तारीख को हुए थे। इन जलसों से कुछ-न-कुछ फल निकले, इसीलिए हकीम साहव, डॉ० अनसारी और मौलानाओं को गांधीजी ने वुलाया था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसका परिणाम सन्तोपजनक आ गया, अथवा कोई अंतिम परिणाम निकल आया। हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों के दूसरे कारणों की चर्चा नहीं हुई। यों कहूँ तो चलेगा कि एक ही वात की चर्चा हुई कि विधानसभाओं, नगर-पालिकाओं और प्रत्येक स्थानीय संस्थाओं में हिन्दू-मुसलमानों को कितनी जगहें मिलनी चाहिए। सारे झगड़े की जड़ इसीमें वतायी गयी, इसलिए इसकी चर्चा हुई। इस चर्चा का परिणाम 'यंग इण्डिया' में गांधीजी ने स्वयं ही दिया है। वेलगाँव जाने के वाद अधिक चर्चा के फलस्वरूप कुछ निपटारा हो तो हो।

५ तारीख को अमृतसर गये। वहाँ दो-तीन सोची हुई वातें वन गयीं। सरदार मंगलसिंह गांधीजी को दरवार साहव में अकालियों से मिलाने ले गये। जलसा जवर्दस्त था। वहाँ तो कोई भाषण करने का गांधीजी का विचार नहीं था। परन्तु मंगलसिंहजी ने वड़ा कार्यक्रम वना रखा था। वहाँ लम्वी-लम्वी तकरीरें हुईं। सरदार मंगलसिंह ने अकालियों के पिछले दो वर्षों के दुःख वताये—हजारों की संख्या में जेलों में जाना, जेलों में अनेक प्रकार के दुःख, एक की मृत्यु वगैरह वातें वयान कीं। जव सरदार साहव यह वर्णन कर रहे थे, तव गांधीजी ने आँख में कुछ गिर जाने के कारण या किसी न किसी कारण से आँख मली। इस पर सरदार साहव ने दुःखों को ऐसा वताया कि गांधीजी जैसों की आँख में भी आँसू आ गये! इसके वाद दूसरे सरदार साहव उठे। उन्होंने कहा: 'गांधीजी जैसे सच कहनेवाले संसार में वहुत थोड़े होंगे। हमारे आन्दोलन के सम्वन्ध में भी वे अच्छी तरह देख-भालकर दुनिया से कहें कि कितनी सचाई,

कितनी अहिंसा भरी है । हमें राजनैतिक उद्देश्य पूरे नहीं करने हैं, केवल धार्मिक सुधार ही हमारा लक्ष्य है' इत्यादि । इन दोनों बातों का आधार लेकर गांधीजी ने अपना व्याख्यान बाँधा । सारा भाषण यहाँ देने की गुंजाइश नहीं; परन्तु इन दो बातों को ध्यान में रखकर जो कहा, उतना तो दे ही दूँ । पहली बात के सम्बन्ध में कहा : 'सरदार साहब ने बताया कि उनकी कही हुई कथा के कारण मेरी आँखों में आँसू आ गये । मुझे बताना चाहिए कि मेरी आँख में से आँसू नहीं निकले । मैंने इतना अधिक दुःख देखा है कि मेरा दिल पत्थर जैसा कठोर हो गया है । और ऐसा लगता है कि जितना दुःख देखा है, उससे हजारगुना ज्यादा देखना पड़ेगा । हमारी लड़ाई अभी कितनी लम्बी होगी, यह नहीं कहा जा सकता । और हमें अपनी ही भूलों के कारण अधिक संकट उठाने पड़ें, तो आश्चर्य नहीं । इसलिए मैं तो छाती कड़ी करके बैठा हूँ । आँसू बहाने से संकट सहने की शक्ति नहीं आती । वज्र के समान कठोर हृदय करके, सहन करते रहने से ही यह शक्ति बढ़ायी जा सकती है ।'

दूसरे सरदार साहब के वचनों को ध्यान में रखकर गांधीजी बोले :

'आपके संकट आँखों नहीं देखे, परन्तु मैंने उनके बारे में सुना खूब है और आपने जिस धीरज और सहनशीलता का सबक दिया है, वह अपूर्व है । परन्तु आपको सचाई के बारे में जो राय माँगनी पड़ी, यह बात ही बताती है कि आप पर आक्षेप होते हैं । आप कुछ बातें छिपाते तो नहीं हैं, आपके उद्देश्य गूढ़ तो नहीं हैं, ऐसे आक्षेप कई दिशाओं से होते हों तो आपको इस बारे में खूब सावधानी रखने की जरूरत है । बम्बई में जो सम्मेलन हुआ, उसमें मैंने सब दलों को इकट्ठा करने का प्रयत्न किया । बेलगाँव में भी यही प्रयत्न करनेवाला हूँ । स्वराज्यवादियों के साथ अपने समझौते में भी विरोधी पक्ष को प्रेम के लिए सिद्धान्त छोड़े बिना जितना दिया जा सकता है, उतना दे दिया । मैं आपसे भी विनती करता हूँ कि आप भी अपनी कौम में जो अनेक वर्ग हो गये हैं, उन्हें एक करने की कोशिश कीजिए । गुरुद्वारों का कब्जा यदि उनमें से किसीको चाहिए तो उन्हें सौंप दीजिए और जगत् को यह सिद्ध कर दीजिए कि आप गुरुद्वारों का कब्जा नहीं चाहते, परन्तु केवल उनमें सुधार चाहते हैं ।'

शहर के लोग मानपत्र देने का आग्रह करते हुए आये । 'कौन मानपत्र देता है ?' गांधीजी ने पहले यह प्रश्न किया । 'क्या हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, सनातनी, आर्यसमाजी, तनजीमी—सब शामिल हैं ? यदि शामिल

हों तो मानपत्र लूं ।' अन्त में जो आदमी आग्रह करने आये थे, वे सब संस्थाओं के मंत्रियों से हस्ताक्षर ले आये, इसलिए मौ० शौकत अली के आग्रह से मानपत्र लेना मंजूर हुआ। मानपत्र जलियाँवाला बाग में दिया गया। आठ-दस हजार मनुष्यों की सभा इन दो-तीन बरसों में पहली बार हो रही है, ऐसा लोग कहते थे। जो मानपत्र दिये गये, उनमें हिन्दू-मुसलमान की अनबन का उल्लेख तो था ही, यह भी लिखा था कि 'हमारे नेता तो एक-दूसरी कौम को लड़ाने के लिए बाँहें चढ़ाये फिरते रहते हैं !' जवाब देते हुए पहले गांधीजी ने जयकारों के बारे में कुछ मर्मभेदी वचन कहे:

''महात्मा गांधी की जय' तो जब मैं सन् '२१ में यात्रा के लिए निकला, तब तो सुनने की आशा जरूर रखता था। अमृतसर में आया, तब भी सुनने की आशा रखी थी। उस समय मुझे बहुत दुःख तो होता ही था और मैं कहता था कि मुझे यह सुनकर दुःख होता है, क्योंकि मेरा नाम लेकर आपने बुरा काम किया है। इसलिए मैं कहता था कि मेरा नाम भूल जाइए और अच्छे काम कीजिए। फिर भी मैं यह जयकार बरदाश्त कर लेता था, क्योंकि उस समय जयकार के साथ 'हिन्दू-मुसलमान की जय' भी सुनता था और मैं समझता था कि मेरी 'जय' बोली जाने का अर्थ मेरी 'जय' नहीं, हिन्दू-मुसलमान एकता की 'जय', स्वराज्य की 'जय', चरखे की 'जय' बोली जा रही है; सत्य की 'जय' बोली जा रही है, अहिंसा की 'जय' बोली जा रही है। परन्तु आज तो मुझे यह 'जय' सुनकर कँपकँपी पैदा होती है। यह मान लो कि मैं तो मुर्दा हो गया हूँ। मुझे घड़ीभर भी जीना अच्छा नहीं लगता। ईश्वर से हर समय प्रार्थना करता हूँ कि मुझे यदि वह जिलाना चाहता हो तो हिन्दू-मुसलमान वगैरह कौमों को एकदिल बना, दोनों जातियों के मन से अदावत, ईर्ष्या, द्वेष, जहर निकाल दे। ये चीजें यदि हमारे दिल से नहीं निकलेंगी तो गुलामी हमेशा के लिए हमारे भाग्य में लिखी हुई है। यहाँ आपने परिपाटी के अनुसार 'महात्मा गांधी की जय' तो बोली, मगर किसीने 'हिन्दू-मुसलमान की जय' नहीं बोली और कोई बोलता तो कोई उसे अपनाता भी नहीं। जब आपने अपने मानपत्र में स्वीकार किया कि आपने दो वर्ष तक शर्मनाक काम ही किये हैं, तो आपने जिस बुलंद आवाज से दूसरी 'जय' बोली, उतनी ही बुलंद आवाज से हिन्दू मुसलमान की 'जय' बोलिए। (हिन्दू-मुसलमान की 'जय' के कई नारे लगाये गये) इस जय में यह

बात आ जाती है कि हमारे लिए झगड़ा हराम है, हिन्दू-मुसलमान या किसी भी धर्म में दूसरे धर्म से झगड़ा करना हराम है। किसी भी मनुष्य को मजबूर करने में धर्म की निन्दा है।'

यह बताकर कि झगड़ों के लिए आम लोगों को नहीं, नेताओं को ही दोष देना है, अदावत और लड़ाई की बात करनेवाले नेताओं को छोड़ देने की सलाह दी, अपने पंजाब में आने का हेतु समझाया और बताया कि जिस अमृतसर में हिन्दू-मुसलमानों के खून की नदी बही थी, जिस अमृतसर में पेट के बल रेंगना पड़ा था, जिस लाहौर में कोड़ों की मार पड़ी थी और अनेक अपमान सहने पड़े थे; उसी लाहौर और अमृतसर में तो झगड़े होने ही नहीं चाहिए। परन्तु झगड़े की जड़ ही वहाँ से निकली है। इसलिए उसे दूर करने की कोशिश के लिए हकीमजी को लेकर आया हूँ। 'हकीमजी खुद शरमा रहे हैं और आपको शरमाने के लिए आये हैं।'

'गांधी तो मुसलमानों का हो गया है', इस आरोप की बात करते हुए उन्होंने बताया :

'आप कहते हैं कि गांधी मुसलमानों का हो गया है, उनसे कुछ नहीं कहता, सिर्फ आर्यों से कहता है। मुझे बता देना चाहिए कि मुझे मन में अभिमान होता है कि मैं जाने-अनजाने मुसलमानों को अधिक नहीं कहता, यह कितना अच्छा है! मैं हिन्दू हूँ, इसीलिए हिन्दुओं से अधिक कहना मेरा धर्म है। मुसलमानों को किसलिए और किस तरह कहूँ? कुरान शरीफ की बेअदबी न करनी हो, तो मुझे तो उसकी तरफ वैसे देखना चाहिए, जैसे मुसलमान करते हैं। वे जैसा करें, वैसा करना चाहिए। मैं अपने मन्दिर में जाता हूँ, तब मुझे किसी हिन्दू भाई की तरफ देखकर कुछ करना पड़ता है? परन्तु दरबार साहब में गया, तब किस तरह सिर झुकाऊँ, किस प्रकार अदब दिखाऊँ, यह जानने के लिए मैं सरदार मंगलसिंह की ओर देखता ही रहता था। इसी प्रकार मैं सब धर्मों के लिए सम्मान सीख रहा हूँ और आज कह सकता हूँ कि मुझे जितनी मुहब्बत हिन्दू-धर्म के लिए है, उतनी ही इस्लाम के लिए, सिक्ख धर्म के लिए और ईसाइयों के धर्म के लिए है। इसलिए मैं कट्टर सनातनी होने पर भी किसी भी धर्म के लिए मरने की ताकत रखता हूँ। मुझे कोई कहे कि मुझे अपने धर्म के लिए अथवा किसी खास धर्म के लिए प्रेम नहीं, तो मैं पूछूँ कि ऐसा अविश्वास करनेवाले से अधिक अज्ञान किसका हो सकता

है : परन्तु मैं क्या करूँ ? हमने अपने दिल ऐसे बना डाले हैं कि हर मामले में मैं मुसलमानों या सिक्खों की ही भूल न देखूँ तो ऐसा लगता है कि मेरा विश्वास हरगिज नहीं करना चाहिए । मैं तो कहता हूँ कि मेरा काम अच्छा लगता हो तो उसके अनुसार कीजिए, नहीं तो मुझे छोड़ दीजिए । मेरे काम के सिवा किसी भी वात की तरफ न देखिए । मेरे जीवन की एक भी वात गुप्त नहीं । सारी चीजें, मेरे तमाम काम, मैं खुलेआम करता हूँ । मैं कहता हूँ कि मैं तो हिन्दुओं का, मुसलमानों का, सिक्खों का दास हूँ । मुझे वेवफा पाओ तो मुझे कत्ल कर दो । मेरे जैसा आदमी, जो सचाई और अहिंसा का पाठ देना चाहे, वही आपको उल्टे रास्ते चलाता हो तो उसका कत्ल कर दो—मेरे लिए झूठ वोलना भी हिंसा है । मैं डर के मारे कुछ करता हूँ, तव भी कत्ल के लायक हूँ। नेता वनना और साथ-साथ डरना मेरे लिए हराम है । यदि सत्य छोड़ूँ, शान्ति छोड़ूँ और भय न छोड़ूँ—इन तीनों वातों में फेल होऊँ तो समझ लेना कि मैं नापाक हो गया और यह मान लेना कि कत्ल के लायक हो गया ।'

खिलाफत-सम्मेलन १० वजे शुरू होनेवाला था, वह तीन वजे आरम्भ हुआ; और अध्यक्ष का भाषण छह वजे पढ़ना शुरू हुआ । इसलिए गांधीजी का अमृतसर चार वजे छोड़ना संभव नहीं हुआ। अन्त में भी अध्यक्ष महोदय का भाषण पूरा होने से पहले ही गांधीजी को वोलने का अवसर देने की आवश्यकता हुई । अन्यथा वे आखिरी गाड़ी भी नहीं पकड़ सकते थे । अध्यक्ष जफर अली खाँ साहव ने कुछ वातें खास जोर देकर गांधीजी को सुनायीं । सनातन धर्म-सम्मेलन के प्रस्तावों का—पंडित मालवीयजी के सामने हुए प्रस्तावों का—एक और हिन्दू नेता के ऐक्य-विरोधी लेखों का खास उल्लेख किया। सम्मेलन में वोलते हुए गांधीजी ने वताया :

'तीन वर्ष पहले हम जितने मनुष्यों को प्रभावित कर सकते थे, उतने मनुष्यों को आज नहीं सँभाल सकते । आज तो केवल काम करनेवालों के साथ सलाह-मशविरा करने की वात रही है । आज के झगड़ों का कारण आम लोग नहीं, नेता हैं, जो उन्हें सहन कर लेते हैं; आम लोग नहीं, परन्तु मैं हूँ, हकीमजी हैं, किचलू हैं, सत्यपाल हैं । इसलिए आप अध्यक्ष महोदय से कहिए कि कल लाहौर में जो नेताओं का जलसा होने-

वाला है, वहाँ तमाम मुसलमान नेता जायँ और कल दोपहर तक यह सम्मेलन मुल्तवी रखा जाय, ऐसी व्यवस्था करें।'

[अध्यक्ष महोदय ने सम्मेलन की राय ली और सबने 'आमीन' कहा।]

'अध्यक्ष महोदय का सारा कथन मैंने ध्यान से सुना और मुझे बहुत दुःख हुआ। मुझे खयाल हुआ कि अध्यक्ष महोदय ये बमगोले किसलिए फेंक रहे हैं? हम एकता चाहते हों तो एक-दूसरे के खिलाफ शिकायत कब तक करेंगे? आपसे मैं क्या कहूँ? परन्तु आपने मुझे बड़ा बनाया है, यद्यपि मैं अल्पात्मा हूँ, खाकसार हूँ—इसलिए आपकी और हिन्दुओं की गुलामी करनी है, इसलिए कुछ कहना होगा। जब जफर अली खाँ साहब ने मालवीयजी की शिकायत की, तब मुझे लगा कि मेरे ऊपर पत्थर पड़ा। मुझे नहीं लगता कि मालवीयजी मुसलमानों के दुश्मन हैं। यदि हों तो मैं जरूर वैसी घोषणा करने में संकोच न करूँ। परन्तु मान लीजिए, वे दुश्मन हों तो भी उनकी शिकायत करने से कुछ नहीं होगा। यदि आप मानते हों कि हिन्दू-मुसलमानों को एक होना चाहिए तो आपको मालवीयजी से भी काम लेना होगा। मुझे तो आप दोस्त मानते हैं, इसलिए मुझसे काम लेना आसान है—यद्यपि यह तो ईश्वर ही कह सकता है कि मैं आपका दोस्त हूँ या दुश्मन, परन्तु मालवीयजी को आप दोस्त नहीं मानते, फिर भी उनके बिना हिन्दुओं के साथ मेल करने का काम नहीं हो सकता। इसलिए उनके दोष निकालते रहने से कुछ नहीं होगा। हिन्दू तो आज कहते हैं कि मैं मुसलमानों का हो गया हूँ—कुछ गुजराती अखबार डोंड़ी पीटकर कहते हैं कि मैं तो मुसलमान बन गया हूँ। परन्तु मुझे ऐसा कहने से क्या फायदा? हिन्दुओं से भी मैं यही बात कहता हूँ कि हकीमजी बुरे हों, अलीभाई बुरे हों, तो भी उनसे प्रेम करने से ही काम हो सकेगा; अविश्वास से नहीं होगा। आपसे भी कहता हूँ कि ऐ खुदापरस्तो, अजान की आवाज सुनकर कुछ भी काम छोड़कर बंदगी करनेवालो, आपको यह शोभा नहीं देता कि आप यह कहकर कि फलाँ आदमी विश्वास के योग्य नहीं, उसे निकाल दें। आप पैगम्बर साहब का अनुसरण करें। उन पर हमला करनेवाले के हाथ से तलवार लेकर उन्होंने उस पर न उठाकर उसे क्षमा प्रदान की और ऐसा करके इस्लाम को फैलाया। अध्यक्ष महोदय से मैं सिर झुकाकर यही बात कहूँगा कि लालाजी या मालवीयजी का भी विश्वास न छोड़ें। लालाजी साफ दिल के हैं, परन्तु डरते हैं। फिर भी वे यह नहीं चाहते कि पंजाब में मुसलमान

अधिक हैं, वे कम हो जायँ । यदि वे ऐसा चाहते हों तो मैं उनका विरोध करूँगा । परन्तु ऐसे कोई हों तो भी आपका तो फर्ज है कि आप खुदा की वन्दगी करें, ताकि ऐसों के दिल वह साफ करे। हिन्दू यदि डरते हों, तो उन्हें मैं डर छोड़ने की सलाह दूंगा, परन्तु मुसलमानों का फर्ज है कि वे हिन्दुओं को निर्भय कर दें । मैंने तो लम्बी बात कर दी । अनेक बातों की एक बात इतनी-सी कह दूँ कि यदि इस्लाम की रक्षा करना चाहते हों तो हिन्दुओं के साथ समझौता कीजिए और एकदिल हो जाइए । यदि हिन्दू कहें कि मुसलमानों को मिटा देंगे तो यह वाहियात बात है । हिन्दुओं को मुसलमानों का दिल जीत लेना ही पड़ेगा । आज तो हमें इतना समझ लेना है कि तीसरी ताकत—अंग्रेज सरकार—हमारे धर्म की रक्षा नहीं करेगी । उसकी रक्षा ढूंढ़ने से तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनों समान रूप से खतरे में पड़ जायँगे । आज मेरा यही काम है कि थोड़े-से हिन्दू-मुसलमानों को लेकर दोनों धर्मों को इस खतरे से बचाने का काम करूँ और उन्हें खतरे में डालनेवालों के विरुद्ध लड़ूं, ताकि एक दिन खुदा के दरबार में कहा जा सके कि तेरा हुक्म था, उस पर हमने अमल किया ।'

लाहौर में खानगी जलसे हुए, उनका उल्लेख मात्र मैं ऊपर कर चुका हूँ । राष्ट्रीय विद्यापीठ के विद्यार्थियों का पदवीदान-समारोह भव्य था और वहाँ का भाषण उल्लेखनीय था, परन्तु वह अगले अंक के लिए मुल्तवी रखता हूँ । रावलपिंडी भी पहुँच गये हैं, इसलिए प्रान्तीय सम्मेलन का उल्लेख करके और रावलपिंडी की हलचलें देकर यह पत्र पूरा करूँगा। मोतीलालजी नहीं आ सके, इसलिए गांधीजी को अध्यक्ष बनना पड़ा । सम्मेलन ब्रॅडलॉ हाल में सुबह आठ बजे था। गांधीजी ठीक आठ बजते ही उपस्थित हो गये । हॉल में हाजिरी नहीं के बराबर थी । कड़ाके की ठण्ड में इतनी जल्दी कौन आता ? खुद स्वागताध्यक्ष भी गायब थे ! परन्तु गांधीजी ढिलाई कैसे सहें ? उन्होंने तो लालाजी से मशविरा करके अपना अध्यक्षीय भाषण शुरू कर दिया ! भाषण काफी लम्बा था । आधा हुआ होगा, तब स्वागताध्यक्ष महोदय लाला दुनीचन्द पधारे ! गांधीजी ने तो अपना भावपूर्ण भाषण जारी ही रखा । यहाँ उसका सार-मात्र ही दे सकता हूँ : 'हम सम्मेलन के लिए नहीं आये, परन्तु नेताओं के साथ सलाह-मशविरे के लिए आये हैं । इस बातचीत में आप क्या मदद देंगे ? मैंने तो हिन्दू-मुसलमानों से कह दिया है, सिक्खों से कहना चाहता हूँ कि यदि एक भी जाति दूसरी से कह दे कि 'तुम्हें जो चाहिए

सो ले लो, हम भूखों मरेंगे तो भी हर्ज नहीं', तो इस झगड़े का निपटारा तुरन्त हो सकता है। कोई पूछेंगे कि सिक्खों जैसी छोटी जाति ऐसा कैसे कर सकती है? ऐसा करे तो तवाह न हो जाय? मैं कहता हूँ कि सिक्ख तो ऐसा जरूर कर सकते हैं। उनके जितनी कुरवानी किस कौम ने की है? उनके समान वलिदान के लिए न मुसलमान तैयार हैं, न हिन्दू तैयार हैं। उन्होंने 'सत श्री अकाल' शव्द को लेकर छाती पर गोलियाँ झेलीं। अल्लाह का नाम लेकर मुसलमान या राम का नाम लेकर हिन्दू ऐसा कर सकते हैं या नहीं, इसमें मुझे शक है। इसलिए सिक्खों के लिए तो इतना त्याग दिखाना मुश्किल वात नहीं। मुसलमानों के लिए भी कठिन नहीं। मुसलमान हिये के अंधे नहीं। उनके पीछे उनका १३०० वर्ष का इतिहास है, पैगम्वर मुहम्मद साहव और दूसरे फकीरों के त्याग की वातें उन्हें विरासत में मिली हैं।

'परन्तु इन सवको मैं किस मुँह से कहूँ कि तुम त्याग करो?—जव मैं हिन्दुओं को नहीं समझा सकता कि यह चीज करने लायक है। मैं हिन्दू हूँ, मैं चाहता हूँ कि गीता का एक श्लोक पढ़ते हुए मर जाऊँ और मोक्ष प्राप्त करूँ। मैं न स्वर्ग चाहता हूँ, न विमान चाहता हूँ—पृथ्वी पर चलते-चलते भी अभिमान आ जाता है, तो विमान पर चढ़कर कितना नहीं आयेगा? मैं तो तुलसी और रामचन्द्र का भक्त हूँ और शुद्ध सनातनी होने का दावा करता हूँ। इसलिए मैं हिन्दुओं से कहता हूँ कि आप मेरी नहीं सुनेंगे, तो मुसलमानों से क्या कहूँ? इतना आपसे कहूँगा कि आप धोखे से न डरें। मुसलमान और सिक्ख दगा देंगे तो दगा देनेवाले का विनाश है, धोखा खानेवाले का कभी विनाश नहीं होता। हिन्दू होने के कारण हिन्दुओं से कहता हूँ कि आप निर्णय की कलम मुसलमानों और सिक्खों को सौंप दीजिए। पांडवों ने क्या किया? उन्होंने हस्तिनापुर नहीं माँगा, इन्द्रप्रस्थ नहीं माँगा, केवल पाँच गाँव माँगे। दुर्योधन ने कहा कि ये भी नहीं मिलेंगे, इनके लिए भी लड़ो, इसलिए वे लड़े। आपके लिए लड़ने की चीजें नगरपालिका, विधानसभा, स्थानीय संस्थाओं के स्थान नहीं, नौकरियाँ नहीं। लड़ने की चीज तो आपका धर्म है, आपकी वहनों की रक्षा है। आपका क्षत्रियत्व है 'अपलायनम्'। क्षत्रियत्व का अर्थ मारने की शक्ति नहीं, परन्तु पीठ न दिखाने की शक्ति है। यदि मुसलमान कहें कि तुम गाय की पूजा नहीं कर सकते, हम तो पूजा में वाधा देंगे, यदि वे यह कहें कि काशी विश्वनाथ पत्थर का एक टुकड़ा है, और तुम वुतपरस्तों

(मूर्तिपूजकों) से हमें घृणा है, तो आप उसके लिए जी भरकर लड़िए। आप उनसे कहिए कि मेरे लिए गाय पूज्य है, मुझे पत्थर की मूर्ति में देव के दर्शन होते हैं, मेरी कौम ने हजारों वर्ष इसके आगे अपने पापों के प्रायश्चित्त किये हैं, मुझे इसके प्रति उतना ही आदर है, जितना तुम्हें कावाशरीफ के लिए है। ये चीजें ऐसी हैं, जो छोड़ी नहीं जा सकतीं। मैं तो पंजाव के विधान-मंडल में और स्थानीय संस्थाओं में ५१ या ५६ फीसदी स्थान लेने की जिद छोड़ने की वात करता हूँ, क्योंकि इन्हें छोड़ने में सारी दुनिया को खरीद लेने का रास्ता है। सारी दुनिया को उसके आगे सांसारिक अधिकार छोड़कर सिर झुकाकर ही गुलाम वनाया जा सकता है। आप मुझे गुजरात का वनिया कहकर हँसते हैं। परन्तु मुझे आपकी व्यवहार-वुद्धि पर हँसी आती है। आपके शमशेर वहादुरों पर मुझे दया आती है कि जव सारा भारत तीसरी ताकत के पंजे में फँसा हुआ है, तव आपको ऐसी वातों के लिए झगड़े करने की सूझती है! इन स्थानों को प्राप्त करने में हिन्दू-धर्म की व्यवहार-वुद्धि है? इन्हें प्राप्त कर लेने में हिन्दू-धर्म समाप्त हो जाता है? मैं यदि पंजावी वन गया होता तो पंजाव को हिला डालता और कहता कि आप मुसलमानों और सिक्खों के हाथ में कलम सौंप दो। आपको अफगानों का डर है। अफगान आकर खड़ा हो जायगा, उस दिन आपकी-मेरी तलवार काम आयेगी? विधानसभा या नगरपालिका के स्थान काम आयेंगे?'

मन्दिरों और स्त्रियों की रक्षा के लिए अपलायनम्—मरकर रक्षा करने अथवा यह न हो सके तो मारते-मारते मरने का अनेक वार वताया हुआ धर्म पुकार-पुकारकर गांधीजी ने वताया और कहा: 'मेरे दिल की आग का आपको पता नहीं चलता। इस आग को कौन वुझानेवाला है? जीते हुए भी मरने की कोशिश कर रहा हूँ। किसलिए? आप आज भी नहीं समझेंगे? आज भी एक होकर आप मेरी यह आग नहीं वुझायेंगे?'

हिन्दुओं के अत्याचार के एक-दो ताजा सुने हुए किस्सों का उल्लेख करके कहा कि 'गंदे अखवारों में इनके आने पर भी मैंने उनकी जाँच की। जाँच के वाद देखा कि उनमें अत्यन्त अत्युक्ति हुई है। फिर भी यह पता लगा कि वे विलकुल निराधार नहीं, इसलिए आपसे कहता हूँ कि हिन्दू भी वदला लेने का मौका तो ढूंढ़ते ही रहते हैं—हिन्दू हैं, इसलिए नहीं, वल्कि मनुष्य हैं, इसलिए। ये उदाहरण हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े के नहीं, परन्तु इन्सान के दिल में छिपे हुए शैतान की मिसाल के तौर पर

मैंने दिये। इन्हें देने का हेतु यही है कि पाप के विरुद्ध पाप करके आप बचाव नहीं कर सकते। वेद या महाभारत नहीं सिखाता कि मन्दिर लुटा तो मस्जिद तोड़ी जाय या हमारी बहन पर अत्याचार हुआ तो दूसरे की बहन पर अत्याचार करके उसका बदला लिया जाय। मेरा धर्म तो कहता है कि तू रक्षा करते-करते मरेगा तो तू जिन्दा रहेगा।' चरखा तो स्त्रियाँ ही कातें, इसके उत्तर में यह पूछकर कि लंकाशायर के चरखे स्त्रियाँ चलाती हैं या पुरुष, गांधीजी ने सबसे कातकर मताधिकार प्राप्त करने की बात स्वीकार करने का आग्रह किया।

रावलपिंडी ९ तारीख को सुबह आये। कोहाट के मुसलमानों—खिलाफत कमेटी के सज्जनों को मौलाना शौकत अली साहब ने खास तौर पर बुलाया था। परन्तु वे नहीं आये। वे सरकार के साथ सलाह-मशविरा कर रहे हैं। सरकार ने भी इस बात की पूरी कोशिश करके व्यवस्था की थी कि गांधीजी और शौकत अली आकर शान्ति का श्रेय न लूट लें। कोहाट के नेताओं को पहले से बुलवा रखा था कि कहीं गांधीजी के समझाये समझ न जायँ। इस डर से ८ और ९ तारीख को ही इन सलाह-मशविरों की तारीखें रखी गयी थीं। हिन्दू भाइयों के नेता तो आ गये। परन्तु मुसलमानों की प्रतीक्षा आज प्रातःकाल तक करने के बावजूद वे नहीं आये। शौकत अली के दर्द की बात क्या कहूँ? वे परेशान हो रहे हैं।

इस बीच गांधीजी ने खूब मशविरे और बातें कर ली हैं और आज यहाँ से चलने का कार्यक्रम रद्द करके अधिक बातचीत के लिए रह गये हैं।

कोहाट से आकर यहाँ आश्रय लेनेवाले भाई-बहनों से वे कल शाम को मिले। यहाँ रावलपिंडी के भाइयों ने बड़ी धर्मशालाओं में उनके लिए बहुत अच्छी व्यवस्था की है, पाँच-पाँच सौ आदमी एक चौके में बैठकर खाते हैं और ठंड में अपने को जितने कपड़े मिलें, उतने कपड़े बाँटकर कमी पूरी कर लेते हैं! ये करुणाजनक दृश्य देखकर रात को गांधीजी ने रावलपिंडी की सभा में भाषण दिया। आरम्भ में उन्हें मानपत्र दिया गया था, उसके विषय में उन्होंने बताया कि 'जब तक सारे भारत के लिए मेरी या शौकत अली की बोलने की ताकत थी, तब तक एक को ही मानपत्र देने से काम चल जाता था, परन्तु आज मेरी अपनी मुसलमानों की तरफ से बोलने की ताकत नहीं रही और शौकत अली की हिन्दुओं

की तरफ से बोलने की ताकत नहीं रही। यह दुर्भाग्य है, परन्तु जब तक यह दुर्भाग्य मौजूद है, तब तक आपको दोनों को मानपत्र देना चाहिए।'

कोहाट की दुर्घटना पर बोलते हुए उन्होंने कहा: 'यह दुर्घटना कैसे पैदा हुई और इसमें सबसे ज्यादा कसूर किसका था, यह जानने की आज मेरी इच्छा नहीं। इसका एक कारण यह भी है कि मेरे पास पूरे तथ्य नहीं। परन्तु इतनी बात निश्चित है कि दो-तीन हजार हिन्दू यहाँ आकर रावलपिंडी का आश्रय लिये पड़े हैं। उन्हें कोहाट छोड़ना पड़ा, इसकी जिम्मेदारी तो हिन्दू-मुसलमान दोनों कौमों पर है। और जब तक वे यहां पड़े हैं, तब तक दोनों की बदनामी है। यह बदनामी मिटे, इसके लिए शौकत अली, किचलू, जफर अली और मैं यहाँ आये हैं। अभी तक हमें सफलता नहीं मिली, क्योंकि तीसरी ताकत अपना काम कर रही है। इस सत्ता का काम झगड़े पैदा कराने का नहीं, तो झगड़े बढ़ाने का तो है ही और मेरी जानकारी में अब तक तो नहीं आया कि इसने किसी भी झगड़े को शान्त किया हो। सच बात तो यह है कि सरकार को जो करना चाहिए था, वह करती तो कोहाट का वाकया हुआ ही न होता, हिन्दू भागे ही न होते। वहाँ के अधिकारी या तो नामर्द हो गये या उन्होंने अपने कर्तव्य के विरुद्ध आचरण किया। सरहद पर लूटनेवाले सभी को लूटते हैं, इसलिए जोर के साथ यह कहना कठिन है कि केवल हिन्दुओं को लूटने के लिए यह सब काण्ड खड़ा किया गया। परन्तु यह मैं जरूर कहूँगा कि लूटने और माल-असबाब जलाने का काम करनेवाले सरहद के लोग नहीं, सरहद के अधिकारी हैं। यह हुकूमत जैसे कोहाट में अपने फर्ज को भूल गयी, मैं चाहता हूँ कि ऐसे ही वह हमेशा के लिए भूल जाय। यह हुकूमत बिलकुल ठप हो जाय और फिर हिन्दू-मुसलमान जी भरकर एक-दूसरे के साथ लड़ें और एक-दूसरे को लूटें तो उससे मुझे दुःख नहीं होगा। जब तक दोनों जातियों के हृदयों में मैल है, कमजोरी है और भीरुता है, तब तक एक-दूसरे के साथ लड़कर खून की नदियाँ बहायेंगे। अन्त में दोनों जातियों के नेता समझेंगे कि हम अधर्म कर रहे हैं, इसलिए ठंडे होकर बैठ जायँगे, परन्तु आज तो हम तीसरी सत्ता का आसरा लेकर लड़ते हैं। यदि उसका आश्रय लेकर लड़ेंगे और उसका सहारा लेकर एकत्र होंगे तो उसकी गुलामी सदा के लिए ललाट में लिखी हुई समझिए। यदि आप हिन्दू-मुसलिम-एकता समझते हैं तो इस तीसरी शक्ति को छोड़ दीजिए। आपसे इतना ही कहूँगा कि सरकार आपके विरुद्ध क्रोध

करें, मुसलमानों को ही मदद दे, तो आप राम का नाम लेकर मर जाइए। आज तो हुकूमत के अफसर आपको इस तरह ताने मारते हैं: 'शौकत अली के पास जाओ', 'गांधी के पास जाओ'। मुझे खेद है कि हम कोई भी आज कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास तलवार नहीं। मैंने फेंक दी है और शौकत अली ने म्यान में रख दी है। इसलिए हमें इतनी ही सलाह देनी है कि स्वराज लेना हो तो आजाद दिल के बनें। इन्सान खुद ही अपने को मिटा सकता है। इन्सान को दूसरा इन्सान नहीं मिटा सकता। आप कहेंगे कि इस सलाह का परिणाम तो ख्वार होना ही होगा, इसमें मदद क्या मिली? तो मैं कहूँगा कि मैं तो ख्वार होने के तरीके ही वताता हूँ, कुरवानी करने की ही वातें करता हूँ।

'सरहद के हिन्दुओं से यह कहूँगा कि ९५ फीसदी मुसलमानों की आवादी में वे हुकूमत की सलाह लेने कभी न जायँ। यदि जायँ तो केवल उसी स्थिति में कि सरहद के मुसलमान उनसे अनुरोध करें, उनकी इज्जत रखकर हमेशा के लिए उनकी रक्षा करने का आश्वासन देकर ले जाने की माँग करें, तभी जायँ। आप वहाँ कई पीढ़ियों से रहे हैं। उन लोगों के मनाये विना वहाँ कैसे रह सकोगे? आपने वहाँ कमाई की है, वहाँ दूकानें की हैं। उनके साथ समझौते और सलाह के विना आप वहाँ कैसे सुख-शान्ति से रह सकेंगे? सरकार किसी भी वड़ी कौम के लिए जमानत नहीं दे सकती। स्वराज्य हो, शौकत अली प्रधान सेनापति हों और मैं वाइसराय हूँ और मुझसे कोई कहे कि आप एक जाति की रक्षा कीजिए तो मैं कहूँगा कि ९५ प्रतिशत आवादीवाली जाति से मैं आपकी रक्षा नहीं कर सकता। मुसलमान ५ प्रति सैकड़ा हों तो उन्हें भी यही वात कहूँगा। सरहद में इज्जत और मुहब्बत से रहने का यही एक तरीका है।'

आगे चलकर हिन्दू-मुसलमानों के सम्वन्ध के वारे में फिर विषयान्तर करके अन्त में दुवारा कोहाटियों के धर्म पर आये:

'आपसे इतना कह जाना चाहता हूँ कि आप अपनी रक्षा करना चाहते हों तो सरकार से कह दीजिए कि जव तक मुसलमानों के साथ फैसला नहीं हो जाता, जव तक मुसलमान हमें वुलाकर नहीं ले जाते, तव तक हम यहाँ से नहीं हिलेंगे। यदि कोहाटी मेरी यह सलाह सुनने को तैयार हों तो मैं उनके सामने सार्वजनिक इकरार करता हूँ: 'वेलगांव के वाद यहाँ कोहाटियों में आकर डट जाने को मैं तैयार हूँ, उन्हें लेकर सारे भारत में भटकने को तैयार हूँ।' परन्तु यदि वे सरकार के कहने से

जायँगे तो यह उनके लिए—हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए बड़े नुकसान की बात है। सरकार सारी जायदादें दे दे, तीन करोड़ की क्षति-पूर्ति कर दे तो भी—उसकी रक्षा का आश्वासन लेकर वहाँ जाने में हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए हानि ही है। यदि आप मेरी इस सलाह के बावजूद गये तो कांग्रेस में मेरा काम भी कठिन हो जायगा। ईश्वर आपको मुसलमानों के साथ एक होने की शक्ति दे।'

मौलाना शौकत अली ने भी इस सलाह का अक्षरश: समर्थन किया।

दैववशात् कोहाटियों को दी गयी सलाह के दूसरे ही दिन कोहाट सम्बन्धी सरकार का प्रस्ताव प्रकाशित हुआ है। इस उन्मत्त प्रस्ताव के बारे में गांधीजी स्वयं ही अगले अंक में हमें बतायेंगे।* यहाँ तो इतना ही कहूँगा कि सरकार के बल पर कोहाट वापस न जाने की गांधीजी की दी हुई सलाह अब तक तो एकमात्र न्याय्य और उचित सलाह ही थी, परन्तु इस प्रस्ताव के प्रकाशित हो जाने के बाद तो यह एक ही सलाह कोहाटियों के लिए हो सकती है। यह स्थिति केवल करुण है। इन कोहाटी निराश्रितों में कुछ ऐसे हैं कि जिन्हें तुरन्त कोहाट न लौटने में बड़ी कुरबानियाँ सहनी पड़ें। परन्तु कोहाटी हिन्दुओं में से एक भी इस कलंक को माथे पर लगाकर कोहाट जाने को तैयार या रजामन्द नहीं। हम तो प्रभु से इतनी ही करुणा चाहते हैं कि वह इस अग्नि-परीक्षा में से कोहाटियों को पार लगाये।

बेलगांव के पुण्यतीर्थ में

(ता० २०-१२-'२४ से २९-१२-'२४)

(१)

बेलगांव का पुण्यतीर्थ के रूप में ही विचार होता है। गंगाधरराव देशपांडे के पुण्यप्रेम से भरा हुआ सारा वातावरण, तालीम और आज्ञा-पालन का हार्द समझनेवाले स्वयंसेवकों की भक्ति से भरा हुआ वातावरण, पग-पग पर अहिंसा की याद दिलानेवाले गांधीजी से व्याप्त यह वातावरण और अहिंसा की पराकाष्ठा प्रकट करने के उद्देश्य से एकत्र हुए महा-

---

* देखिए गांधीजी का लेख 'कोहाट का कहर', परिशिष्ट ३।

सम्मेलन का वातावरण पुण्यतीर्थ न कहलाये तो और क्या कहलाये ? गंगाधरराव का आनंद और प्रेम वर्णन नहीं किया जा सकता । उन्हें तो 'अद्य मे सफलं जन्म' का अनुभव हो रहा दीखता है । अनेक दिवस से वे जिस दिन का सपना देख रहे थे, वह दिन आज आ गया । बेलगांव में क्या होगा या क्या नहीं होगा, इसका विचार नहीं, परन्तु गांधीजी जैसे कांग्रेस के अध्यक्ष हों और उस कांग्रेस को बुलाना कर्णाटक के भाग्य में हो, सात-आठ दिन केवल गांधीजी के विचार और कार्य से बेलगांव का वातावरण पुनीत हो, उस शुभ दिन के आगमन से हर्षोन्मत्त गंगाधरराव आज जहाँ-तहाँ घोड़े पर सवार होकर घूमते नजर आते हैं, तब सहज ही देखनेवाले की छाती में जवानी का जोश उमड़ आता है । उन्होंने कितनी लगन से अपना काम किया है, और अपने मेहमानों के लिए कितनी चिन्ता रखी है, इसका पूरी तरह वर्णन करने में तो कई पन्ने भर जायँ । गांधीजी के लिए एक सुन्दर महल रखने का विचार किया, परन्तु इस खयाल से कि शायद गांधीजी को ही अच्छा न लगे, सुन्दर खादी-कुटी बनायी । अपने स्नेही और साथी वल्लभभाई, राजेन्द्रप्रसाद, शंकरलाल, रेवाशंकर के लिए तो विशेष प्रबन्ध करने की बात ही क्यों होने लगी ? वे तो इनके साथ सुख-दु:ख में भाग लेने बेलगांव में आनेवाले थे । राजगोपालाचार्य शरीर से दुर्बल हैं और उनकी देखभाल होनी चाहिए, इसलिए उनके वास्ते छोटा-सा मकान रखा गया और अपनी माताजी को भोजनालय की व्यवस्था के लिए रखने का विचार किया था । इतने में उनके जैसे ही निरभिमान साथी सोमण बोले : 'नहीं, मेरी बहन भोजनालय सँभालेंगी ।' इसलिए अब सोमण की बूढ़ी बहन को राजगोपालाचार्य और उनके मित्र सौंपे गये । श्रीमती सरोजिनी देवी के लिए तो खास सुविधा करनी ही चाहिए और डॉ० बेसेण्ट, श्री दास और पंडित नेहरू जैसे महँगे मेहमानों के सुन्दर आलीशान बँगले । मौलानाओं को तो खिलाफत कमेटी छोड़ती ही कैसे ? और यहाँ हिन्दू-मुसलमान नेताओं के बीच इतना प्रेम है कि एक-दूसरे के बीच खींचतान भी नहीं होती । आम लोगों के लिए सफाई और पाखानों की व्यवस्था करनेवाले भंगीखाने के नायक काकासाहब और गांधीजी की कुटिया के पास सैकड़ों आदमियों की भीड़ के आगे प्रार्थना में भाग लेने के लिए पुरन्दर विट्ठल नामक कर्णाटकी साधु के भजन गानेवालों को लाने की व्यवस्था करनेवाले भी काका ही ।

× × ×

परन्तु पुण्यतीर्थ की वाह्य पुण्यता की वात करते हुए आन्तरिक पुण्यता की वात में उतरूँ, यही अधिक उचित होगा। यहाँ आये आज चार दिन हो गये, परन्तु चार दिनों में एक घंटा भी किसीका व्यर्थ गया हो, यह शायद ही कहा जा सके। पहले की किसी भी कांग्रेस के समय ऐसा हुआ हो, यह शायद ही कहा जायगा। आगामी वर्ष में अथक काम और अटूट आज्ञा-पालन की आशा रखनेवाले गांधीजी इस तरह काम लेकर मंगलारंभ करें, इसमें क्या आश्चर्य ! केवल पहले दिन दोपहर को तीन वजे वैठक थी सो पाँच मिनट मौलाना देर से आये, इसलिए देर से वैठक हुई। वाकी उनका महासमिति के अध्यक्षपद से त्यागपत्र देनेवाला भापण और उनको धन्यवाद देनेवालों के भाषण दो-दो मिनट के थे। २० तारीख को शाम तक काम करके फिर आठ वजे से दस वजे तक मिले। दूसरे दिन अर्थात् २१ तारीख को ११ वजे से कोई तीन वजे तक कार्रवाई चली। तीसरे दिन गांधीजी का मौन था। चौथे दिन शर्तनामा समझौता-समिति में पेश हुआ और पास हुआ कि तुरन्त ही उन्होंने अपूर्व प्रथा का प्रयोग किया। प्रस्ताव तैयार करने के लिए हाथोंहाथ एक समिति नियुक्त करवा दी और उसी समय समझौता-समिति वरखास्त कर दी गयी। चार घंटे तक इस उपसमिति की वैठक करके दूसरे दिन के लिए दो मुख्य प्रस्ताव तैयार किये। २४ तारीख को ठीक आठ वजते ही समझौता-समिति मिली और ठीक साढ़े तीन घंटे की चर्चा की अनुमति देकर दोनों प्रस्ताव मंजूर कराये। यह अपूर्व त्वरा कहलायेगी और इतनी त्वरा को लेकर हम नया वर्ष शुरू करें तो भविष्य उज्ज्वल होगा, इसमें कोई शंका नहीं।

× × ×

पिछले पैरे में मैंने रोजनामचा दे दिया। एक-एक दिन के संक्षिप्त संस्मरण देना मीठे सपनों की वातें सुनाने जैसा है। परन्तु सपनों के व्योरे सुनानेवाले को पूरे थोड़े ही याद रहते हैं ? इसी तरह मधुर संस्मरणों के वारे में भी करना होगा। कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण पढ़ें और २० तथा २१ तारीख के उद्‌गार सुनें तो दोनों में विचित्र विरोध-सा लगता है। परन्तु दोनों में जरा भी विरोध नहीं था। दोनों एक-दूसरे की पूर्ति-रूप थे। भाषण की भापा में कोई अपूर्व, असाधारण, वल्कि जरूरत से ज्यादा संयम दिखाई देता है, अपार तेज है, परन्तु उष्णता नहीं, अपार युक्ति है, परन्तु आवेश नहीं। २० और २१ तारीख के उद्‌गारों में ये सब रोककर रखी हुई विभूतियाँ मानो वावा की झोली में से निकल पड़ीं।

आरम्भ में कहा : 'शायद ही किसी पहलेवाली कांग्रेस में मैं इतनी उदासीनता से गया होऊँगा, परन्तु यहाँ तो मैं अत्यन्त विरक्त भाव से ही आया हूँ। मुझे किस चीज की खुशी हो? सन् १९२१ में तो मैं सबका नेता था, सबने मेरा नेतृत्व स्वीकार किया हुआ था, आज थोड़े ही वैसा नेता हूँ? आज थोड़े ही मेरी सब सुनते हैं? ये शब्द मैं कोई सत्ता चाहनेवाला होने के कारण नहीं बोल रहा हूँ। सत्ता चाहनेवाला होऊँ तो मेरे जैसा निन्द्य जीव और कोई हो नहीं सकता। परन्तु उस समय मुझमें जो आत्मविश्वास था, वह आज नहीं, क्योंकि आज मुझे अपने साथियों का पता नहीं। यदि आज मुझे मेरे साथी हरा दें, मुझे कह दें कि तेरा नेतृत्व नहीं चाहिए, तू अपने रास्ते जा, ऐसी पागल बातें न कर, तो मुझे अपार आनंद हो। परन्तु यह मेरे भाग्य में नहीं।' इन उद्‌गारों में भाषण की संयत भाषा और उसकी गहराई में दबाकर रखा हुआ आवेश, दोनों का स्पष्टीकरण है।

× × ×

इस अधिवेशन में कोई अध्यक्ष नहीं था। सब मुक्तकण्ठ से बोले, सबने अपने-अपने गुबार पूरी तरह निकाले। रात को भी यही चर्चा जारी रही। सब प्रश्नों के मूल में अविश्वास—स्वराज्यवादियों के साथ काम कैसे होगा, वे सच्चे दिल से समझौता स्वीकार कर रहे हैं या नहीं, उनके साथ कहाँ तक सहयोग हो सकता है, यह भावना थी। इनके लिए जवाब गांधीजी के पास सीधे और स्पष्ट थे : 'स्वराज्यवादी मेरा नाम इस्तेमाल करते हों तो भी आपका क्या बिगड़ता है? ऐसा करके वे देश की सेवा करते हैं। आपकी स्वराज्यवादी निन्दा करें तो उससे आपको क्या घाव लग जायगा? स्वराज्यवादी आपको सहायता नहीं देते, आप जब यह कहते हैं तो मुझे ऐसा लगता है कि आप भीतर-भीतर स्वराज्यवादियों का सहारा ढूंढ़ते हैं। क्यों नहीं आप अपना काम करते चले जायँ और क्यों उनका सहारा ढूंढ़ें? इतना ही काफी है कि वे आपका विरोध न करें और आपको अपना काम करने दें।' 'असहयोग क्यों न करें?' इस प्रश्न के उत्तर तो मर्मभेदी थे। 'असहयोग किसके साथ? और प्रेमी के साथ, स्नेही के साथ, साथी के साथ असहयोग हो सके तो उसे करने को भी गांधी की जरूरत है? जब तक आप अहिंसा के गर्भ में निहित एक-एक बात न समझ लें, तब तक असहयोग नहीं कर सकते। सभी गांधी की तरह अपनी स्त्री या भाई के साथ असहयोग नहीं कर सकते।'

× × ×

कसीने तर्क किया : आपने स्वराज्यवादियों के कार्यक्रम का हिंसात्मक होने के कारण त्याग किया, अब क्या वह अहिंसात्मक हो गया ? इसे ध्यान में रखकर वे बोले : 'हाँ; हिंसा-हिंसा में अन्तर है । इनकी हिंसा जीव को मारने में की जानेवाली हिंसा नहीं । जो हिंसा इनके कार्यक्रम में निहित है, जो क्रोध उसमें है, उससे हम मुक्त नहीं । मेरा क्रोध कई बार खूब उभर आता है और उस समय मैं केवल त्याज्य बन जाता हूँ । परन्तु मुझमें उसे रोकने की शक्ति है । आपसे कुछ अधिक होगी । परन्तु इससे मैं दूसरों को हिंसावादी कहकर त्याग नहीं सकता । हाँ, वे हिंसा के तरीकों के पुजारी हों, तब तो कांग्रेस के अध्यक्ष के नाते मैं उन्हें छोड़ सकता हूँ । आज तो मैं चाहता हूँ कि अहिंसा के अन्तर्गत वस्तुओं को समझें, अहिंसावादियों को कितना त्याग करना चाहिए, यह समझें । सत्याग्रही को कितने से सन्तुष्ट होना चाहिए, इसकी मर्यादा जाननी चाहिए और यह थोड़े-से-थोड़े की उसके लिए बाँधी हुई मर्यादा उसके लिए अधिक-से-अधिक मर्यादा के समान है ।

'हाँ, एक तरह से आपके लिए अलग रहना ठीक हो सकता है । श्री हरदयाल नाग ने मुझे लिखा है कि तू काजल की कोठरी में काले हाथ किये बिना रह सकता है, हमसे नहीं रहा जायगा, इसलिए हम अलग रहें । आपको भी ऐसा लगता हो तो आप वैसा करें ।' यह सुनते ही एक युवक ने पूछा : 'तब तो आप असहयोग करें तो काफी है । आपका काम हमारी मदद के बिना चल जायगा ? हम दूर ही रहें न ?' उसे अत्यन्त दर्दभरा जवाब दिया : 'नहीं, भाई नहीं; मैं तो अल्प-से-अल्प प्राणी की सहायता चाहनेवाला ठहरा, फिर आपकी मदद के बिना कैसे काम चला लूँगा ? परन्तु मैं तो यह कहता हूँ कि शायद मैं असहयोगी के साथ में भी सहयोगी को रख सकूँ, आप न रख सकें, तो आप भले ही दूर रहें । यदि मैं ऐसा असहयोगी होता कि किसीकी मदद के बिना काम चल जाता, तब तो चाहिए ही क्या था ? मैं संपूर्ण अहिंसात्मक होने के कारण केवल विचार के बल पर अपना सोचा हुआ कर लेता, क्योंकि विचार के पंख कार्य की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और वेगवान् हैं । परन्तु यहाँ तो अनेक बालकों के साथ में मैं एक बड़ा बालक हूँ । आप इतनी सीधी बात क्यों नहीं समझ सकते ? मुझे सबका साथ चाहिए ।'

× × ×

'एक दलील खास तौर पर याद रखने लायक है । क्या सरकार से

महादेवभाई की

भी नहीं कहा कि तीन बातें आप करें तो आपके साथ भी सहयोग करूँ ? सरकार शराब की आय बन्द कर दे, सैनिक खर्च घटा दे और विदेशी कपड़े पर भारी जकात लगा दे तो मैं उसके साथ अवश्य सहयोग करूँ। आज स्वराज्यवादी मेरी तरह चरखा देश के आगे रखने को तैयार हुए हैं, आज चरखा ही मुख्य कार्यक्रम है, यह कहने को तैयार हुए हैं। विदेशी कपड़े के बहिष्कार में मुझे उनका पूरा-पूरा साथ है, तो मैं उनके साथ सहयोग न करूँ ?'

× × ×

२१ तारीख को सबसे पूछा गया कि 'स्वराज्यवादियों का और कांग्रेस का संकल्प एक ही हो, इस शर्त पर आपको समझौता पसन्द है या नहीं?' यह भी पूछा गया कि 'विधानसभा के बजाय चरखे का ही कार्यक्रम आज देश के उद्धार के लिए जरूरी है, यह आप स्वीकार करते हैं या नहीं ?' और इतनी सारी चर्चा के परिणामस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में 'हाँ' में उत्तर आया, तब उन्होंने उदासीनता छोड़कर अपना हृदय उँड़ेला : 'यह चरखे का कार्यक्रम पूरा कर सकें तो फिर हम किन्हीं भी हालात में सरकार से लड़ाई कर सकते हैं, ऐसी स्थिति एक वर्ष में लायी जा सकती है। हम ऐसी स्थिति उत्पन्न करें कि सरकार हमसे पूछे बिना चले ही नहीं और देश में कैसी भी परिस्थिति हो तो भी हमारा यह कार्यक्रम चलता ही रहे। परन्तु यह मान लीजिए कि उस स्थिति के लिए मैं आपसे आपके खून की आखिरी बूँद माँग रहा हूँ। मेरा जुआ आपको अत्यन्त अरुचिकर सिद्ध होगा। राष्ट्रपति क्रूगर ने कहा था कि जब तक दुनिया चकित हो जाय, तब तक अपना खून देते रहो। वैसा ही त्याग मैं आपसे माँग रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि ऐसे मरनेवाले १०,००० मनुष्य मुझे मिल जायँ तो देश में हिंसापक्ष का नाम भी नहीं रहेगा।

'दूसरों के दोष देखना छोड़ दीजिए और कर्तव्यपरायण बन जाइए। दूसरों की पवित्रता का पहरा देने का काम बहुत भद्दा है। पुलिस का धंधा क्यों भद्दा कहलाता है ? आप स्वयं अपनी पुलिस बन जाइए, यदि बनना हो तो। हम अपनी कमजोरी के बारे में इतने अधिक सहिष्णु हैं, स्वयं पाप से भरे होने पर भी खा-पीकर मौज करते फिरते हैं, तब औरों की दुर्बलता से क्यों अधीर हों ?

'अब जब आप इसे स्वीकार करते हैं, तब उसे पूरे दिल से स्वीकार कीजिए, क्योंकि अगर आप मुंह से ही स्वीकार करेंगे तो मुझे गहरा खंजर

भोंका जायगा । मुझ पर दया रखिए । आपकी दया मांगता हूँ, इसका क्या अर्थ ? अर्थ यह है कि आप ऐसी स्थिति न लाइए, जिससे मुझे वही करना पड़े, जो दिल्ली में करना पड़ा । ऐसा करना पड़ा, इससे मुझे दुःख हुआ हो सो वात नहीं । यह तो मित्र के लिए प्राण देने तक तैयार होने का मुझे अवसर मिला, इसलिए अपने मेजवान के घर में रहकर वह मौका लेने से मैं नहीं हिचकिचाया । वर्ष के अन्त में मुझे ईश्वर को जवाव देना होगा और आपसे भी दिलवाऊँगा । इसलिए आप सोच-विचारकर यह चीज स्वीकार कीजिए । आप चाहें तो सारा साझा तोड़ सकते हैं, परन्तु खेल न कीजिए । मेरे साथ खेल नहीं हो सकता । हर महीने आपके पत्रक भरकर मेरे पास भेजने पड़ेंगे । यह आपको स्वेच्छाचार लगता होगा, परन्तु स्वेच्छाचार है नहीं । इसमें तो दोहरी शुद्ध हुई लोकसत्ता है, क्योंकि आप स्वयं प्रतिज्ञा करते हैं, मैं खुद प्रतिज्ञा करता हूँ और एक-दूसरे को उसके पालन में सहायता देते हैं । आप जव एक नियम स्वीकार कर लेते हैं तो उसके अधीन हो जाते हैं । मेरा हृदय विशाल है । उसमें कमजोरी के लिए सहनशीलता भरी है । परन्तु देश का भविष्य मेरे हाथों में सौंपकर फिर आप मेरे साथ खेल खेलें तो यह नहीं चलेगा । जव तक प्रतिज्ञा न करें, तव तक कोई वात नहीं, परन्तु मैं ऐसे कठोर हृदयवाला हूँ कि प्राण देकर भी प्रतिज्ञा का पालन किया जाय । जव दक्षिण अफ्रीका में मैंने ४००० का काफिला लेकर कूच किया, तव उसमें स्त्रियाँ थीं, वहनें वेचारी थक गयीं, किसीसे चला नहीं गया । उन्हें मैंने निर्दयता से छोड़ दिया, देखभाल करने को भी नहीं रहा, दूसरों की देखभाल में छोड़कर आगे वढ़ गया, क्योंकि मैंने तो उनकी मौत हिसाव में रखकर तैयारी की थी । अवसर पर मैं निर्दय (घातकी) भी हो सकता हूँ । यह मरने का कार्यक्रम है । यदि प्रतिज्ञा का भंग सहन कर लेना अहिंसा हो, तव तो मैं हिंसावादी वनना अधिक पसन्द करूँगा । वचन-भंग करने का समय आये, इसके वजाय ऐसा कीजिए कि वचन-भंग न हो । वचन तो वचन है । फिर 'भले ही जान चली जाय' ।'

२३ और २४ तारीख को समझौते और उससे उत्पन्न होनेवाले सूत देनेवाले को ही मताधिकार रहे, ये प्रस्ताव आये । इन दिनों के कार्यक्रम सभी की स्मृति में गहरे अंकित रहेंगे । पहले दिन कांग्रेस और स्वराज्य का संकल्प एक होना चाहिए या नहीं, इस विषय में पंडित मोतीलालजी का आश्वासन

लेकर उन्होंने समझौते पर मत लिये। यह काम जल्दी-जल्दी निपटाते हुए उन्होंने अध्यक्ष की हैसियत से कुछ कड़ाई दिखाई होगी, परन्तु किसीके दिल को जरा भी दुःख हुआ नहीं जान पड़ा। दूसरे दिन प्रस्ताव पेश हुए। पहला प्रस्ताव श्री रंगस्वामी अय्यंगार ने पेश किया और दूसरा श्री राजगोपालाचार्य ने। इसमें वहुत औचित्य था। श्री राज-गोपालाचार्य, जो समझौते के कट्टर विरोधी थे, यहाँ आकर चर्चा करके पूरी तरह गांधीजी के मत के हो गये थे। फिर भी पहला प्रस्ताव स्वराज्य-दल के रंगस्वामी अय्यंगार ने पेश किया और समझौते के 'गुण-दोषों से रँगा हुआ' दूसरा प्रस्ताव राजगोपालाचार्य ने पेश किया। प्रस्तावों पर खूब चर्चा हुई। चर्चा में अधिक भाग लेनेवाले श्री विट्ठलभाई और श्री लालाजी थे। विट्ठलभाई को मताधिकार में कताई रखना वेहूदा लगा और अब तक कभी न हुआ परिवर्तन करना भयंकर जान पड़ा। लालाजी को तो विचार-दोष की आपत्ति थी। उन्होंने वताया कि 'इच्छा न हो तो' शव्द न होते और सर्वदा सर्वत्र खादी पहनना रखा जाता तो उचित होता। वैसे ऐसी शर्तवाला मताधिकार वे स्वीकार करते या नहीं, यह विचारणीय है, क्योंकि उन्होंने तुरन्त ही कह दिया कि आज तो सूत है और कल शक्कर माँगेंगे। पंडित मोतीलालजी और श्री दास से गांधीजी ने माँग लिया कि वे अपने पक्ष के आदमियों को स्वतंत्रता से—पक्ष के नियम के वंधन के विना—मत देने दें। इस मामले में मत देना न देना अन्तरात्मा की वात न होने के कारण उन्होंने वह स्वतंत्रता देने से तो इनकार कर दिया, परन्तु एक अन्य सदस्य के, जो न स्वराज्यवादी था, न अपरिवर्तनवादी था, कहने से उन्होंने अपनी वृत्ति स्पष्टता से वतायी। देशवन्धु ने भी प्रकट की। पंडितजी ने कहा कि 'हमने चरखे की न कभी निन्दा की, न हँसी उड़ायी। ऐसा भय है कि शायद उसका सोचा हुआ फल न निकले, परन्तु जव हमने इसे स्वीकार कर लिया तो इसे चलाने और सफल वनाने का प्रयत्न करेंगे। हमारे वचन पर आपको विश्वास होना चाहिए। हम तो सरदार के हुक्म के मुताविक कूच करेंगे—सरदार के हुक्म में भूल होगी तो दोष सरदार का, हमारा नहीं।' इस अंतिम उद्गार में पंडितजी की सहज विनोदवृत्ति निहित थी। देशवन्धु ने तो कहा: 'इस प्रकार का मताधिकार वड़ी चीज है और इसे सफल करने के लिए हम पूरा प्रयत्न करेंगे।'

× × ×

बहुतों के संशोधक प्रस्ताव पेश हुए । कुछ को गांधीजी ने रखने दिया, कुछ को असमय होने के कारण और कुछ को अनियमित होने के कारण गांधीजी ने धड़ाधड़ रद्द कर दिया । सारे कार्यक्रम में उनका हल, त्वरा और क्षण-क्षण में विनोद करने की वृत्ति आकर्षक थी, परन्तु सबसे अधिक आकर्षक थी उनकी प्रसन्नता । उन्होंने विरोधियों को अधिक-से-अधिक समय दिया, पक्ष में बोलनेवालों के लिए समय नहीं था। कठोर-से-कठोर वचन से उनके रोंगटे खड़े नहीं हुए और कड़ी आलोचना से उनको आनंद ही हुआ । **'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः'** की साक्षात् मूर्ति सबको देखने को मिली । अभी शायद इस वचन का साक्षात्कार देखने को बाकी के दिन में अधिक अवसर मिलेगा, और ऐसा लगता है कि कांग्रेसी अहिंसा के पवित्र संस्मरण लेकर घर की ओर विदा होंगे।

× × ×

पहला प्रस्ताव पास हुआ—उसके पक्ष में ११६ मत और विरुद्ध केवल १९ मत थे, ऐसी घोषणा हुई, तब गांधीजी के मुंह से स्वाभाविक उद्गार निकल पड़े: 'चरखा और स्वराज्य दीर्घजीवी हों ।' बहुतों को ऐसा लगा होगा कि आनन्द प्रकट करने में भी संयम रखनेवाले गांधीजी इस प्रकार एकाएक आवेश के वश कैसे हो गये ! परन्तु इसमें गांधीजी का चरखे के प्रति असाधारण प्रेम प्रकट होता है । लाखों नंगों-भूखों के दुःख से रोता हुआ हृदय चरखे पर ही दारमदार रखकर बैठा हो और उस चरखे को स्वीकार करनेवाले इतने अधिक शिक्षित मिल जायँ, जिनसे उन्होंने इतनी आशा नहीं रखी थी, तो उनके आनंद का पार न रहने में आश्चर्य की क्या बात ! इस आनंद-ध्वनि से भी गांधीजी ने सच्चे सत्याग्रही का अपना ही कहा हुआ लक्षण प्रकट किया—अपनी अल्प-से-अल्प मर्यादा बता दी और अल्प से संतुष्ट होने की वृत्ति प्रकट की ।

बेलगांव के पुण्यतीर्थ में

(नवजीवन, ४-१-१९२५)

(२)

पिछले अंक में यहां के पवित्र वातावरण का उल्लेख मात्र किया गया था । व्यवस्था के सौन्दर्य की बात नहीं की । व्यवस्था इतनी बढ़िया थी कि सभी उससे तृप्त हुए होंगे । केवल बेलगांव की लाल मिट्टी सबके वस्त्रों

पर भगवा रंग चढ़ा देती थी। इसके सिवा शायद ही किसीको कोई शिकायत होगी। सब छावनियों में व्यवस्था-निरीक्षण के लिए गंगाधरराव के रोज दर्शन होते ही। स्वयंसेवकों की मर्यादा और सभ्यता का पार ही नहीं था—रास्ते पर दायें-बायें जाने का बन्दोबस्त जिस दिन कई हजार आदमियों का समूह इकट्ठा हुआ, उस दिन भी नहीं टूटा। भंगी-विभाग में काका-साहब के अधीन ८० स्वयंसेवक थे और नगरपालिका के भंगियों को मदद देने के लिए रखा गया था। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि अधिकांश स्वयंसेवक ब्राह्मण थे। जिन्हें चरखा कातना हो, उनके लिए चरखा-मण्डप में चरखे रखे गये थे। यह कहने की तो जरूरत ही क्या होगी कि जहाँ देखें, वहाँ खादी थी। सफाई-विभाग लगभग आखिरी दिन तक बहुत अच्छी तरह चला। खिलाफत कमेटी ने मुसलमान स्वयंसेवक ही रखने का आग्रह न किया होता तो कितना अच्छा होता? हिन्दू स्वयंसेवक मुसलमान प्रतिनिधियों की सेवा में होते तो सुन्दर होता! स्थान का सौन्दर्य बढ़ाने में भी गंगाधरराव ने कसर नहीं रखी थी—खास तौर पर सभामंडप में जाते हुए आनेवाला गोपुर और उस पर होनेवाली रात की दीपमाला तथा भीतर का सुन्दर फौआरा गांधीजी की आँखों में चढ़े बिना न रहा। सौन्दर्य से भी राष्ट्र-कार्य जिस हद तक पोषित होता हो—जिस हद तक वह उपयोगी हो, उसी हद तक वह सौन्दर्य, सौन्दर्य है, इस दृष्टि से गांधीजी ने विनोद में गंगाधरराव को अपनी खादी-कुटी के सम्बन्ध में भी कह दिया था: 'मैं तो बनिया ठहरा, पाई-पाई का हिसाब गिननेवाला ठहरा। कहते हैं कि मुझे खादी-कुटी मिली है। परन्तु इसे बनाने में दो हजार से कम खर्च नहीं हुआ होगा, जब कि आपके प्रतिनिधि बेचारे मामूली छप्परों में रहते हैं, आप पर सूर्यनारायण भी झाँक लेते हैं और रात को ठंड की भी हद नहीं होगी। इतने के लिए भी आप कितने अधिक दाम देंगे? इसलिए यह कहूँ तो क्या गलत होगा कि आपके खर्च पर ही मुझे अपना खादी का महल मिला है?' इतने पर भी सामान्य भोजनालय में गांधीजी गये होते तो वहाँ खाने का खर्च अधिक लिया जाता था। ऐसा लगता है कि इसे भी दरगुजर करते। इस भोजनालय की स्वच्छता ऐसी थी कि उड़कर आँख में समा जाय। केले के साफ पत्ते और सूखे केले के दोने। बैठने का स्थान काँच की तरह साफ और उसे सजाने के लिए आसन के आसपास सुन्दर स्वस्तिक की अल्पना पूरी गयी थी। (गांधीजी की कुटी के सामने रोज सुबह

चौक पूरने के लिए कुछ बहनें ठेठ शहर से मील-दो मील चलकर आतीं ।) और अल्पनाओं में सुन्दर कानड़ी अक्षरों में लिखा होता 'बन्निरी, बन्निरी राटी तिरगीसरी, बडतन होगीसरी !' (भाइयो, खूब चरखा चलाइये, चरखा चलाने से देश की गरीबी मिट जायगी !) भोजन बनानेवालों के सिवा लगभग ३०० परोसनेवाले थे, वे सब स्वयंसेवक ! दक्षिण में ये लोग कार्य करने के लिए अपनी ऐसी सेवाएँ देते हैं और सब ऊँचे प्रतिष्ठित परिवारों के होते हैं ।

पिछले अंक में २४ तारीख तक की बातें मैंने की थीं । उसके बाद वास्तविक राष्ट्रीय सप्ताह शुरू हुआ, यह कहा जाय तो हर्ज नहीं । उस सप्ताह की घटनाओं का विहंगम दृष्टि से वर्णन करना भी कठिन है । कितनी चीजों का वर्णन किया जाय ? आदमी कांग्रेस देखे अथवा कांग्रेस के वृक्ष से लिपटी हुई अनेक शाखा-सभाएँ और सम्मेलन देखे ? इस सप्ताह में और नहीं तो कांग्रेस के अलावा दूसरे सोलह सम्मेलन थे ! संसार-सुधार-सम्मेलन कब हुआ और कब पूरा हुआ, इसका शायद ही किसीको पता होगा ! वल्लभभाई हिन्दी-सम्मेलन के अध्यक्ष होनेवाले थे, परन्तु उनके सम्मेलन के लिए एक भी तंबू खाली नहीं हो सका । विद्यार्थी-सम्मेलन तो था ही, साथ ही शिक्षक-सम्मेलन भी था ! विद्यार्थियों के माँ-बाप सम्मेलन करें तो शिक्षक और विद्यार्थी क्यों न करें ? इसके साथ ही वाचनालय-सम्मेलन और रेल-यात्रियों का सम्मेलन, आयुर्वेदिक सम्मेलन और प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन ! अकेली नामावली सुनकर भी मनुष्य कायर बन जाय ! प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन के लोग एक सुबह गांधीजी के पास आये और कहने लगे : 'हमें प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में बातें करनी हैं, तो आप अध्यक्ष नहीं बनेंगे ?' पहले तो गांधीजी ने दो-चार बातें कीं । फिर उन्हें झँझोड़कर कहा : 'आप तो प्रकृति के नियम-पालन में ही महत्व मानते हैं न ? तब तो कृपा करके मुझे प्रकृति का नियम पालन करने दीजिए, क्योंकि मैं तो यहाँ कांग्रेस के काम से आया हूँ, आपके सम्मेलन के लिए नहीं आया । आपके बारे में बातें करना मेरे लिए प्रकृति का नियम भंग करना होगा । मैं तो आपको अपने कमरे में घुसने भी न देता और बालाबाला विदा कर देता, क्योंकि मेरे लिए इन सब बातों में मन लगाना अपने नियमों को भंग करने जैसा है, परन्तु क्या करूँ ? आपको निकाल बाहर करना मर्यादा और सभ्यता के नियम का भंग करने जैसा है, इसलिए

पहले नियम का थोड़ा त्याग किया। मेरे साथ बातें करना हो तो आश्रम में आइए।' एक सम्मेलन में कोई बुलाने आया था, उसे विदा करके जरा खिन्न होकर बोले : 'इन तमाशों से मैं थक गया। देवदास और बा नहीं आये। वे कितने सौभाग्यशाली हैं ? मुझे यह काम-काज का ढंग नहीं लगता, व्यभिचार लगता है। हरएक के मन में यह रहता है कि 'मुझे अपना टट्टू आगे करना ही चाहिए' और सबके टट्टुओं की स्पर्धा हो रही है ! कांग्रेस को पोषण देनेवाले सम्मेलनों के सिवा और कोई सम्मेलन नहीं होना चाहिए।' अस्पृश्यता-निवारण-सम्मेलन और गो-सम्मेलन इस श्रेणी में आनेवाले होने के कारण गांधीजी उनमें गये थे। गो-सम्मेलन के तो अध्यक्ष थे। दोनों सम्मेलनों के भाषण अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण थे, इसलिए उन्हें अलग ही देना ठीक रहेगा। खादी-प्रदर्शन और चरखे की स्पर्धा के वर्णन तो मगनलाल भाई जैसे दें, वही ठीक होंगे। मैं तो इसीकी कुछ कल्पना देने का विचार रखता हूँ कि कांग्रेस का कार्य कैसे शुरू हुआ और कैसे पूरा हुआ, उसमें कैसी रंगतें सामने आयीं।

गतांक में मैं वातावरण की पवित्रता के बारे में लिख चुका हूँ। उसमें और अधिक उल्लेख करूँ तो पाठक क्षमा करेंगे, क्योंकि उसमें भी गांधीजी की कार्य-पद्धति की विशेषता प्रकट होती है। २४ तारीख को कताई के मताधिकार का प्रस्ताव हुआ, उस समय की गांधीजी की मनोदशा मैं बता चुका हूँ। २५ तारीख को फिर समझौता-समिति मिली। उसमें कई प्रस्ताव उपस्थित हुए और उनका निपटारा हो जाने के बाद गांधीजी लगभग सभा विसर्जन करने की तैयारी कर रहे थे; कुछ लोग तो केवल इतना जानकर कि दूसरे दिन कांग्रेस कब मिलेगी, चले भी गये थे। गांधीजी ने दूसरे दिन का कार्यक्रम बताना शुरू किया : 'कांग्रेस तीन बजते ही शुरू हो जायगी, थोड़ा-सा बढ़िया संगीत होगा, गंगाधर-राव पाँच मिनट में अपना भाषण पूरा करेंगे और बाद में ३० मिनट मैं बोलूँगा। इसके बाद प्रस्ताव पेश होंगे और उनके पेश होने के बाद मौलाना हसरत मोहानी उसके विरुद्ध बोलेंगे।' इतनी जानकारी देकर सभा विसर्जन कर दी। इतने में गांधीजी को सहज ही चेतावनी देने का मन हो गया। उन्होंने सबसे कहा : 'जैसे हसरत साहब विरोध करेंगे, वैसे आप भी विरोध करें। जिन्होंने उसके पक्ष में मत दिया है, वे भी समझ लें कि वे उसके विरुद्ध मत देने को स्वतंत्र हैं।

'आप तो प्रतिनिधियों के प्रतिनिधि हैं। प्रतिनिधि तो सब कल

आये होंगे ही । यदि आप मुझ पर ही सारा बोझा डालकर इस पर मत देना चाहते हों तो बेहतर है कि इसके विरुद्ध मत दें, क्योंकि मेरे कन्धों में इतना सारा भार उठाने की ताकत नहीं । आप सब इस प्रस्ताव के अक्षर और आत्मा का पालन करने को तैयार हों तो ही मुझसे कुछ काम हो सकेगा । हमारा उद्देश्य विदेशी कपड़े का बहिष्कार है । यह काम प्रत्येक व्यक्ति—गरीब-से-गरीब भी—करेगा, तो ही हो सकेगा । राष्ट्र का यह एक प्रामाणिक और उचित प्रयास है । आज अकेला बहिष्कार पूरा करने की हमारी शक्ति है और यदि हम इतना कर सके तो फिर दूसरी हजार चीजें कर सकेंगे, परन्तु तब तक नहीं ।'

इतनी प्रस्तावना करके इसका उल्लेख करने लगे कि उसके पालन करने में कैसी मनोवृत्ति चाहिए । प्रस्तावों के मनमाने अर्थ करेंगे, अपने को बचाने के लिए अर्थ करेंगे तो कुछ नहीं होगा । यह चेतावनी देते हुए भाई भोपटकर के एक प्रस्ताव की बात की :

'भोपटकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन से मुझे वेदना हुई । मूल प्रस्ताव इस बारे में था कि शिक्षा-संस्थाएँ राष्ट्रीय कब कहलायें । उसमें ये शब्द थे कि विद्यार्थी कातते हों और खादी पहनते हों। भाई भोपटकर कहते हैं कि सब अवसरों पर हम खादी नहीं पहनते हैं तो बालक कैसे पहनेंगे ? इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय प्रसंगों के सिवा बच्चों को भी छूट देने का संशोधन रखा ! मताधिकारवाले प्रस्ताव का यह अर्थ ही नहीं, इसलिए मुझे भोपटकर के प्रस्ताव से दुःख हुआ । मताधिकार का प्रस्ताव तो हमें अपना कर्तव्य जताता है । कांग्रेस के सदस्य होने के खातिर इस कर्तव्य का पालन करने को हम बँधे हुए हैं, इस पर आपके मताधिकार का आधार है—इतना न करें तो आप अपना पवित्र मताधिकार खो बैठेंगे । परन्तु इससे यह तो नहीं होगा न कि आप कांग्रेस की कार्रवाई पूरी करके घर जाते ही तुरन्त खादी छोड़कर विदेशी वस्त्र पहनने लग जायँ ? यदि आप यह अर्थ करते हों तो निश्चित समझिए कि विदेशी कपड़े का बहिष्कार नहीं हो सकेगा । मैं चाहता हूँ कि आप प्रस्ताव और समझौता अच्छी तरह पढ़िए और उसका रहस्य समझिए । राष्ट्रीय प्रसंगों पर खादी पहनना और २४००० गज सूत देना तो कांग्रेस के सदस्य का फर्ज है । परन्तु लोगों से कांग्रेस इस बात की आशा रखती है कि न केवल हम, बल्कि बालक भी सदा और सर्वत्र खादी पहनें । खादी चालू सिक्का बन जाना चाहिए, नहीं तो बहिष्कार नहीं होगा । जिनकी कातने की इच्छा

नहीं है, उनके लिए जो प्रस्ताव किया है, उसे कातनेवाले अपना बचाव न समझें। परन्तु ऐसा अर्थ आप करते हों तो कल आप यह प्रस्ताव रद्द कर दीजिए। मुझे केवल इतना ही दुःख होगा कि विदेशी वस्त्र का बहिष्कार नहीं होगा। परन्तु सच बात तो यह है कि 'इच्छा न हो ऐसे लोगों के लिए' प्रस्ताव केवल उन्हींके लिए है, जो प्रकृति से अशक्त या अनिच्छावाले हों—बच्चे इसमें नहीं आ सकते। आपको समझौते पर अमल ऐसा करना चाहिए कि वर्ष के अन्त में सबको महसूस हो जाय कि विदेशी वस्त्र का बहिष्कार आ गया है, आ गया है। अगर तमाम प्रतिनिधि यहाँ से जाकर स्वयं खूब कातें, देहात में कतवायें, ग्रामीणों को समझायें तो हम सबकी शक्ति इसीमें लग जानी चाहिए। परन्तु यह तो तभी है, जब आपको इस प्रस्ताव में श्रद्धा हो। इसलिए कल जब आप मिलें, तब बुद्धि-पूर्वक समझ के साथ और अपने कार्य का परिणाम पूरी तरह समझकर मत दीजिए।'

यों कहकर अपना भाषण खत्म करने जा रहे थे और यह कहकर बैठ गये कि हमें २७ तारीख को कांग्रेस की कार्रवाई पूरी कर देनी चाहिए कि इतने में श्री केळकर उठे और पूछा: 'आपने जो उद्‌गार प्रकट किये, वे स्वराज्यदल को ध्यान में रखकर प्रकट किये। परन्तु हमारे समझौते का दूसरा भाग भी है—जिसमें यह बात आती है कि स्वराज्यदल कांग्रेस की तरफ से काम करेगा और कौंसिलवालों को आप हर तरह से मदद देंगे। मैं चाहता हूँ कि आप इस बारे में अपरिवर्तनवादियों से आग्रह करें।' गांधीजी इस तरह भभक उठे, जैसे बारूद में आग पड़ने से वह भभक उठती है:

'जरूर। श्री केळकर जो कह रहे हैं, वह ठीक है। 'यंग इंडिया' में तो मैं लिख ही चुका हूँ। और अब कल के पवित्र कार्य के बारे में तैयार होकर उससे पहले प्रत्येक अपरिवर्तनवादी को भी सचेत कर देना जरूर चाहता हूँ। मैंने अब तक के अपने उद्‌गार केवल स्वराज्यवादियों को ही ध्यान में रखकर प्रकट किये हों, सो बात नहीं। अपरिवर्तनवादियों में कातने के मताधिकार को न माननेवाले बहुत हैं। इसलिए उनसे भी कहता हूँ कि वे इस समझौते का जो अर्थ मैं करता हूँ और उन्हें करना चाहिए, वही अर्थ करें। स्वराज्यवादियों में मुझसे जितनी मदद हो सकती है, उतनी मुझे करनी है और उनके कार्य में जितनी सहायता दी जा सकती है, उतनी देनी है। 'उनका' कार्य मैं उनके तरीके को ध्यान में रखकर

कह रहा हूँ। वैसे उनका काम कांग्रेस का काम है, देश का काम है। उनके तरीके और कार्य-पद्धति के बारे में मैं उनसे सहमत नहीं। परन्तु मेरा विचार क्या काम आये ? वे क्या मुझे नहीं कह सकते : 'आपके चरखे से क्या हो गया ?' इसी प्रकार मैं उन्हें कह सकता हूँ कि 'आपकी कौंसिल से क्या हुआ ?' परन्तु वे तो इसे नौकरशाही के विरुद्ध लड़ाई में एक बड़ा उपयोगी शस्त्र मानते हैं। इसलिए उनके तौर-तरीकों के विषय में मुझे शक होने पर भी मुझे उनकी सहायता करनी ही चाहिए।

'इसी कारण मैं स्वराज्यवादियों से मिला और मैंने बड़ा मनोमंथन किया—यह देखने को कि मैं किस प्रकार उनकी मदद कर सकता हूँ। अन्त में मुझे समझौता सूझा। यह समझौता करके मैंने उन पर कोई उपकार नहीं किया। यह उनका हक है और मुझे उनके कार्यक्रम में मन से भी अन्तराय नहीं डालना चाहिए। उलटे, मुझे अपने मन को यह समझाने का प्रयत्न करना चाहिए कि ये लोग जो कर रहे हैं, वह अच्छा ही है। मैं चाहता हूँ कि आप भी ऐसा ही करें। इसीलिए मैं अपना मार्ग छोड़कर स्वराज्यवादियों से मिलता रहा और उनकी दलीलें सुनीं, और उन्हें स्वीकार करने के लिए अपना मन खुला रखा। मैं उनकी सहायता इसी तरह कर सकता हूँ। परन्तु मेरी मदद का यह अर्थ हो कि विधानसभा में पेश होनेवाले कानूनों के बारे में भाषण देकर और सभाएँ करके मैं उनकी मदद करूँगा तो मुझे बता देना चाहिए कि यह भूल है। यह मुझसे नहीं हो सकता, क्योंकि इस कार्य में मेरा दिल नहीं। मैंने समझौते को इस तरह नहीं समझा। ऐसी मदद देने के लिए मैं तैयार नहीं सो बात नहीं, परन्तु मेरे हृदय में यह बात उतरनी चाहिए न ? यदि उतर जाय तो यह कहने में मुझे देर नहीं लगेगी कि मैं कट्टर स्वराज्यवादी हूँ और यदि ऐसा होगा तो आप इसी काम में मेरे चौबीसों घंटे माँग लीजिए। आज इसमें मेरा दिल नहीं लगता, इसलिए दिलोजान से मदद नहीं दी जा सकती। परन्तु भरसक सहायता मैं जरूर करूँगा। उदाहरण के लिए, सरकार आपको तंग करे, आपके नाम को कालिख लगाने की कोशिश करे, तो आप मुझे अपने पास ही खड़ा देखेंगे। आपके दुःख में मैं दुःखी होऊँगा और आपको जहाँ मदद दी जा सके, वहाँ दूँगा—आप सहायता नहीं लेंगे तो भी कहूँगा कि ईश्वर के लिए मेरी मदद स्वीकार कीजिए।

'परन्तु यदि आप यह चाहते हों कि मैं यह भी खानगी में कहूँ कि आपकी नीति अच्छी है तो मुझे साफ कहना चाहिए कि यह नहीं होगा।

और फिर भी आपसे जरूर आशा रखूंगा कि लोग जब आपसे पूछें कि आप चरखे को न मानते हुए भी हमें कातने को किसलिए कहते हैं, तो उनसे कहिए कि हमें चरखे में विश्वास नहीं। यदि आपको अश्रद्धा होगी और फिर भी आप समझौता स्वीकार करेंगे तो आप विश्वासघात करेंगे।'

यहाँ फिर श्री केळकर खड़े हुए। 'परन्तु हमारा कार्य तो हमारी नरम मनोदशा पर आधार रखेगा न? क्योंकि स्वराज्यवादियों की श्रद्धा आपके जैसी तो हरगिज नहीं—उनके मन में छिपी-छिपी, कुछ हद तक ही सही, अश्रद्धा भी तो है ही।'

गां० : 'हाँ, वह अश्रद्धा इस हद तक हो कि चरखे से देश का अकल्याण होता है तो आपको प्रस्ताव और समझौता रद्द कर देना चाहिए।'

श्री केळकर ने कहा : 'नहीं, इस हद तक तो नहीं जायँगे।'

गांधीजी ने अपना कथन जारी रखा : 'आपसे मैं चरखे के बारे में जिस प्रकार का सहयोग माँगता हूँ, वह उस प्रकार का तो हरगिज नहीं होगा, जो आप मुझसे माँगते हैं और यह तो समझौते में स्पष्ट ही है। आपसे मैं असंभव वस्तु की आशा रखता ही नहीं। मैं आपसे इतना ही माँगता हूँ कि आपकी श्रद्धा और शक्ति के अनुसार आप जितनी मदद दे सकें, उतनी अत्यंत प्रामाणिकता से देंगे। मैं चाहता हूँ कि सब इस समझौते को इस तरह देखें। यदि इस तरह नहीं देखेंगे तो हमारा आन्दोलन असफल ही होगा, यह समझ लीजिए....मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि आप एक-दूसरे के लिए मन में कोई मैल न रखें। यह चाहता हूँ कि जो गाँठ मन में रहनी नहीं चाहिए, वैसी आपके मन में न हो। अपरिवर्तनवादियों के मन में यह समझौता स्वीकार करते समय भीतर-भीतर भी ऐसी भावना नहीं चाहिए कि स्वराज्यवादी देश के शत्रु हैं।

'अपरिवर्तनवादियों को मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि यदि आप चरखे को न मानते हों, तो अन्त में आप समझेंगे कि हिंसात्मक प्रवृत्ति के सिवा और कोई उपाय आपके लिए नहीं है। भाई स्टोक्स अपंग हो गये हैं, इसका क्या कारण? वे सुन्दर मनुष्य हैं, उन्होंने खूब त्याग किया है, परन्तु वे विदेशी ठहरे। चरखे के बारे में लोगों ने उनकी नहीं सुनी तो अब उन्हें एक भी रास्ता दिखाई नहीं देता और वे कहते हैं कि विधानसभा के अलावा कोई चारा नहीं, क्योंकि लोगों को छोटी-छोटी बातों की शिकायतें होती हैं। उनकी दाद विधानसभा में मिल

सकती है, असहयोग में थोड़े ही मिल सकती है ? इसीलिए भाई शंकर-लाल और अनमूया वहन को मैंने सलाह देने का साहस किया है कि मजदूर अदालत में जाते हों तो उन्हें जाने दें, क्योंकि असहयोग उनके लिए खुला नहीं । इसलिए आपसे भी कहता हूँ कि यदि चरखा आपकी देशभक्त आत्मा को तृप्त करने के लिए काफी न हो तो आपको विधानसभा में जाना ही होगा, क्योंकि वहाँ जाकर और कुछ नहीं तो थोड़ा ऊधम तो कर ही सकेंगे और कुछ कैदियों को तो छुड़वा ही सकेंगे । मैंने कई वार कहा है, और आज फिर कहता हूँ कि यदि चरखे में श्रद्धा न हो, तो विधानसभा में जाना ही पड़ेगा । वहाँ कुछ-न-कुछ तो कर सकेंगे । विधानसभा में जानेवाले वुद्धिमान्-वर्ग के प्रतिनिधि हैं । वे कसे हुए सिपाही हैं । उदाहरण के लिए पंडित मालवीयजी जैसे आत्मत्यागी मनुष्य आपको कहाँ मिलेंगे ? उन्होंने वहुत काम किया है, फिर भी आज उन्हें विधानसभा में पूरा विश्वास है । वे कोई मूर्ख नहीं । उन्हें जव-जव देखता हूँ, तभी मेरा सिर झुक जाता है । चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू कौन हैं ? आज वे ऐसी पोशाक पहने कैसे वैठे हैं ? मोतीलाल नेहरू तो किसी समय राजा की तरह रहे हैं । अमृतसर-कांग्रेस में गये, तव अपनी मोटरगाड़ी और नौकरों की वड़ी फौज लेकर गये थे । आज उनका गुलाव, मोगरे से हरा-भरा वाग वीरान पड़ा है और उसमें घास उग रही है ! क्या वे देशद्रोही हैं ? उनके आगे मेरा सिर सदा झुकता है और मैं जव-जव उन्हें देखता हूँ, तभी मुझे लगता है कि मुझमें कुछ-न-कुछ अधूरापन होगा कि मैं उनसे किन्हीं मामलों में अलग हो रहा हूँ । केळकर कौन हैं ? ये तो उस महापुरुप के प्रतिनिधि हैं, जिसका नाम इतिहास में अंकित रहेगा और एक ईश्वरीय सत्ता के अधीन ३३ करोड़ देवताओं को माननेवाले इस देश में जिनका नाम देवता के रूप में पूजा जायगा । मेरी आपसे अर्ज है कि आप अपने दिल साफ कीजिए, प्रेम सीखिए और हृदय को सागर-जैसा विशाल वनाइए, क्योंकि कुरान शरीफ और भगवद्गीता का यही उपदेश है । आप हरगिज काजी न वनें, वनेंगे तो आपके दोप देखनेवाले वेशुमार मिलेंगे । ईश्वर ही न्यायमूर्ति है, आपमें अनेक शत्रु भरे हैं, आप अनेक शत्रुओं से घिरे हुए हैं, फिर भी वह सवसे आपकी रक्षा करता है और आपको अपने कृपा-कटाक्ष से शीतल करता है । हम यह किसलिए कहें कि स्वराज्यवादी कूटनीतिज्ञ हैं, दगावाज हैं ? ईश्वर हमें मनुष्य-स्वभाव की इस निन्दा से वचाये ।

'मतभेद तो जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक रहेंगे और अपरिवर्तन-वादियों का बड़े-से-बड़ा काम तब पूरा होगा, जब वे अपने कथित विरोधियों को मित्र बनाकर उनमें चरखे के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर लेंगे। वे चरखे को नहीं अपनाते, क्योंकि वे उसकी उपयोगिता नहीं देखते। आपको वह साबित कर देनी चाहिए। मैं चरखे के लिए पागल हूँ, क्योंकि मुझे उसीमें देश का उद्धार मालूम होता है। श्रद्धा हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों का सनातन तत्त्व है। जब मैं जेल में था, तब हसरत साहब ने एक पुस्तक दी थी। उसमें एक चेले की बात पढ़ी थी कि उसने हुक्का भरने जैसा क्षुद्र काम भी एक बार, दस बार, पचास बार श्रद्धा से किया था, इसलिए उसे फायदा हुआ था। मैं हिन्दू और मुसलमान दोनों से इसी प्रकार की निःस्वार्थ और निष्काम सेवा करने को कहता हूँ। चरखा दूसरों के लिए अच्छा हो या न हो, हमारे लिए जरूर है, इस श्रद्धा से ही काम करना चाहिए। काशी विश्वनाथ की भव्य मूर्ति मौलाना हसरत मोहानी के लिए एक पत्थर का टुकड़ा हो, परन्तु मेरे लिए वह ईश्वर की प्रतिमा है। उसका दर्शन करके मेरा हृदय द्रवित होता है। यह श्रद्धा की बात है। गाय के दर्शन करता हूँ, तब मुझे किसी भक्ष्य पशु के दर्शन नहीं होते, मुझे उसमें एक करुण काव्य नजर आता है। उसकी मैं पूजा करूँगा और सारा जगत् मुझे उसकी पूजा न करने दे तो उससे लड़ूँगा। ईश्वर एक ही है, परन्तु वह मुझे पत्थर की पूजा करने की श्रद्धा प्रदान करता है। वही मुझे पत्थर में, मेरी आँखों के सामने रखे हुए इन पदार्थों में, अंग्रेज में, अरे देशद्रोही में भी ईश्वर को देखने की शक्ति देता है। देशद्रोही के प्रति भी मुझमें तिरस्कार नहीं। इसलिए मैं प्रत्येक असहयोगी से कहूँगा कि यदि आपकी अहिंसा-धर्म में निष्ठा हो तो आप स्वराज्य-वादियों से मिलेंगे और उनसे कहेंगे कि 'हमसे भूल हुई हो तो माफ कीजिए।' किसीके प्रति द्वेष रखने का आपको अधिकार ही नहीं, किसीको गाली देने का हक नहीं। मैं चाहता हूँ कि आप इस उत्तम औषधि का सेवन करें, इससे उम्दा दवा मैं दे नहीं सकता। इसके सेवन करने की ईश्वर आपको शक्ति दे और वर्ष के अन्त में सब कुशल ही होगा।'

इस भाषण में से कुछ भी छोड़ने को जी नहीं हुआ। गांधीजी बोलते हैं, तब तैयार होकर कभी नहीं बोलते, परन्तु प्रसंग ही उनसे बुलवाता है, इसका यह सुन्दर उदाहरण है। इन छपे हुए अक्षरों में उस समय

का उनका चित्र दिया नहीं जा सकता और न उनके शब्दों में निहित प्राण ही प्रकट किया जा सकता है । सब पर इस भाषण का बड़ा असर हुआ था । पंडित मोतीलालजी जैसे की आँख भी गीली होती दिखाई देती थी । इस भाषण के बाद वे बोले थे : 'गांधीजी कांग्रेस का भाषण किस तरह लिखकर लाये होंगे ? इस प्रकार एक घंटे बोलते रहते, तो सारी कांग्रेस मंत्रमुग्ध बनी रहती ।' श्री सत्यमूर्ति ने राजगोपालाचार्य से कहा था : 'यह कौन नहीं मानेगा कि गांधीजी ने हमारी राजनीति को उन्नत शिखर पर पहुँचा दिया है ?'

यह तो गांधीजी की २५ तारीख की मनोदशा थी । २६ तारीख को कांग्रेस में जाने से पहले वे चरखा कात रहे थे । दो बजे कातने बैठे । ढाई बजे सबको बुलाकर **'वैष्णव जन तो तेने कहिए'** और **'जाके प्रिय न राम वैदेही'** गवाये । शाम को रोज साढ़े सात बजे प्रार्थना तो होती ही रहती थी और सुबह चार बजे भी होती थी । फिर भी भजन गाने के बाद **'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा'** वाले श्लोक बुलवाये । पास ही पोर्टोनोवो-वाली कुमारी पिटरसन बैठी थीं । उन्हें और पद्मजा नायडू को 'Lead Kindly Light' ('तुम्हारी प्रेम-ज्योति दिखलाओ') गाने को कहा । यह पूरा हुआ कि मोतीलालजी और देशबन्धु आ पहुँचे । कांग्रेस में ठीक तीन बजते ही गंगाधरराव ने काम शुरू किया और सात मिनट में अपना भाषण खत्म कर दिया । गांधीजी ने अपना हिन्दी और अंग्रेजी भाषण ठीक तीस मिनट में पूरा किया । इस भाषण में एक ही बात थी : 'जो करो, सो ईश्वर को साक्षी रखकर करो । वचन न दें, प्रस्ताव को उड़ा दें, यह मैं पसन्द करूँगा, परन्तु वचन-भंग करेंगे तो मेरे लिए जहर के समान हो जायगा । मुझे गालियाँ दें, मारें, मुझ पर थूकें तो मैं खामोश रहकर सह लूँगा, परन्तु दिया हुआ वचन पालन न करें, यह मुझसे सहन नहीं होगा ।' इसके बाद भाषण हुए और फिर मत लेते समय उन्होंने सबको चेतावनी दी । इतनी चेतावनी के बावजूद लोग मत दें तो वह स्वतंत्र मत न कहा जाय, तो क्या कहा जाय ?

ऊपर की बातें उस चीज को जाहिर करती हैं, जो गांधीजी के स्वभाव में समायी हुई हैं। अध्यक्ष के नाते उन्होंने जो कार्य-पद्धति अपनायी, उसके कुछ नमूने भी उल्लेखनीय हैं । समझौते पर बिलकुल चर्चा नहीं होने दी और ऐसा एक भी प्रस्ताव उन्होंने नहीं करने दिया, जिससे प्रस्ताव पास होने पर उसमें फेरबदल करना पड़े । यह कुछ लोगों को अच्छा नहीं

लगा; कुछ को इसमें मनमानी भी दिखाई दी। परन्तु जिन्होंने विषय-समिति और कांग्रेस में उनका सारा व्यवहार देखा होगा, वे ऐसा आक्षेप नहीं करेंगे। समझौता पास होने पर भी दूसरे दिन मौलाना हसरत मोहानी को उन्होंने मताधिकार बदलने-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने दिया। उन्होंने यही हेतु दृष्टि के सामने रखा था कि नियम का आड़ न लेकर जिसको कातने के मताधिकार का विरोध हो, उसे वह प्रकट करने के जितने अवसर दिये जा सकें, उतने दिये जायँ। कांग्रेस में जब राजगोपालाचार्य को बोलने के लिए कहने को गांधीजी के नाम चिट्ठी आयी, तब उसके जवाब में उन्होंने कहा: 'मुझे तो सिर्फ विरोध करनेवालों को ही बोलने देना है। राजगोपालाचार्य आकर समर्थन में भाषण दें तो उसका भी आपके मन पर असर हो, यह मुझे नहीं होने देना है। आप स्वतंत्र रूप में ही मत दें, यही मैं चाहता हूँ। विषय-समिति में मताधिकारवाले प्रस्ताव पर पर्याप्त चर्चा हो जाने के बाद उन्होंने कह दिया कि अब चर्चा बन्द है। इसके बाद याकूब हसन ने बोलने की इजाजत माँगी। गांधीजी ने सवाल पूछा: 'पक्ष में बोलेंगे या विपक्ष में?' 'पक्ष में तो नहीं' यह उत्तर मिलने पर गांधीजी ने कहा कि 'तब तो जरूर बोलने दूंगा।' परलोक-वासी होनेवाले देशसेवकों के लिए प्रस्ताव पहले दिन हो चुका था। उसमें श्री भुर्ग्री का नाम रह गया था। दूसरे दिन उसके लिए अत्यन्त खेद प्रकट करके उन्होंने सारी सभा को शोक-प्रदर्शन के लिए खड़ा किया। एक अस्पृश्य को वचन दिया था कि अस्पृश्यता के प्रस्ताव के समय उसे सभा के सामने खड़े होकर कुछ बोलने की अनुमति मिलेगी। उसका नाम भूल गये, इसके लिए बाद में अपना दु:ख प्रकट करके उस आदमी को बुलवाकर बोलने दिया। आम तौर पर खेद के प्रस्ताव के समय सभा खड़ी होती है। गांधीजी ने सम्मान प्रदर्शित करने के लिए भी सभा को खड़ा होने को कहा। इस प्रकार औचित्य का अंतिम सीमा तक पालन करते हुए भी उन्होंने कांग्रेस का काम पाँच बजते ही बन्द कर दिया।

इसी प्रसंग पर उनकी चातुर्यभरी विनोद-वृत्ति के कुछ नमूने दे दूं? शायद उसके बिना कांग्रेस की कार्रवाई लम्बी हो जाती और जितनी आसानी से निपट गयी, उतनी आसानी से न निपट पाती। विषय-समिति की आखिरी बैठक में डॉ० परांजपे—गांधीजी को हिन्दुस्तान के ५६ लाख बाबाओं में से और बेलगांव के भाषण में बूढ़े-बूढ़ियों में से एक

माननेवाले डॉ० परांजपे—बोलने के लिए उठे। उनका भाषण कुछ मिनट तक कोई नहीं समझ सका। एक भाई ने उठकर पूछा: 'यह नियमानुसार है, महोदय?' गांधीजी ने हँसते-हँसते कहा: 'मैंने ही इन्हें बोलने देकर नियम तोड़ा है तो अब इन्हें नियम तोड़ने से कैसे रोका जाय?' स्वामी गोविन्दानन्द नये मताधिकार के विरुद्ध खूब चिढ़कर बोल रहे थे। बोलते-बोलते उन्होंने कहा: 'मैं विरुद्ध हूँ, फिर भी कातूंगा।' इस पर गांधीजी ने पूछा: 'कातकर किसे देंगे?' गोविन्दानन्द शान्त होकर बोले: 'दान करूँगा।' 'मुझे ही करेंगे न?' कहकर गांधीजी ने सबको हँसाया। स्वामी कहते हैं: 'हाँ, आपको ही।' गांधीजी बोले: 'बस, तब तो यह समझौता मुझे मंजूर है। आप मत न दीजिए, सूत दे दीजिए।' कोहाट के प्रस्ताव पर मालवीयजी को बोलने के लिए अनुरोध किया गया। उन्होंने कहा: 'मुझसे थोड़े में नहीं निपटाया जायगा, लम्बा भाषण करना पड़ेगा।' गांधीजी ने कहा: 'आप भूल रहे हैं। आपको रोकने के लिए मैं बैठा रहूँगा न?' और दूसरे दिन मौ० मुहम्मद अली जब भाषण बढ़ाते गये, तब अपनी बैठक से आकर मंच पर एक मेज डलवाकर बैठे तो कारंवाई पूरी होने तक वहीं बैठे रहे! कोहाट का प्रस्ताव जितनी चतुराई से लाया गया और अंतिम रूप में पास हुआ, वह शायद ही और कोई कर सकता था। एक तरफ से मौलाना जफर अली खाँ एक किनारे पर जाकर बैठे थे तो डॉ० मुंजे दूसरे किनारे पर जाकर बैठे। अब किसे समझाया जाय? उस दिन प्रस्ताव पर चर्चा बन्द कर दी। दूसरे दिन जफर अली खाँ को समझाया। बाद में रह गये डॉ० मुंजे, सो उनके साथ मीठी बहस हो रही थी: 'डॉ० मुंजे, आपके जैसे अचूक और स्पष्ट विचार करनेवाले ऐसी उल्टी बहस करें, यह तो सहन नहीं किया जा सकता।' डॉक्टर जरा खिसियाये। अन्त में कुछ समझे और फिर आखिर में यह कहकर बैठ गये: 'अच्छा, तो आपकी सलाह मान लेता हूँ।'

औचित्य के तीव्र भान में मिला हुआ अपार चातुर्य और पग-पग पर उसमें मिलनेवाले विनोद में अनपेक्षित प्रसंग पर उसमें भरे जानेवाले करुणा के स्वर—पंडित जवाहरलाल के प्रति अपने अपार प्रेम का उल्लेख, कुमारी गुलनार के साथ अपनी मुहब्बत—यह सब सोचने पर बापू के विषय में **'सकलमेव चरित्रमन्यत्'** उद्‌गार सहज ही निकल जाते हैं।

स्वराज्यवादी नेताओं के बारे में अलग उल्लेख करने में उनके साथ अन्याय नहीं, परन्तु न्याय करना चाहता हूँ और यही बताना चाहता हूँ

महादेवभाई की

कि उन्होंने कितनी मदद दी। पंडित मोतीलालजी ने कांग्रेस में लम्बा भाषण दिया, उसमें मौलाना हसरत मोहानी की और दूसरों की आपत्तियों की इतनी शान्त, सूक्ष्म चर्चा की कि बहुतों के एतराज उनकी दलीलों से भी खत्म हो गये होंगे। उन्होंने कांग्रेस के दोनों दिनों में जिस उदारता से नये कार्यक्रम को पार लगाने का निश्चय घोषित किया, उससे गांधीजी को बड़ा आश्वासन मिला होगा। मोतीलालजी द्वारा मौलाना को जवाब देते समय चरखे के बारे में दी गयी दलीलें सब याद रखेंगे। 'आज इतनी देर के बाद मौलाना विदेशी कपड़े के बहिष्कार की हँसी उड़ा रहे हैं, यह देखकर मुझे हैरत होती है। वे तो बराबर मानते रहे हैं कि ब्रिटिश कपड़े के बहिष्कार का ही भारी असर होगा। यदि ऐसा हो तो सारे विदेशी कपड़े के बहिष्कार का कितना असर होगा? अंग्रेज लोगों की सम्पन्नता सभी जानते हैं। भले ही उनके लिए २० करोड़ का नुकसान किसी गिनती में न हो, परन्तु चरखे से इस गरीब देश में २० करोड़ बचेंगे, उसका क्या? देश की कमजोरी मिटाने की जो राजनीतिक बुद्धि अभी तक हममें पूरी जाग्रत नहीं हुई, उसे जाग्रत करने का उपाय चरखा ही है, यह कहने की शायद ही जरूरत होगी। मौलाना जैसे 'दूरबीन' और बुद्धिमान् आदमी विदेशी कपड़े के बहिष्कार के गहरे परिणाम नहीं समझते, यह मेरे लिए बड़ा आश्चर्य है। चरखे की तालीम तो सैंडो की तालीम जैसी है। इस तालीम का परिणाम आरम्भ में न दिखाई दे, परन्तु तभी दिखाई देता है, जब अन्त में हृष्ट-पुष्ट शरीर नजर आता है। और आज कुछ अश्रद्धालु होंगे, वे भी चरखा चलाने लगेंगे, तो कैसे श्रद्धालु नहीं बनेंगे?' कुछ पुराने मुर्दे उखाड़ने के लिए उन्होंने एक-दो स्वराज्यवादियों और मौलाना मुहम्मद अली की खासी चुटकी ली थी।

देशबन्धु दास के कांग्रेस के भाषण का पहला भाग अच्छा था, पिछले भाग में सरकार के साथ लड़ाई करने में चरखे के बारे में अधिक चर्चा आयी होती तो अच्छा होता। 'जो कात और बुन न सकें, वे चरखे और करघे चलाने का प्रबन्ध करने का काम करें।' उनके इन उद्‌गारों में अनुभव की कमी दिखाई देती थी, परन्तु विषय-समिति में उनका दिया हुआ भाषण आवेशपूर्ण था और उनकी सचाई की मधुर झंकार थी: 'हमारी लड़ाई अभी जारी है और महात्माजी की जितनी बातें हम स्वीकार करते हैं, उन सबमें वे हमारे सरदार हैं ही। मुझे उनकी सरदारी में श्रद्धा है और उनके साथ विदेशी कपड़े के बहिष्कार के बारे में मेरी

बात हुई, तब उनमें मैंने जो आग जलती देखी, उससे मेरे भीतर भी श्रद्धा प्रकट हुई है। उस श्रद्धा से ही मैं कहता हूँ कि यह नया मताधिकार और नया कार्यक्रम सुन्दर रूप में सफल होगा ।'

श्री केळकर, डॉ० मुंजे, श्री अभ्यंकर वगैरह स्वराज्यवादियों का स्पष्टवक्तापन कार्य के प्रतिकूल नहीं था, यही कहना चाहिए कि अनुकूल था और विषय-समिति में श्री केळकर ने प्रश्न न पूछे होते तो क्या ऊपर जो भाषण दिया गया है, उसे सुनने का मौका लोगों को मिलता ?

श्री विट्ठलभाई और उनके मत के इने-गिने स्वराज्यवादियों का पंथ न्यारा था । विषय-समिति में उनका किया हुआ विरोध सौम्य और सीधा था। 'ऐसा भयंकर परिवर्तन आज तक कभी सुझाया नहीं गया । इससे कांग्रेस की राष्ट्रीयता चली जायगी ।' यह उनकी आपत्ति थी । गांधीजी ने इन उद्गारों में निहित अर्धसत्य स्वीकार करते हुए कांग्रेस के अपने भाषण में इसका उत्तर दिया था : 'हाँ, आज जो परिवर्तन सुझाया जा रहा है, वह भयंकर है—सन् १९२१ में किया गया था, उतना ही—बल्कि उससे भी भयंकर है । परन्तु मैंने इसीलिए पेश किया है कि इससे स्वराज नजदीक आ सकता है ।' श्री विट्ठलभाई का मताधिकार के प्रति तीव्र विरोध होने पर भी पं० मालवीयजी की तरह उन्होंने भी भरी सभा में विरोध नहीं किया, यह उनका सौजन्य नहीं तो और क्या था ? फिर भी उन्होंने अन्त तक वह आपत्ति कायम रखी थी और कांग्रेस में विरोध करने के बजाय गांधीजी के साथ रूबरू ही खूब लड़ाई कर ली जाय, ऐसा विचार करके वे कांग्रेस शुरू होने से पहले गांधीजी के पास उनकी कुटिया में आकर अपनी शिकायत कर गये थे । 'आपको २००० गज देकर सब बैठ जानेवाले हैं !' गांधीजी बोले :'२००० गज भेज दें और दूसरों से कहें कि भेजो, तो मैं कहूँगा कि उन्होंने अच्छा किया ।'

वि०:'परन्तु उन्हें श्रद्धा ही न हो तो ? वे तो केवल कृत्रिम रूप में २००० गज भेजेंगे ।'

गांधीजी : 'मैं स्वीकार करता हूँ कि बहुतों को श्रद्धा नहीं । परन्तु किसीको विरोध नहीं, यह मेरे लिए काफी है । वे मानते हैं कि यह कार्यक्रम लोगों के बूते से बाहर का है । उनके सामने नया काम है, उसका महत्त्व और रहस्य शायद सब न समझ सके हों । कुछ की उम्र भी ज्यादा हो गयी है, कुछ को दूसरी परेशानियाँ भी बहुत हैं । उनसे ईमानदारी के

साथ जितना हो सके, उतना ही वे करें तो मेरे लिए काफी है । यदि वे न करें, वचन-भंग करें तो वे कांग्रेस को खो बैठेंगे ।'

वि० : 'कांग्रेस को कातनेवालों का मंडल बनाकर आप उसकी 'पोलिटिकल पावर' (राजनैतिक सत्ता) सारी ले लेंगे ।'

गांधीजी : 'नहीं, मांचेस्टर में कातनेवालों का मंडल है या नहीं ? उनका 'पोलिटिकल पावर' कितना है, इसका आपको पता है ?'

वि० : 'कुछ भी हो; मताधिकार में इसे शामिल कर देना ठीक नहीं ।'

गांधीजी : 'यह आपको ठीक नहीं लगता, क्योंकि आप एक-दो बातें भूल जाते हैं । आप लंकाशायर को भूल जाते हैं । हमारी लड़ाई लंकाशायर के साथ लड़ाई है, यह बात भूल जाते हैं । और आपके जैसे व्यवहारकुशल मनुष्य जरा बैठकर धीरज के साथ विचार नहीं करते कि यह साठ करोड़ का व्यापार क्या है, उसे चलाने के लिए करोड़ों रुपये के जहाजों, जंगी जहाजों और सेनाओं का इतना खर्च क्यों है ? इस व्यापार से ही सारा राज्य चलता हुआ उन्हें जान पड़ता होगा, तभी तो ? उनका यह व्यापार नष्ट हो जायगा तो वे सीधे हो जायँगे । वे तो बड़े दूरदर्शी लोग हैं—उन्हें अपनी स्थिति बदलने में और हिन्दुस्तान के साथ अपना सम्बन्ध सीधा करने में देर नहीं लगेगी । सारी बात मानव-प्रयत्न की है । मानव-प्रयत्न से क्या चीज नहीं हुई ? स्टिवन्सन को रेल-मार्ग बनाना था, बीच में खाई आ रही थी, कोई भर न सका । परन्तु उसने प्रयत्न जारी रखा । सबने मजाक उड़ाया । उसने उसकी परवाह की ? बहुतों ने कहा कि इसमें तुम्हारे कुछ हाथ नहीं आयेगा । परन्तु वह तो कहता ही रहा : 'मिट्टी डालते ही रहो, मिट्टी डालते ही रहो ।' उसे अनेक पटेलों ने आकर निरुत्साहित करने की कोशिश की थी, परन्तु वह डिगा ? मेरी स्थिति उसीके जैसी है ।'

विट्ठलभाई हँसते-हँसते चले गये ।

लालाजी अपने को स्वराज्यवादियों में नहीं मानते, इसलिए उनका इस स्थान पर उल्लेख किया भी जा सकता है ? परन्तु नये मताधिकार के विरोधी के नाते श्री विट्ठलभाई के साथ ही उनका उल्लेख कर दूं तो वे क्षमा करेंगे । मुझे कहना चाहिए कि लालाजी का विरोध मुझे पसन्द नहीं आया । यह कहा जा सकता है कि यह विरोध नरम दलवालों के असहयोग के विरोध जैसा था । उनका यह एतराज था कि मताधिकार में खादी की और कातने की जो शर्तें हैं, वे अधूरी हैं । परन्तु शर्तें पूरी

होतीं—यह शर्त होती कि स्वयं कातनेवाला ही कांग्रेस का सदस्य हो सकता है, और सदा सर्वत्र खादी पहननेवाला ही सदस्य बन सकता है तो क्या सचमुच वे नया मताधिकार स्वीकार करते ? 'आज सूत माँगते हैं, कल शक्कर माँगेंगे', इस दलील की आशा लालाजी जैसे गंभीर विचारक से शायद ही किसीने रखी होगी । परन्तु पंजाब ने लालाजी का जी खट्टा कर दिया है और वहाँ के हिन्दू-मुसलिम झगड़े उन्हें नींद भी नहीं आने देते और उनका स्वास्थ्य उनके निवारण के चिन्तन में ही आधा रह गया है । गांधीजी पंजाब गये, तब अर्धविनोद में वे गांधीजी से कहते : 'महात्माजी, मेरे स्वास्थ्य ने मुझे दलीलों के लिए भी अयोग्य बना डाला है ।' उन्हें इस प्रश्न के सिवा और कोई प्रश्न सूझता ही नहीं । गांधीजी यह देखते हैं कि खादी में इस प्रश्न के निपटारे की भी शक्ति है, परन्तु वे खादी के कार्य को इस झगड़े में असंभव मानते हैं । फिर भी उन्होंने कांग्रेस में गांधीजी का विरोध नहीं किया ।

परन्तु जब कोहाट आया, कोहाट के प्रस्ताव पर वे बोलने उठे, तब उनके हृदय की खलबली मानो कांग्रेस को भी सुनाई दी । यह भाषण लम्बा था, कोहाट के कुछ तथ्यों में भी वे गये थे, परन्तु कोई भी विवेक-शील मुसलमान उनके विरुद्ध आपत्ति नहीं कर सकता था । उन्होंने कुछ तथ्य प्रस्तुत किये थे, परन्तु वे सरकार की लापरवाही और अपराध की पराकाष्ठा बताने के हेतु से ही किये गये थे । और फिर भी सारे भाषण का सार इतना ही था : 'पाप के विरुद्ध पाप हो ही नहीं सकता । वैर-मात्र राष्ट्रीय उन्नति का बाधक है । एक भी हिन्दू या मुसलमान के विरुद्ध किया गया क्रोध, आक्रमण अथवा प्रतिकार जन्मभूमि की छाती पर किये गये वज्रपात के समान है ।' श्रोतागण कोहाट को भूलकर इतने उद्‌गार हृदय में सँजोकर गये हों तो आश्चर्य नहीं और फिर भी ये उद्‌गार कांग्रेस के ही लिए थे, सो बात नहीं । हिन्दू महासभा में कोहाट पर बोलते समय भी लालाजी तो ऐसे ही थे । वहाँ भी उन्होंने एक भी उद्‌गार ऐसा नहीं निकाला, जिससे किसीका व्यर्थ जी दुखे और केवल हिन्दुओं को उनकी निर्बलता समझाने और पुरुषार्थी बनने को ही कहा था।

यों कहा जा सकता है कि समझौते और मताधिकार के प्रस्तावों के लिए ही कांग्रेस हुई थी । उस विषय की चर्चा और अन्य जानने योग्य ब्योरा मैं दे ही चुका हूँ । दूसरे प्रस्तावों में अस्पृश्यता-निवारण, दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों और बर्मा-निवासियों सम्बन्धी प्रस्ताव प्रमुख थे ।

यह तो गांधीजी ने पहले ही स्वीकार कर लिया था कि इन प्रस्तावों में कोई नयी वात मालूम नहीं होगी, जिनके वारे में वे किये गये हैं उनको इनमें वहुत गरमी मिलनेवाली कोई वात दिखाई नहीं देगी । 'इन प्रस्तावों से अधिक जोरदार प्रस्ताव करने की मेरी तो वहुत इच्छा है, परन्तु करूँ क्या ?' आज के वातावरण में इससे अधिक कुछ भी नहीं हो सकता, यह घोषित कर दिया था । दो-तीन प्रस्ताव जो स्वराज्यवादियों और गांधीजी के समझौते के परिणामस्वरूप कांग्रेस में आने से रुक गये, कांग्रेस की बैठक के वाद हुई महासमिति की बैठक में पेश हुए थे । इनके पेश होने में स्वराज्यदल का अनुशासन 'डिसिप्लिन' भंग हुआ था, इतना ही कहना काफी होगा और दोनों प्रस्ताव पास हुए होते तो गांधीजी की स्थिति विषम हो जाती, यह भी स्वीकार करना चाहिए । परन्तु तंत्रनिष्ठा और वचननिष्ठा दोनों जो हममें से लगभग चली गयी हैं, उन्हें वापस लाने की ही हम कोशिश में हैं और ऐसी आशा रखते हैं कि वे धीरे-धीरे आ जायँगी ।

अक्सर कांग्रेसों की कार्रवाई के वाद लोगों के मन पर जो असर होता है, उससे इस कांग्रेस ने भिन्न ही असर किया—मेरे मन पर तो भिन्न ही किया । कलकत्ता और नागपुर के वाद हर्षोन्मत्त होकर आये थे । अहमदावाद में उपस्थित रहना भाग्य में नहीं था; परन्तु उस समय तो नागपुर की अपेक्षा ज्यादातर **'पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरां उन्मत्तभूतं जगत्'** वाली स्थिति थी । गया में एक वर्ग क्रोध से उवल रहा था और दूसरा विजयाभिमान से । काकीनाडा में एकता करने का अभिमान था और भविष्य की वड़ी आशा थी । इस आशा से हमारे प्रयत्न के विना केवल ईश्वरेच्छा से गांधीजी का छत्र देखने की हमारी आशा पूरी हुई । ऐक्य अप्राप्त ही रहा । इन सव अनुभवों से कुछ-कुछ गंभीर वने हुए हमारे मन वेलगांव की कांग्रेस की सफल कार्यवाही से भी हर्षित होने से इनकार करते हैं । जिन्होंने कांग्रेस के दूसरे दिन का लगभग दिव्य दृश्य देखा—'अपने भेद और झगड़े यहीं दफना जाओ, अपने विरोधियों से भी मिलो'—इस भाव की देववाणी सुनकर उन्हें हर्ष नहीं हुआ होगा ? हर्ष हुआ, परन्तु इन वचनों में समाया हुआ प्रेम तो इन्हें वोलनेवाला अनुभव कर रहा है, हमें तो उसे अनुभव करना है—हमारे हृदय तो अभी शुष्क हैं, ऐसी भावना भी वहुतों की हुई होगी । 'वरी दि हैंचेट' (कुल्हाड़ी को गाड़ दो)—यह अंग्रेजी प्रयोग कितना सार्थक है ? भूतकाल के झगड़े

बन्द कर दो, पूर्व दुःखद स्मृतियाँ भूल जाओ, इतना ही नहीं, इन झगड़ों का साधन कुल्हाड़ी—अपनी स्मृति, विषाक्त मन—भी मिटा दो । यह सन्देश देकर गांधीजी ने कार्यवाही का उपसंहार किया । इस उपदेश से अपरिवर्तनवादी और स्वराज्यवादी दोनों को विनम्र बनना था, दोनों को भविष्य के लिए बड़ी तैयारी करनी थी ।

काम चलाने के लिए गांधीजी ने अपने मंत्री चुने एक उदार मुसलमान, खादी के लिए पागल भरूचा और सबके मान्य जवाहरलाल । भाई जॉर्ज जोसफ मुझे उस दिन बहुत याद आये । उन्होंने वकालत शुरू न कर दी होती, कांग्रेस न छोड़ दी होती, तो शायद गांधीजी एक ईसाई मंत्री को भी स्वीकार करते !

कार्यसमिति में स्वराज्यवादियों की भरमार है, यह भी जान-बूझकर हुआ है । 'अपरिवर्तनवादियों को इकट्ठा करके मैं क्या करूँ ? उनके साथ बैठकर बड़े-बड़े प्रस्ताव तैयार कर सकता हूँ, परन्तु काम किससे लूँ ? स्वराज्यवादी कांग्रेस का कार्यक्रम पूरा करने को तैयार हो जायँ तो सोने में सुगंध है । अपरिवर्तनवादी तो कार्यसमिति में न होने पर भी काम करेंगे, ऐसी मैं आशा रखता हूँ ।' इस प्रकार गांधीजी ने दोनों पक्षों पर एक-सी जिम्मेदारी डाल दी है और दोनों पक्ष यह बात समझते हैं ।

कांग्रेस का अध्यक्षीय मौखिक भाषण

ता० २६-१२-१९२४

(नवजीवन, ८-१-१९२५)

कांग्रेस में जाने से पहले गांधीजी द्वारा की गयी तैयारी—एक घंटे कातते-कातते भगवद्भजन—का उल्लेख पहले किया गया है । उस भजन के भाव से भरकर वे कांग्रेस में गये। और गंगाधरराव के भाषण के बाद उन्होंने अपना भाषण पढ़ने के बजाय हिन्दी और अंग्रेजी के दो भाषण आध घंटे में पूरे कर दिये । ये दोनों भाषण सँजोकर रखने लायक होने के कारण यहाँ लगभग सम्पूर्ण उद्धृत किये जाते हैं ।

'आपने मुझे इतना ऊँचा स्थान दिया है, इसके लिए मैं आपका उपकार मानता हूँ । मेरा अध्यक्षीय लिखित भाषण आपके हाथों में पहुँच गया होगा, और मुझे आशा है कि आप सबने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा । इसके सिवा मुझे शायद ही कुछ अधिक कहने को होगा ।

'आज हमारे सामने विषम प्रसंग आ गया है । जो काम हम सन् १९२१ के अन्त में पूरा करना चाहते थे, वह हम पूरा न कर सके; उसके बजाय हममें मतभेद, भय, ईर्ष्या और वैर पैदा हो गये । हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे को दुश्मन मानने लगे और एक-दूसरे के साथ मारपीट शुरू कर दीं । वह अभी तक जारी है । यह स्वराज लेने का ढंग नहीं । हिन्दू अभी तक अछूतों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और खुदा के दरबार में गुनाह करते ही रहे हैं । चार वर्ष से हमने माना है कि चरखा चलाना हम सबका फर्ज है । फिर भी चरखा अभी तक सार्वत्रिक नहीं हुआ । मैं कुछ महीने पहले पूना गया था । तब मैंने कहा था कि लोकमान्य ने स्वराज्य का श्लोकार्ध दिया, उन्होंने कहा कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उस श्लोकार्ध को पूरा करना मेरा काम है । उस श्लोक का दूसरा अर्ध यह है कि यदि स्वराज्य लेना हो तो उसका साधन केवल चरखा है । यह सीधी बात हम जानते हैं, फिर भी उसका पालन नहीं किया । मेरा आपके सामने आना और उन्हीं विषयों पर बातें करना बेकार है । इसमें आपका समय खर्च होता है, मेरा समय खर्च होता है । मैं अपने समय को अमूल्य मानता हूँ, क्योंकि मैं खुदा का गुलाम हूँ और मुझे इसी जमाने में स्वराज्य लेना है । परन्तु उसे लेने का हमारा ढंग दिखाई नहीं देता ।

'बेगम मुहम्मद अली साहिबा ने मुझसे कहा कि ऐसा लगता है कि वर्ष में एक सप्ताह तो स्वराज लेने लगते हैं । उन्होंने तो यह वचन सहज भाव से कहा था । परन्तु मुझे उसमें बहुत अर्थ लगता है । इसका अर्थ यही है कि हम एक सप्ताह कांग्रेस करके स्वराज्य का नाटक करते हैं । जैसे हरिश्चन्द्र का नाटक किया जाता है तो उसमें हरिश्चन्द्र का पात्र रंगभूमि पर आकर रुदन करता है, अनेक अभिनय करता है, परन्तु वह हरिश्चन्द्र नहीं होता, हम यह नहीं मानते कि उस आदमी में सत्य का अंश भी होगा, वैसे ही हमारा यह जलसा भी नाटक की तरह ही है । इस नाटक से हमें बच निकलना चाहिए ।

'जो प्रस्ताव आपके सामने देशबन्धु पेश करेंगे, उसे आप मानते हों तो ही उसे स्वीकार कीजिए । आप देखेंगे कि उसमें हिन्दू-मुसलिम एकता की बात नहीं की गयी, केवल चरखे की ही बात की गयी है । आप सारे हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि बनकर यहाँ आये हैं । आपसे देशबन्धु और मुहम्मद अली प्रतिज्ञा लिवानेवाले हैं कि यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार

करेंगे तो आपको उस पर पूरी तरह अमल करना पड़ेगा । यदि आपको इस प्रस्ताव में गांधी का पागलपन लगे तो उसे फौरन् छोड़ दीजिए । यदि ईश्वर का नाम लेकर यह प्रतिज्ञा करेंगे और फिर उसे भंग करेंगे तो फिर उसका कैसा परिणाम होगा, यह सोचने का काम मैं आप पर ही छोड़ूँगा । प्रतिज्ञा का भंग करनेवाले के लिए तुलसीदास ने, गीता ने, कुरान ने, बाइबल ने क्या कहा है, यह सोचकर ही प्रतिज्ञा कीजिए । ऐसा आदमी फूटे बादाम की तरह है । हम यहाँ खेल खेलने नहीं आये । जिस चीज में मेरा दिल देश का उद्धार मानता है, उसी चीज को आपका दिल भी स्वीकार करे तो ही यह प्रतिज्ञा कीजिए ।

'मैंने देशबन्धु और मोतीलालजी के साथ समझौता करके उसे देश के सामने पेश किया, इसमें जरा भी भूल की हो, ऐसा मैं नहीं मानता । मैंने स्वराज्यवादियों का देश की सेवा करने का हक स्वीकार किया है । वे मानते हैं कि विधानसभाओं में जाने में देश का हित है । मैंने विचार किया कि जब वे सब आग्रहपूर्वक ऐसा बताते हैं, तब मैं कौन हूँ उन्हें ऐसा कहनेवाला कि वे कांग्रेस के नाम से ऐसा न करें ? इसका अर्थ यह नहीं कि वे यह काम असहयोगियों की तरफ से करेंगे, परन्तु उसका अर्थ इतना ही है कि कांग्रेस दोनों की है । इस समझौते पर अमल करना हो तो हमारे दिलों में से द्वेष निकल जाना चाहिए । ऐसी शंका दूर कर देनी चाहिए कि वे देश के दुश्मन हैं । अलग-अलग मस्तिष्कों में भिन्न-भिन्न मति होती है, इसलिए सहिष्णुता के बिना जीवन एक दिन भी चल नहीं सकता । यदि हम अहिंसा का पालन करनेवाले हैं तो मैं आपसे कहता हूँ कि सहिष्णुता अहिंसा का भाग है । उसे छोड़ने से ही हम आज की स्थिति में आ पड़े हैं ।

'आपको ऐसा लगे कि चरखे से कांग्रेस की शक्ति कम होगी और देश का अकल्याण होगा तो आप समझौते को रद्द कर दीजिए । उसको स्वीकार करने का अर्थ है चरखे को स्वीकार करना, हिन्दू-मुसलिम एकता को स्वीकार करना, अस्पृश्यता-निवारण को स्वीकार करना । और इसके सिवा यदि आप अपरिवर्तनवादी हों तो आपके हृदय में मेरे सहित दूसरे अपरिवर्तनवादियों के लिए जो भावना और जो स्थान है, वही स्थान पंडितजी, देशबन्धु और केळकर के लिए होना चाहिए; और स्वराजवादियों के दिल में स्वराजवादियों के लिए जो भावना है, पंडितजी और देशबन्धु के लिए जो भावना है, वैसी ही भावना मेरे लिए और मेरे

विचारवालों के लिए होनी चाहिए । इस भावना का अर्थ ही हिन्दू-मुस-लिम एकता है । इस भावना का अर्थ यह है कि मुझमें मालवीयजी के प्रति जितना आदर है, उतना ही आदर किसी भी मुसलमान के प्रति होना चाहिए, फिर भले ही मुसलमान मुझे दुश्मन मानता हो । आज भले ही आपको यह बात विचित्र लगती हो, परन्तु मैं यकीन के साथ कहता हूँ कि गीता, भागवत, बाइबल, कुरान दूसरी बात नहीं सिखाते, यही बात सिखाते हैं ।

'हिन्दी में सोचा था, उससे अधिक समय ले लिया और मुझे आध घंटे से ज्यादा वक्त हरगिज नहीं लेना है । इसलिए अंग्रेजी तो मुझे थोड़े में ही निपटा देना चाहिए । आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि आज जो परिवर्तन मैं सुझा रहा हूँ, उस पर खूब विचार कीजिए । यह परिवर्तन अत्यंत गंभीर और अपूर्व है । हाँ, सन् १९२० में हमने ऐसा परिवर्तन जरूर शुरू किया था । परन्तु शायद उससे भी यह अधिक गंभीर हो । फिर भी मैं मानता हूँ कि हम इसीसे स्वराज्य के दर्शन कर सकते हैं । केवल प्रस्ताव पास करके बाद में सालभर प्रस्तावों को भूल जाने के दिन लद गये । आज कांग्रेस देश से अस्पष्ट रूप में नहीं, परन्तु सीधे और स्पष्ट रूप में आग्रह करती है कि उसे स्वराज्य लेना हो तो अमुक वस्तु तो करनी ही पड़ेगी । देशबन्धु और मौलाना शायद आपसे ईश्वर को हाजिर-नाजिर जानकर स्वीकार करने को न कहें अर्थात् प्रतिज्ञा के रूप में अपनाने को न कहें, परन्तु मैं तो कहता हूँ कि आप इसे ईश्वर को बीच में रखकर स्वीकार करें । यह प्रस्ताव मैंने सुझाया है, इसलिए इसका मूल्य बढ़ नहीं जाता । मैं तो अल्प, भ्रमपात्र मनुष्य हूँ—हिमालय जैसी बड़ी भूलें करता हूँ । भूल न करनेवाली तो सम्पूर्ण सत्ता ही हो सकती है । उसे मेरी तरह प्रायश्चित्त नहीं करने पड़ते, अपनी बात समझाने के लिए दलीलें नहीं देनी पड़तीं । मैं तो आपमें से साधारण-से-साधारण जैसा अच्छा या बुरा प्राणी हूँ ।

'चरखे के बारे में अनेक विचार फैले हुए हैं । कोई उसे उपयोगी वस्तु मानते हैं, कोई निरर्थक समझते हैं, कोई उपयोगी होने पर भी उसका उपयोग करना बड़ा कष्टदायक मानते हैं । मेरे विचार भिन्न हैं । मुझमें अनेक वर्षों के विचार के फलस्वरूप इसके बारे में श्रद्धा गहरी और गहरी होती गयी है—वह यहाँ तक कि मेरा सारा समय खाली हो तो मैं

चौबीसों घंटे कातूं, और चरखे के प्रत्येक चक्कर के साथ-साथ स्वराज्य को निकट आता देखूं।

'श्रीमती सरोजिनी देवी ने मुझसे एक-दो बातों पर बोलने का आग्रह किया है। एक तो हिन्दू-मुसलिम एकता पर। इस बारे में मैं अधिक क्या कहूं? शौकत अली कहते हैं कि मैं तो उकता गया। इस आदमी के मस्तिष्क में अपार समझदारी भरी है। वे कहते हैं कि 'मुसलमान नालायक हैं, बेवकूफ हैं और हिन्दू भी नालायक और बेवकूफ हैं। इसलिए जिन्हें लड़ना हो, उन्हें पेट भरकर लड़ने दो, हमें ऐसे लहूलुहान के स्थान पर जाने की कोई जरूरत नहीं।' परन्तु मुझसे ऐसा नहीं होता। हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के बारे में मैं पागल हो गया हूँ। इसीलिए आप देखते हैं कि मुहम्मद अली की उस छोटी-सी गुलनार पर मैं आशिक हूँ। इस बालिका पर किसलिए मैं इतना मुग्ध हूँ? कारण इतना ही है कि यह बच्ची जब बड़ी होगी, तब कहेगी कि गांधी नाम का एक आदमी था, जो गोमांस नहीं खाता था। तो भी उसे मेरे गोमांस खाने पर जरा भी तिरस्कार नहीं था और जो मुझे बहुत ही चाहता था। वह बड़ी होकर मेरे प्रेम का सन्देश सर्वत्र फैलायेगी। वह तो निर्दोषता की मूर्ति है, उसमें राग-द्वेष नहीं। यह बच्ची जितना मुझे चाहती है, मैं चाहता हूँ कि उतना ही प्रत्येक मुसलमान मुझे चाहे। कुरान गाय को मारना जायज मानता है। मेरा धर्म कहता है कि यह अनुचित है। परन्तु मैं कुरान को माननेवाले से गाय का मारना जबरदस्ती बन्द करानेवाला कौन? मैं तो गुलनार से कहूँगा कि मेरी गाय की पूजा मेरे पास रही। मैं यह नहीं चाहता कि तू गाय को पूजे, परन्तु तू मेरी गोपूजा और गोमांस-त्याग का आदर कर। इसी भावना से मैं मौ० शौकत अली की जेब में रहने में प्रसन्न हूँ। मैं मालवीयजी का क्यों कोई विचार नहीं करता? क्योंकि उनके प्रति मेरा पूज्यभाव तो स्वाभाविक ही है। मुसलमानों के प्रति मुझे उतना आदर पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए उनके प्रति मैं अधिक पक्षपात करता दिखाई देता हूँ। उनके प्रति पक्षपात में हिन्दुओं की मेरी बड़ी सेवा निहित है।

'सरोजिनी देवी ने मुझे नरमदलवालों के लिए भी कुछ कहने को कहा था। मैं उनका पुजारी हूँ, उनकी देश-सेवा के लिए मुझे बहुत आदर है। मैं चाहता हूं कि वे कांग्रेस म आयें। परन्तु उन्हें कातना स्वीकार करना चाहिए। वे कांग्रेस में शामिल होकर मुझे निकाल बाहर कर सकती हैं,

कातना भी बन्द करा सकती हैं। परन्तु आज की स्थिति में तो देश जो चीज स्वीकार करे, उसका आदर करके उन्हें शामिल होना होगा।

'मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूँ कि ईश्वर को साक्षी रखकर ही इस प्रस्ताव को स्वीकार कीजिए और स्वीकार कर लिया तो फिर मरणान्त तक उसके पालन का आग्रह रखिए।'

अधिवेशन के अन्त में गांधीजी बोले :*

'आप सबका जितना एहसान मानूँ, उतना ही थोड़ा है। आपने मेरे प्रति जितना प्रेम दिखाया, उससे अधिक की आशा नहीं रखी जा सकती। आपसे खामोश रहने को कहा गया तो आप खामोश रहे। आपने बोलने का मौका माँगा और वह न मिला तो भी आपने आपत्ति नहीं की। विषय-समिति में भी मुझे कष्ट नहीं हुआ, यद्यपि कष्ट होने का यही असली अवसर था। आपके सामने रखे गये प्रस्ताव के विरुद्ध आप आपत्ति कर सकते थे अथवा उसे फेंक सकते थे। परन्तु आपने सब स्वीकार किया। आपने जिस अदब और खामोशी के साथ यह सब किया, यह मेरे पूर्वजन्म का पुण्य और बुजुर्गों का पुण्य होगा। अब मैं चाहता हूँ कि आप आगे बढ़ें और जो कृपा आपने मुझ पर दिखायी है, वह भारतवर्ष पर दिखायें। मैं जीना चाहूँ या मरना चाहूँ, यह भारत-वर्ष के लिए है। मुझे बुखार आये···खुदा की नियत की हुई बात को कोई मिटा नहीं सकता। हरएक मनुष्य खुदा से अपनी इच्छित वस्तु माँग सकता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य खुदा से माँग सकता है कि हे प्रभु, मुझे अपना बच्चा समझकर जो मैं माँगता हूँ, वह दे। आप ईश्वर से माँगिए कि आप भारतवर्ष की सेवा के लिए कटिबद्ध हो जायँ, वह आपको इतनी शक्ति दे कि आप प्रतिज्ञा का पालन करें। मैं चाहता हूँ कि मुझे सबका प्रेम मिले। परन्तु मैं इतने से राजी नहीं हो सकता। मुझे सन्तोष तभी होगा कि जिस बात की आप प्रतिज्ञा कर रहे हैं और जिस काम के लिए जमा हो रहे हैं, वह आप करें। हमारे द्वारा निश्चित तीन में से एक भी काम हमारी शक्ति से बाहर नहीं। भोपटकर का भाषण सुनते समय मुझे सानन्दाश्चर्य हुआ था। वे बड़े जोर से कहते थे कि 'क्या आप एक प्राणी को कष्ट देकर हिन्दू-धर्म को बचाना चाहते हैं?' शास्त्री यह समझें तो अच्छा। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे से मिलें। शौकत अली और लालाजी ने क्या कहा? जफर अली ने

* यह प्रवचन हिन्दी में किया था।

एतराज किया, परन्तु क्या वे भारत के शत्रु हैं ? प्रत्येक हिन्दू मुसलमानों को अपना ले । लालाजी ने बड़ा सिद्धान्त पेश किया । वह सिद्धान्त इन्सानियत का है । किसी धर्म में महदूद (सीमित) नहीं । कोई हिन्दू पागल हो जाय तो उसका प्रतिकार न करने में ही धर्म है। लालाजी ने यह कहा कि किसीने राम को गाली दी तो पैगम्बर को गाली न दी जाय । मुसलमान कृष्ण को गाली दे तो हिन्दू कहे कि पैगम्बर साहब को गाली दूंगा, तो यह ठीक नहीं । असहयोगी होने के कारण मैं तो कहूँगा कि कोई अदालत में न जाय । यह सिद्धान्त अपनाने के लिए बरस नहीं लगते । स्वराज्य के लिए बुखार चाहिए, जलन चाहिए, जो तिलक में था, वह चाहिए । जब भोपटकर बोल रहे थे, तब मुझे तो तिलक याद आ रहे थे । वे सुगत की प्रतिमा जैसे थे । उनके साथ बैठनेवाले मुझे सुना रहे थे कि उनकी पत्नी की मृत्यु के समय वे सेवा कर रहे थे। सेवा की ऐसी लगन हमारे हृदय में भी आये तो कितना अच्छा ? विदेशी वस्त्र फेंक देने में कौन बड़ी बात है ? अब मैं विदेशी कपड़ों की होली जलाने की बात नहीं करता, क्योंकि हमने शान्ति की बात छोड़ दी है । यदि फिर से शान्ति प्राप्त कर लें तो फिर '२१ की बात जरूर करूँ । इस काम को मैं पुण्यकार्य समझता हूँ । मैं जानता हूँ कि कुछ जगह जलाने के लिए लगाये गये ढेर में विलायती कपड़े नहीं थे, परन्तु पत्थर थे । हमें ऐसा असत्याचरण नहीं करना चाहिए । मेरा काम करनेवालों ने मुझे धोखा दिया । इसके लिए मेरा दिल जल रहा है और ईश्वर ने चाहा तो कभी शरीर भी जल जायगा । मुझे गालियाँ दो, मारो, बूट से मारो, मुझ पर थूको, तो भी मेरी आत्मा कहती है कि मुझे गुस्सा नहीं आयेगा । परन्तु प्रतिज्ञा-पालन न करो तो मुझे जरूर गुस्सा आयेगा, यद्यपि मेरा धर्म गुस्सा करने की मनाही करता है । एक स्त्री पवित्रता का दावा करे, परन्तु वास्तव में अपवित्र हो तो मेरे जी में आता है कि यहीं मर जाऊँ। ऐसी ही बात पुरुष के बारे में है । आपने मुहब्बत दिखाई है । आपने मुझे अपनी कृपा के समुद्र में रखा है । उस समुद्र को यहीं खाली करके न जाइए । परन्तु वहाँ जाकर काम कीजिए । स्वराज्यवादी और अपरिवर्तन-वादी मिलकर जाइए । उस कहानी में कहा गया है कि सब लकड़ियाँ इकट्ठी रहीं तो उनके गट्ठर को कोई तोड़ नहीं सका था । इसी तरह आप सब इकट्ठे होकर रहिए । ऐसा कीजिए कि हमारा बल उत्तरोत्तर बढ़े । हम भूल जायें कि स्वराज्यवादी बुरे हैं । आत्मा का गुण क्या

वताऊँ ? उसमें अस्वच्छता नहीं । वह स्फटिकरूप है । शंकर ने कहा है कि दोषरूप तो माया है । हममें शक आ जाय तो मनुष्य दोषरूप वन जाता है, अविश्वास से नुकसान नहीं होगा । वुरा तो धोखा देने से होता है । जवाहरलाल से कहता हूँ कि तू मेरा वेटा है । पंडितजी क्या वतायेंगे? परन्तु मैं तो काम लेने के लिए कहूँगा । यह दुनिया जवाहरलाल की पूजा करेगी और उस पर पुष्पवर्षा करेगी । मैं तो दोनों को जोर से कहना चाहता हूँ कि इतना काम करें तो एक वर्ष में हमारी शक्ति इतनी वढ़ जायगी कि स्वराज्य नजदीक आता दिखाई देने लगेगा ।'

¶ इसके वाद वोले :

'हिन्दी में वोल गया, उसे अंग्रेजी में दोहराना मेरी शक्ति के वाहर है । कोई सभापति इससे अधिक विनय की आशा रखेगा, यह मैं नहीं मानता । आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी कार्यवाही में अध्यक्ष-पद पर वैठने में मुझे अत्यन्त आनंद हुआ है । मैंने जो-जो सुझाव दिये, उन सवको आपने माना है । मैंने आप पर वड़ा भार डाल दिया है । मैंने आपको चलाया ही नहीं, परन्तु दौड़ाया है । मैं और क्या कर सकता हूँ ? आप अधीर हो गये हैं, मैं भी अधीर हो गया हूँ । स्वराज्य की दिशा में हमें केंचुवे की चाल से नहीं, परन्तु दुगुनी गति से चलना है । जरा भी समय नहीं खोया जा सकता । मेरी इस माँग का आपने कंजूसी से नहीं, परन्तु उम्दा तरह से जवाव दिया है । इससे अधिक अपेक्षा कोई नहीं रखेगा, अधिक माँग कोई करेगा नहीं और ज्यादा किसीको मिलेगा भी नहीं । फिर भी मैं तो अधिक माँगता हूँ । आपने मुझे जो दिया है और मेरे प्रति जितनी उदारता दिखाई है, वह सव मुझे और आपको जो प्रिय है, उसकी तरफ—स्वराज्य की तरफ मोड़ दीजिए । आपने प्रस्ताव पास किया है । उसकी शर्तें आप जानते हैं । इन्हें आप अपने साथ ले जाइए और उन पर केवल शब्दों में नहीं, परन्तु तत्त्व में अमल कीजिए; और आपके आसपास के सव लोगों से प्रेमपूर्वक अमल कराइए । अपने यहाँ जाइए और वहाँ हिन्दू-मुसलिम एकता का और अस्पृश्यता के नाश का सन्देश फैलाइए । और युवकों को द्वेषरहित स्वराज्य के सच्चे योद्धा वनाइए । सारा ही द्वेष और वैर जमीन में गाड़ दिया जाय, तभी ऐसा हो सकता है । प्रतिज्ञा लीजिए कि आकाश भले ही टूट पड़े, परन्तु अपरिवर्तनवादी और स्वराज्यवादी जिस प्रेम की शृंखला में वँधे हुए हैं, वह कभी नहीं टूटेगी । भाई हार्डीकर की शिक्षा पाये हुए उदार स्वयंसेवकों और स्वागत-समिति

का आभार न मानूं तो मैं अपने-आपको माफ नहीं कर सकता । मैं जानता हूँ कि स्वराज्य-प्राप्ति की तमन्ना में उन्होंने जो सेवा की है, उसका कोई उपकार माने, इस अपेक्षा से उन्होंने नहीं की । सेवा का वदला सेवा में ही निहित है । मैं हृदय से उनका आभार मानता हूँ ।'

पंडित मोतीलालजी वोले :

'आप सवके हृदयों में वसा हुआ प्रस्ताव अव मैं पेश करता हूँ । कोई भी सभा विसर्जन हो, उस समय इसे रखने का आम रिवाज है । परन्तु इस अवसर पर सभापति महोदय का आभार मानना केवल रस्म-अदाई नहीं है । आपने उनके मन का अति प्रिय प्रस्ताव पास किया है । ऐसा करके आपने अपने पर जो जिम्मेदारियाँ लाद ली हैं, उनके वारे में उन्होंने आपका ध्यान खींचा है । ये जिम्मेदारियाँ आप अदा करेंगे तो माना जायगा कि आपने वड़े-से-वड़ा उपकार किया । मैं अध्यक्ष महोदय का उपकार माननेवाला जो प्रस्ताव पेश कर रहा हूँ, वह केवल औपचारिक नहीं । मैं मानता हूँ कि आपकी तरफ से उन्होंने जो अपेक्षाएँ रखी हैं, उनका आप उचित प्रत्युत्तर देंगे । आप स्वराज्यवादी हों, अपरि-वर्तनवादी हों या और चाहे जो हों, परन्तु आप सवको अपनी जिम्मेदारी, सिर्फ शब्दों में नहीं, परन्तु कार्य में अदा करनी है । मेरी अभिलाषा है कि महात्माजी ने जो कहा है, उस सवके साथ आप सहमत हैं, यह आप कहें और उन्होंने जो आशाएँ रखी हैं, उन सवको स्वेच्छा से और प्रेमपूर्वक पूरा करें ।'

हिन्दू महासभा के अधिवेशन में लालाजी वोले :*

'हिन्दुओं के हाल के जीवन की मैं तारीफ नहीं करता । उनकी अवनति देखकर मुझे वहुत ही दुःख होता है और मैं खून के आँसू वहाता हूँ । फिर भी दुनिया की कोई संस्कृति हिन्दू-संस्कृति से वढ़कर नहीं है । किसी भी जाति के लिए हिन्दू-धर्म उत्तम विरासत है । लड़ाई का मुकावला लड़ाई से करने का सिद्धान्त दूसरी प्रजाओं का है—हमारा नहीं । और सव कुछ भले ही नष्ट हो जाय, परन्तु हिन्दू-धर्म उत्तम उत्तराधिकार छोड़ जायगा । हम प्रत्येक जाति के साथ न्याय से, समभाव से और सभ्यता से पेश आयें, परन्तु इस वारे में हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारी हस्ती ही नष्ट न हो जाय । हिन्दुओं का वड़ा भाग कायर है । मैं आप सवसे

* यह प्रवचन अंग्रेजी तथा हिन्दी में था ।

अनुरोध करता हूँ कि आप अपने पर जिम्मेदारी लें और इस निराशा की दलदल से निकल जायँ ।

'मेरा धर्म मंदिर में, घंटे में, आरती में नहीं है। लेकिन मुझे उस पर एतराज नहीं है। अभिमान होना चाहिए कि हिन्दू जाति में पैदा हुए। आपको अभिमान हो तो इतनी गायें कैसे कटती हैं ? इतनी अबलाएँ विधवा क्यों फिरती हैं ? इतने अनाथ क्यों हैं ? यह सब होते हुए भी क्यों कोई बलवान् हिन्दू नहीं निकलता ? झगड़ों में 'हाय पिट गये' 'हाय मरे' 'औरतों की बेइज्जती की गयी' 'जायदाद लुट गयी' ऐसे क्यों रोते हो ? जिम्मेदार आप ही हैं । आप अपने आदर्शों से गिर गये हैं । जब तक आप अपने दोष नहीं समझेंगे, तब तक किसी प्रकार की उन्नति नहीं होगी। यह नीति जीती-जागती हो तो कोहाट के हिन्दुओं के साथ जैसा बर्ताव हुआ, वैसा कोई करता ? यदि आपमें ज्ञान होता, यदि लज्जा होती तो मुसलमान या सरकार आपके भाइयों को वहाँ से निकाल सकती थी ? हमारे लिए शर्म, लज्जा और दुःख की बात है कि एक शहर का सारा हिन्दू-समुदाय २०० कोस दूर जाकर रक्षा ढूँढ़े ? आपमें ईश्वर ने अब भी शक्ति रखी हो कि आप अपनी अवनति पर रो सकें तो रोइए । परन्तु आज तो आपमें रोने की भी शक्ति नहीं रही । जो जाति हजारों वर्ष जीती रही, जिसने आज तक अपना सिर ऊँचा रखा, उसकी आज क्या दशा हो गयी है ? मैं किसीका दोष निकालना नहीं चाहता । परन्तु यह हकीकत है कि आज कोहाट की सारी हिन्दू जनता रावलपिंडी में भीख माँग रही है । कोहाट की घटना सुनकर चार गालियाँ मुसलमानों को दीं और चार सरकार को दीं, पर इससे क्या हुआ ? इस घटना के निवारण का उपाय क्या किया ? मैं थोड़ी देर के लिए मान लूँगा कि हिन्दुओं की भूल थी, परन्तु क्या उन्हें जितनी सजा मिली, उतनी मिलनी चाहिए ? किसी नादान ने कोई बात लिख दी, फिर उसके लिए उसने माफी माँग ली । इससे अधिक और क्या हो ? फिर भी आज यह बात भूल जाइए । प्रश्न केवल यह है कि अब क्या किया जाय । हिन्दू मात्र को—मालवीयजी को, महात्माजी को—कहना चाहता हूँ कि आप मुसलमानों का पक्ष कितना ही लें, उसकी कितनी ही पुष्टि करें, परन्तु इस प्राचीन जाति को मरने से बचाइए। ऐसी बूटी दे दीजिए, जिससे इस जाति में सच्चा अभिमान, धर्म, बल, लज्जा आ जाय। झगड़ों में जाने से उसूलों में जाने की ज्यादा जरूरत है । इसलिए मैंने सिर्फ उसूल की बात कही ।'

स्वामी श्रद्धानन्दजी बोले : 'कर्णरस तृप्त करना नहीं चाहता। कोहाट का खून सारी जाति को पुकार रहा है। साधु हूँ, मगर मेरे हृदय है। फिर भी कोहाट के बारे में नहीं बोला। आपसे कहता हूँ कि आपमें मनुष्यत्व का भाव हो तो दर्द को प्रकट कीजिए। मैं एक महीना तो निरंतर कोहाट के भाइयों की व्यवस्था में लगाऊँगा।'

'१० लाख रुपये जब तक आप इकट्ठे नहीं करेंगे, तब तक नरसिंहदास भोजन नहीं करेगा और जिस कुएँ से अछूत पानी पीयें, उस कुएँ का पानी पीऊँगा।'[१]

गो-परिषद् में भाषण देते हुए गांधीजी बोले :[२]

'मुझे दुःख होता है कि जो सभा ४ बजे शुरू होनेवाली थी, वह ६ बजे शुरू हुई; और आज मेरे सामने ऐसा समय आया है कि मुझे सवा घंटे में इसे पूरा करना चाहिए। और समय है नहीं जब यह कार्य हो सके; और परसों तक यह परिषद् मुल्तवी नहीं की जा सकती। इसलिए मैंने चिकोड़ी[३] से कहा था कि ४ घंटे काफी हैं और ८ बजे पूरा कर दूंगा। परन्तु यह नहीं हो सका।

'मेरे लिए गोरक्षा का प्रश्न स्वराज्य के प्रश्न से छोटा नहीं। मैं उसे इससे भी बहुत बड़ा मानता हूँ। जैसे मैं कहता हूँ कि जब तक हम अस्पृश्यता के दोष से मुक्त नहीं हो जाते तब तक, हिन्दू-मुसलिम एकता न हो जाय तब तक और सब खादी नहीं पहनने लगते तब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा, इसी तरह मैं कहता हूँ कि गोरक्षा का तरीका नहीं जानते तब तक स्वराज्य कोई चीज नहीं। मैं छोटे मुँह बड़ी बात कर रहा हूँ। सनातनी हिन्दू होने का दावा करता हूँ। बहुत-से भाई हँसते हैं कि मुसलमानों के जलसों में जानेवाला, बाइबल की बातें करनेवाला, मुसलमानों की रोटी खा लेनेवाला, अंग्रेजों के साथ पानी पीनेवाला, ढेढ़ की लड़की पालनेवाला मैं अपने को सनातनी कहूँ, यह अत्याचार ही है। फिर भी मैं अपने को सनातनी मानने का दावा करता हूँ। मुझे विश्वास है कि ऐसा समय आ रहा है, जब सब स्वीकार करेंगे कि गांधी सनातनी था, क्योंकि गोरक्षा मुझे बहुत प्रिय है। आपसे प्रार्थना करता हूँ कि 'यंग इंडिया' के लेख पढ़ें।

---

१. ये शब्द किसने कहे, यह जानकारी दर्ज नहीं की गयी।

२. यह भाषण हिन्दुस्तानी में दिया गया होगा।

३. स्वागताध्यक्ष।

'हिन्दुत्व के अर्थ के बारे में 'यंग इंडिया' में जैसा मैंने लिखा था, वैसा मैंने कभी नहीं लिखा। मैं वेदादि को स्वीकार करता हूँ। इसमें गायत्री वगैरह के बारे में लिखा हुआ है। परन्तु सामान्य हिन्दू के लिए हिन्दू का लक्षण मैंने गोरक्षा लिखा था। १०,००० वर्ष पहले क्या करते थे? पंडित-ब्राह्मण बताते हैं कि वेदादि में गोमेध भी है। छठी कक्षा में भांडारकर की प्राइमर में पढ़ता था **'पूर्वेषां ब्राह्मणा गवां मांसं भक्षयामासुः'*** क्या यह सच होगा? परन्तु मैं यह मानता आया हूँ कि वेद में यह बात लिखी हो तो उसका अर्थ यह नहीं होगा। अथवा मेरे अर्थ के अनुसार, मेरी आत्मा की प्रतीति के अनुसार, मैं अर्थ लगाऊँगा। गोरक्षा मेरा जीवनाधार है—ऐसा ज्ञान नहीं। यदि दूसरा अर्थ न हो तो ऐसे ब्राह्मण ही गो-भक्षण करते थे, जो गाय को फिर पैदा कर सकते थे। परन्तु इसके साथ हिन्दू जनता का सम्बन्ध नहीं। मैंने वेदादि का अध्ययन नहीं किया। बहुत-सी बातें अनुवाद से जानता हूँ। मेरे जैसा प्राकृत मनुष्य क्या बात करे? परन्तु मुझे आत्मविश्वास है। और इसलिए अपने अनुभव की बात करता हूँ। जनता क्या मानती है? हिन्दू-धर्म में 'कलमा' नहीं और 'पैगम्बर' नहीं। इसलिए हमारा धर्म समझने में कठिनाई और आसानी दोनों हैं। परन्तु बालक भी समझता है कि गाय की रक्षा करनी चाहिए। जब तक गोरक्षा नहीं की, तब तक कौन अपने को हिन्दू कहेगा?

'परन्तु गोरक्षा का आजकल का तरीका मुझे पसन्द नहीं है। एकान्त में मेरा हृदय रोता है। रुदन मुझे अच्छा नहीं लगता। रोऊँ तो मुझे दुःख होता है, क्योंकि मुझे बड़ा बलिदान करना है और बड़ा बलिदान करनेवाला रोकर क्या करे? फिर भी मेरा हृदय रोता है। मैंने तो 'हिन्द स्वराज' में लिखा है कि आजकल की गोरक्षक मंडलियों को गोभक्षक मंडलियाँ ही कहा जा सकता है। मैं सन् '१५ में यहाँ आया, तब से मेरा मन्तव्य अधिक दृढ़ होता जा रहा है। इसलिए यहाँ आने की मैंने चिकोड़ी को स्वीकृति लिखी। इससे पहले मैं हँसता था कि गोरक्षा-सम्मेलन का सभापति मैं, क्या कहूँगा? और क्या समझाऊँगा? परन्तु गंगाधरराव

---

* पहले के ब्राह्मण गाय का मांस खाते थे। डॉ० रामकृष्ण भांडारकर की संस्कृत मार्गोपदेशिका तथा मन्दिरान्तः प्रवेशिका के पुराने संस्करणों में भी यह पाठ नहीं मिला।

—सं०

ने तार दिया कि अपनी शर्त पर सभापति बनिए, क्योंकि चिकोड़ी मेरा सन्देश समझते हैं। चिकोड़ी ने अब कहा कि वे मेरी बात मानते हैं।

'यह प्रास्ताविक बात मैंने अपना दुःख सुनाने के लिए कही। मैं सभापति बनने के योग्य नहीं, क्योंकि अपने विचार रखते हुए डरता हूँ। चम्पारण में यही बात कही थी, वह वहाँ के लोगों को अच्छी लगी थी। यदि हम गोरक्षा करना चाहते हों तो यह बात भूल जाइए कि गोरक्षा ईसाई या मुसलमान के द्वारा हो। हम मान बैठे हैं कि दूसरे धर्म के लोग गोमांस अथवा गोकुशी छोड़ दें तो गोरक्षा की समाप्ति हो जाती है। इस बात में मुझे कोई सार नहीं लगता। इससे यह न समझें कि कोई गोहत्या करे तो वह मुझे अच्छी लगती है अथवा मैं उसे सहन करता हूँ। गोवध से मेरी अपेक्षा किसीको अधिक दुःख होता है, ऐसा दावा मैं नहीं करने दूँगा। गाय के मारने से मेरे हृदय को जो दुःख होता है, उससे अधिक किसी हिन्दू को नहीं होता होगा।

'परन्तु क्या करूँ? अपनी बात का पालन मैं करूँ या दूसरे से कराऊँ? मैं दूसरे से ब्रह्मचर्य का पालन कराऊँ और मैं स्वयं व्यभिचार करूँ तो इससे श्रेय होगा? मैं रोज गोमांस भक्षण करूँ और मुसलमान से कहूँ कि तुम न करो, यह कैसे हो सकता है? उसका धर्म तो कहता है कि गोकुशी हो। जब तक मैं करता हूँ, तब तक उसे कैसे कहा जा सकता है? उसे सजा तो दी ही नहीं जा सकती। हिन्दू राज्य में गाय की हत्या को धर्म माननेवाले को दंड नहीं दिया जाता। गोरक्षा कोई परिमित वस्तु नहीं। गोरक्षा की प्रतिज्ञा करता हूँ, इसका अर्थ यह नहीं कि हिन्दू की गायों को बचाऊँ। धर्म यह सिखाता है कि कर्म से बता दो कि गोहत्या करना या गोभक्षण करना पाप है, इसलिए छोड़ना चाहिए। इस चीज का प्रचार तलवार से थोड़े ही हो सकता है? मैं तो यह चाहूँगा कि सारी दुनिया के लोग गाय की रक्षा करें। यह मेरी बड़ी इच्छा है।

'परन्तु इसके लिए पहले तो मुझे अपना घर अच्छी तरह साफ करना चाहिए। दूसरे जिलों की बात नहीं करूँगा। गुजरात की ही बात कहूँ। वहाँ हिन्दू गोवध करते हैं। आप शायद यह न मानें। परन्तु आपको सुनाता हूँ कि गुजरात में ऐसे लोग मौजूद हैं, जो बैल को गाड़ी में जोतकर आर लगाते हैं। आप तो हरगिज नहीं कहेंगे कि गोहत्या न हो, परन्तु बैल की हत्या हो! बैल को इस तरह से मारते और खून की धार बहाते लोगों को मैंने देखा है। आप सहमत हों या न हों, परन्तु मैं इसे

गोहत्या कहता हूँ। हिंसा का अर्थ है दूसरे को दुःख देना। इसके मुकाबले में कत्ल करना अच्छा है। रोज आर भोंकने से गले पर छुरी फिरे, इसे वह चाहेगा। चम्पारण में हिन्दू गोभक्त थे। परन्तु उस पर सामान खूब लादते थे। मैंने उनसे पूछा कि आप गोरक्षा की ये तमाम बातें क्यों करते हैं? इस पर बाद में उन्होंने अपनी प्रथा बदल दी—मेरा कहना यह है कि इस प्रकार जुल्म करने को मैं गाय की हिंसा समझता हूँ।

'···मुझसे मिला था। वह हमेशा बछड़ी लाकर बात करता था। उसके साथ मैं एक ग्वाले के मकान पर गया। दूध निकालने के स्थान पर वे फूँक-फूँककर दूध निकाल रहे थे। सुनी हुई बात नहीं—परन्तु सच्ची बात है। आज भी यह खूनी दृश्य जारी है। यह भी गोहत्या थी। इसे करनेवाले भी हिन्दू थे।

'हमारे गाय-बैल जैसे बेहाल हैं, वैसे दुनिया में कहीं भी नहीं। इनके शरीर पर केवल हड्डियाँ और चमड़ी होती है—और कुछ नहीं। फिर भी हम उनसे अपार बोझा उठवाते हैं। जब तक हम स्वयं यह सब कर रहे हैं, तब तक गोवध न करने की माँग हम किसीसे नहीं कर सकते।

'हिन्दुस्तान बेहाल कैसे हुआ? गोरक्षा छोड़ दी, इसलिए। आप और मैं, शहरों में रहनेवाले सुख से रहते हैं, इसलिए पता नहीं लगता। हिन्दुस्तान के करोड़ों मनुष्य जैसे-तैसे गुजारा करते हैं। सड़े हुए चावल खाकर, आटा, मिर्च और नमक खाकर गुजर करते हैं। मैं तीसरे दर्जे में भ्रमण करता था, उस जमाने की बात है। इन दोनों का निकट सम्बन्ध है। हिन्दू-धर्म में गोरक्षा नहीं, क्योंकि गोहत्या होती है। पिंजरापोल बहुत देखे हैं। जैन लोगों का इनके साथ सम्बन्ध है। मालवीयजी की व्याख्या मुझे पसन्द है। जैन सब हिन्दू हैं। ब्रह्मसमाजी भी हिन्दू हैं। बहुत-से जैन अपने को हिन्दू नहीं कहते। पिंजरापोल उनका विशेष कार्य हो गया। जैनों के हाथ में जहाँ पिंजरापोल हैं, वहाँ क्या होता है? बीमार जानवरों को रखते हैं। परन्तु उनमें कोई व्यवस्था नहीं। वहाँ कोई सुविधा नहीं होती।

'हमारे पास तो बड़ी सुन्दर डेरी होनी चाहिए। बम्बई में अच्छा दूध नहीं मिलता। बच्चों को पीने के लिए दूध नहीं मिलता। अहमदाबाद में २० वर्ष पहले दूध मिलता था। आज बच्चों को उनकी माँ आटा और पानी पिलाती है। २३ करोड़ हिन्दुओं के हिन्दुस्तान में स्वच्छ दूध न मिले, इसका अर्थ यह है कि हमने गोरक्षा छोड़ दी है।

'मुझसे पाठ लेना हो तो मुसलमानों को भूल जाइए। ईसाइयों को भूल जाइए। शौकत अली से मैं साफ कहता रहता हूँ कि खिलाफत की गाय बचाऊँ तो मेरी गाय बचेगी। आज मैं मुसलमानों के हाथ में अपनी गरदन क्यों रखता हूँ? गाय की रक्षा कराने के लिए। यहाँ मुसलमानों के द्वारा का अर्थ यह है कि मुसलमानों के हृदय पर चोट लगाकर उन्हें यह समझाया जा सकता है कि हिन्दू भाई के लिए गोवध न करो। जब तक इतनी अक्ल उनमें न आये, तब तक मैं खामोश रहूँगा। मनुष्यवध और गोवध एक ही चीज है। और इन दोनों को रोकने के लिए उपाय यह है कि अहिंसा प्रेम से अपनायी जाय। इसमें प्रेम की परीक्षा है। तपस्या है। दुःख सहन करना है। जहाँ तक संभव हो, मुसलमानों के लिए दुःख सहन करने को तैयार रहना है। स्वराज्य मेरे लिए छोटी बात थी। गाय को बचाना बड़ी बात है। कानून से नहीं, परन्तु प्रेम से। ···हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ रहकर गोवध करना हिन्दुओं का खून करने के बराबर है। कुरान कहता है कि निर्दोष पड़ोसी की हत्या करनेवाले के लिए स्वर्ग नहीं है। मैंने तो तीन बार कुरान को पढ़ा है। इसलिए आज मुसलमानों का साथ दे रहा हूँ। ऐसा बर्ताव करता हूँ, जिससे उन्हें दुःख न हो। उनकी खुशामद करता हूँ, परन्तु उनका वाली नहीं बनता। सौदा नहीं करता। मेरे कर्तव्य-पालन के फल के बारे में मुसलमानों से बात नहीं करता। ईश्वर के साथ बात कर लेता हूँ। और गीता-पाठ से उनके साथ बात करता हूँ कि उत्तम कार्य का दुष्परिणाम होगा ही नहीं। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि मुसलमानों के साथ मुद्दत मुकर्रर किये बिना अपना कर्तव्य कर लूँगा।

'अंग्रेजों के साथ भी दुश्मनी नहीं और अहिंसामय असहयोग से अर्थात् प्रेम से काम लेना चाहता हूँ। बात यह है कि उन पर छुरी नहीं चलाना चाहता। आज उनके लिए जितनी गायें कटती हैं, उतनी मुसलमानों के द्वारा नहीं कटतीं। परन्तु उनका हृदय हिलाना चाहता हूँ। वह यों समझाकर कि पश्चिम की सभ्यता भूलकर यहाँ की सभ्यता सीख लें। हमारे काम के लायक भी अहिंसा का पालन करेंगे तो गोरक्षा होगी। अंग्रेज मित्र बनेंगे। मैं मुसलमानों को त्याग से खरीदना चाहता हूँ। अंग्रेजों में आज बड़ा घमंड है, इसलिए उनके साथ ऐसी बात नहीं करता। मुसलमान तो गुलाम हैं, इसलिए उनके साथ ऐसी ही बात करूँगा। अंग्रेज तो बादशाह हैं, इसलिए उनके साथ क्या बात करूँ? फिर पात्र को दान दिया जाता

है और जिज्ञासु को ज्ञान दिया जाता है । इसलिए उनसे कहूँगा कि प्रेम से ही असहयोग करता हूँ । चौरीचौरा के समय, वम्वई के दंगों के समय, वीरमगाम और अहमदावाद के उत्पातों के समय मैंने सत्याग्रह वन्द कर दिया । क्यों ? इसीलिए कि मुझे अंग्रेजों का कत्ल करके स्वराज्य नहीं लेना, परन्तु उन्हें वचाकर लेना है । आज अंग्रेजों और मुसलमानों को यहाँ से हटाकर गाय को वचाऊँ तो इससे क्या सन्तोष होगा ? मुझे तो सन्तोष तभी होगा, जव सारी दुनिया में गाय को वचाया जाय । और यह तो अहिंसा से ही होगा ।

'अव गोरक्षा का अर्थ वताऊँ । सूक्ष्म आध्यात्मिक अर्थ वताऊँ । वह है प्राणीमात्र की रक्षा करना । अभी तो अहिंसा की नीति का परिणाम और शक्ति कोई जानता नहीं । मुसलमान, ईसाई या हिन्दू कोई नहीं जानता । इन तीनों के धर्मग्रन्थ अहिंसा से भरे हैं । ऋषियों ने मंत्रों का अर्थ करने के लिए बड़ी तपश्चर्या की । गायत्री का अर्थ सनातनी या आर्यसमाजी करें, वही है या अन्य अर्थ भरा है, यह विचारणीय है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि वेदों का अर्थ और सूत्रों का अर्थ, ज्यों-ज्यों हम सत्य और अहिंसा के प्रयोग में वढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों खुलता है । इसलिए आज अहिंसा का क्या अर्थ समझाऊँ ?

'ऋषि ने कहा कि गोरक्षा परम कर्तव्य है और उससे मोक्ष मिलता है । परन्तु मैं नहीं मानता कि केवल गोरक्षा से मोक्ष मिलेगा । क्योंकि राग-द्वेष छोड़ने की जरूरत है । फिर भी यदि गोरक्षा से मुक्ति मिलती हो तो प्राणीमात्र की रक्षा करनी चाहिए । किसीको दुःख न दिया जाय । कटुवाक्य से स्त्री, भाई, किसीको भी दुःख पहुँचे तो गोरक्षण नहीं, परन्तु गोभक्षण कहा जायगा । इससे अधिक अर्थ नहीं वताऊँगा । परन्तु इस वात को छोड़ता हूँ । मैंने तो दो वाक्यों में वता दिया कि गोरक्षा का अर्थ विस्तृत है । गाय की पूजा की जाय, ऐसा हिन्दू-धर्म में कहा गया है, परन्तु उसकी पूजा में ही समाप्ति नहीं हो जाती । गाय को बचा लूँ और वकरी को मारूँ, यह नहीं हो सकता । गोरक्षा का तात्पर्य तो वह है, जो मैंने बताया । हिन्दू-धर्म में मांस-भक्षण करनेवाले मौजूद हैं, परन्तु केवल गोमांस भक्षण न करें, इसी कारण मैं उन्हें हिन्दू नहीं कहूँगा ।

'गाय से काम लेने के हमारे ढंग में परिवर्तन करना चाहिए । कहा जाता है कि गाय से काम नहीं लिया जा सकता । लाला धनपतराय पागल मेरे पास आये थे । उन्हें आज नहीं वोलने दूंगा । परन्तु मेरे लड़के

से उन्होंने लिखने को कहा था, उन्होंने मुझे लाहौर में पूछा था : 'गोरक्षा चाहते हो ?' फिर गाय की इतनी हत्या क्यों होती है और इसमें हिन्दुओं का कसूर कितना है, यह वताया। हिन्दू गाय न वेचे तो कत्ल कौन करे ? कसाई को गाय न दें तो कौन वध करे ? यह एक आर्थिक प्रश्न है। जितनी गोचर भूमि है वह सरकार ने ले ली, यह एक कारण है। दूसरा कारण यह है कि ब्राह्मण उन गायों को वेचते हैं, जो दूध नहीं देतीं। अहमदावाद में यही काम होता है। परन्तु करोड़ों रुपये मिलते हों तो भी यह काम हम नहीं कर सकते। धनपतराय ने कहा कि गाय का उपयोग वैल की तरह क्यों न हो ? धर्म में तो ऐसा नहीं। हम माता पर जितना भार रखते हैं, उतना उस पर रखें। गाय को खुराक देकर, उसका स्मरण करके प्रातःकाल उसकी पूजा करके थोड़ा-सा काम उससे ले लें तो क्या वुरा ? ऐसा उन्होंने मुझसे कहा। मैं पागल की वात हमेशा सुनता हूँ। उनके पास वहुत-सी गायें हैं। वे गाय को मोटी-ताजी कर उसे जोतते हैं। उन्हें गर्भ रहता है और सन्तान वढ़ती है। यह मैंने स्वयं नहीं देखा, परन्तु कोई धोखा क्यों दे ? इस प्रकार यदि कोई गाय की रक्षा करे तो उससे किसी ब्राह्मण को घृणा नहीं होनी चाहिए।

'इस परिषद् में प्रस्ताव करने की इच्छा थी। परन्तु प्रस्तावों का समय नहीं। आज मैंने जो वातें कहीं, वे नयी भी हो सकती हैं। इतिहास में ये वातें सुनी नहीं गयीं। कुछ वातें जो कही गयीं, आपने सुनी भी न होंगी। और प्रस्तावों पर आप 'हाँ' कह दें तो इससे आपका कल्याण भी क्या होगा ? आपको शास्त्रियों के साथ भी वातें करनी चाहिए। इसलिए मेरी सलाह है कि यह व्याख्यान सुनकर आप एक कमेटी वनायें और यह कमेटी सारा विचार करे और फिर गोरक्षा करनेवाली एक संस्था वनायी जाय। इस कमेटी में कोई साधुचरित और थोड़े गोरक्षा-भक्त हिन्दू हों। वे संस्था का संविधान वनायें और मैंने जो वातें वतायी हैं, उनमें से स्वीकार्य वातों का समावेश करके उसे स्थायी वनाने के लिए अगली परिषद् के सामने रखें। इस प्रकार संविधान वनाकर उसे स्थायी स्वरूप दिया जाय। यह जलसा आप आगे नहीं चला सकते, क्योंकि मुझे शाहपुर में जाना है। मालवीयजी को अध्यक्ष वनाइए और छोटी-सी कमेटी वना लीजिए। यह कमेटी इस काम की पक्की वुनियाद रखे।'

रात को शाहपुर नगरपालिका ने अभिनन्दन-पत्र दिया। उसका उत्तर देते हुए गांधीजी वोले :

'इस मानपत्र के लिए म्युनिसिपैलिटी का आभार मानता हूँ और उपस्थित भाई-बहनों को भी धन्यवाद देता हूँ। साथ ही यह भी कह दूं कि मानपत्र के एवज में मैंने सदस्यों से प्रतिज्ञा ली है। प्रतिज्ञा यह है कि प्रत्येक सदस्य रोज कम-से-कम आध घंटा चरखा चलाये और २००० गज सूत काते। कोई कहेगा कि यह शर्त क्यों ? मेरा जवाब यह है कि मानपत्र लेकर और व्याख्यान देकर थक गया हूँ। हमेशा एक ही बात कहने से क्या फायदा ? कहने की अपेक्षा काम करना अच्छा। ऐसा कौनसा कार्य है, जिसे सब कर सकें ? जिसमें कोई बाधा नहीं—राजनीति से, धर्म से, व्यवहार से भी नहीं। इसलिए इतनी प्रतिज्ञा लेकर मुझे मानपत्र देना कोई बहुत बड़ी बात नहीं। म्युनिसिपैलिटी क्या करे, यह दूसरी म्युनिसिपैलिटियों के मानपत्रों के उत्तर में कहा है, फिर भी थोड़ा बता देना चाहता हूँ। आजकल हिन्दुस्तान में जो हवा है, उसकी अच्छी-बुरी सभी बातें होती हैं। म्युनिसिपैलिटी के कामों से कुछ व्यक्तियों को लाभ हो, अमुक जिले को फायदा हो तो यह काफी नहीं। प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक—सारे भारत को लाभ हो, ऐसा करना म्युनिसिपैलिटी का काम है। म्युनिसिपैलिटी हिन्दू-मुसलिम झगड़ा मिटाने का प्रयत्न करे। अस्पृश्यता की घृणा मिटाने की कोशिश करे। हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति सुधारने में, भुखमरी दूर करने में म्युनिसिपैलिटी मदद क्यों न करे ? सबसे बड़ी बात यह है कि जो चीज हमारे देश में पैदा हो, वह हम बाहर से क्यों लायें ? इस तरह लाना मूर्खता है। घर में रखा हुआ अनाज न पकाकर इसे बाहर भेजें और वहाँ से पकाकर आया हुआ खायें, ऐसी मूर्खता हम कर रहे हैं। यही हाल कपास का है। इसीसे भुखमरी आती है। मेहनत करने की बात चली जाती है। और परिणामस्वरूप हम आलसी बन जाते हैं। इसलिए मैंने विचार किया कि आपसे यह सब कहूँ। आशा रखता हूँ कि आप सब भाई-बहन यह करेंगे। यह सब करेंगे तो हमारी शक्ति कितनी बढ़ जायगी ? हम स्त्री-शिक्षा की बातें करते हैं। परन्तु चरखे के सिवा कोई दूसरी ऐसी चीज है, जिससे स्त्री-शिक्षा और तालीम अधिक मात्रा में मिले ? अक्षर-ज्ञान प्राप्त करना तो ठीक है। मगर आज स्त्री जो भाग ले रही है, वह लेती रहे तो हिन्दुस्तान में स्त्री-पुरुष के अधिकार के भेद की बात करने को ही न रहे। स्त्रियों से मैं कहता हूँ कि स्वराज्य अच्छी बात है। परन्तु मैं तो स्वराज्य का अर्थ रामराज्य समझता हूँ। यह रामराज्य वहाँ है, जहाँ स्त्री अति स्वच्छ, पवित्र, गुणवान्

हो। सीता, दमयन्ती जैसी प्रातःस्मरणीय स्त्रियाँ हिन्दुस्तान में हों तो उद्धार ही है। इसलिए स्त्रियों से भिक्षा माँगता हूँ। वे इतनी पवित्र बनें कि भारतीय स्त्री से अधिक पवित्र और कहीं न हो। ईश्वर आपको ऐसी शक्ति दे।'

प्रत्यक्ष कार्य

(नवजीवन, ८-१-१९२५)

बेलगांव छोड़ने से पहले तमिल प्रान्त के प्रतिनिधि गांधीजी से मिल लिये। उन्होंने काम करने के लिए अंतिम आदेश माँगे। गांधीजी द्वारा उन्हें दिया गया सन्देश सब कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी समझकर उसे यहाँ लगभग पूरा-पूरा देने का प्रयत्न करूँगा :

'दूसरे का सूत देकर आप कांग्रेस के सदस्य बन सकते हैं—इस शर्त पर तो आप ५० लाख सदस्य बना सकते हैं। एक भाई मदुरा में मार्च १९२५ से पहले दस हजार चरखे चालू करने का वचन दे रहे हैं। कांग्रेस पर 'कब्जा करना' शब्द भद्दा है, मगर आज जो कब्जा करना चाहें वे देश का कल्याण ही करेंगे। तो पचास लाख चरखे चालू करने और उतने सदस्य बनाने का लक्ष्य सबको जरूर रखना चाहिए। इसलिए यह भाई दस हजार का अपना लक्ष्य पूरा करें तो उसमें आश्चर्य नहीं। इसमें आपको नाम के मतदाता मिल जायँगे, यह सही बात है। परन्तु जिससे आप सूत कतवायेंगे उसे आप थोड़े समय कातने में रुचि रखनेवाला बनाकर और उसे कातने की मजदूरी देकर, बाद में दो हजार गज तक सूत कातने की मजदूरी देश को देने की बात समझा सकेंगे। इस प्रकार बाद में वह भाई या बहन सच्चे मतदाता बन जायँगे। इस कार्य में *नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते*—प्रत्येक मनुष्य अपना कर्तव्य समझकर कार्यक्रम में अपना भाग अदा करने लगे तो हिन्दुस्तान को जीता-जागता बना देगा। जिससे हो सके वह चरखे के सिवा सब बात भूल जाय। यदि वह कातने की वृत्तिवाला हो—और मैं मानता हूँ कि आप सब तो कातनेवाले ही हैं—तो आप और कुछ नहीं तो आधा घण्टा दे देंगे और दो हजार गज सूत देंगे। इस प्रकार आपका सम्भव प्रयत्न पूरा हुआ। दूसरी चीज भी इतनी ही आसान है। आप पहले यह ढूंढ़ निकालें कि आपके गाँव में कितने गरीब लोग चरखे चलाते हैं और उनका मण्डल बनाकर उनकी मजदूरी तय करके उनसे सूत लें और उन्हें पैसे दें। इससे आपके और कातनेवालों के बीच व्यापारी

सम्बन्ध वन जायगा और चूंकि आप व्यापारी की तरह उन्हें चूसना नहीं चाहेंगे, इसलिए यह सम्बन्ध शुद्ध है। यह सम्बन्ध गहरा होता जाय, तव आप उन्हें समझा सकेंगे कि भाई, महीने में १५ घण्टे की मजदूरी आप देश को दान कर दें। और यदि वह विदेशी वस्त्र पहने हो तो उसे कहिए कि भाई, खादी पहनने लगो, नहीं तो आपका धन्धा टूट जायगा। इतना करेंगे तो वह सम्बन्ध व्यापारी न रहकर आध्यात्मिक और राष्ट्रीय वन जायगा। इस प्रकार आपके गाँव में पचास कातनेवाले हों तो वहाँ आपके साथ इक्यावन मतदाता वन जायँगे। परन्तु गाँव में दूसरा वर्ग होगा, जो राज-काज में भाग न लेने पर भी राजनैतिक वुद्धिवाला होगा। उनके लिए आप 'चरखा मण्डल" स्थापित करें। मान लीजिए, उस मण्डल में वीस ही सदस्य हों। इस मण्डल का व्यवस्थापक कातने और पींजने की कला और शास्त्र में प्रवीण होना चाहिए। थोड़े समय तक तो इस व्यवस्थापक को अपना पूरा ही वक्त देना चाहिए, परन्तु एक वार काम का ढंग वैठ जाय तो फिर एक घण्टे से ज्यादा समय न देना पड़े। इस मण्डल में वकील शामिल हो या पदवीधारी मनुष्य शरीक हो, इसकी परवाह न करें। वह शामिल हुआ और कातने लगा कि सदस्य वन गया, फिर भले ही वह सरकारी हो। आपने उसे कातने और सूत देनेवाला वनाया कि वह सदस्य हो गया। आप पक्के स्वराज्यवादी हों या पक्के अपरिवर्तनवादी हों—कुछ भी हों—चरखे में आपको जीवन्त श्रद्धा होनी चाहिए। यदि इस तरह प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास के मण्डलों पर असर डालकर काम करना शुरू कर दे तो इस वर्ष के अन्त में स्वराज्यवादी या अपरिवर्तनवादी का भेद ही नहीं रहेगा और आप मेरे आसपास हर्ष से मँडराने लगेंगे। परन्तु यदि आप घर जाकर सो जायँगे और जिस काम को करने में कोई अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ेगी, उसे भी किये विना आप अगले वर्ष यहाँ वापस आयेंगे तो आपके किये हुए वचन-भंग से आप पर प्रेम रखनेवाले इस वुड्ढे को कितना दुःख होगा, यह सोच रखें।'

कोहाट के वारे में मुहम्मद अली को पत्र

वम्वई, ता० ३१-१२-'२४

मुस्लिम लीग के जलसे में मुहम्मद अली का कोहाट पर प्रस्ताव देखकर मित्रमण्डली में क्षोभ पैदा हुआ। वापू ने कहा : 'इससे अधिक आँखें खोलनेवाला प्रसंग और क्या हो सकता है ?'

मुहम्मद अली मिलने आये, परन्तु उनके साथ बातें नहीं हुईं।

मौलाना मुहम्मद अली को पत्र लिखा ।*

¶ मेरे प्रिय मित्र और भाई,

कोई चीज जल्दबाजी में न कीजिएगा । जफरुल्ला खाँ का प्रस्ताव सचमुच आपके प्रस्ताव से अच्छा है । आप चाहते तो हैं भला, परन्तु आपने सब बुरे ढंग से किया है । आपके प्रस्ताव से तो ऐसा ही दिखाई देगा कि हिन्दुओं को जो सहन करना पड़ा, वे उसके योग्य ही थे । आपकी राय में तो यह हकीकत है कि फसाद का कारण हिन्दुओं की ओर से पैदा हुआ था और मारकाट की शुरुआत भी उन्होंने ही की थी । आप यह भी कहते हैं कि यद्यपि हिन्दुओं को बहुत कष्ट सहना पड़ा है, फिर भी कष्ट सहनेवाले वे अकेले ही नहीं थे । इसका भावार्थ यह होता है कि दोनों पक्षों को लगभग बराबर सहन करना पड़ा है । या बराबर नहीं, तो इतना अधिक तो सहन हरगिज नहीं करना पड़ा, जिसके लिए खास उल्लेख करने की जरूरत हो । प्रस्ताव में मुख्य तथ्यों के बारे में स्पष्ट निर्णय का उल्लेख करने के बाद यह बताया गया है कि सरकार की तरफ से जो आक्षेप किये गये हैं, उनके ब्योरे के बारे में आम जनता अपना फैसला देना मुल्तवी रखे । परन्तु इस पर से यह फलित नहीं होता कि यदि मुख्य मामलों के बारे में सरकार का कहना सच हो तो ब्योरा भी सच ही होना चाहिए ? यदि मुख्य मामलों के बारे में सभी पक्ष सहमत हों तो ब्योरे के बारे में जाँच की माँग करना जरूरी है ? आपके अनुसार तो लीग मुसलमानों से कहती है कि आपको (मुसलमानों को) हिन्दुओं को कोहाट लौट आने का निमंत्रण देना चाहिए और अपने मतभेद आपके (मुसलमानों के) साथ सम्मानपूर्वक और समाधानकारक ढंग से मिटाने चाहिए । इसका तो यही अर्थ होता है कि आक्रमण मुख्यतः हिन्दुओं ने ही किया था । परन्तु यदि आपकी ही राय ऐसी हो तो फिर, मैं दुबारा पूछता हूँ कि, जाँच कमेटी

---

* मुस्लिम लीग की बम्बई में हुई ता० ३१-१२-'२४ की बैठक में कोहाट के दंगों के सिलसिले में जो प्रस्ताव हुआ, उसके सम्बन्ध में यह पत्र लिखा था । पहले जफर अली खाँ कोई प्रस्ताव पेश करनेवाले थे और उस पर मौलाना मुहम्मद अली संशोधन रखनेवाले थे । मगर बाद में मौलाना का संशोधन ही प्रस्ताव के रूप में जफर अली खाँ ने पेश किया था और वह पास हुआ था । —सं०

की माँग किसलिए ? आगे चलकर आप हिन्दुओं को सीख देते हैं कि मुसलमानों को चिढ़ायें नहीं और मुसलमानों से कहते हैं कि हिंसक कृत्य न करें। इसका अर्थ यह होता है कि हिन्दुओं ने खूब चिढ़ाया होगा। सही बात तो यह है कि इस दुष्ट कविता में इस्तेमाल की गयी भाषा पंजाब में आम हो गयी है। आप यह कह सकते थे कि ऐसी भाषा कोहाट में इस्तेमाल की जाय तो माफ नहीं हो सकती। अपने प्रस्ताव के अन्त में आपने सरकार को फटकार बतायी है, वह और जिन शब्दों में बतायी है, वह अर्थहीन है और ऐसी फटकार बताने का कोई प्रयोजन भी नहीं।

जफरुल्ला खाँ का प्रस्ताव आपके प्रस्ताव की अपेक्षा हर प्रकार से बढ़िया और कम दोषपूर्ण है। मन्दिरों के नाश के बारे में आपके प्रस्ताव में आपने कुछ भी नहीं कहा, यह भूल दुःखदायक है।

आप शान्त रहे होते तो कितना अच्छा था ! मैंने आपका प्रस्ताव बार-बार पढ़ा है; और मैं ज्यों-ज्यों उसे पढ़ता हूँ, त्यों-त्यों मुझे वह अधिकाधिक अरुचिकर लगता है। फिर भी यदि आपको वह बुरा न लगता हो तो आप उससे चिपटे रहिए। मैं तो पहले आपके हृदय का परिवर्तन कराना चाहता हूँ और बाद में आपके विचारों का। जब तक मुझे आप पर विश्वास है, तब तक मैं आपको नहीं छोड़ूँगा। आपका प्रस्ताव यह सूचित करता है कि आपका दिमाग किस दिशा में काम कर रहा है। आपकी भाषा कितनी ही अविचारपूर्ण हो, परन्तु उससे आपका मन्तव्य मालूम हो जाता है। इसलिए मुझे तो अब भी और प्रयत्न करना पड़ेगा, जिससे आप अधिक सही चित्र देख सकें। इस मामले में हिन्दुओं का क्या मत है, इससे आपको अनजान नहीं रहना चाहिए। कल उठकर आपको यह कहने का समय न आये कि 'मुझे यह पता नहीं था कि हिन्दू यह कहते हैं कि उत्तेजना और हिंसा की शुरुआत हमने नहीं की थी।' हो सकता है कि उनकी यह मान्यता सही न हो। परन्तु ये लोग यह कहते हैं, ऐसा जानते हुए भी आपने जो कहा, वह आपको कहना नहीं चाहिए था। राष्ट्रीय महासभा ने जिस प्रकार का प्रस्ताव किया है, वैसा प्रस्ताव करने को आप तैयार न हों, तो आपको उसका विरोध करना चाहिए था। परन्तु लीग में फूट तो डलवानी ही नहीं चाहिए थी। आपके प्रति गहरी सहानुभूति और प्रेम सहित।

आपका

मो० क० गांधी

इस पत्र की नकल पहले वापू नहीं करने दे रहे थे, परन्तु वाद में करने दी। मैंने शौकत अली की निर्लज्जता की वात कही, तो वापू कहने लगे: 'इस वर्ष के अन्त में सव कुछ सामने आ जायगा।' मैंने कहा: 'वापू, दो-तीन महीनों में पता लग जायगा।' वापू वोले: 'तो और भी अच्छा।'

दोहद, ता० २-१-'२५

दोहद में श्री अमृतलाल ठक्कर ने खास तौर पर भीलों से मिलने के लिए गांधीजी को वुलाया था। उन्हें सम्वोधन करके गांधीजी वोले:

'मैं यहाँ दोहद-निवासियों से मिलने नहीं आया। मैं तो भीलों के दर्शन करने आया हूँ। भाई अमृतलाल ने भीलों के वीच एक दिन विताने को कहा। भील भाइयों से वहुत कहने की जरूरत नहीं। आपका एक गुरु है अमृतलाल ठक्कर अर्थात् ठक्करवापा। इन्हें अपने वीच वनाये रखें। इन पर विश्वास करें। इनके कहने के अनुसार चलेंगे तो कल्याण ही है। इन्होंने आज्ञाएँ दे रखी हैं। इन्हें वापा समझें तो आज्ञा मानें और भाई समझें तो सीख मानें। उन्होंने आपको सत्य को पकड़कर रखने और अच्छा वनने को कहा है। आपसे मुझ जैसा आदमी पूछता है कि 'खादी पसन्द है?' तो साफ कहें कि पसन्द है या नहीं। ऐसा करें तो ही परमेश्वर मिलेगा, क्योंकि परमेश्वर का अर्थ है सत्य। और कोई परमेश्वर मैं नहीं जानता।

'और आपके अच्छे आचरण की निशानी है शराव न पीना। शराव पीनेवाले मित्रों के अनुभव से कहता हूँ कि उसे थोड़ा-वहुत पीना भी पाप है। हमें सफाई के नियमों का पालन करना चाहिए। स्वच्छता का अर्थ है शौच—भीतरी और वाहरी। दोनों की जरूरत है। आपसे नहाने-धोने की वात करने की जरूरत नहीं है। परन्तु ऊँचे वर्गों ने आपके साथ सम्वन्ध नहीं रखा, इसलिए आपमें ऐसी कुटेव रह गयी है। अपने वच्चे ठक्करवापा को सौंप दीजिए। आप उनसे यह भी कह दें कि 'हमारे वच्चों को शहरी जीवन न सिखायें, वहुत कपड़े पहनना न सिखायें, वीमार होना न सिखायें। अनेक प्रकार के स्वाद और भोजन हमारे वच्चों को नहीं चाहिए। मक्की की राव ही हमें अच्छी लगेगी। केवल अक्षर-ज्ञान ही नहीं, सही उच्चारण भी सिखायें। सव लिखना-पढ़ना सीख जायें।

चिट्ठी-पत्री पढ़ना जान लें। रामायण, महाभारत की कथा सिखायेंगे तो अच्छा।

'आपने कदाचित् महासभा का नाम नहीं सुना होगा। महासभा (कांग्रेस) भारत में सब मनुष्यों के विचार बतानेवाली एक मण्डली है। वह जो काम करती है, उसमें एक बात आप पर बहुत लागू होती है। वह है चरखा। उसे चलाना मेरा, आपका, स्त्रियों का, पुरुषों का—सबका काम है। उसे हमारे घर में बसाना चाहिए—जैसे खेत में हल और औजार होते हैं, वैसे ही। एक बोहरा गृहस्थ ने कहा कि मेरी माँ चरखा चलाती थीं। चरखा घर का एक औजार था। उससे हमारे खेतों की कपास काती जाती है। जिस प्रजा को अन्न और वस्त्र के लिए बाहर न जाना पड़े, वह प्रजा सुखी होती है।

'हम विलायती कपड़े मँगवाते हैं। यहाँ आनेवालों के शरीर पर खादी नहीं देख रहा हूँ। जिसके पास हमारी आवाज न पहुँचे, उसके लिए मिल का सूत हो सकता है। बाकी जिसे आवाज सुनाई दे, उसके लिए खादी ही हो सकती है। दिल्ली के बिस्कुट भले ही स्वदेशी हों, परन्तु दोहद में वे किस काम के? आप उन्हें खाना शुरू कर देंगे, तो यहाँ भुखमरी शुरू हो जायगी। हाँ, यह सही है कि इससे मेरे जैसे उनके एजेण्ट महल खड़े कर लेंगे। कपड़े भी अहमदाबाद से लेकर दूँ तो आपके तो बारह ही बज जायँ। दोहद के व्यापारी भले ही बड़े हों। स्वदेशी अपनाने से उनका जो होना हो सो हो, परन्तु आपका तो भला ही हो। भील भी चरखा न छोड़ें।

'भारत के लोगों से भी कहना चाहता हूँ कि महासभा ने अब मेरा ही सन्देश दिया है। मैं महासभा नहीं हूँ। मैंने किसीको दबाया हो सो बात नहीं। यदि हो, तो यह हमारे लिए शर्म की बात है। मैं किसीको उलटे सिर लटकने को कहूँ, तो कोई लटकेगा? यह प्रस्ताव उग्र है, परन्तु यही सही है। आप सब विदेशी कपड़ा छोड़ें, तो इसमें पाप है? कातें तो इसमें पाप है? मुझे अनुनय-विनय करना पड़ता है, यह दुर्भाग्य की बात है। मैं आपसे द्वादश मंत्र पढ़ने की बात कहूँ तो भी आप मुझे गालियाँ दें और फिर भी मैं यही बात कहूँ तो इसमें मैंने आपका क्या बुरा किया? आप ऊलजलूल बोलें, निन्दा करें, इसकी अपेक्षा आपके मुख के भीतर से यही मंत्र निकले तो क्या बुरा? इसी तरह आपसे विदेशी कपड़े छोड़ने को कहूँ तो इसमें क्या बुराई? विलायती कपड़े जलाने को

भी कहूँ। परन्तु हम तो पहननेवाले के ही क्यों न चिपटें ? मुसलमान भाइयो, मैं आपसे हमेशा कलमा पढ़ने को कहूँ, इससे मैं कोई आपका भला नहीं करता। परन्तु मैं आपसे कहूँ कि बंगाल में ज्यादातर स्त्रियाँ कातती हैं, तो ऐसा कहने में मैं आपका कुछ बुरा करता हूँ ?

'मुझे ईश्वर ने यरवदा-जेल से भयंकर बीमारी के कारण मुक्त कराया, इसमें मैं कोई बड़ा संकेत देखता हूँ। मैं देश में सब जगह भ्रमण करके अन्नपूर्णा की—चरखे की—बातें करूँ और उसका सार्वत्रिक प्रचार करूँ, इसके लिए उसने मुझे छोड़ा दीखता है। हिन्दुस्तान अब भी कातने का सन्देश न सुने तो भुखमरी बढ़ेगी। दोहद बम्बई बन जाय और उससे दो-चार आदमी लखपति हो जायँ, तो मैं खुश नहीं होऊँगा। सबको खाने-पीने और कपड़े पहनने का हक है। परन्तु किसीको धन जुटाकर धनवान् बनने का हक नहीं। दोहद में चार-पाँच आदमी साहूकार बन जायँ, यह मैं नहीं चाहता, परन्तु यह चाहता हूँ कि खादी जैसे बेचते हैं, वैसे बेच सकें और सिक्के और डाक के टिकटों की तरह वह जहाँ चाहिए वहाँ मिलने लगे। जो सूत न कात सकें, वे दूसरों से कतवाकर सदस्य बन सकते हैं, यह शर्त रखी है, परन्तु मैं चाहूँगा कि कोई भी गुजराती इसका लाभ न उठाये। भाई सुखदेव ने मुझसे कहा कि उन्होंने कातना छोड़ दिया है। मुझे इसका पता नहीं था। वे दूसरा काम करते होंगे, परन्तु वे कातना छोड़ दें, यह असह्य है। हमारे काम करनेवाले ही न कातें, तब तो बड़ी दुर्दशा हो जाय न ? भाई सुखदेव को कातना पसन्द नहीं, सो बात नहीं, परन्तु उन्हें कातने में आलस्य आता है। मैं किसी भी गुजराती से ये शब्द सुनना नहीं चाहता।

'खादी पहनना हलकी-से-हलकी शर्त है। आपके लिए तो चौबीसों घण्टे खादी का उपयोग करने की बात है। अब तो कौंसिलों के द्वार खोल दिये गये हैं। वहाँ जाइए, स्कूलों में जाइए, वकालत कीजिए, इससे आपको स्वराज्य मिलने की आशा हो, तब तक यह सब कीजिए। परन्तु मेरी भविष्यवाणी है कि जब तक विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार नहीं होगा, तब तक भारत में स्वराज्य नहीं।'

अब्बास मियाँ* बोले : 'गांधीजी ने जो कहा, उस पर अमल किये बिना आप न रहें। खादी में गरमी अच्छी रहती है, फिर भी आप खादी क्यों नहीं पहनते ? शुरू में तो सब चीजें महँगी होंगी ही।'

---

* अब्बास तैयबजी।

वल्लभकाका* बोले : 'महात्मा के दर्शन का काम पूरा हुआ। आपने इनकी बातें सुनी हैं ? नहीं सुनीं तो किसलिए आये हैं ? सुनकर क्या करेंगे ? बात सुनकर पालन करने का विचार हो, वे हाथ ऊँचे करें। महासभा ने तय किया है कि अकल पर अंकुश रखा जाय, क्योंकि अकल का अजीर्ण हो गया है।'

स्त्रियों की सभा में गांधीजी बोले :

'आपने रामराज्य के बारे में सुना होगा। स्वराज्य शब्द सुना होगा। इन शब्दों का अर्थ समझने की जरूरत नहीं हो सकती। कुँए के पानी के मालिक को अहरी या हौज के पानी की गरज नहीं हो सकती, वैसे ही जिसने रामराज्य का स्वाद चखा हो, उसे स्वराज्य का स्वाद चखने की जरूरत नहीं। इस राज्य का अर्थ क्या ? रामराज्य में सारी प्रजा सुखी थी। सबको दो वक्त खाना मिलता था। स्त्री-पुरुष सच बोलते थे। व्यापारियों में एक-दूसरे का विश्वास था। पुरुषों की नजर साफ और पवित्र थी। प्रातःस्मरण में इस सतियों के—सीता, दमयन्ती वगैरह के—नाम लेते हैं और हम राम और सीता का नाम भी लेते हैं। परन्तु हमारा व्यवहार उनके जैसा है ? उनका आचरण कैसा था ? रामराज्य में जैसे हर घर में चूल्हा होता था, उसी तरह प्रत्येक घर में चरखा था। सब स्त्रियाँ इसे धर्म समझकर कातती थीं। राजा और रंक सबके घरों में चरखा चलता था, इसलिए सबके यहाँ बरकत थी। और किसीको यह डर नहीं था कि कभी भी हमारा कमजोर समय आयेगा। चरखा विधवा का भाई था। विधवा चरखे के आगे अपना दुखड़ा रोती थी। पति को खोकर मन-ही-मन घुट रही विधवा आज भी होती है। परन्तु चरखे के बिना आज उसकी क्या हालत होती है, यह आपको बताऊँ ? मुझे पता है कि रोजी के लिए उसे पत्थर तोड़ने जाना पड़ता है। रामराज्य कौन दिलाये ? स्त्रियाँ 'राधाकृष्ण' 'सीताराम' कहती हैं। परन्तु कौशल्या न हो तो राम को मैं क्या जानूं ? सीता न हो तो राम क्या ? सीता के आसपास रामायण का सारा तारामण्डल रचा गया है। उसमें सीता सूर्यरूप है। दशरथ की कैकेयी के पास कुछ न चली। ऐसी उसकी अर्थात् स्त्री की शक्ति थी।

'दूसरी बात छुआछूत की कहनी है। अस्पृश्यों को समाज का फालतू अंग न मानिए। शबरी के बेर की बात तो आप जानती ही हैं। उसके

---

* वल्लभदास मोदी।

वेर जूठे थे, फिर भी भगवान् राम ने उन्हें खाया था। इसीमें प्रेम समाया हुआ है। आप उसी प्रेम से अछूतों को अपनाइए। ये लोग कोई कुत्ते नहीं हैं, जिन्हें दुतकारा जाय।'

गोधरा, २-१-'२५

मामा[1] के आश्रम में शाम को ७ वजे आये। यह देखने के लिए कि गोधरा में अस्पृश्यता-निवारण का काम किन हालात में हो रहा है। उन्होंने गांधीजी को खास तौर पर वुलाया था। गांधीजी ने कोठरियों की वनावट के वारे में आलोचना की, हवा के आने-जाने के लिए आमने-सामने दरवाज़े-खिड़कियाँ नहीं थीं, यह कमी वतायी।

मीठीवाई पीटिट के साथ उनके रहन-सहन के वारे में वातचीत की। उन्होंने मांस किस प्रकार छोड़ा, मुर्गा खाना कैसे छोड़ा इत्यादि व्योरा देकर उन्होंने वताया कि शराव भी कभी नहीं पी। यह सव सुनकर वापू आश्चर्यचकित हो गये। वोले: 'तो तुम्हारे संस्कार ही होंगे!'

ठक्करवापा के साथ दोहद के जुलाहों की धर्मविधि के वारे में वात की। उन्होंने कहा था कि हम 'प्रणामी' धर्म[2] को माननेवाले हैं। परन्तु उस धर्म का क्या अर्थ है, इसका कोई स्पष्टीकरण वे नहीं कर सके थे। नकलंकी अवतार की वात भी उन्होंने कही थी। इसलिए वापू ने अपनी आत्मकथा सम्वन्धी एक नयी ही वात सुनायी।

'मेरी माँ मेरे पिता की चौथी स्त्री थी। चौथी वार की स्त्री तो दीवान को भी आसानी से न मिलती। तो वह जूनागढ़ के पास किसी गाँव से मिली थी। वह प्रणामी धर्म की थी। मेरे विवाह के समय देव-दर्शन करने के लिए जव हमें ले गये, तव वैष्णव मन्दिरों में तो ले ही गये थे, परन्तु प्रणामी मन्दिर में भी ले गये थे, यह मुझे याद है। मेरे पिताजी को तो क्या पता कि प्रणामी धर्म क्या है? परन्तु मुझे पता वाद में लगा कि इसमें भी मुसलमानों की कुछ-न-कुछ सीख है।'

---

१. मामासाहव—विट्ठल लक्ष्मण फड़के।

२. काठियावाड़ में जनमे हुए महेराज ठाकुर नामक एक साधु पुरुष वाद में प्राणनाथ कहलाये और उनका स्थापित किया हुआ पन्थ प्रणामी पन्थ कहलाया। वह धामी पन्थ भी कहलाता था। इस पन्थ में हिन्दू, मुसलमान वगैरह धर्मों का समन्वय करने का प्रयत्न था। पन्ना में जो हीरे की खान है, वह वहाँ के राजा छत्रसाल को प्राणनाथ ने वतायी थी। इस पन्थ के मन्दिर और अनुयायी ज्यादातर पन्ना में हैं। सं०

इसके वाद कमोड़ की रचना देखी। उसके वारे में आलोचना करते हुए ठक्करवापा से कहते हैं: 'कई वार जी में आता है कि सव कुछ छोड़-कर तपश्चर्या करूँ तो कैसा? जव अच्छी-से-अच्छी चीज का भी लोग दुरुपयोग करते हैं, तव क्यों उस चीज का आग्रह रखा या प्रचार किया जाय? वेलगाम में चोरों ने खादी धारण की हुई थी। यह देखकर मुझे यही विचार हुआ था।'

मामासाहव फड़के यहाँ पाँच वर्ष से काम कर रहे हैं। गोधरा के राजनैतिक सम्मेलन[1] के समय गांधीजी अछूत मुहल्ले में गये थे और उसके वाद कुछ सज्जनों ने रुपया दिया था, ताकि अछूतोद्धार का काम स्थायी रूप से किया जा सके। इसमें से मामासाहव के वहाँ के काम की उत्पत्ति हुई है। मामासाहव अछूतों के यहाँ, उनके वीच में जाकर रहे, उनके लिए सुवह, दुपहर में और शाम को पाठशालाएँ चलायीं, उनके आँगन साफ किये और रात को कथाएँ कीं। परन्तु उनके काम का कोई स्थूल परिणाम नहीं आया, यह देखने का दुर्भाग्य आज गोधरा में ही मिला। आज स्व० पारसी रुस्तमजी[2] के दान के कारण एक आलीशान मकान में अन्त्यजाश्रम खोला गया है, परन्तु उसके १७ विद्यार्थियों में से एक भी विद्यार्थी गोधरा का तो क्या, परन्तु पंचमहाल का भी नहीं है। अज्ञान इतनी अधिक मात्रा में फैला हुआ है कि ये अज्ञानी लोग जिन-जिन दुर्व्यसनों में फँसे हैं, उन्हें छोड़ना सीखने के लिए वच्चों को असह्य दुःख उठाना पड़ता है। मामा के आश्रम के वच्चों को सड़ा हुआ मांस छोड़ने के लिए असह्य मार खानी पड़ी है। एक वालक को मामा ने सत्याग्रह आश्रम में भेजा था। वह छह मास तक आनन्द से वहाँ रहा। परन्तु छुट्टियों में घर गया, तो वापस आया ही नहीं। उसके पिता के साथ दोहद में भेट हुई। वह कहता है: 'मेरा लड़का धन्धा छोड़ दे, यह वर्दाश्त नहीं हो सकता।' परन्तु वुनने का धन्धा तो वह आश्रम में भी सीखता था! असल वात यह थी कि उसे डर लगा था कि कहीं जाति उसे विरादरी से न निकाल दे! सत्याग्रह आश्रम में जहाँ भंगी के साथ भी एकाचार होता है, वहाँ जाकर लड़का रहे, तो जाति से न निकाला जाय? ऐसी स्थिति है।

---

१. यह सम्मेलन ता० ३-११-'१७ को हुआ था।

२. रुस्तमजी जीवणजी घोरखोद्र। ये सज्जन गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई में साथी थे और मृत्युपर्यन्त गांधीजी के भक्त रहे थे। सं०

अपने प्रवचन में गांधीजी बोले :*

'आपने नाना प्रकार के संवाद और भजन सुने। कौन कहेगा कि ये संवाद अछूत बालकों के थे? और भगवान् की भक्ति के भजन इनके गाये हुए थे? सम्मेलन का ऐसा परिणाम निकलेगा, यह कौन जानता था? अछूतों के प्रस्ताव के सिलसिले में मैंने तो अछूत मुहल्ले में जाने के लिए सबको सुझाया था। मैंने माना था कि उसमें गोधरा के भाई-बहन थे। परन्तु मैंने भूल की। उसमें अधिकतर भाई-बहन जो आये थे, वे गोधरा-निवासी नहीं थे। हाँ, गुजरात के बड़े हिस्से में से थे। उस समय हमें धन मिला। उससे अछूत पाठशाला खोली गयी। परन्तु गोधरा के भाई-बहनों ने उसे नहीं अपनाया। इतना ही नहीं, उन्होंने अरुचि दिखायी। यही स्थिति अछूत भाइयों की भी थी। अछूत पाठशाला में अछूत लड़के ही जुटाना मुसीबत की बात हो गयी! एक समय ऐसा आया कि यह काम बन्द कर देने के बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार करने की जरूरत महसूस हुई; परन्तु बाद में वह विचार स्थगित रखा।

'मामा दक्षिण के हैं, परन्तु उन्हें गुजराती आती है। इन्हें अछूतों का काम प्रिय है, यह मैंने आश्रम में देखा था। गोधरा में जमकर बैठ जाने की मैंने इन्हें सलाह दी। फिर मैं चला गया जेल में। उसके बाद का काम-काज और असह्य भार वल्लभभाई ने उठाया। इस बीच में यह मकान बना। यह मुझे पसन्द नहीं। इसलिए नहीं कि वह अधूरा है, बल्कि वह हमें शोभा नहीं देता। उसकी शोभा में दोष नहीं, परन्तु वह ऐसा चाहिए, जो हमारे योग्य हो। मामा कारीगर नहीं हैं, परन्तु इनके मन में प्रेम है, भक्ति है। वे अछूतों के प्रेम में बह गये और बाईस हजार का खर्च कर डाला। वल्लभभाई की यह रुपया उगाहने की शक्ति नहीं है। परन्तु सौभाग्य से पारसी रुस्तमजी ने ऐसे काम के लिए रुपया दिया हुआ था। उससे यह मकान बना और सुविधा मिल गयी। परन्तु वह ऐसी ही होनी चाहिए, जो हमारे अपने—अछूतों के, गरीबों के योग्य हो। हम गरीब प्रजा और उससे भी गरीब अछूत। अनाथ ढोर जैसे। हिन्दुओं ने इनका तिरस्कार किया, यह एक पाप किया है। आप सब ऐसी दृष्टि रखें कि इतना बड़ा मकान बन गया है, परन्तु उससे द्वेष न करें। यदि ऐसा मकान वणिक् विद्यार्थीगृह हो तो आप द्वेष नहीं करेंगे। मैं

* यह प्रवचन आश्रम में आयोजित समारोह में आये हुए लोगों के सामने किया गया था। सं०

स्वीकार करता हूँ कि ऐसा एक भी मकान नहीं होना चाहिए, जो भारत की आवादी के योग्य न हो । इससे अधिक शानदार मकान मौजूद हैं, जो दूसरे वर्ण के वालकों के लिए काम में लिये जाते हैं । परन्तु आपके मन में कभी यह भाव नहीं आना चाहिए कि इसे इस्तेमाल करने का अछूतों को हक नहीं । फिर भी अछूतों को भी हम समझायें । मैं तो यहाँ चर्चा कर रहा हूँ । परन्तु गोधरा का कोई धनाढ्य इसे ले ले तो अच्छा । तो हम और कहीं गरीवों के लायक जगह चले जायेंगे । परन्तु इस वीच मामा को निभा लेना चाहिए ।

'मैं आज तीन स्थानों पर अछूत मुहल्लों में हो आया । वहाँ तो मनुष्य नहीं देखे, जानवर देखे । उनके साथ वात करने वैठें तो अलग ही प्राणी हमें प्रतीत होते हैं। परन्तु वे भी प्रीति को समझते हैं। इन लोगों की दयाजनक स्थिति के लिए हम जिम्मेदार नहीं तो कौन जिम्मेदार है ? मेरे लिए इन लोगों की सेवा की तुलना में स्वराज्य तुच्छ वस्तु है । यह सेवा मैंने इस हेतु से शुरू नहीं की कि अन्त्यज-सेवा से स्वराज्य मिलेगा । जव स्वराज्य की वात भी नहीं थी तव, जव ३० वर्ष पहले दक्षिण अफ्रीका में था, तव से मैंने अपने अन्त्यज-सेवा के विचार वताये हुए हैं । आजकल हम हिन्दू-धर्म की रक्षा नहीं करते, परन्तु उसका नाश कर रहे हैं । मैं चाहता हूँ कि उसे इस नाश से वचाने के लिए इस सेवा का काम हाथ में लें । आप यहाँ आनेवाले यह समझें कि आप यहाँ आकर अपवित्र नहीं, परन्तु पुनीत हुए हैं । मुझे तो यह कहने में भी आपत्ति नहीं कि जहाँ-जहाँ अन्त्यज-सेवा है, जहाँ-जहाँ अछूत पाठशाला है, जहाँ-जहाँ अस्पृश्य आश्रम है, वहाँ तीर्थ है । क्योंकि तीर्थ वही है, जहाँ हम अपने पाप धोकर पार हो जाने को तैयार हों । माँ-वाप क्यों तीर्थ-रूप हैं ? गुरु क्यों तीर्थस्वरूप ? हृदय से मदद करें तो पुनीत हो जाते हैं । यह न समझें कि आप छू गये, इसलिए नहाना चाहिए । आपको पता न होता तो क्या आपको लगता कि ये संवाद सुनानेवाले अछूत वालक थे ? इन वच्चों के लिए हम पूरी मेहनत करें, तो ये हमारी अपेक्षा वढ़ जायँ । यह न समझिए कि भंगी के लड़कों में अच्छे विचार नहीं आ सकते । मैं अनुभव से कहता हूँ कि हम प्रयत्न करें तो जरूर आयें । मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप सव जो आज यहाँ आये हैं, वे इसे यहाँ आने के लिए अन्तिम अवसर न मानें । आप समय-समय पर आकर मदद करें ।

'यहाँ अन्त्यज-सेवा-मण्डल है। इसका श्रेय इन्दुलाल[1] को है। उन्होंने बड़ी सेवा की है। जेल में भी ये विचार करते थे। अत्यन्त उत्साह में उन्होंने कुछ ऐसा काम किया, जो हमें अच्छा न लगे तो उसका खयाल न करें। अमृतलाल[2] देशाटन छोड़कर यहाँ आये हैं। अब ढेढ़, भंगी और भीलों के गुरु बन गये हैं। इन्दुलाल ने जब अन्त्यज-सेवा-मण्डल छोड़ने का विचार किया, तब मैंने कहा था कि इसे विद्यापीठ को सौंप देंगे। अमृतलाल ने कहा कि इसे नहीं जाने दिया जा सकता। इन्होंने बोझा उठा लिया। परन्तु एक आदमी कितना भार उठा लेगा? आप इनकी भी सहायता करें। अन्त्यज-सेवा-मण्डल का काम बड़ा है। गुजरात के अछूतों का नकशा तैयार कर रहे हैं। मुझे पता नहीं कि गोधरा ने कुछ पैसा दिया कि नहीं। आपमें भगवान् बसते हों, तो भाई अमृतलाल अथवा मामा को रुपया भेज दें। समझकर दें।'

गोधरा की आम सभा[3] में गांधीजी बोले :

'मैं यहाँ भाषण देने नहीं आया। आपका प्रेम कायम है, यह मैं जानता हूँ। मैं तो एक ही चीज से चिपटा रहनेवाला आदमी हूँ। हम सब भारत को क्या बनाना चाहते हैं? स्वतन्त्र करना चाहते हैं। स्वतन्त्रता की व्याख्या मैं गोधरा में ही बता गया था। स्वतन्त्रता का अर्थ है भूल करने की शक्ति। यह शक्ति जिसमें न हो, उसमें सुधारने की भी शक्ति नहीं आ सकती। स्वतन्त्रता का अर्थ सम्पूर्णता नहीं। मनुष्य गंभीर भूलें करता है। पाप भी करता है। परन्तु उन्हें सुधारता है और उनके लिए प्रायश्चित्त भी करता है। इसीमें स्वराज्य आ जाता है।

'चरखा मेरा हाथ है। इसमें से कोई और मनुष्य सूत निकाले तो वह सूत मेरे लिए नहीं, और उससे मुझे सन्तोष नहीं होगा। फिर भले ही दूसरा मनुष्य भाई हो, माँ हो या कोई भी हो, परन्तु उसका सूत मेरे काम नहीं आयेगा। मुझे तो सन्तोष तभी होगा, जब मेरा ही तार हो। भूल करने लगें और उसे सुधारने लगें, ऐसा स्वराज्य चाहिए। वह स्वराज्य कहाँ है? इस समय तो वह स्वप्नवत् हो गया है। एक समय यह माना जाता था और इसमें मेरा प्रोत्साहन था कि एक वर्ष में स्वराज्य मिल जायगा। परन्तु उससे सम्बद्ध शर्तें हम भूल गये। हमने यह

---

१. इन्दुलाल कनैयालाल याज्ञिक।

२. ठक्करबापा।

३. यह सभा ता० ३-१-'२५ को हुई थी। सं०

मान लिया था कि '२१ में स्वराज्य का उत्सव मनायेंगे। उस वात को तीन वर्ष हो गये। फिर भी स्वराज्य नहीं मिला। इसका कारण यह है कि हम श्रद्धाहीन हैं।

'मुझे यरवदा-जेल में भयंकर वीमारी से वचाकर ईश्वर ने आपकी सेवा के लिए मुक्त किया, इसमें कोई वड़ा हेतु देखता हूँ। वह हेतु यह है कि आप लोगों में आकर आत्मविश्वास की प्रेरणा दूँ। जेल के मेरे गहरे विचार का परिणाम आपके सामने रखूँ कि तीन ही शर्तों में—चरखे में, हिन्दू-मुसलिम-एकता में और अस्पृश्यता-निवारण में—स्वराज्य है। मैंने चरखे की वात पहले की, इसका कारण यह है कि इन तीनों वातों में यही वात ऐसी है, जिसके वारे में हममें अविश्वास भरा हुआ है। और दूसरा कारण यह है कि चरखा ही ऐसी चीज है, जो हमसे रोज निश्चित काम माँगता है। रोज हिन्दू-मुसलिम-एकता अथवा अस्पृश्यता-निवारण का आधा घंटा काम करना चाहूँ, तो यह विचार मेरे लिए कठिन हो जाय, परन्तु आधा घंटा चरखा चलाने में प्रत्यक्ष कार्य होता है। वह जड़ पदार्थ है, परन्तु उसमें रहनेवाली शक्ति अमोघ है। मैं चाहता हूँ कि उसको चलाने के लिए सब तैयार हो जायँ।

'खादी का कपड़ा आपको मोटा लगता है। आप यह कहें कि खादी आपको चुभती है, तो इसका अर्थ हुआ कि आपको यह देश चुभता है। और जिसे देश चुभे, वह स्वराज्य क्या लेगा? तिलक महाराज कहते थे कि जब मनुष्य यहाँ से जलवायु-परिवर्तन के लिए विदेश जाने की बात करता है, तब मुझे कँपकँपी होती है। जब मुझे ईश्वर ने यहाँ पैदा किया, तो उसने मेरे लिए इसी आबोहवा में रहकर आरोग्यवान् रहने की कल्पना नहीं की होगी? इंग्लैण्ड में अपार ठंड पड़ती है, तो भी अंग्रेज इंग्लैण्ड छोड़कर भागते हैं? घर में अँगीठी जलाते हैं, गरम कपड़े पहनते हैं, अनेक उपाय करते हैं। परन्तु करोड़ों रुपयेवाले मनुष्य क्या करें? वे जलवायु-परिवर्तन का विचार कर सकते हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि करोड़ों रुपयेवालों का यह पाखंड है। इसी प्रकार महँगी-सस्ती, अच्छी-बुरी, मोटी-महीन यहीं की खादी पहनें, तो ही हमारी स्वदेश-भक्ति है। नहीं तो स्वदेश का नाम लेना निरर्थक है। कोई माता अपने कुरूप बालक को छोड़कर दूसरे के सुन्दर बच्चे को गोद में लेने जायगी? माता में बालक के प्रति जो प्रेम और भावना ईश्वर ने पैदा की हुई है, मैं चाहता हूँ कि आप सबमें उसी प्रकार का प्रेम और भावना

भारत के प्रति हो, भारत में पैदा होनेवाले अन्न के वारे में हो, खादी के लिए हो। स्वराज का अर्थ है देश के लिए प्रेम। पुत्र जैसा प्रेम अपनी माता के प्रति दिखाता है, वैसा प्रेम हमें भारतमाता के लिए दिखाना है।

'इसी प्रकार भारतमाता के पुत्र-पुत्रियों की वनायी हुई खादी पहनें। यह सरल सिद्धान्त क्यों नहीं समझ में आता ? जब तक विदेशी पहनते हैं, तब तक स्वतन्त्र कैसे होंगे ? एक ही जवाव है। खादी पहननें में ही उद्धार है। कातनें से ही छुटकारा है। दो हजार गज सूत की माँग है। ऐसा कोई अभागा गुजराती हो, जिसे चरखा अच्छा न लगता हो, तो वह किसी और से कतवाकर दे दे। कोई कहे कि यह छूट तो वुजुर्गों के लिए है—गरीवों के लिए नहीं। परन्तु प्रसन्नता-अप्रसन्नता की बात आपके लिए नहीं। आप भले ही चरखा लें और कातें और कला सीखें। जो कारीगर औजारों की अवहेलना करे, वह कारीगर नहीं। आप पूनी भी वना लें। नहीं तो प्रांतीय समिति से मँगवा लें। महासभा ने जो कहा, उसका अर्थ क्या ? उससे ऐसा कहलवाने में कोई चमत्कार है ? नहीं। असली कारण यह है कि यह सच वात कहता है और इसलिए वह करोड़ों को अच्छी लगती है। करोड़ों तो ईश्वर से शक्ति माँगते हैं। आप क्षणभर भी यह न मानें कि यह सब वातें मैंने की हैं, इसलिए आपने स्वीकार की हैं। परन्तु कुछ वातें जो मैं कहता हूँ आप करते हैं, क्योंकि आपकी आत्मा भी उनके लिए आश्वासन देती है। मैं यहाँ सफेद टोपी देख रहा हूँ। परन्तु टोपी पहनना काफी नहीं। खादी के कपड़े पूरे पहनें, तभी ६० करोड़ रुपये वचें। और किसी तरह नहीं वच सकते।

'गोधरा की आवादी २५,००० आदमियों की है। ये प्रत्येक पाँच रुपये की खादी उत्पन्न करें तो २५,००० की आवादी कितना रुपया वचाये ? यह रुपया आप वचायें तो गोधरा की आवादी अधिक खुशहाल हो, आपका तेज वढ़े और आपका स्वदेशाभिमान छलक उठे। चरखा ही एक ऐसी वस्तु है, जिसमें स्त्री, पुरुष और वालक तथा गरीव-अमीर सव समान भाग अदा कर सकते हैं और जिससे वड़ा फल पैदा हो सकता है। वूंद-वूंद सरोवर भरता है, इस कहावत पर विचार कीजिए और दो हजार गज सूत देकर स्वराज्यरूपी सरोवर दो-दो हजार गज सूत से भरते रहिए। हममें खादी खपाने की भी शक्ति होनी चाहिए। कातने

लग जाइए और प्रान्तीय समिति का भण्डार भर दीजिए। मैंने तो शुद्ध और सुन्दर न्याय आपके सामने रखा है।

'क्या आपका खयाल है कि वामनराव* धारासभा में जायँ और वहाँ सरकार को आँखें दिखायें, तो उससे स्वराज्य मिल जायगा? वामनराव कहते हैं कि मैं जाऊँ और आप सब कातें, तो ही मिलेगा। मैं कहता हूँ कि तब आप विधानसभा में जाइए और वहाँ भी सूत की और खादी की ही आवाज लगाइए। विदेशी कपड़े का बहिष्कार नहीं कर सकते, तो वल्लभभाई विधानसभा में जायँ और वामनराव जैसे पाँच हजार भी विधानसभा में जायँ तो भी स्वराज्य नहीं मिलेगा। कोई कहता ही नहीं कि वहाँ से स्वराज्य मिलेगा। वे तो कहते हैं: 'कुछ तो हाथ लगायेंगे; २५ हजार की खादी तो बिकवायेंगे; शराब तो थोड़ी-सी बन्द करायेंगे।' तो भले ही करें।

'आज मेरे पास दो आवाजें आयी हुई हैं। हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़ा होता ही रहता है। मुसलमानों ने हिन्दुओं का और हिन्दुओं ने मुसलमानों का दोष बताया है। मैं दोनों से पूछता हूँ कि किसलिए झगड़ा होता है? आपको एकदिल होना ही पड़ेगा। सिर फोड़कर ही आपको मिलना हो, तो भी आप जरूर ऐसा कर सकते हैं। आप अपने बादशाह हैं। सभी अपने-अपने मन के राजा हैं। परन्तु शौकत और मैं नम्र हैं। वे कहते हैं कि सिर फोड़कर स्वराज्य लेने में हजारों वर्ष लगेंगे। दोनों को नम्र बनकर ही रहना चाहिए। इस देश में ७ करोड़ मुसलमान हैं और २२ करोड़ हिन्दू हैं। दुनिया ७ करोड़ से अधिक मुसलमानों से बसी होगी, परन्तु भारत तो हिन्दुओं और मुसलमानों से भरा है। इन दोनों जातियों को समझना ही चाहिए कि वे एक-दूसरे के सेवक हैं, गुलाम हैं। यह सीधा हिसाब है। दोनों को डर निकाल देना चाहिए। डरपोक मनुष्य डराकर अविश्वास पैदा करता है। परन्तु मैं क्यों किसीका अविश्वास करूँ? मुझे धोखा देनेवाले की दुनिया निन्दा करेगी। मुझे दुनिया क्या कहेगी? अधिक-से-अधिक मेरे भोलेपन पर हँसेगी और हँसकर चुप हो जायगी। ईश्वर तो मुझे बधाई ही देगा। आप दोनों को एक साथ बैठकर हिसाब कर लेना चाहिए। शौकत और मैं—हमारे कितने टुकड़े करने हैं? शौकत ने कहा कि जहाँ हिन्दू-मुसलमान लड़ते हों, वह स्थान छोड़ दिया जाय, सभी जगह लड़ते हों, तो घर में बैठ

* वामनराव मुकादम।

जायें । मैं कहता हूँ कि हिमालय चले जायें । आप समझ लें कि हमारे आने से ही झगड़ा नहीं मिटेगा—उल्टे हम तो बीच में आते हैं । आप आपस में ही सीधा फैसला कर लें—परन्तु वह मन में मैल रखकर नहीं।

'अब अस्पृश्यता की बात । हिन्दू जब तक अस्पृश्यों को छूने से परहेज करते हैं, तब तक जगत् आपसे परहेज रखेगा । मनुष्य जैसा करता है, वैसा भरता है । अन्त्यज को जन्म से अछूत मानने में धर्म नहीं, परन्तु अधर्म है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुझे सनातनी न कहनेवाले अज्ञानी हैं । आप कहेंगे कि अस्पृश्यता का बचाव करनेवाले पंडित विद्यमान हैं । परन्तु उन्हें संत अखा के ये शब्द लागू होते हैं कि **'भणतर मिथ्या वगर विचार'** (विचार के बिना विद्या मिथ्या है।) हिन्दू-धर्म में एक प्रकार की अस्पृश्यता है—जैसे असंत से दूर रहने की, दुष्ट, पाखंडी, लंपट और व्यभिचारी से दूर रहने की । इन्हें आप अछूत समझकर भागें । परन्तु जो मनुष्य आपकी सेवा करे, आपका मैला साफ करे, आपका चमड़ा कमाये, आपकी खेती के लिए चड़स तैयार करे, उसे अछूत मानेंगे ? यह हिन्दू-धर्म नहीं । पाखंड है । यदि हिन्दू-धर्म यह कहता हो कि ये अछूत हैं, तो मैं उसका त्याग करने को कहूँगा । यह अस्पृश्यता की वृत्ति केवल भ्रम है । आपमें यदि दया हो तो आप भंगी का अज्ञान देखकर रोयें और आपमें अपने कर्तव्य-पालन का भान जाग्रत हो । आप मेरा त्याग कर दें, मुझे जंगल में धकेल दें और मैं पागल हो जाऊँ, तो इसमें मेरा दोष या आपका ? इसी तरह भंगी और ढेढ़ बेचारे गरीब और कंगाल हो गये; उनमें अज्ञान का पार नहीं; वे व्यसनी हैं, इसमें दोष उनका या आपका ? यह आपका ही दोष है और मैं यही चाहता हूँ कि इसे छोड़कर आप शुद्ध बनें ।'

वल्लभभाई बोले :

'तीन वर्ष पहले इसी जगह जो बातें आपसे कही थीं, वही बातें आज भी आपने सुनीं । परन्तु तीन वर्ष पहले आपके दिल पर जो असर होता था, वह आज होता है या नहीं, इसका मैं आज हिसाब लगाता हूँ, जाँच करता हूँ और आपके चेहरों पर क्या असर होता है, वह देखता रहता हूँ । यह न समझिए कि किसीको भाषण देने का शौक है । यह भाषण करने का प्रसंग ही न आना चाहिए था ।

'यह आदमी ही स्वराज्य लाकर देगा । महात्मा का वचन फलेगा और हम मौज करेंगे । परन्तु स्वर्ग चाहिए तो पहले खुद मरना पड़ेगा ।

परन्तु उसमें आपका नाम कहाँ शामिल होगा ? मौजूदा समिति बन्द हो जायगी। अब तो नयी पुस्तक लिखी जायगी। बोलिए, २,००० गज सूत कौन देगा ?'

पाँचेक मनुष्यों ने हाथ उठाये।

'आप सब यहाँ दर्शन करने आये हैं ? एक पैसे का गोपीचन्दन लाकर वैष्णव बनना है ? ऐसा हो तो आपका यह जन्म व्यर्थ जायगा और अगला भी ऐसा ही जायगा।'

८-१-'२५

काठियावाड़ राजकीय परिषद् के भावनगर-अधिवेशन के अध्यक्ष-पद के लिए गांधीजी चुने गये थे। उसके लिए जब गांधीजी भावनगर आये, तब उनका स्वागत करने कौन आयेगा, यह देखने को मन छटपटा रहा था। अस्पृश्यता के विषय पर चिढ़े हुए नरसिंह महेता की जाति के नागर और संघवी-संघाणी को आगे रखकर अछूतों को अछूत रखने के लिए भगीरथ प्रयत्न करनेवाले वैष्णव स्वागत में भी कोई नया रंग लायेंगे, ऐसी चेतावनी रास्ते में ही सुनी थी। परन्तु स्वागत तो शान्त और व्यवस्थित था। मंडप में भी कुछ-न-कुछ झगड़ा होगा, ऐसी कोई-कोई आशंका रखते थे। परन्तु अस्पृश्यता से चिपटे रहनेवाले और उसकी जड़ उखाड़नेवाले—दोनों कक्षों के वैष्णवों को बधाई है कि कोई झगड़ा नहीं हुआ। गांधीजी के आने के बाद भी 'सनातनी' वैष्णवों की वृत्ति संपूर्ण विवेकपूर्ण और शान्त थी—परन्तु उनकी संख्या कितनी होगी, यह जानना मुश्किल था, क्योंकि उनके कक्ष की खाली जगह देखकर बहुत-से सुधारक सनातनी बन जाने से डरे नहीं थे।

वैसे और तरह इस स्वागत का तो पूछना ही क्या ? **'मीठा तो मधथीअे अदका लोक आणीकोर भाळ्या'** (मीठे तो मधु से भी बढ़कर, लोग इस ओर निहारें)। नवलराम के इन वचनों को पैंतीस-चालीस वर्षों के बाद भी मिथ्या नहीं कर सका।

परिषद् का प्रारंभ बहन रैहाना तैयबजी के भजन से हुआ। उनके मधुर कंठ से की गयी बन्दगी बहुत ही प्रसंगोचित थी। इस बन्दगी में हिन्दू-मुसलमानों के दिलों से अविश्वास और मैल निकल जाने की पहली माँग है और 'तेरी मरजी सो हमारी मरजी हो' और 'हमारे काम ब्रह्मार्पण हों', यह दूसरी माँग है।

तुझसे यह फरियाद है, ऐ पाक रब्बुल् आलमीन्
सब रहें मिल-जुल के, तू मालिक है, यह तेरी जमीं।
जिसमें हो तेरी रजा, हम चाहते हैं बस वही,
हम रहें महकूम, या हाकिम हों, कुछ परवा नहीं।
हमने सोचीं जितनी तदबीरें, वो सब उल्टी पड़ीं;
वह तरीका अब बता हमको, जो है हब्बुलमतीं।
हिन्द बन जाय नमूना, जुम्ला कौमों के लिए;
जिस्म में आलम के होवे, मिस्ले चश्मे सुर्मगीं।
लब पे तेरा नाम हो, और दिल में तेरी याद हो,
काम जो कुछ हो, तेरी खातिर हो, रब्बुल आलमी।
हिन्दू और मुसलिम के दिल से दूर हो बू गमों की।

परिषद् के पहले दिन के प्रसंगों में सबसे अधिक ध्यान खींचनेवाला प्रसंग राजकोट ठाकुर साहब के मानपत्र का था। यह मानपत्र गांधीजी के हाथों ठाकुर साहब को दिया गया। उसे देते हुए वे ठाकुर साहब को सम्बोधन करके बोले थे : 'यह मानपत्र कृपा करके पढ़िएगा और मेरे भाषण का मनन कीजिएगा और मेरा रेखांकित रामराज्य राजकोट को दीजिएगा, यह मेरी नम्र प्रार्थना है।'

मानपत्र का उत्तर देते हुए ठाकुर साहब बोले :

'आज मेरी मनोकामना पूरी हुई है। मैं जानता हूँ कि नरेन्द्रमण्डल का विचार अभी सफल नहीं हुआ। यह कोई बहुत अच्छी बात नहीं। महात्माजी का एक ही कार्य उनका माहात्म्य बताने को काफी है। वह है हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के लिए प्राणार्पण। मेरे कार्य में बहुत भूलें होती होंगी। परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि इस काम में प्रजाजनों के प्रति वात्सल्य-प्रेम हो तो वे काम का मूल्य आँक सकते हैं।'

ठाकुर साहब को लौटते हुए बीच में मंच पड़ता था। गांधीजी ने ठाकुर साहब को मंच पर जाने की प्रार्थना की, ताकि प्रतिनिधि उन्हें देख लें। ठाकुर साहब ऊपर चढ़े और प्रतिनिधियों ने हर्षनाद किया।

स्वागत-समिति के अध्यक्ष मोदी बोले :

'पट्टणी साहब, भाइयो और बहनो! मुझे आशा है कि जो सदस्य यहाँ आये हैं, उनके हाथों में मेरा भाषण पहुँच गया है। आप सब शान्ति रखें। मुझे भय है कि आप सब प्रतिनिधियों को अभी तक मेरा भाषण नहीं मिला। मुझे यह आशा थी और मेरी व्यवस्था यह थी कि प्रत्येक

प्रतिनिधि के हाथों में कल भाषण आ जाय अथवा आज तक तो जरूर आ जाय। फिर भी ऐसा नहीं हुआ, इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। परन्तु उसे पढ़कर समय नहीं लेना चाहता। फिर उस भाषण को हाथ में लिये विना कोई जाय नहीं। कल आपसे ही प्रस्ताव कराने हैं, उन पर विचार करना पड़ेगा, इसलिए बहुत नहीं खोयेंगे। इतना ही है कि आपके पास प्रति होती, तो मुझे जो कहना है, वह अधिक समझ में आता।'

अध्यक्ष-पद से दिये हुए प्रारंभिक भाषण में गांधीजी बोले :

'मैंने अपने भाषण में बता दिया है कि इस परिषद् का अध्यक्ष-पद लेने में मुझे बहुत ही आनाकानी थी, परन्तु मनुष्य सोचता कुछ है और ईश्वर करता कुछ है। इसके उदाहरण मैंने अपने जीवन में अनेक देखे हैं और विचारशील स्त्री या पुरुष एक भी नहीं होगा, जिसे इसका अनुभव न हुआ हो।

'मैंने यह भी माना था कि इस परिषद् में मुझे एक ही चीज को प्रमुखता देनी होगी। परन्तु सौभाग्य से अब मुझे दो वस्तुओं को प्रधानता देनी पड़ेगी। एक तो है खादी, जिसके बराबर कोई दूसरी वस्तु मुझे प्रिय नहीं। कुछ लोग मुझे चरखे के लिए या खादी के पीछे पागल मानते हैं और यह बात सच है, क्योंकि आशिक को ही माशूक का पता चल सकता है। आशिक ही कह सकता है कि मुहब्बत, प्रेम, इश्क क्या है। मैं आशिक हूँ, इसलिए मुझे ही पता लग सकता है कि मेरा प्रेम क्या है और मेरे भीतर क्या आग धधक रही है। परन्तु मैं उस आग के बारे में उद्‌गार प्रकट करना नहीं चाहता।

'यह राजकीय परिषद् है और आप राजनैतिक बातों की चर्चा की आशा रखते होंगे। मुझमें तो किसान के भाव रहे हैं, यद्यपि मैं पैदा हुआ वैश्य और मेरे पिता और पितामह मुत्सद्दीगिरी करते आये हैं। फिर भी मुझमें मुत्सद्दीगिरी नहीं है अथवा हो तो मैं लाचार हूँ। परन्तु मुझमें एक और वस्तु भी है, जो विरासत में नहीं मिली, परन्तु मैंने प्राप्त की है। वह है भंगीपन, किसानपन, ढेढ़पन—जो भी दुनिया में नीचापन कहलाता है, वह मुझमें रहा है। मेरी ऐसी खासियत होने के कारण 'राजनैतिक' का जो अर्थ आप करते हैं अर्थात् मुत्सद्दीगिरी, वह मैं नहीं करता। मेरे जैसा आदमी 'राजनैतिक' विषय का विचार करते समय राज्य-संविधान का विचार नहीं करेगा, क्योंकि किसान खेत की देखरेख भाषण से नहीं कर सकता, केवल हल से ही कर सकता है। चाहे जैसी

धूप और गरमी में भी वह हल नहीं छोड़ सकता । बुनाई का धंधा करने-वाला भी केवल उद्यम करे तो ही अपना गुजर चला सकता है । 'राजनैतिक' का मामूली अर्थ है भाषण देना, आन्दोलन करना, राजा की खामियाँ देखना । परन्तु मैंने इससे उल्टा ही अर्थ किया है । भारत के बाहर की अपनी २२ वर्ष की कारगुजारी में भी मैंने इससे उल्टा ही अर्थ किया था । परन्तु जैसे पहाड़ दूर से सुहावने लगते हैं, वैसे ही मुझे भी लोग राजनैतिक अर्थात् मुत्सद्दी मानते रहे हैं । मुझे राजनैतिक कार्य करना भाता है, परन्तु मेरा राजनैतिकपन दूसरी तरह का है । उसमें विवेक और प्रेम रहा है । उसमें उठापटक के लिए स्थान नहीं । और उठापटक से जितना काम लिया जाता है, उसकी अपेक्षा विवेक और प्रेम द्वारा हजारोंगुना लिया जाता है । और उसमें किसान के, भंगी के, ढेढ़ के—सबके हित का विचार आ जाता है । आप जानते हैं कि मैंने महासभा के सामने भी 'राजनीति' की ऐसी ही व्याख्या की थी और ऐसा करते हुए मैं शर्मिन्दा नहीं हुआ था । इसी दृष्टि से मैंने राजनीति में खादी की बात का समावेश किया है । मेरा दावा है कि मेरी बात सुलझी हुई और ज्ञानपूर्ण है । और मुझे लगता है कि किसी समय आप कहेंगे कि गांधी की कही हुई चरखे की बात में अत्यन्त चतुराई, ज्ञान और समझदारी थी । आज जब लोग मुझ पर हँसते हैं और कहते हैं कि चरखा गांधी का खिलौना है, तब मुझे दया आती है और वे मुझ पर कितने ही हँसें तो भी मैं खादी की बात छोड़नेवाला नहीं हूँ ।

'अब दूसरी बात पर आता हूँ । मेरी यहाँ आने की बात हुई और 'नवजीवन' में मैंने जब से लिखा कि ढेढ़ों को अलग स्थान देंगे, तो मेरे लिए उनके बीच में ही स्थान रखना पड़ेगा, तब से भावनगर में खलबली मची हुई है । काठियावाड़ में अस्पृश्यता क्या है, यह मैंने अपनी आँखों देखा है । मेरी पूजनीय माता भंगी को छूने में पाप मानती थीं । परन्तु इससे मुझे अपनी माता के प्रति घृणा नहीं है । परन्तु मुझे माँ-बाप के कुएँ में डूब नहीं मरना है । मेरे माँ-बाप ने तो मुझे स्वतन्त्रता का वारसा दिया है और आज मैं उनके विचारों से उल्टे विचार करता हूँ, तो भी मुझे विश्वास है कि मेरी माता की आत्मा कहेगी : 'धन्य है बेटे, तू धन्य है ।' क्योंकि उसने मुझे जो प्रतिज्ञाएँ दिलाई थीं, उनमें किसीको छूने में पाप होने की बात नहीं थी । उसने मुझसे विलायत भेजते समय तीन प्रतिज्ञाएँ करायी थीं, परन्तु ऐसी प्रतिज्ञा मुझसे नहीं

करायी थी कि विलायत में जाय तो वहाँ अस्पृश्यता को धर्म समझना। मैं देख रहा हूँ कि भावनगर में आज छोटी-सी (अथवा बड़ी--मैं नहीं जानता) खलबली उत्पन्न हो रही है और नागर, बनिये और अन्य लोग व्याकुल हो रहे हैं। उनमें से जो यहाँ हों, जो यह मानते हों कि गांधी भ्रष्ट हो गया है और सनातनधर्म की जड़ उखाड़ने बैठा है, उनसे मैं विवेक और दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूँ कि गांधी सनातनधर्म की जड़ उखाड़ने नहीं बैठा; गांधी जो कहता है उसीमें सनातनधर्म की जड़ समायी हुई है। आपमें भले ही कोई पंडित हों, उन्होंने भले ही वेदों का एक-एक शब्द रटा हो, तो भी उनसे कहूँगा कि आपकी बड़ी भूल हो रही है। सनातनधर्म की जड़ वही उखाड़ रहे हैं, जो अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म की जड़ मानते हैं। इस मान्यता में दूरंदेशी नहीं, इसमें विचार नहीं, विवेक नहीं, विनय नहीं, दया नहीं; यह मैं आदरपूर्वक बताना चाहता हूँ। और अपने विचार में मैं अकेला ही रह जाऊँ, तो भी मैं अन्त तक कहूँगा कि हम आज अस्पृश्यता का जो अर्थ करते हैं, उसे हिन्दू-धर्म में स्थान देंगे, तो हिन्दू-धर्म को क्षय रोग हो जायगा और इस क्षय रोग के परिणामस्वरूप उसका नाश होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तान का उद्धार मुसलमानों पर आधार नहीं रखता, ईसाइयों पर नहीं रखता, जितना इस पर रखता है कि हिन्दू अपने धर्म का पालन किस प्रकार करते हैं, क्योंकि मुसलमानों का विश्वनाथ यहाँ नहीं, परन्तु मक्का में है; ईसाइयों का यरूशलम में है। परन्तु आप तो भारत में ही रहकर मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे। यह युधिष्ठिर की भूमि है; यह रामचन्द्र की भूमि है। ऋषि-मुनियों ने इस भूमि में तपस्या की और उन्होंने बताया कि यह कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं। इस भूमि के निवासियों से मैं कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म आज तराजू में है और आज उसकी दुनिया के सब धर्मों से तुलना हो रही है। और जो चीज अकल के बाहर होगी, दयाधर्म के बाहर होगी, वह चीज हिन्दू-धर्म में शामिल होगी तो अवश्य ही इस धर्म का नाश हो जायगा। दया-धर्म का मुझे भान है और उस भान के कारण मैं देख रहा हूँ कि हिन्दू-धर्म के नीचे कितना पाखंड, कितना अज्ञान फैला हुआ है। इस पाखंड और अज्ञान के विरुद्ध जरूरत पड़ने पर मैं अकेला लड़ूँगा, अकेला रहकर तपस्या करूँगा और उसीको रटता हुआ मरूँगा। कदाचित् ऐसा हो कि मैं पागल हो जाऊँ और पागलपन में कहूँ कि अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म

का पाप बताने में मैंने पाप किया था; उस दिन आप मान लें कि मैं डर गया हूँ, मैं टक्कर नहीं झेल सकता और घबराकर ही मैं अपने विचार वापस ले रहा हूँ। आप उस समय समझ लें कि मैं मूर्छित दशा में ऐसी बात कर रहा हूँ।

'मैं आज जो बात कर रहा हूँ, उसमें मेरा स्वार्थ नहीं है। मैं पदवी भी नहीं चाहता। पदवी तो मैं भंगी की चाहता हूँ। सफाई करने का काम कितना पुण्यकार्य है ? यह काम या तो ब्राह्मण कर सकता है या भंगी ही कर सकता है। ब्राह्मण ज्ञानपूर्वक करेगा और भंगी अज्ञानपूर्वक करेगा। मेरे लिए दोनों पूज्य हैं, आदरणीय हैं। दोनों में से एक का भी लोप हो जाय, तो हिन्दू-धर्म का लोप हो जायगा।

'और सेवा-धर्म मुझे प्रिय है, इसीलिए भंगी मुझे प्रिय है। मैं तो भंगी के साथ खाता भी जरूर हूँ, परन्तु आपसे नहीं कहता कि आप भी उसके साथ खायें, रोटी-बेटी व्यवहार करें। आपको कैसे कह सकता हूँ ? मैं तो फकीर जैसा हूँ। सच्चा फकीर हूँ या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। मैं सच्चा संन्यासी हूँ या नहीं, इसका भी मुझे पता नहीं। परन्तु संन्यास मुझे पसन्द है। मुझे ब्रह्मचर्य प्रिय है, परन्तु मैं सच्चा ब्रह्मचारी हूँ या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं। कारण, ब्रह्मचारी को दूषित विचार आते हों, स्वप्न में भी व्यभिचार के विचार करे तो मैं मानता हूँ कि वह ब्रह्मचारी नहीं। मुझसे रोष में एक भी शब्द बोला जाय, द्वेष में कोई भी कार्य हो, अपने कट्टर-से-कट्टर शत्रु कहलानेवाले के विरुद्ध भी मैं क्रोध में कोई वचन कहूँ, तो मैं अपने को ब्रह्मचारी नहीं कह सकता। इसलिए मैं नहीं जानता कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी या संन्यासी हूँ या नहीं। फिर भी मेरा प्रवाह और मेरा जीवन उस दिशा में चल रहा है, यह जरूर कहूँगा। और ऐसी दशा होने के कारण मुझसे यह नहीं कहा जा सकता कि कोई भंगी की लड़की या कोई कोढ़ी मनुष्य मेरी सेवा चाहते हों तो मुझसे उनकी सेवा नहीं होगी; मुझे अपने हाथ का खिलाना चाहते हों, तो वह मुझसे नहीं खाया जायगा। फिर ईश्वर की इच्छा हो तो मुझे बचाये, नहीं तो मुझे मारे। परन्तु मारे तो भी कोढ़ी की सेवा तो करनी ही है। ऐसा करते हुए ईश्वर को गरज हो तो मुझे रखे, ऐसा भी दावा करूँगा, क्योंकि भंगी को, कोढ़ी को, ढेढ़ को खिलाकर खाना ही अपना धर्म समझता हूँ। परन्तु मैं यह नहीं कहता कि आप कोई व्यवहार, खाने-पीने के लिए धर्म की बाँधी हुई मर्यादा का उल्लंघन

करके करें। आपसे तो इतना ही चाहता हूँ कि आप पाँचवाँ वर्ण न बनाइए। ईश्वर ने चार वर्ण बनाये हैं और उसका अर्थ मैं समझ सकता हूँ। परन्तु आप अस्पृश्यों का पंचम वर्ण पैदा न कीजिए। अस्पृश्यता मुझसे सहन ही नहीं होती। मुझे यह शब्द सुनकर आघात पहुँचता है। जो मेरा विरोध करते हैं, उनसे मैं कहता हूँ कि आप विचार कीजिए। आप मेरे साथ ऐसी चर्चा कीजिए। समझ लीजिए कि मैं क्या बकवास कर रहा हूँ। आप विवेक और विचार छोड़कर बात कर रहे हैं, उसका असर नहीं पड़ेगा।

'आज मेरे पास दो पंडितों के हस्ताक्षरों से तार आया है। इन पंडित महाशयों को मैं नहीं जानता। परन्तु उसमें इन्होंने लिखा है कि हिन्दू-धर्म का आसरा लेकर और पंडितों के नाम से आपके विरुद्ध जो आक्षेप हो रहे हैं, वे झूठे हैं और हमारे वर्ग के लोगों के हस्ताक्षरों से आपको पत्र भेजेंगे, जिनसे आपको मालूम होगा कि अनेक शास्त्री आपका साथ दे रहे हैं, यद्यपि आप जितने जोर से काम ले रहे हैं, उतने जोर से हम नहीं ले सकते, क्योंकि आप निडर ठहरे, जब कि हमें बहुत-से विचार करने पड़ते हैं। द्रोणाचार्य और भीष्माचार्य के पास आकर श्रीकृष्ण ने कहा कि आप पाण्डवों के विरुद्ध लड़ेंगे? तो उन्होंने कहा कि भाई, आजीविका हमारे साथ लगी है, इसलिए क्या करें? हमारे बीच भी बहुत-से द्रोणाचार्य और भीष्माचार्य मौजूद हैं। उनके पेट लगा हुआ है, तब तक बेचारे क्या करें? उनसे कुछ नहीं हो सकता। इसमें इन विद्वानों का दोष नहीं, परन्तु विधि का दोष है, संयोगों का दोष है। परन्तु ये मन में तो मानते हैं कि गांधी अच्छा कर रहा है। और उनकी अन्तरात्मा मुझे दुआ दे रही है।

'परन्तु इसके साथ एक और बात भी कहूँगा। मैं तो सत्याग्रही हूँ। मारना नहीं, परन्तु मरना मेरा धर्म है। इसलिए मैं अपने ढंग से ही काम करूँगा। इसलिए आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। यदि आपको ऐसा लगे कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म की जड़ है, तो ऐसा मानिए; परन्तु मुझे भी यह मानने का अधिकार दीजिए कि यह हिन्दू-धर्म का पाप है। आपसे हो सके, तो हिन्दू-संसार के हृदय को जाग्रत कीजिए और मुझे भी ऐसा करने का उतना ही अवसर दीजिए। सत्याग्रही तो एकमार्गी है। उसे दूसरों के साथ गुप्त मंत्रणा नहीं करनी है; सुलहनामा नहीं करना है। इसलिए आपके साथ प्रेमभाव से बरताव करने का मैं वचन

दूंगा। यदि मैं अकेला रह जाऊँ, तो दूर रहकर 'अलग-अलग' कहकर पुकार करूँगा।

'जो आज मुझे अस्पृश्यता के काम में साथ दे रहे हैं, उनसे मैं कहता हूँ, ढेढ़-भंगियों से भी कहता हूँ कि तुम्हें जो गालियाँ दें, उन्हें सहन कर लो। तुलसीदास कह गये हैं कि दया धर्म का मूल है। इसलिए प्रेम छोड़ोगे तो बाजी हारोगे। तुम लोगों का, जो कि अस्पृश्यता को पाप मानते हैं, काम है कि अपने विरोधियों का तिरस्कार करने के पाप में न पड़ो। तुम्हें गाली देनेवालों के साथ तुम हँसकर बोलो। तुम हृदय से उनके साथ प्रेम करोगे और शुद्ध आचरण और व्यवहार रखोगे तो यह अस्पृश्यतारूपी पाप मिट जायगा।

'परन्तु यहाँ काठियावाड़ में ऐसा विरोध हो, यह मेरे गले नहीं उतरता। काठियावाड़ तो सुदामाजी की भूमि है। काठियावाड़ कृष्ण का निवास-स्थान है। यहाँ तो अनिरुद्ध रहे थे। जिस भूमि में योद्धा अपना खून बहाते थे, उस भूमि में अस्पृश्यता को स्थान मिले, तो मैं कहाँ जाऊँगा? मुझे भंगी कहते हैं कि यहाँ की हालत तो इतनी बुरी है कि काठियावाड़ से बाहर के गुजरात में भी ऐसी बुरी दशा कहीं भी नहीं होगी। यह सुनकर मेरा हृदय रो उठता है।

'नारणदास संघाणी कौन हैं? यह तो मेरा लड़का है। एक समय ऐसा था, जब वह मेरा पिलाया हुआ पानी पीता था। मेरा केवल सेवक बनकर रहा था। उसने अपना सारा पुस्तकालय मुझे दे दिया था। परन्तु ईश्वर ने उसे कुमति दी है। (मैं सचमुच मानता हूँ कि ईश्वर ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है) फिर भी मेरे लिए तो अब भी वह लड़का ही है। मैं मानता हूँ कि उसका उत्पात लम्बे समय तक नहीं चलेगा। उसने जो प्रतिज्ञा की है, शायद वह पूरी न हो। परन्तु यदि ईश्वर करे और वह पूरी हो जाय और वह मुझ पर हाथ उठाये और हमला करे तो मैं कहूँगा कि 'भले ही तूने यह किया' और उस समय मैं उसे आशीर्वाद दूंगा। प्रह्लाद ने अपने पिता का कहना नहीं माना। उसने यही कहा कि मेरे पिता मुझसे अधर्म कराना चाहें, मुझे कुमार्ग पर चलाना चाहें, तो उस समय पिता का अनादर करना धर्म है। आज नारणदास संघाणी यह माने कि वह स्वयं मेरा गोद का बेटा है, तो भी उसे लगे कि मैं भ्रष्ट हो गया हूँ और मेरा संहार करना चाहिए, तो वह जरूर मेरा संहार करे। यह संहार करते-करते उसकी आँखों का पर्दा खुलेगा और फिर

वह आपके पास आकर सिर नवाकर प्रायश्चित्त करेगा, ऐसा मुझे यकीन है । वह तो बालक है । वह जवान है और मैं अब बूढ़ा हो गया ।

'मुझ पर अनेकों हाथ उठने पर भी बच गया हूँ । मुझे अपेण्डिसाइटिस का रोग हुआ, मेरा ऑपरेशन किया गया, ऑपरेशन करते हुए दिया बुझ गया और उस समय कर्नल मॅडक* भी घबरा गया । परन्तु ईश्वर को मुझे बचाना था, इसलिए क्या होता? उपनिषद् की बात है । उसमें पवन से पूछा जाता है कि तू तिनका हिला; अग्नि से कहा जाता है कि तू तिनका जला, परन्तु यह कहकर कि नहीं हो सकता वायुराज और अग्निदेव भाग जाते हैं । ऐसी कथा है। प्रभु न चाहे कि मैं मरूँ, तो मुझे कौन मार सकता है ? मेरी आयु पूरी हो गयी होगी तो यों बोलते-बोलते सुख से बैठे-बैठे भी प्राणपखेरू इस तरह उड़ जायँगे कि किसीको पता ही न चले और उसे कोई रोक नहीं सकेगा । परन्तु मैंने कुछ व्यवहार से अनुभव प्राप्त किया है, कुछ ज्ञान हासिल किया है । इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि मेरी बात मानें और नारणदास पर दया करें । मैं अपने लिए आपसे दया नहीं माँगता । दया तो ईश्वर से ही माँगता हूँ । परन्तु आपसे मैं सच्चे सिपाही की प्रतिज्ञा की अपेक्षा रखता हूँ । और आपसे कहता हूँ कि आप प्रतिज्ञा लें, तो उसे आपको पालन करना ही पड़ेगा । बिना विचारे प्रतिज्ञा लेंगे तो मैं बहुत भारी पड़ूँगा । परन्तु आपसे लिवायी हुई प्रतिज्ञा मैं तो पालन कराऊँगा । इसलिए कल सोच-विचारकर सचेत होकर यहाँ आइए ।

'आपके ३० मिनट लेने थे । परन्तु [मैंने ३५ मिनट ले लिये । इन ५ मिनटों का मुझे अधिकार नहीं था, परन्तु भंगियों के लिए आपने यह छूट दी है और मैंने आपसे ले ली है ।'

रात को ही विषय-समिति की बैठक हुई और उसका काम गांधीजी ने सबको रात के १२ बजे तक बिठलाकर पूरा कर लिया ।

गांधीजी ने कहा : 'मेरा काम करने का तरीका ऐसा है कि भारत की सेवा द्वारा मैं काठियावाड़ की सेवा करना चाहता हूँ । आप जानते हैं कि वीरमगाम की जकात कितनी जल्दी बन्द करायी जा सकी ।'

परन्तु असली रसपूर्ण चर्चा तो 'हम मूँछवाले चरखा कातेंगे ?' ऐसी आपत्ति करनेवालों की दलील के बारे में थी । उन सबको सम्बोधन

---

* पूना के सासून अस्पताल में गांधीजी का अपेण्डिसाइटिस का ऑपरेशन करनेवाले सर्जन ।

करके गांधीजी के चरखे सम्वन्धी प्रकट किये गये उद्‌गारों में से कुछ तो दे ही दूं। महासभा के भापण में चरखे के विपय में प्रकट किये गये, वड़े अर्थशास्त्रियों को लक्ष्य में रखकर कहे गये, काठियावाड़ की परिपद् के भापण में लिखे गये, हृदय के रुधिर से लिखे गये, अपनी जन्मभूमि के किसानों को सम्वोधन करके कहे गये और इस रात को फिर जो उद्‌गार निकले, वे वहाँ वैठे हुए वकील और अश्रद्धालु वर्ग को ध्यान में रखकर कहे गये थे । प्रत्येक अवसर पर भीतर नवीनता न हो, तो जैसे चरखे के चमत्कार में ही कमी रह जाती हो !

'लोगों के हृदयों का साम्राज्य हासिल करने का आज एक ही उपाय है, और वह है चरखा। जहाँ-जहाँ अधर्म का राज्य फैला हुआ है, वहाँ 'धर्मसंस्थापन' आज फिर से चरखे के द्वारा ही हो सकता है । आज हम सवकी दशा त्रिशंकु की है और इस भयंकर स्थिति में से निकलने का उपाय चरखे के सिवा और है नहीं। प्रजा पर इसीसे असर करेंगे और राज्य को भी इसीसे धर्म का भान होगा । एक भाई ने पूछा : 'मूंछ-वाले चरखा कातें ?' उन्हें याद दिलाना चाहता हूँ कि आज तो मूँछ मुडवा डालने का समय है । लंकाशायर में जो मशीनें चला रहे हैं और ऐसा करके साम्राज्य को चला रहे हैं, वे मूँछवाले हैं या विना मूँछवाले ? उस विषय का साहित्य लिखनेवाले भी पुरुष ही हैं । घर में स्त्रियाँ खाना वनाती हैं, परन्तु विरादरी के वड़े-वड़े भोजों का प्रवन्ध करना हो तव मूँछवालों के विना काम नहीं चलता। और कोई उच्च वर्ण—ब्राह्मण —होने का कारण प्रस्तुत करे । वर्णाश्रम का अर्थ कार्य-विभाग मुझे मंजूर है । परन्तु कार्य अर्थात् मुख्य रूप से करने का काम। वैसे उसके सिवा करने का काम सवका समान हो सकता है और आज होना ही चाहिए । भाई सतीशचन्द्र दासगुप्त ने चरखे का शास्त्र वनाया है । पालीताणा से एक अधिकारी का सुन्दर पत्र मुझे मिला है । वे कहते हैं : 'मैं नियमित कातता हूँ, परन्तु दीवान साहव या ठाकुर साहव मुझे रोकते नहीं। ज्यों-ज्यों इसका अधिक अभ्यास करता हूँ, त्यों-त्यों शक्ति की अधिका-धिक थाह मिलती जाती है। मुझे तो लगता है कि अपने घोड़े पर छोटा-सा चरखा ले जाऊँ तो भी काम चल सकता है ।' ऐसे अधिकारी प्रजा में लोकप्रिय हो जायँगे, इसमें आश्चर्य है ? प्रजा किस आधार पर आपके पीछे पागल हो ? राजा ज्यॉर्ज को जव पहले सैनिक जहाज पर तालीम के लिए भेजा गया था, तव वहाँ वे दूसरे खलासियों की तरह 'ब्लॅक

कॉफी', 'ब्लॅक ब्रेड' और 'चीज' खाते थे । उनके लिए खाने-पीने या रहने की विशेष व्यवस्था नहीं की गयी थी । कपड़े भी उन्हें वही मिलते थे, जो खलासियों को मिलते थे । यह जानोगे, तब समझोगे कि किस कारण राजा ज्यॉर्ज के पीछे इंग्लैण्ड की प्रजा पागल होती है। राजा और प्रजा, कार्यकर्ता और लोग चरखे के तार से एक-दूसरे के साथ जोड़े जा सकेंगे । बड़ी मारड में गया था । वहाँ यह गाँव स्टेशन से बहुत दूर होने पर भी मैंने मलमल पहुँची हुई देखी । हमारे देश में सात लाख गाँव हैं, यह बात हमें ब्रिटिश साम्राज्य के नीचे आने के बाद ही मालूम हुई ! इन सात लाख गाँवों में एक भी प्राचीन सत्ता प्रवेश नहीं कर सकी थी, तब आज कॅलीको और मलमल वहाँ घुस गयी है !'

कातने के मताधिकार पर खूब चर्चा हुई।

जी० बी० त्रिवेदी : 'मताधिकार जारी करना हो तो कार्यसमिति के लिए कीजिए, परन्तु सब सदस्यों के लिए नहीं । दायरा तंग कीजिए।'

पोपटलाल चूड़गर : 'ऐसे मताधिकार की बात लड़ाई के समय की गयी थी । अब उसके लिए कहीं भी स्थान नहीं । देवचन्दभाई और मैं खादी की फेरी करते थे, परन्तु लोग यह बात ग्रहण नहीं कर सके ।'

कुछ और लोग पक्ष और विपक्ष में बोले :

'चरखा कातने में प्रेम उत्पन्न हो और कातने की हममें सामर्थ्य आये, ऐसा हमें कुछ-न-कुछ आधार चाहिए ।' 'मताधिकारवाली बुढ़िया दूसरों से अधिक योग्य ठहरेगी ?' 'पूंजीपति को ही मत दिया जाय और चरखा कातनेवाले को मत दिया जाय, इन दोनों में फर्क क्या ?' '२५ डंड और बैठक करे, उसे मताधिकार दीजिए न ?' 'चरखे का डंडा घुमायें, इससे तो १० मिनट मुगदर क्यों न घुमायें ?'

अमृतलाल सेठ की टाँगों में जोर आया : 'जहाँ विषय-समिति के ११० सदस्यों में २५ भी चार आने के सदस्य न हों, वहाँ ऐसी कड़ी परीक्षा में पास होनेवाले १००० आदमी भी निकलेंगे या नहीं, इस बारे में मुझे शक है । इस समय असली सवाल तो खादी खपाने का है ।'

मेघाणी : 'चरखा लोगों को कैसे ओतप्रोत करेगा ?' ओतप्रोत होने के लिए तो गाँवों में जायँ, बीमारों को दवा दें और किसानों से जमीन सुधारने की बात करें। लोगों को दृष्टान्त की जरूरत नहीं, परन्तु पहनने की जरूरत है ।'

गांधीजी को लगा कि अब तीर चढ़ाना पड़ेगा। वे बोले :

'प्रस्ताव एक भी मैं बनाकर नहीं लाया। इस प्रस्ताव की कल्पना तो स्वागत-समिति की है। मुझे आप इस प्रस्ताव में से निकाल दीजिए। आप इसका एक भी अंग स्वीकार न कीजिए। मैं नहीं चाहता कि आपको इसलिए उसे स्वीकार करना चाहिए कि अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो मुझे दुःख होगा। दुःख तो इस बात से होगा कि घर जाकर आप इस प्रस्ताव को भूल जायँ। मेरे चलाये हिन्दुस्तान चले, तो कब तक चलेगा? मताधिकार-जैसी बड़ी चीज हो, तब आप इसी कारण पक्ष में मत दें कि मैं अध्यक्ष हूँ, तो यह ठीक नहीं। काठियावाड़ का श्रेय किसमें है, यह देखकर ही प्रस्ताव कीजिए।

'एक चिट्ठी आयी है। एक प्रश्न का स्पष्टीकरण करें, ऐसी प्रार्थना है। सवाल यह है कि यह प्रस्ताव आजीवन सदस्यों पर लागू नहीं किया जा सकता।

'मुझे सत्य प्रिय है, इसलिए न्याय भी प्रिय होना चाहिए। क्योंकि सत्य और न्याय एक-दूसरे के विरोधी नहीं। आजीवन सदस्यों की शंका मिट जाती है या नहीं, इसके लिए अलग प्रस्ताव की जरूरत होगी। कानून का सूक्ष्म और अच्छा नियम है कि जहाँ न्यायाधीश के पास परस्पर विरोधी धाराएँ हों, वहाँ ऐसा तीसरा अर्थ निकाला जाय, जिससे दोनों धाराओं का निभाव हो जाय।'

खूब चर्चा के बाद कातने का मताधिकार पास हुआ, जो महासभा के तो अनुसार था, परन्तु खादी के इस्तेमाल में अधिक कड़ा था। दूसरे दिन यह प्रस्ताव परिषद् में आया और पास हो गया। इसमें खास उल्लेख-नीय बात यह है कि जिन वकीलों ने पिछली रात खूब विरोध किया था उनमें से एक ने भी खुला विरोध नहीं किया।

शौकत अली: 'कोई अछूत मेरे घर आये और मुसलमान बन जाय, यह कैसे निभे? सभी ऐसा करें तो पाँच-छह करोड़ की जमात दो-तीन बरस में आपमें से निकल जाय। जब मेरे धर्म पर सदमा आया, तब महात्माजी मेरे धर्म के लिए लड़ने आये। आप अछूतों को साथ ले लेंगे तो हम कुछ बदला चुका देंगे।'

वल्लभभाई: 'काठियावाड़ को शंका होती है कि यह आदमी सच्चा है?'

'यह खादी (मण्डप की) वढवाण खादी कार्यालय की है।'

'आज छह बजे बाद अन्त्यज भाइयों के दर्शनों के लिए जानेवाला हूँ।'

उपसंहार के अन्त में गांधीजी ने घोषणा की कि पट्टणी साहब ने कातने की प्रतिज्ञा ली है। यह प्रतिज्ञा लेने के हालात भी बयान किये। 'मुझे दो नाम ऐसे चाहिए थे, जिन्हें चरखे में विश्वास न हो और जिनमें नयी जाग्रति हो। एक नाम मेरे मन में था—इसलिए मैंने कुछ विनोद में और कुछ गम्भीरता से कहा कि मेरी दृष्टि से एक नाम सर प्रभाशंकर का है।'

इतना कहते ही वे खड़े हो गये। अत्यन्त गम्भीरता से, दृढ़ता से और—मेरी दृष्टि में—सच्चे धार्मिक भाव से वे बोले: 'कर्मचारी होते हुए भी मैं मानव हूँ, यह आप सबको याद दिलाना चाहता हूँ।' यह गम्भीर वचन कहकर अत्यन्त मधुर शब्दों में उन्होंने प्रतिज्ञा ली।

गांधीजी आगे बोले: 'हमारे कुटुम्ब का सम्बन्ध पुराना है, परन्तु यह मुझे पता नहीं था कि हम दोनों में सम्बन्ध जोड़नेवाले यह पहले थे। समय बीतने पर हमारा सम्बन्ध पक्का हुआ। अर्थात् हमारे मतभेद दूर हो गये सो बात नहीं, परन्तु हृदय एक-दूसरे को समझनेवाले हो गये। मौलाना का और मेरा हृदय एक हो गया है, इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे मतभेद मिट गये हैं। मौलाना मुझे जेब में रखते हैं, मगर मेरे मत को जेब में नहीं रखते। मेरा धर्म अलग, इनका अलग, फिर भी ये चाहते हैं कि एक हिन्दू के नाते भगवद्गीता पढ़ते हुए मैं मरूँ और मैं चाहता हूँ कि जिस दिन इनका अन्तकाल आये, उस दिन ये एक पाक मुसलमान की तरह कलमा पढ़ते-पढ़ते जायँ। इसी तरह जगत् के साथ सुहृद् बनकर रहा जाय। परन्तु यह तो प्रस्तावना हुई।

'पट्टणी साहब ने प्रतिज्ञा तो यह ली कि उन्हें कातना सिखाऊँ और वे जब तक शरीर रहे, तब तक अन्न लेने से पहले आधा घण्टा सुदर्शन चक्र चलायें। मैं न सिखा सकूँ तो भी उनकी प्रतिज्ञा तो कायम रहेगी। मुझे अब तीन दिन उनके मेहमान और चरखा-शिक्षक के तौर पर रहना है। देखते हैं इसमें मेरी सिखाने की और इनकी सीखने की शक्ति दोनों का कितना अन्दाज निकलता है। उस दूसरे को ढूँढ़ने का भार भी सर प्रभाशंकर के सिर पर है। एक सौ दो की संख्या न मिले, तब मुझे भावनगर छोड़ना अच्छा नहीं लगेगा।'

इन उद्गारों से, उनमें घोषित प्रतिज्ञा से मानो सबमें नवजीवन आ गया। दूसरे प्रस्ताव न करने से हुई गमगीनी भी जाती रही। दूसरे प्रस्ताव पेश करके मिलनेवाला जो वागानन्द नहीं मिला था, उसका भी बदला मिल गया।

मेरा खयाल है कि बहुतों ने गांधीजी का लिखित भाषण पढ़कर ही भविष्यवाणी की होगी कि चरखा और खादी के सिवा और कोई प्रस्ताव शायद ही होंगे। अन्य अनेक प्रस्ताव न रखने के लिए समझाने में गांधीजी को कुछ-न-कुछ मेहनत करनी पड़ी होगी, परन्तु सबने प्रसन्न चित्त से यह स्थिति स्वीकार कर ली। इसका पृथक्करण करते हुए उपसंहार में गांधीजी बोले :

'प्रथम तो मैं आपसे कह दूं कि एक भी शब्द आप न सुनें, यह मैं नहीं चाहता। जो कोई कार्रवाई लिख रहे हों, वे मुझे दिखाये बिना कुछ न छापें।

'जब-जब काठियावाड़ में आया हूँ, तब-तब मेरे प्रति अपूर्व प्रेम का अनुभव हुआ है। उसी प्रेम का अनुभव मुझे इस बार भी हुआ है और इसमें आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दुस्तान में जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहीं काठियावाड़ ही नजर आता है—अर्थात् प्रेम की वर्षा की जाती है। परन्तु मैं तो आपसे एक अलौकिक वस्तु माँग रहा हूँ। आपके प्रेम से मैं घबरा जाऊँगा, क्योंकि आप जो बात स्वीकार करें, उस पर अमल न करें तो मेरे लिए आपका प्रेम पोषक न होकर घातक सिद्ध होगा। उस प्रेम से मैं ऊपर तो उठ ही नहीं सकता, परन्तु मुझे आलस्य दबा ले और मैं जाग्रत न रहूँ तो मेरी अधोगति हो जाय। प्रेम से छलक उठना मेरे स्वभाव में नहीं, परन्तु उस प्रेम का कार्य में परिवर्तन न हो तो आपके और मेरे बीच के सम्बन्ध का क्या होगा? यह सम्बन्ध सार्वजनिक है, निजी नहीं। आपकी सेवा के लिए आपके साथ सम्बन्ध है। आप मुझे खानगी निमंत्रण दें तो शायद मंजूर न कर सकूँ। परन्तु आप मुझे सार्वजनिक सेवा के लिए जब चाहें बुला सकते हैं। इसलिए जब तक आपके प्रेम का परिवर्तन सार्वजनिक कार्य में न हो, तब तक इस प्रेम का मूल्य नहीं। इस प्रेम की ईश्वर के दरबार में भले ही कीमत हो, परन्तु मैं आपका व्यावहारिक मित्र हूँ, इसलिए व्यावहारिक प्रेम चाहूँगा। मैं प्राकृत मनुष्य ठहरा; मुझमें राग-द्वेष है। भावनाओं को दबाना मेरा धर्म है। इसलिए हमेशा चित्त की वृत्तियों के निरोध का प्रयत्न करता हूँ। इस कारण प्रेम भी ऐसा ही चाहूँगा। प्रेम को ऐसा स्वरूप दूंगा, जिससे चित्त-वृत्ति शान्त हो। ऐसा स्वरूप दूँ, जिससे मैं जलूँ नहीं। प्रेम आग के समान है। उसका सदुपयोग हो, तो पावक अग्नि की भाँति शुद्ध करता है; नहीं तो वह साधारण आग की तरह जलाता है। मैं जल जाना नहीं चाहता, इसलिए आपका मेरे प्रति प्रेम देश-कार्य में काम आये तो ही उसका

शुद्ध परिवर्तन है। इसलिए आप इतनी स्वीकृति देकर भी कुछ काम न करेंगे और मुझे निराश करेंगे तो काठियावाड़ का क्या होगा, इसका खूब विचार कीजिए।

'कल रात को (विषय-समिति की बैठक में) बहुत-सी बातें आपने मुझ पर छोड़ दीं। आप प्रस्तावों का बड़ा खर्रा तैयार करके लाये थे, इस आशा से कि जी भरकर दुःखों का वर्णन करेंगे और उस वर्णन से ही दुःख कम करेंगे। परन्तु मैंने आपको सलाह दी कि आप वर्णन करना छोड़कर अपनी शक्ति का विकास करने लग जाइए। और आपने मेरी सलाह मान ली। वह सलाह आपने मानी, इसका कारण यह नहीं कि मैं बड़ा आदमी हूँ, परन्तु यह कारण है कि मैं काम करनेवाला आदमी हूँ। मैं अनुभव की बात करनेवाला आदमी हूँ। मैंने आपको और कोई प्रस्ताव नहीं करने दिया। राजाओं के विरुद्ध आपकी शिकायतों की खुली चर्चा नहीं करने दी। बल्कि मुँह बन्द कर दिये हैं। इससे यह न समझें कि मैंने अपना मुँह भी बन्द कर लिया है और अब मैं सो जाना चाहता हूँ। आपको चुप करके मैंने बड़ा बोझा उठा लिया है। मैं सो जाना नहीं चाहता। मैं तो पूरा साल काम करना चाहता हूँ। परन्तु मेरा रास्ता भिन्न है। आपको मैंने जो सलाह दी है, उसमें मनुष्य के बारे में और इसीलिए काठियावाड़ के राजाओं के बारे में मुझे जो विश्वास रहा है, उसका दर्शन है। अमृतसर में मैंने माण्टेग्यू साहब की निन्दा न करने की जो सलाह दी थी, उसमें भी यह बात रही थी कि उनका और राजा ज्यॉर्ज का अविश्वास न किया जाय। मैंने उस समय कहा था कि सुधार स्वीकार कर लें और सुधारों के अधीन जितनी शक्ति जुटायी जा सके जुटा लें; और महासभा ने मेरी सलाह आधी-पौनी स्वीकार कर ली थी। इसका कारण क्या? उस समय तो मेरे साथ लड़नेवाले लोकमान्य तिलक महाराज जैसे योद्धा थे। उन्होंने मेरा कहना क्यों माना होगा? इसीलिए कि उन्हें लगा था कि गांधी जो कहता है, सो ठीक कहता है। इसलिए उन्होंने एक शब्द बदलकर मेरी बात स्वीकार कर ली। मैंने उनसे कहा था: 'आज विश्वास रखकर सुधार स्वीकार कर लीजिए। आप और मैं जिस दिन निराश हो जायँगे, जिस दिन सुधार सुधार नहीं, परन्तु दाँव लगने लगेंगे, उस समय इनका त्याग कर देंगे और उस समय इनकी निन्दा करने का अधिकार हमें प्राप्त हो जायगा। आज हमें वह अधिकार नहीं, क्योंकि आज तो माण्टेग्यू कहते हैं कि आपको जितना

दिया जा सकता है उतना देने की मैंने कोशिश की है; लॉर्ड सिनहा जो जानकार हैं, पराक्रमी पुरुष हैं, देशप्रेमी हैं, वे भी कहते हैं कि सुधार करा लीजिए ।' फिर सम्राट् के खरीते के शब्दों में भी माधुर्य था । इन सब विचारों से मैंने सुधार स्वीकार कर लेने की सलाह दी थी । इस विश्वास की स्थिति में से असहयोग की उत्पत्ति हुई । आज भी मैं विश्वास रखने का प्रयोग सुझा रहा हूँ ।

'परन्तु सन् १९१९ की उपमा को अन्तिम सिरे तक न खींचें । इसका आप इतना अर्थ करने के अधिकारी हैं कि मैं सो नहीं जाऊँगा । आपने मेरे सामने जितनी बातें कही हैं, उनसे अधिक दुःख की शिकायतें मेरे पास आयी हैं । वे सब सच हैं या झूठ, इसका मुझे पता नहीं । यदि वे सच्ची ही साबित होंगी, तो उन्हें दूर करने में मेरा जितना बूता होगा, जितनी चतुराई होगी, वह खर्च कर डालूँगा । राज्यकर्ताओं से मिलने का प्रयत्न करूँगा । मुझे मिलने की इजाजत देंगे, तो उनसे मैं एक दीन की भाँति मिलूँगा । और यदि उनकी अनुमति होगी तो उनके साथ क्या हुआ, उसे सार्वजनिक रूप में पेश करूँगा । धोराजीवाले मुसलमान आये थे । उन्होंने मुझसे कहा : 'यह काठियावाड़ राजकीय परिषद् कहलाती है और आप हमें धोराजी के बारे में एक शब्द भी नहीं कहने देंगे ?' मैंने कहा : 'नहीं ।' क्योंकि मुझे पता नहीं, उनकी शिकायत में कितना सच और कितना झूठ है । गोंडल के ठाकुर साहब को मैं जानता हूँ, उनके साथ मेरा परिचय हुआ है, उनके प्रति मुझे आदर है और मैं मानता हूँ कि वे समझदार राजा हैं । यह मुझे असह्य है कि उनके हाथ से प्रजा का बिगाड़ हो । उनकी मैं एक-दो या पचास आदमियों के कहने से कैसे निन्दा करूँ ? उनकी निन्दा कैसे हो ? जब तक मैं उनसे मिलूँ नहीं, उनके अधिकारियों से बातचीत न करूँ, तब तक आपको कुछ सलाह देना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है । इसलिए मैंने धोराजीवालों से कहा : 'आप जो कहते हैं, उसकी उचित जाँच करूँगा ।' अब तो मौलाना शौकत अली आ गये, इसलिए मुझमें अधिक बल आ गया है । मेरे लिए हिन्दू-मुसलमानों के बीच कोई भेद नहीं । फिर भी इन लोगों को इसका क्या पता होगा ? इसलिए मैंने उनसे कहा : 'मौलाना और मैं दोनों मिलकर आपको सलाह देंगे'; और उन्होंने भी कहा कि 'आप जो सलाह देंगे, वह हम मानेंगे ।'

'जैसी बात गोंडल की, वैसी ही जामनगर की । जामनगर के विषय

में भी बहुत शिकायत मेरे पास आयी है। यदि राजा को प्रजा मित्र कह सके तो जामसाहब और मैं बालमित्र थे। स्वर्गीय केवलराम मावजी दवे का जामसाहब के नाम सिफारिशी पत्र लेकर मैं विलायत गया था। मैं वह सिफारिशी पत्र लेकर सुशोभित हो सका था। वहाँ मैं उनसे कई बार मिला था। उस समय हम सबको, जो जामसाहब के समकालीन थे, लगता था कि जामसाहब को गद्दी मिले, तो कितना अच्छा? परन्तु आज तो उनकी बहुत निन्दा सुन रहा हूँ। यह सब सच्ची है या झूठी, इसका मुझे पता नहीं। परन्तु मैं चाहता हूँ कि एक भी सच्ची न हो। और यह भी चाहता हूँ कि प्रजा पर जाने-अनजाने या आड़े-टेढ़े ढंग से जो जुल्म हुए हों, उन्हें वे अपने ही हाथों धो डालें। उन्हें चिढ़ाना मेरा काम नहीं, उनसे नम्रतापूर्वक कहना मेरा काम है। और इसके लिए वातावरण तैयार करना मेरा काम है। अपने दुश्मनों से भी—यदि कोई दुश्मन हो, उदाहरण के लिए सर माइकल ओडवायर मुझे दुष्ट-से-दुष्ट मानता है, फिर भी यदि वह गवर्नर बनकर आये तो उससे भी—मैं नंगे पैरों जाकर मिलूँ। तो फिर जामसाहब से मैं अविनयपूर्वक मिलूँ, यह तो सपने में भी मेरा खयाल नहीं।

'इन दोनों राज्यों के बारे में मेरे पास शिकायतें भरी पड़ी हैं। बहुत साहित्य आ पहुँचा है। परन्तु जब तक पूरी जाँच करने के लिए पूरे उपाय न कर लिये जायँ, तब तक मुझसे उनका उपयोग नहीं हो सकता। इसीलिए मुझसे उनकी सार्वजनिक निन्दा हरगिज नहीं हो सकती। परन्तु ये शिकायतें मैं भूलूँगा नहीं। इस वर्ष में उन्हें दूर कराने के लिए मुझसे जितना हो सकेगा, करूँगा और वर्ष के अन्त में अपने काम की डायरी आपके सामने पेश करने की मैं आशा रखता हूँ।

'अब आपसे मेरी एक प्रार्थना है। आप सार्वजनिक या खानगी कटु आलोचना से अपने ही काम में विघ्न न डालें। सार्वजनिक आलोचना करके आप शासकों को चिढ़ाइए नहीं, क्योंकि वे राजा हैं, अधिकारारूढ़ हैं और अधिकार अंधा है। रामचन्द्रजी क्या जुग-जुग में हुए हैं? उमर जैसे खलीफा कोई जुग-जुग में होते हैं? इस्लाम की पूरी जाहोजलालीवाले चार खलीफों की कारगुजारी तीस वर्ष में समाप्त हो गयी। उसके बाद जितने खलीफा हुए, उनमें कोई भी उन चार की बराबरी करनेवाला नहीं था। जगत् का यही न्याय है। रत्न जहाँ चाहिए, वहाँ पैदा नहीं होते। खान को गहरी खोदें, तब किसी जगह वे मिलते हैं।

इस कारण राजा जब चिढ़े, क्रोध करे, तब वह बेवकूफ है, यह मैं नहीं मानूंगा। (क्रोध तो मुझमें भी है और आपमें भी है) क्योंकि राजा योगी थोड़े ही हैं? हम भी कहाँ योगी हैं? ऐसे योगी का एक ही उदाहरण जनक विदेह का था। एक ही मिसाल थी, क्योंकि वे प्राकृत मनुष्य होने पर भी ऐसे योगी हो गये। और रामचन्द्रजी तो अवतारी पुरुष कहलाते हैं। इतिहास बताता है कि इस पृथ्वीतल पर जनक विदेह जैसा और कोई भी पैदा नहीं हुआ। राजा अर्थात् सत्ताधारी तो हैं ही। और सत्ताधारी हुआ, तो उसका कुछ-न-कुछ तो सहन करना ही पड़ेगा। हमें प्रजासत्ताक राज्य मिले, तब भी कोई अधिकारी तो होगा ही, जिसका कुछ तो सहन करना ही पड़ेगा। अरे, यह मेरा ही आपको कितना सहन करना पड़ा? मैंने अपनी सत्ता का अन्धा उपयोग नहीं किया होगा? एक शास्त्री ने मुझसे भाषण करने की इजाजत माँगी, उन्हें मैंने बोलने नहीं दिया। एक मुनि की भी बोलने की इच्छा थी; उनसे मैंने कहा कि आपको बोलने की स्पर्धा में नहीं पड़ने दिया जा सकता। आप घर-घर जाकर चरखा कतवाइए। ऐसा करने में मैंने विनय किया अथवा अविनय, इसका मुझे क्या पता? परन्तु इन दो दिनों में मैं चाहे जैसा ही सही, परन्तु राजा था! कैसा भी क्यों न हो, चौथे या पाँचवें दर्जे का हो, तो भी वह है तो राजा; और जहाँ पदवी और पद, वहाँ राज्याधिकार। जहाँ राज्याधिकार हो, वहाँ क्रोध और अन्याय के लिए गुंजाइश रहती ही है। इसलिए शासकों के अधिकार से मिलनेवाली कड़वी घूंटें हमें पीनी ही होंगी।

'आपके सामने मैंने दो पक्ष पेश किये—राजपक्ष और प्रजापक्ष। काठियावाड़ के राज्यकर्ताओं से अन्याय हो, यह मेरे लिए असह्य है। मैं उनसे इतना ही कहूँगा कि आप किस जन्म के लिए यह अन्याय करते हैं। प्रजा से इतना ही कहूँगा कि मैं चाहता हूँ कि वह खामोशी से सहन करना सीखे। प्रजा के हक के बारे में मैंने अपने छपे हुए भाषण के अन्तिम पैरे में कहा है। यह पैरा आप कई बार पढ़ें। रट लीजिए। कोई प्रजा ऊँची नहीं उठ सकी, जिसने हक का सेवन किया है। केवल वही प्रजा ऊँची उठ सकी, जिसने फर्ज का धार्मिक सेवन किया। कर्तव्य के पालन से उसे अधिकार मिल गया। फर्ज अदा करते-करते ईश्वर की प्रार्थना करने से इष्ट अधिकार भी मिल ही जाता है। हमारे शास्त्र मातृभक्ति और पितृभक्ति सिखाते हैं। इसका अर्थ क्या? मेरे पिता

मुझसे नाराज हो जायँ, मुझे गाली दें, मारें, तो भी उनकी सेवा करूँ; बहुत हो तो उनसे कहूँ कि 'नहीं, बापू इतना न मारिए।' इसका कारण क्या ? ये आपके सामने गर्जना करनेवाले शौकत अली, अपनी माँ के राक्षस जैसे बेटे, इनकी माता घुड़की लगाये तो चुपचाप बैठ जाते हैं। इसका रहस्य क्या है ? इसका कारण यह है कि माता-पिता न हों, तब लड़के को उनके अधिकार मिलते हैं, वारसा मिलता है। इस आज्ञा-पालन के पीछे यह बात लगी हुई है कि बाप का उत्तराधिकार मिलेगा, यद्यपि इस उत्तराधिकार की आशा रखकर आज्ञा-पालन करूँ, तब तो मैं मर ही जाऊँ। इसलिए यह आशा रखे बिना आज्ञा-पालन करना चाहिए, यह भी शास्त्र ही सिखाते हैं। ऐसा विषम है हमारा शास्त्र। हक की आशा न रखनेवाले हक पाते हैं और हक की बात करनेवाले गिरते हैं, यह न्याय है। और यही न्याय मैं आपके सामने रख रहा हूँ। इस न्याय का आप पालन करेंगे, तो मान लीजिए कि आपने काठियावाड़ के स्वराज्य की एक नम्र सेना खड़ी कर ली। इस वर्ष में ऐसे विनम्र कार्यकर्ताओं की सेना आप तैयार कर लें तो फिर कोई राजा आपका तिरस्कार नहीं कर सकता। इस समय आपको शंका होती है कि आपको कोई राजा अपने राज्य में परिषद् करने देगा या नहीं। सोरठवालों ने परिषद् को निमंत्रण दिया, तो डरते-डरते दिया कि कहीं अमुक स्थान पर करने का विचार करेंगे और राजा इनकार कर दें तो ? इसलिए आप अपना वातावरण इतना स्वच्छ कीजिए, अपना चरित्र-बल इतना बढ़ाइए कि आपको कोई राजा इनकार न कर सके। आप मेरी सलाह का ऐसा अर्थ न करें कि आपको न करने का काम करना है; अथवा आपके स्वाभिमान को हानि पहुँचे, ऐसा कुछ करना है। बड़े-से-बड़ा काम करते हुए अपने आग्रह को न छोड़िए, सत्य को न छोड़िए और साथ ही विनय और मृदुता को न छोड़िए।

'मैं स्वयं अखबारनवीस हूँ—और वह भी पुराना पत्रकार। सन् १९०४ से मैं यह काम करता आया हूँ। और मैं मानता हूँ कि यह काम मुझे अच्छी तरह आता है। क्योंकि मेरा स्वभाव ऐसा है कि सौ बातें लिखने का इरादा हो, तब एक बात लिखूँ। अब 'यंग इंडिया' में मैं आपस की गालियाँ और चाहे जिसकी चाहे जो शिकायतें छापता रहूँ, तो इस अखबार की जो प्रतिष्ठा है, वह क्या रहेगी ? 'नवजीवन' में मेरे पास जितना आये, उतना लिखूँ तो क्या सचमुच कोई पाठक रहेगा ? ऐसा न

करने का मैंने नियम रखा है और इस नियम के कारण ही मैंने अपने अखबारों के लिए कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त की है । इस नियम में भी कभी-कभी भूल हो जाती है । इसलिए राजनीतिज्ञों और लेखकों से कहता हूँ कि आप कलम को कैद में रखें और आत्मा का विकास करें । लोभ आप शब्दों का करें, आत्मोन्नति का नहीं । खुशामद भी न करें । क्रोध भी न करें। संयम में खुशामद नहीं, जब कि क्रोध—टेढ़ा शब्द—खुशामद से भी खराब है । खुशामद और क्रोध एक ही वस्तु के—दुर्बलता के—दो पहलू हैं । वक्र पक्ष क्रोध है । कमजोर इन्सान खुशामद करेगा या अपनी कमजोरी छिपाने के लिए क्रोध करेगा । कोई भी क्रोधी पुरुष यह न माने कि उसने जोर दिखाया है । जोर कर्म में कहा गया है और कर्म का अर्थ है धर्मपालन । जगत् का हृदय-साम्राज्य भोगनेवाला संयमाग्नि में अपनी इन्द्रियों को भस्म करके रखता है । आप भी काठियावाड़ का उद्धार करना चाहते हों तो याद रखिए कि शान्ति और संयम से ही आप उसे साध सकेंगे । राजा अपना काम दण्ड से लेता है । आप अपना काम सेवा और प्रेम से लें । अपने सेवा और प्रेम का राजा और प्रजा दोनों पर सिंचन करें, ताकि उससे उत्पन्न होनेवाली काठियावाड़ की सुवर्ण-वाटिका सभी देखने आयें । मेरा आशीर्वाद है—यदि आशीर्वाद देने का अधिकार हो तो—और न हो तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा दिवस शीघ्र आये ।'

सबको लग रहा था कि अब सभा विसर्जित होगी । वहाँ तो एक और आश्चर्य बाट देख रहा था । प्रजामण्डल का मानपत्र नगरसेठ ने पढ़कर सुनाया कि तुरन्त उसे देने के लिए सर प्रभाशंकर मंच पर आकर खड़े हो गये । पिछले दिन ठाकुर साहब को गांधीजी के हाथों मानपत्र दिया गया; आज गांधीजी को पट्टणी साहब के हाथों मानपत्र दिया गया । दोनों प्रसंगों की महत्ता समान थी और फिर भी आज के प्रसंग में विशेष रस था । गांधीजी को मानपत्र देनेवाले केवल काव्य में ही खादी के भक्त नहीं रहे थे, व्यवहार में भी खादी-भक्त प्रकट हुए थे । ठाकुर साहब को अपनी स्थिति दृष्टि में रखकर अपना भाषण पढ़ना पड़ा था, जब कि पट्टणी साहब तो प्रसंग को ध्यान में रखकर धीरे-धीरे बोलना शुरू करके अपना भाषण इतनी उच्च कोटि पर ले गये कि श्रोताओं का विस्मय पट्टणी साहब की वक्तृत्वशक्ति और गांधीभक्ति दोनों के बीच बाँटा जाने लगा । इस भाषण में चातुर्य नहीं होगा, यह आशा तो कोई हरगिज न

रखे, राजनीतिज्ञता नहीं होगी, यह आशा भी थोड़े ही रखें, परन्तु सरलता वहुत होगी, यह आशा शायद ही किसीने रखी होगी ।

मानपत्र भेंट करते हुए गांधीजी के चरणों का स्पर्श करके वे वोले :

'मैं वहुत-से वड़े-वड़े समारोहों में वोला हूँ, परन्तु आज तो गला ऐसा हो रहा है कि वोला ही नहीं जा रहा है । मानपत्र मेरे हाथों दिलवाने की प्रजामण्डल ने इच्छा प्रकट की । परन्तु उसका सदस्य नहीं, इससे थोड़ी आनाकानी हुई थी । अन्त में मैंने स्वीकार कर लिया । मैं ऐसे हृदयवाला अल्पजीव हूँ कि इनकार नहीं किया जा सकता था । यहाँ के लोगों ने यह देखा होगा । नगरसेठ ने ऐसे स्थान पर शिकायत पहुँचा दी कि मुझसे इनकार किया ही नहीं जा सकता था । परिणामस्वरूप गांधीजी के चरण-स्पर्श का लाभ प्राप्त हुआ । इससे मैं आज अपने को वहुत भाग्यशाली मानता हूँ ।

'विषय-समिति में जिन्होंने देखा, वे सव जानते हैं । जहाँ स्वच्छंदता से और यथेच्छ वोलने की उन्हें छूट हो, वहाँ अर्थात् विषय-समिति में उन्होंने मुझे आने दिया, यह इनकी उदारता ऐसी-वैसी कही जायगी ? आप सवने निडर रहने का निश्चय किया है और निडरता की शक्ति का सवूत दिया है । दण्ड के रूप में उनकी पीठ पर कोड़े नहीं लगेंगे । राजा-प्रजा के सम्वन्धों के विचारों में इस वात का पृथक्करण हुआ है । स्वराज्य कैसा चाहिए, इसकी स्वच्छ कल्पना महात्माजी के कल के भाषण में प्रकट किये गये राजा-प्रजा के सम्वन्धों के वारे के उद्गारों में मिलती है । सारे भाषण का मूलमंत्र मुझे यही लगा है कि जो राजा हृदय पर संयम रखे, वह सवको झुका सकेगा । राजा दण्ड न उठाये; प्रजा प्रेमभाव से, विनीत भाव से अपनी माँग पेश करे । इसीसे सुदृढ़ मेल हो सकता है । गांधीजी मुकुटधारी राजा नहीं, परन्तु सारे साम्राज्य की प्रजा को इनका शब्द मानना पड़े, ऐसे अधिकारवाला यह व्यक्ति है । इन्हें भी संयम रखना पड़ता है ।

'आप यह भले ही समझें कि मैंने अपनी सारी जिन्दगी खुशामद में वितायी है । परन्तु अधिकार में भी वितायी है । दोनों का सम्वन्ध एक ही है । एक वात जो कल कही थी, वह इस विराट् समूह में भी कह दूँ । मुझे लगता है कि काठियावाड़ राजकीय परिषद् के वजाय काठियावाड़ चरखा प्रचारक परिषद् होनी चाहिए । राजनैतिक मामलों पर उन्होंने आपको वोलने नहीं दिया, इसमें असन्तोष होने जैसी वात रहने दी है ? उन्होंने

सारा भार अपने पर ले लिया । मन से माना हुआ झूठा दुःख भले ही न जाय, परन्तु असली दुःख जरूर गये विना नहीं रहता ।

'मुझे कौरव-पाण्डवों का युद्ध याद आ गया । मुझे विचार आया कि कुटुम्ब-क्लेश का इलाज संधि से नहीं हो सकता ? कृष्ण भगवान् तो महा खिलाड़ी ठहरे । वे पाण्डवों से सन्धि की वात करने जानेवाले थे । सवसे पूछने लगे: 'सन्धि करने जाऊँ, मगर मेरी कोई सुने तो ?' भीम से यह सवाल पूछा । उसने जवाव दिया: 'कहिए कि सन्धि नहीं करोगे, तो सिर तोड़ दूंगा ।' अर्जुन ने कहा: 'यह कहिए कि सन्धि नहीं करोगे, तो गांडीव का चमत्कार देख लेना ।' द्रौपदी से पूछा तो वह वोली: 'कौरवों को याद दिलाना कि नहीं मानोगे तो सती के शाप से जलकर राख हो जाओगे ।' परन्तु युधिष्ठिर ने क्या कहा ? उसके मुख में से तो एक ही उद्गार निकला: **'यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण यत्तुभ्यं च रोचते'**—'आपको जँचे सो कहना, कृष्ण, आपको जँचे सो कहना ।' ऐसी वात है । इसी तरह मैं भी कहता हूँ कि महात्माजी को जो पसन्द हो, सो कीजिए ।

'इन्होंने चरखे पर खूव जोर दिया । वात तो आसान लगती है; परन्तु इस आसान वात में मकड़ी ने मक्खी को पकड़ा है । इनकी राजनीतिज्ञता भीष्म की शरासन की राजनीतिज्ञता के जोड़ की है । मुझे वुलाने में भी राजनीतिज्ञता होगी । जो गांधीजी की विरादरी में रहना चाहते हों—इनके गुट में रहना चाहते हों, उनसे मैं कहता हूँ कि उस पतंगे और तितली की वात तो मालूम है न ? पतंगा और तितली दोनों दीपक के आसपास मँडराते हैं; परन्तु तितली उसमें पड़ती नहीं और पतंगा उससे आकर्षित होकर उसमें गिर जाता है—अपने-आपको होम देता है । तितली का दीपक के प्रति प्रेम कोई गाता नहीं, जव कि पतंगे का सभी गाते हैं । तितली को पतंगे की विरादरी में कैसे मिलाया जाय ? मैं तो प्रांजल-हृदय* हूँ । प्रार्थना-भीरु हूँ । मैं तो रात को ही वाहर निकलता हूँ । आप भी मेरे साथ निकलिए । परन्तु तितलियाँ आयीं । 'आप कहते हैं सो हम मानते हैं, परन्तु....' इस तरह कहनेवाले तितलियाँ हैं । गांधी को तो दीपक में समा जानेवाले पतंगे चाहिए, तितली नहीं चाहिए—तितली, जो दीये की रोशनी से भागती फिरे ।'

परिषद् के वारे में और वहुत लिखा जा सकता है, परन्तु इतने से ही सन्तोष कर लेता हूँ । परिषद् के सिलसिले में भाई शंकरलाल, भरूचा,

---

* सरल हृदयवाला ।

वल्लभभाई और दूसरे सज्जन गाँव में रूई माँगने गये । उन्हें लगभग ७५ मन रूई दान में मिली । यह भी घोषित किया गया । गुजरात में गांधीजी को बुलाने की इच्छा रखनेवाले गाँव अब चेतें । रूई की भिक्षा से वे रूई पैदा करनेवाले एक भी गाँव को नहीं छोड़ेंगे, इनके प्रतिनिधि भी रूई की ही भिक्षा माँगेंगे ।

नगरपालिका मानपत्र देना चाहती थी । गांधीजी ने उसे लेने से इनकार कर दिया । पालिका की तरफ से आये हुए भाई बोले: 'पालिका का मानपत्र न लें और यह कैसे लें ?'

गांधीजी ने कहा : 'मैं आपको कैसे समझाऊँ ? इतनी बात के बाद न समझें तो कल मैंने जो दृश्य देखा था, वह कह सुनाना पड़ेगा। मुझे यह बात समझानी है कि प्रजामण्डल तो स्वेच्छा से बनी हुई चीज है, जब कि पालिका परिमित है । यह शासकों की चीज है । प्रजामण्डल का काम तो कई गुना है, जब कि नगरपालिका पर बादशाह की छाप है । मैं तो आपका काम सरल करना चाहता था । मैंने देखा कि भावनगर-नगरपालिका मानपत्र देना चाहती है । मैंने विचार किया कि मैं क्या करूँ और इनकार कर दिया । मैं आपका मानपत्र लेकर क्या करूँ ? मेरे लिए तो उसकी जरूरत नहीं । पालिका को क्या जरूरत होगी ? क्या पालिका इस प्रसंग से मेरे द्वारा एक कदम आगे बढ़नेवाली है ? मैं तो ऐसा आदमी हूँ कि दुश्मन भी मेरे साथ दुश्मनी नहीं कर सकता, क्योंकि मैं संत माना गया । आपको बेलगाम की नगरपालिका की बात कहूँ । उन लोगों ने मुझे मानपत्र देने का प्रस्ताव किया, परन्तु उसके लिए कलेक्टर की अनुमति नहीं ली । कलेक्टर ने उन्हें पत्र लिखा कि अनुमति लेना भूल गये दीखते हो, परन्तु पत्र लिख दो तो मंजूरी दे दूँगा । पालिका का काम नाजुक है । बेलगाम ने पहले से इजाजत नहीं माँगी, इसलिए उसने कोई प्रगतिशील कदम उठा लिया, ऐसा मानने का कारण नहीं । हमें विनय नहीं छोड़ना चाहिए । विनय की भाषा भी एक ही हो सकती है । इसे पी जा सकता था । पालिका-विभाग ने भी समझ लिया कि यह अच्छा है । आज तो आपने मुझे मानपत्र देने का निश्चय किया । परन्तु प्रत्येक अध्यक्ष को मानपत्र देने की प्रथा डालें तो अधिकारी क्या करेंगे ? आप यह चाहें कि आपको सब अधिकार चाहिए । परन्तु यह कैसे हो ? सबको मानपत्र देने की प्रथा डालें, तो यह न चल सकनेवाली बात है । आप मुझे मानपत्र देकर खुश हो जाइए । इससे अधिक कहलवाना चाहते

हूँ ? पालिका-विभाग को मैंने सलाह दी, यह अच्छा किया । मैं ऐसा मानता हूँ । उन्होंने संयम दिखाया, यह अच्छा किया । ऐसे मामलों में किसीकी स्थिति विषम हो जाय, तो मैं इनकार ही करूँ । दिल्ली में भी यदि हिन्दू-मुसलिम झगड़ा हो तो मैं इनकार ही करूँ ।'

रात को शामलदास कॉलेज में गांधीजी को 'विद्यार्थियों का धर्म' विषय पर बोलने का वहाँ के एक अध्यापक और विद्यार्थियों ने निमंत्रण दिया था । काम के अत्यन्त दबाव में उन्होंने यह निमंत्रण स्वीकार करने में पहले तो बहुत आनाकानी की थी, परन्तु बाद में समय मिला, तो कुछ कहने में प्रसन्नता प्रकट की । तदनुसार शाम को साढ़े सात बजे कॉलेज के मैदान में एक शामियाना लगाया गया था । गांधीजी ने पहले से ही गुजराती में बोलने को कह दिया था । सभा में विद्यार्थियों और अध्यापकों के अलावा शहर के बहुत-से सज्जन और सन्नारियाँ भी थीं ।

गांधीजी तो आग्रहपूर्वक समय की पाबन्दी करनेवाले ठहरे । फिर भी भावनगर की अव्यवस्था ने उनका भी आग्रह छुड़वा दिया । परिषद् भी वक्त पर नहीं की जा सकी थी और इस सभा के लिए तो उन्हें एक घंटे की देर हुई । इसका कारण यह था कि इन्हें जिस अछूत मुहल्ले में जाना था, वह कहाँ है, इसकी व्यवस्थापकों को कोई जानकारी नहीं थी । इसलिए वे गलत रास्ते चले गये और मुहल्ला ढूंढ़ने में ही बहुत समय निकल गया । इसलिए वहाँ पहुँचने से पहले अपने देर से आने की बात दरगुजर करने की सभा से प्रार्थना करने के लिए उन्होंने वल्लभभाई को भेज दिया ।

सवा आठ-साढ़े आठ बजे गांधीजी आये । कोई अध्यक्ष नहीं था । गांधीजी का परिचय देने का शिष्टाचार करने की किसीने आवश्यकता नहीं समझी और तुरन्त ही उन्हें बोलने के लिए कहा गया । यह सब सुयोग्य था । शान्ति तो इतनी थी कि सूई गिरे तो उसकी भी आवाज सुनाई दे । बाहर पूर्णिमा की चन्द्रिका वातावरण को प्रकाशित कर रही थी ।

वल्लभभाई बोले : 'सन् '१७ में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, तब मेरी विद्यार्थी-अवस्था शुरू हुई । महात्माजी ने आकर सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया, तब महसूस हुआ कि इससे अलग रहना अधर्म है । इनके सहवास में आया, तभी पता लगा कि जिसमें सेवा करने की भावना हो, उसे इस पुरुष को सेवा देनी चाहिए । मैं तो मंद विद्यार्थी था । गुजराती

भी पूरी बोलनी नहीं आती थी। जब पुराने दिन याद आते हैं, तब अपनी पोशाक का विचार करता हूँ और शर्मिन्दा होता हूँ। भाषा में, भेष में और जीवन के सभी मामलों में विदेशियों की नकल करने में जीवन की सार्थकता मानता था। परन्तु आम लोगों के सहवास में आकर देखा कि यह मूर्खता का लक्षण है और पढ़ा हुआ सब भूलने की जरूरत है। आपके सौभाग्य हैं कि भारत में आज ऐसी ही हवा चली है। आपका कर्तव्य क्या है, यह तो कॉलेज में आये तभी से आपको सोच लेना है। आपको अपना मार्ग निश्चित करना चाहिए। यह विचार करना चाहिए कि ज्ञान किसलिए प्राप्त करना है। विद्यार्थियों को कल्पना नहीं कि अपना अमूल्य जीवन किसलिए बिताते हैं! आजकल तो जीवन में कमाई करने का साधन कॉलेज का अध्ययन हो गया है। परन्तु ज्ञान प्राप्त करने का यह कनिष्ठ-से-कनिष्ठ पहलू है। निबन्ध लिखने की शक्ति बढ़ी है, परन्तु साथ ही चरित्र-शक्ति चली गयी है। संकोच छोड़कर आपको कहनेवाला और अपना अनुभव आपको सौंप देनेवाला और कोई शायद ही मिलेगा। जब तक आपके और आपके आसपास की प्रजा के बीच अन्तर है, तब तक आपकी पढ़ाई निकम्मी है।'

गांधीजी बोले :

'मुझे आशा है कि साढ़े सात बजे से पहले मेरा सन्देश मिला होगा। विद्यार्थी-धर्म के बारे में बोलने आया हूँ, परन्तु देर से आकर मैंने ही आपके पास ऐसा पदार्थ-पाठ रखा, जिसके लिए मैं तैयार नहीं था।

'अपनी मुश्किल क्या कहूँ? मुझे अछूत-मुहल्ले में जाना था, परन्तु कोई रास्ता बतानेवाला ही नहीं मिला! अनेक आडे-टेढ़े रास्ते लग गये। अन्त में एक रैबारी मिला। देवचन्दभाई क्या जानें कि हरिजन मुहल्ला कहाँ है? हरिजन मुहल्ले में या तो हरिजन ले जाय या रैबारी ले जाय, जिसके साथ अभी तक हमने सम्बन्ध नहीं जोड़ा!

'आज मुझे विद्यार्थी-धर्म पर बोलना है। यह आसान भी है और मुश्किल भी है। विद्यार्थी की स्थिति को हिन्दू-धर्म में ब्रह्मचर्य की स्थिति कहा गया है। ब्रह्मचर्य का जो अर्थ आम तौर पर किया जाता है, वह हिन्दू शास्त्रों में नहीं है। यह अर्थ संकुचित है। जो मूल अर्थ है, उसका भाव यह है कि विद्यार्थी की स्थिति और दशा ब्रह्मचर्य की दशा है। प्रत्येक इन्द्रिय का संयम ही उसका भाव है। और इसके द्वारा विद्या प्राप्त करने का सम्पूर्ण काल ब्रह्मचर्याश्रम में गिना गया। इस ब्रह्मचर्य

के निर्दोष जीवन में देने का बहुत कम और लेने का बहुत ज्यादा है। इस दशा में माँ-बाप से, शिक्षकों से, संसार से हम लेते ही रहते हैं। परन्तु लेते ही रहते हैं किसलिए? इसीलिए कि वक्त आने पर लिया हुआ वापस दें, इतना ही नहीं, परन्तु चक्रवृद्धि व्याजसहित लौटायें। इसलिए संसार ब्रह्मचर्याश्रम को निभाता है।

'ब्रह्मचर्याश्रम और संन्यासाश्रम के कार्य को हिन्दू-धर्म में समान बताया गया है। विद्यार्थी इच्छा करके नहीं, परन्तु स्वभाव से ही संन्यासी है। आज तो विद्यार्थियों के मन भी खराब हो गये हैं। १२ वर्ष की उम्र में मेरी मति भ्रष्ट हो गयी थी, मुझे विकारों का भान हुआ था। विद्यार्थी का जीवन स्वभाव से निर्विकारी होना चाहिए, परन्तु मेरा पतन तो इतनी कच्ची उम्र में ही शुरू हो गया था। ऐसे हजारों उदाहरण मिल जायँगे, परन्तु मैं अपनी बात कहकर वस्तु का दर्शन कराना चाहता हूँ। विद्यार्थी की दशा स्वभाव से ही संन्यासी की है, जब कि संन्यासी की स्वेच्छा से ऐसी दशा है। आज तो सभी आश्रम छिन्न-भिन्न हो गये हैं और केवल लकीर दिखाई देती है। नहीं तो मेरे मन में तो इन आश्रमों के बारे में इतना ऊँचा स्थान है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु वस्तु यही है और उसमें से धर्म मिल जाता है।

'विद्यार्थी का धर्म आज कैसे समझा जाय? आज तो माँ-बाप भी झूठे पाठ सिखाते हैं। जान-बूझकर नहीं, परन्तु पढ़ा-लिखा लड़का रुपया कमाये, और कोई दर्जा हासिल करे, केवल इस हेतु से उसे शिक्षा दिलाते हैं। इस प्रकार हमारी सच्ची स्थिति को उलट दिया गया है। जो धर्म होना चाहिए, उसे छोड़कर व्यभिचार करते हैं। और परिणामस्वरूप विद्यार्थी-जीवन में जो परम शान्ति, जो सुख, जो निर्दोष बुद्धि होनी चाहिए, वह हम नहीं देखते। हमारे विद्यार्थी विद्यार्थी-दशा में ही अपने को बहुत अधिक माननेवाले बन जाते हैं। परन्तु इस दशा में तो कुछ देने की गुंजाइश ही नहीं है; केवल ग्रहण करने का, लेते रहने का और विवेक-बुद्धि इस्तेमाल करने का ही काम है। अनेक प्रयोग बताकर शिक्षक हमें लेने में विवेक-बुद्धि सिखाता है, कौन-सी वस्तु त्याज्य और कौन-सी ग्राह्य है, यह बताता है। यह कला हम सीखे हुए न हों तो हम यंत्र बन जायें। हम तो सजीव मूर्ति हैं, चेतनरूप हैं और चेतन का स्वभाव है यह समझ लेना कि कौन-सी वस्तु ग्राह्य है और कौन-सी त्याज्य। इसलिए इस दशा में हमें सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग; मधुर वाणी का ग्रहण

और कठोर दुःखकर वाणी का त्याग; ऐसी-ऐसी बातें सीखनी हैं और उन्हें सीखने से जीवन सरल बनता है।

'आपको लगेगा कि यह तो हिन्दू-धर्म पर व्याख्यान देने आया है। परन्तु मैं तो आपके सामने अपनी बात रखने आया हूँ। और मेरी बात और क्या होगी? उसे देने के लिए ही इतना पृथक्करण करके समझा रहा हूँ। मैं कह चुका कि ब्रह्मचारी को क्या छोड़ना और क्या लेना, यह सीखना चाहिए। परन्तु हमने तो आज धर्म का संकर कर दिया है। और आज इस धर्म के संकर के विरुद्ध लड़ना होगा। यदि माँ-बापों ने भिन्न शिक्षा दी होती और वातावरण न बिगाड़ा होता, तो विद्यार्थियों के वातावरण का सामना करने की बात ही न रहती। प्राचीन काल में तो विद्यार्थी-जीवन ऋषियों के आश्रम में बिताया जाता था। परन्तु आज स्थिति विपरीत है। जहाँ समुद्र पर से साफ हवा आती हो, वहाँ खुले दिल से हवा लेते ही रहें। वैद्य ऐसे स्थान पर खूब श्वासोच्छ्वास लेने को कहते हैं और जब बदबू आये, तब मुँह बन्द करने की बात कहते हैं। विलायत में ऐसे बहुत-से स्थान हैं, जहाँ कोयले की रेत उड़ती रहती है। वहाँ मुँह पर पट्टी बाँधकर काम करनेवाली बूढ़ियाँ मैंने देखी हैं, जिनके फेफड़ों में हवा स्वच्छ होकर ही जाय। इसी तरह यहाँ भी बदबू का प्रतिकूल वातावरण भरा है, इसलिए उसका विरोध करना ही होगा।

'ऊपर मैंने जो कसौटी बतायी, उससे आप देखेंगे कि आज बहुत-सी वस्तुओं का त्याग करना पड़ेगा। कई बातें ऐसी होंगी, जो केवल हानि-कारक हैं। प्राचीन काल में केवल मुँह से शिक्षा दी जाती थी। मंत्र ही दिये जाते थे। मंत्र का अर्थ है, संक्षिप्त भाषा में कहा गया तत्त्व। उसके बाद उस पर टीका हुई। आजकल तो ढेर सारी पुस्तकें हो गयी हैं। मैं अपने ही समय की बात कहता हूँ; तब त्याग करने लायक अनेक वस्तुएँ मुझे याद आती हैं। छठी-सातवीं कक्षा के लड़कों में से रेनोल्ड्स के उपन्यास कौन नहीं पढ़ता, यह कहना कठिन है। परन्तु मैं तो मन्द विद्यार्थी ठहरा। मैं केवल पास होने का ही विचार करनेवाला था। पिता की सेवा करनी और पास होने लायक पढ़ना—इतना ही मेरा काम था। इसलिए उन उपन्यासों को पढ़ने से मैं बच गया। दूसरों पर ये पुस्तकें कैसा असर करती हैं, यह नहीं जानता, परन्तु विलायत में मैंने देखा कि अच्छे-से-अच्छे हलकों में ये पुस्तकें नहीं पढ़ी जाती थीं। वह शिष्ट

वाचन ही नहीं माना जाता था। इसलिए मैंने देखा कि उन्हें न पढ़कर मैंने कुछ भी खोया नहीं।

'इसी प्रकार आज अनेक वस्तुएँ छोड़ने योग्य हो गयी हैं, ऐसी विषम स्थिति में हम पड़े हुए हैं। आज तो बारह वर्ष की उम्र से आजीविका का विचार करना पड़ता है। यह तो विद्यार्थी-आश्रम के साथ गृहस्थाश्रम का संकर हो गया। गंगा-जमना का संगम सुन्दर है, परन्तु यह संगम नहीं, संकर है। इसलिए आज विद्यार्थी को जान लेना होगा कि देश में क्या घटना हो रही है। आज शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा होगा, जो अखबार न पढ़ता हो। मैं तो कैसे कहूँ कि आप समाचारपत्र पढ़ें ही नहीं। परन्तु विद्यार्थियों से इतना तो कहूँगा कि अखबारों का क्षणिक साहित्य छोड़ दें। उनमें केवल सच्चा साहित्य—अच्छी कसी हुई भाषा—नहीं मिलती। उनमें जो मिलती है वह क्षणिक वस्तु है, जब कि हमें तो स्थायी भाषा लेनी है। विद्यार्थी-जीवन तो जीवन की बुनियाद है, जीवन की तैयारी है। इस समय में हम अखबारों से अपने विचार कैसे प्राप्त करें? आप यह कहें कि उन्हें नहीं पढ़ेंगे, तो यह कहना केवल कृत्रिमता से ही भरा रहेगा। क्योंकि आप तो दास या गांधी का भाषण पढ़कर कहेंगे कि फलाँ भाषण लच्छेदार था, फलाँ घटिया था। यह स्थिति दयाजनक है, भयंकर है। इससे बचना ही चाहिए।

'यह बात कहता हूँ, क्योंकि मैंने शिक्षण के अनेक प्रयोग किये हैं। मेरे अपने लड़कों, दूसरों के लड़कों और जवान लड़के-लड़कियों को साथ रखकर उन्हें पढ़वाने की भयंकर जोखिम मैंने उठायी थी। परन्तु मैं उससे पार उतर गया, क्योंकि मेरी आँखें जैसे माता-पिता की आँख जवान लड़कों की गतिविधि के आसपास घूमती रहती है, वैसे घूमती ही रहती थीं। मैं लड़कों का माँ-बाप होकर बैठा था, उनका गुप्तचर बनकर बैठा था, राजा भी था और गुलाम भी था। इस स्थिति से मैंने जाना कि शिक्षण क्या वस्तु है, शिक्षण कैसा हो; और उसके विचार में से मुझे सत्याग्रह मिला। उसमें से मैंने असहयोग का दर्शन किया। इसलिए मैंने प्रयोग किया। आप यह न मान लें कि प्रयोग करके मुझे जरा भी पश्चात्ताप हुआ होगा। यह भी न मानें कि यह केवल स्थूल स्वराज्य के लिए ही किया है। मैंने तो जगत् के आगे शाश्वत सनातन धार्मिक वस्तु रख दी है। इसकी जड़ें गहरी गयी हैं। इसलिए बालकों के सामने भी रखने में मैं डरता नहीं।

'इसकी निर्दोषता किस तरह बताऊँ ? मैंने तो देखा कि मेरे शान्ति के मंत्र से अशान्ति फैली । इसलिए मैंने अपने हथियार वापस रख लिये और शान्ति का केवल एक ही हथियार—चरखा—सामने रखा। इसके विरुद्ध पहले तो लोग हँसे, फिर तिरस्कार किया गया और आज अब इसे अपनाने की दशा आ रही है। और आज विद्यार्थियों से इसे स्वीकार करने की बात कर रहा हूँ । महासभा में भी इसका प्रस्ताव हुआ और आज मैं तो लॉर्ड रीडिंग* से भी यही बात कहूँ। यदि उनसे मिलने का समय आये, तो उनसे कहूँ कि 'साहब, चरखा चलाइए ।' आपको यह सुनकर हँसी आयी, परन्तु मैं गम्भीरतापूर्वक बोल रहा हूँ। मैं उनसे यह कहने में संकोच न करूँ, क्योंकि वे न मानें, तो खोना उन्हें है, मुझे कुछ भी खोना नहीं है। जो भिक्षा माँगता है, उसे क्या खोना होगा ? उसका यही धर्म, उसका यही पेशा। मेरा तो धर्म है कि उनके आगे हाथ पसारकर उन्हें पुण्य करने का अवसर दूँ। मैं तो उनके सामने अच्छी-से-अच्छी वस्तु लेने का अवसर रखूँ। वे स्वीकार न करें तो भूल उनकी है। कलकत्ते के बिशप को मैंने अपनी भजन-मण्डली में बैठने को कहा। वे बैठे और उन्होंने भी भजन किया। इससे उनके और मेरे बीच पक्की मैत्री जुड़ गयी। परन्तु इतने से ही मुझे सन्तोष नहीं हुआ । मैंने उन्हें चरखे की बात सुनायी। कर्नल मॅडक ने मुझे जिलाने के लिए मेरा पेट चीरा। अनेक शस्त्रों का प्रयोग किया, मैंने उनके सामने अपने चरखे की बात की। श्रीमती मॅडक विलायत जा रही थीं और मैंने खादी के तौलिये की सौगात दी। उसे उन्होंने प्रेमपूर्वक लिया और कह गयीं कि वे उस तौलिये का सन्देश घर-घर पहुँचायेंगी।

'यह निर्दोष वस्तु है। इसमें स्वाद नहीं होगा। आरोग्यप्रद खुराक में तीखा, चटपटा स्वाद नहीं होता, हलवाई की चरपरी पकौड़ियाँ नहीं होतीं। राजकोट में एक हलवाई मशहूर था। वह उनमें कई मसाले डालता। और सैकड़ों उसके यहाँ दौड़ते। उन पकौड़ियों में आरोग्य प्रदान करने की तो कोई चीज थी ही नहीं। दूसरी ओर, ऐसी अनेक वस्तुएँ होती हैं, जो नीरस लगें, परन्तु बढ़िया होती हैं। इसीलिए गीताजी का महावाक्य है कि जो आरम्भ में कड़वी और परिणाम में अमृतमय है, वह वस्तु ग्रहण करो। ऐसी अमृतमय वस्तु सूत का तार है। आत्मा को शान्ति देने में, विद्यार्थी अवस्था में जीवन को शान्ति देने में, जीवन में

* भारत के वाइसराय।

धर्म को स्थान देने में इसके जैसी शक्तिवाला और कोई यज्ञ नहीं। भारत के लिए आज मैं कोई और चीज पेश नहीं कर सकता—गायत्री भी सारे भारत के आगे नहीं रख सकता—क्योंकि यह युग व्यवहार का है, वह तात्कालिक परिणाम चाहता है। गायत्री मैं जरूर रखूँ, परन्तु तात्कालिक व्यावहारिक परिणाम क्या दिखाऊँ? जब कि यह चीज तो ऐसी है कि आप सूत का धागा निकालते जाइए, राम का नाम लेते जाइए, तो आपको सब कुछ मिल जायगा।

'ट्यूडर ओवन यहाँ पर एक बड़े अधिकारी थे। आजकल पंच-महाल में हैं। उन्हें मैंने बिगाड़ा और इसका छिपा रहस्य आज खोल देता हूँ। उन्होंने मुझे लिखा कि चरखा मुझे बहुत पसन्द आया, क्योंकि अच्छी-से-अच्छी 'हॉबी' (शौक) है, ऐसा मेरी अंग्रेज की 'कॉमन सेन्स' (व्यवहार-बुद्धि) कहती है, मैंने उनसे कहा कि आपके लिए यह 'हॉबी' होगी, हमारे लिए तो कल्पद्रुम है। अंग्रेजी जीवन मुझे पसन्द नहीं, परन्तु उसके कुछ रसों का मैं स्वाद लेनेवाला हूँ, क्योंकि मधुमक्खी की तरह मैं तो मधुर वस्तु का खोजनेवाला ठहरा। इन लोगों की 'हॉबी' में बहुत रहस्य भरा है। कर्नल मॅडक एक आँख से काने थे—शस्त्र-क्रिया करते हुए ही एक आँख खोयी थी। उनकी उम्र भी लगभग साठ की थी, फिर भी शस्त्र-क्रिया में वे बड़े निपुण थे। चाकू का सीधा चीरा लगा दें, परन्तु पता न चले। वे चौबीसों घण्टे शस्त्र-क्रिया नहीं करते थे, परन्तु दो घण्टे अपनी 'हॉबी' (शौक)—बगीचे में काम करने का—वे नियमित करते और इससे उस आदमी का जीवन रसमय बना रहा।

'आपका जीवन रसमय बने, आपको धर्म मिले, कर्म मिले, शान्ति मिले, विवेक मिले, इसके लिए चरखा आपके सामने रखता हूँ। विद्यार्थी-जीवन में श्रद्धा ही एक जरूरी चीज है। अमुक वस्तु बुद्धि स्वीकार न करे, तो भी वह स्वीकार कर लेनी पड़ती है। मेरे पारसी मित्र स्वीकार करेंगे—क्योंकि वे भूमिति (रेखागणित) में मेरे जैसे 'ढ' ही होते हैं—कि बहुत-सी बातें मान लेनी पड़ती हैं। भूमिति में मेरी गाड़ी चलती ही नहीं। २४वाँ प्रमेय समझ में ही नहीं आता। परन्तु मैं गाड़ी चला लेता। अब यह विषय मुझे आनन्दमय लगता है और आज उसकी पुस्तक हाथ में आ जाय, तो उसमें लीन हो सकता हूँ। विद्यार्थी-जीवन में श्रद्धामय चित्त होने से ही मैंने मान लिया था कि किसी दिन इसका भी पता लग जायगा। आपको भी श्रद्धा होगी तो आपको पता चल जायगा कि एक शख्स कहता था, सो

सही बात थी। चरखे पर खूब विचार करके ही एक शास्त्री ने गीता का यह श्लोक उद्धृत किया कि

'नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्[1] ॥'

यह चरखे पर पूरी तरह लागू होता है।'

गांधीजी का भाषण पूरा हुआ और उनके आभार-प्रदर्शन में अध्यापक भिड़े ने एक ही सुन्दर अर्थपूर्ण वाक्य कहा: 'पूर्णिमा की चन्द्रिका जैसे आकाश को भर रही है, वैसे ही गांधीजी का यह व्याख्यान आपके हृदयों को भर दे।'

१०-१-'२५
११-१-'२५

आपज की पहाड़ी पर

आपज १० तारीख[2] को आये।

पट्टणी साहब और गांधीजी दोनों की ज्ञानगोष्ठी और कातने के प्रयोगों का वर्णन करने लगूँ तो एक नया प्रकरण लिखना पड़ेगा। पट्टणी साहब के अनेक विनोद, बालोचित सरलता और गांधीजी के लिए गहरे भाव भावनगर में जितने देखने बाकी रह गये थे, वे यहाँ देखे। जितनी सहजता से उन्होंने गांधीजी को मानपत्र देते समय किये गये भाषण में वह महाभारत की अनुपम कथा सुनायी थी, उतनी ही सरलता से वे बात-बात में महाभारत, भागवत के अनेक किस्से कहते हैं। उनका खादी का काव्य बहुतों ने देखा है, परन्तु वह तो उन्हें खादी पहनने का शौक लगा, उससे पहले का है। अब चरखे का स्वाद लगने के बाद और खादी पहनने लगने के बाद उन्हें जो काव्य स्फुरित होगा, वह कुछ और ही होगा। क्योंकि खादी का काव्य ही उनका अकेला काव्य नहीं है। वे अपने मन के अनुरंजन के लिए बैठे-बैठे अनेक काव्य बनाते हैं। कभी अपने घर के छोटे बच्चों को बाजार का रास सुनते देखें, तो उनके लिए सुन्दर रास बना दें, तो कभी आस-पास की परिस्थिति से उकताकर अपने मन का दुःख उस स्थिति के बारे

---

१. कर्ममार्ग में प्रयोग करनेवाले को दोष नहीं लगता। आरम्भ का नाश नहीं। इस धर्म का जरा-सा भी पालन महाभय से बचा लेता है। यह राजमार्ग है। सहज मार्ग है। राजयोग है। इस मार्ग में किसीको ठोकर लगने की तो बात है ही नहीं। आरम्भ करने के बाद कोई अड़चन नहीं। (गीता, अ० २, श्लो० ४०)

२. ता० १०-१-'२५।

में रास बनाकर और खूब हँसकर हलका कर लें। प्रभु की लीलामयी सृष्टि में विनोद का तत्त्व तो जहाँ जायँ वहाँ भरा ही है, इसका जो पूरा उपयोग करना जानता है, वह कभी दुःखी नहीं होता—पट्टणी साहब ने इसका कुछ अनुभव किया मालूम होता है। 'गांधी का चरखा जब घर-घर घूमेगा, तब बीते दिन फिर आयेंगे होजी' यह भजन सुना, तब ऐसा लगा कि आजकल के नये लोकगीतों में यह कोई होगा और वे दिल बहलाने को गाते होंगे। परन्तु जब अनेक विषयों पर भिन्न-भिन्न अवसरों पर बनाये हुए गीत उन्हें गाते सुना, तब कल्पना हुई कि अधिकार के कारण आम लोगों से अलग रहने पर भी वे आम लोगों के साथ कितने घुल-मिल सकते हैं।

परन्तु पट्टणी साहब का चरित्र-चित्रण करने का या उनकी काव्य-शक्ति वर्णन करने का यह अवसर नहीं है। भावनगर में गांधीजी और उनकी नयी मैत्री हुई, यह कहा जाता है और मैंने तो यह भी सुना कि 'परिषद् भावनगर में हुई और पट्टणी की सहानुभूति लेकर गांधी ने काठियावाड़ में ४०-५० हजार की खादी खपाने का रास्ता निकाल लिया और पट्टणी ने गांधी से अपने राज्य में एक वर्ष के लिए शान्ति खरीद ली।' इसमें परिणामों में वर्णित सत्य मुझे स्वीकार है, केवल कारण और हेतु का विचार दूषित है। राज्य की शान्ति खरीदने के लिए चरखा कातने की प्रतिज्ञा लेनेवाले अधिकारी तो ये पहले ही देखे गये। और मान लीजिए कि यह शान्ति खरीदने के लिए हो तो भी उसके उपाय के रूप में ऐसी पुण्य-प्रतिज्ञा करने में पाप क्या है? परन्तु इस इरादे से जो प्रतिज्ञा ली गयी हो, उसमें कृत्रिमता होती है। पट्टणी साहब की प्रतिज्ञा में लेशमात्र कृत्रिमता नहीं थी, यह आपज में प्रत्यक्ष देखा। उन्होंने सहज भाव से चरखा उठा लिया और गांधीजी से पहला पाठ लेने के बाद तुरन्त ही वे अपने कमरे में उठा ले गये और दिनभर उसे चलाते रहे। किसीको लगेगा कि नया विद्यार्थी बहुत पढ़ने लगे तो थकेगा! इसके उत्तर में वे बोले: 'मुझे इसमें थकान लगती ही नहीं। रस आता है और अब देखता हूँ कि जब काम में थककर चूर हो जायँ, तब यह एक मनोरंजन है। एक-सा तार निकलने लगेगा, तब तो मजा भी बढ़ जायगा।' दूसरे ही दिन अपनी मेहनत से निकाला हुआ थोड़ा तार निकालकर गांधीजी को बताया। तीसरे दिन फिर पाठ लिया और इन तीन घण्टे के अभ्यास के बाद उन्होंने दो घण्टे में ४८ गज सूत काता तथा आखिरी दिन एक घण्टे

में २५ गज काता। यह एक-सा और वलदार था। मैंने कहा: 'इतना वढ़िया सूत इतनी जल्दी निकालना और लोग शायद ही सीखते हैं और कुछ वातें तो उन्हें अपने-आप ही समझ में आ जाती हैं।' गांधीजी कहते हैं: 'इसके विना वड़े राज्य का संचालन किया होगा?' पट्टणी साहव वोले: 'सूत अव निकलता तो अच्छा है, परन्तु तार वहुत टूटते हैं, इसलिए जितना कतता है, उतना ही विगड़ता है।' यह सुनकर गांधीजी ऐसी उपमा, जो पट्टणी साहव को अच्छी लगे, देकर कहते हैं: 'यह तो ऐसा है, जैसे भारत से विलायत और विलायत से भारत के वीच वहुत-सा पत्र-व्यवहार हुआ। फिर जैसे परिणामस्वरूप छोटी 'स्वराज्य योजना' वनती है, वैसा ही है। सुन्दर सूत तो स्वराज्य-योजना है और टूटे हुए तार पत्र-व्यवहार। एक मसौदा तैयार करते हैं, तव कितने रद्द करने के वाद सही मसौदा तैयार होता है!'

यहाँ पहाड़ी पर भी आसपास के गाँवों के लोग आते ही रहते थे। उनमें किसान भी थे। विषय-समिति में या परिषद् में किसान ज्यादा नहीं दीखते थे। वाँस जैसे सीधे, ऊँचे और चिकने, पजामा, अंगरखा और साफा वाँधे हुए किसानों को असली ठेठ काठियावाड़ी भाषा वोलते देखने की लालसा तो इस त्रापज की पहाड़ी पर ही पूरी हुई। दो वूढ़े किसान गांधीजी से मिलने आयी हुई एक गाँव की मण्डली के साथ आये थे। उन्होंने गांधीजी को चकित कर दिया। 'महाराज, इन परदेशी कपड़ों से तो लोगों की मर्यादा जाती रही। मोटी खादी से ही मर्यादा रहेगी। हमारे यहाँ का एक वनिये का छोकरा वारीक विलायती कपड़े पहनना सीख गया है, सो ऐसा खराव लगता है! वहन-वेटी की लाज कैसे रहे? मोटा साफा दो वर्ष काम में ले लें और फिर उसके गुदड़े भर लें तो वे पाँच वरस चलें, चादर भी वन जाय और खेत में से अनाज वाँधकर लाने के काम में भी आ जाय। ठंड में परदेशी कपड़े से कोई ठंड चली जाती है? खादी के दो पहन लिये कि ठंड तो भागती फिरे।' यह सव उनकी दलीलें थीं, भाषा नहीं। वह भाषा तो कोई काठियावाड़ी ही उद्धृत कर सकता है। इन लोगों को देखकर गांधीजी पट्टणी साहव से कहते हैं: 'इन लोगों से मैं क्या कहूँ? ये तो मुझे एक सुन्दर भाषण दे गये।'

यहाँ से निकलने के पहले गांधीजी त्रापज गाँव हो आये। पट्टणी साहव भी साथ थे ही। गाँव के लोगों के सामने गांधीजी ने सीधा हिसाव रखा:

'आपके सामने भाषण नहीं करूँगा, परन्तु थोड़ा-सा हिसाव रखता

हूँ। यहाँ हिन्दू-मुसलमान सबको मिलाकर २,५०० मनुष्यों की आबादी है। आप महाराजा को ४,००० रु० लगान देते हैं। मैं ऐसी बात करनेवाला हूँ, जिससे यह लगान माफ हो जाय। पट्टणी साहब माफ नहीं करेंगे। ये ऐसा करें तो खजाना खाली हो जाय।

'यहाँ एक सज्जन ने कहा कि इनका कपड़े का वार्षिक खर्च ३० रुपये है। आप सबका इतना हो तो गाँव टिक नहीं सकता। पट्टणी साहब का आपके लगान के बराबर खर्च होगा। आपका खर्च १० रुपये मान लें तो आप २५,००० रुपये का कपड़ा बनायें और ४,००० लगान के दे दें। इस प्रकार २१,००० रुपये बचते हैं। इसमें से ७,००० रुपये रूई के मानें, तो १४,००० खालिस बच जाते हैं। इसका उपाय यह है कि आप अपनी रूई जमा करके रख लें, उसका सूत कातें और कपड़े बुन लें। आप कोई रोटी के बजाय दिल्ली से बिस्कुट थोड़े ही मँगाते हैं? आज जैसे आपके पास चूल्हा है, वैसे चरखा भी था। आजकल विलायती कपड़े मँगाते हैं। अहमदाबाद से मँगायें तो भी आपके लिए विलायती ही होगा। आप अहमदाबाद रुपया भेजें तो भी काम नहीं चल सकता, क्योंकि यह घर जलाकर तीर्थ करने जैसा हो जाता है। खादी तो यहीं की होगी, अहमदाबाद से नहीं आ सकती। आपने पट्टणी साहब की बहुत तारीफें सुनीं। परन्तु अधिक बढ़िया तारीफ तो यह है कि पट्टणी साहब कातते हैं। बालकों ने राष्ट्रीय झण्डे पर चरखे का चित्र बनाया है। यह झण्डे का चित्र बनाने से झण्डा नहीं मिलेगा, परन्तु आप सब कातें, तो झण्डा प्राप्त कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप पट्टणी साहब के साथ स्पर्धा करें। इतनी-सी एक बात में आप उन्हें निशाना बनायें। ऐसा करके २५,००० रुपये बाहर जाने से बचायें।'

पट्टणी साहब ने दो ही वचन कहे, परन्तु वे उल्लेखनीय हैं: 'मैं आपका गाँव, आपका स्कूल कई बार देख चुका हूँ। परन्तु अब आऊँगा, तब इसीकी पहले जाँच करूँगा कि आपके गाँव में कितने चरखे चलते हैं।' लोग इतनी बात तो समझ गये कि २० मन रूई घड़ीभर में लोगों ने देना मंजूर कर लिया। प्रत्येक २,५०० की आबादीवाले गाँव में २० मन रूई लोग दान कर सकें तब रूई का प्रश्न तो तुरन्त ही हल हो जाय।

वापस आते हुए रास्ते में यों ही बातचीत हो रही थी। गांधीजी बोले: 'सन् १९०१ में काशी विश्वनाथ देखने गया था। वहाँ पण्डे को एक पाई दी थी और उसके कारण मुझ पर गालियों की वर्षा हुई थी। फिर

भी वहाँ से चलने लगा, तव वापस वुला लिया ! उस समय तो थोड़े ही पैसे जेब में लेकर तीसरे दर्जे का सफर करता था। आज आपसे इतना खर्च कराकर वापस जाता हूँ।' इस पर पट्टणी साहब कहते हैं: 'अब खर्च! इसका सदुपयोग होता है। नहीं तो यह कहीं भी वुरे रास्ते चला जाता। उससे तो अच्छा ही है।'

पट्टणी साहब ने अपने अनुभव की वातें कीं: 'एक वार डाकोर गया था। वहाँ जगह-जगह रुपया चढ़ाया। अन्त में निकलते समय पण्डे पैरों पड़े और वोले: 'यहाँ आनेवाले हजारों मनुष्यों में क्रोध न करके जानेवाले आप अकेले ही हैं। एक आदमी २,००० रुपये की मानता लेकर आया था। वह गालियाँ देकर २,००० वापस ले गया'।' फिर कहते हैं: 'आप लँगोटी पहनायेंगे तो लँगोटी पहनूँगा। यह कहेंगे कि तूने राज वहुत भोग लिया, अव पहन लँगोटी। तो लँगोटी पहन लूँगा।'

वापू ने पूछा: 'आपको भावनगर के सव कार्यकर्ताओं में अच्छा कौन लगता है?' जवाव: 'एक वल्लभभाई——और कोई नहीं!'

दूसरे दिन रात को वँगले में खूव वातें हुई। उन्होंने अपने भजन गाये। सवसे पहले यह:

गांधी का चरखा जव घर-घर चलेगा प्यारा,
हिन्द का राज्य तव तरेगा होजी ।। १ ।।

अहिंसा का जाप होगा, मोटे कपड़े पहनेंगे,
तव ये गोरे थर-थर काँपेंगे होजी ।। २ ।।

हिन्दू-मुस्लिम मिलेंगे, जातियों का गर्व मिटेगा,
सच्चा स्वराज्य तव मिलेगा होजी ।। ३ ।।

पढ़ाई में धर्म मिलेगा, झूठे आडम्वर हटेंगे,
तव वीते दिन वापस आयेंगे होजी ।। ४ ।।

पदवी विल्ले छूटेंगे, नौकरी ठुकरायेंगे,
सच्चा स्वातन्त्र्य फैलेगा होजी ।। ५ ।।

कड़वी भाषा छूटेगी, शान्ति से मन जोड़ेंगे,
सत्ता की रस्सी टूटेगी होजी ।। ६ ।।

मारे तो मार खायें, गांधी का मंत्र गायें,
वह जल्दी मदद करेगा दौड़कर मावो होजी ।। ७ ।।

लालच को छोड़ देंगे, दुःखों में मन लगेगा,
सुख में फाँसी पर रहेंगे होजी ॥८॥

कैदी तो कैदी होना, हँसते फाँसी पर जाना,
मरते-मरते स्वदेश-गीत गाना होजी ॥९॥

फिर दूसरा भजन :

वैकुण्ठ से एक पत्र आया रे
लिखे माता लक्ष्मीजी खास
—गांधी की चिन्ता मत करना रे

जैसे दौड़े गजेन्द्र टेर सुनी प्रभु
वैसे गांधी के लिए हैं तैयार —गांधी की···

पार्थ-कृष्ण जैसी थी जोड़ी रे
वैसे मोहन-मोहन पितराई —गांधी की···

फिक्र एकान्तवास की न करो रे
इसके साथ हैं नन्दकिशोर —गांधी की···

कारागृह की अँधेरी कोठरी रे
उसे लगती है स्वर्ग समान —गांधी की···

वसुदेव देवकी की कैद से रे
गया कंस महाराज का राज —गांधी की···

ऐसे ही गांधीजी के जेलवास से रे
मिल जायगा इस हिन्द को स्वराज्य —गांधी की···

(यह लिखना चाहिए कि अंग्रेजों का राज जाय, परन्तु लिखा जा सकता है ?)

शरीर बन्द तो भी जीव उसका मुक्त रे
हृदय-हृदय में होती है झंकार —गांधी की···

एक सूखी लकड़ी शरीर रे
तो भी घबराता सम्राज —गांधी की···

यह दूसरा गीत ११ तारीख को गाया गया—'एक रास-गीत।' १० को यह गीत गाया गया।

जन-हृदय में पैठकर, दुःख में हाथ वटाऊँ।
वन पड़े तो शान्ति करूँ या अश्रु-स्नान कराऊँ ।।
दिखाओ उपाय कोई ऐसा, वनूं दुःखभागी मैं वैसा।

मृग को मार कुटी पधारे, दिखी न सीता नार।
'सीते ! हे सीते !' रटते रोये, नयनों वही अश्रुधार ।।
पति वनूं ऐसा था सती सीता का जैसा।

तंतु-तंतु कर चीर वढ़ाया, द्रौपदी की राखी लाज।
शक्ति थी सहस्र हाथ की, पर आया दुःशासन वाज ।।
प्रभु वनूं तो ऐसा वनूं, पांचाली को प्रस्तुत जैसा।

पृथ्वी नापी दो चरणों से, तीजे से नापा आकाश।
समझ-वूझकर वलि राजा ने, छलना में माना लाभांश ।।
वनूं दानी ऐसा कि द्विज वामन को वलि जैसा।

कान में वाक्य पड़ा जव, 'राम गया वनवास'।
दशरथ ने प्राण तजे, जीवन की मिट गयी आस ।।
वनूं तात ऐसा था रघुवीर का जैसा।

नन्द-यशोदा की जीवन-डोरी, गोपीजन का प्राण।
व्याकुल किया व्रज सारा जिसने, छेड़ी मुरली की तान ।।
वाल वनूं मैं ऐसा, व्रज में जैसा नन्दकिशोर।

मुट्ठीभर चूड़ा लेकर दे दिया कुवेर का द्रव्य।
नाथ के हाथों हँसते हुए कहीं माना नहीं अपसव्य ।।
मित्र मिले तो ऐसा जैसे, सुदामा को माधव।

ईश्वररूप पति को समझें ऐसी देखी हजारों नारी।
हद कर दी अजामिल-पत्नी ने जो थी अद्‌भुत आज्ञाधारी ।।
सती मिले तो ऐसी मिले, जैसी मिली अजामिल को।

अन्तिम पद गाते हुए वोले : 'यह गांधीजी को तो पसन्द नहीं आयेगा, परन्तु अव कह तो दूं।' वापू कहते हैं : 'मिले, मिले ! कोई स्त्री इसे स्वीकार नहीं कर सकती।'*

---

* अजामिल की कथा ऐसी है कि वह एक गृहस्थ था। वह एक नीच स्त्री के संसर्ग में आया। उसने घर छोड़ा और उसके साथ जाकर रहा और घर वसाया। उसे बच्चे हुए।

इसके वाद वातें चलीं। 'डींडवाणुं' शव्द और 'वेवलां' के अर्थ की चर्चा हुई।

वाद में पट्टणी साहव ने 'कुछ फिकर नहीं' का एक किस्सा सुनाया।

'सन् १५ में कैसरे हिन्द तमगा लेने के लिए वापू पूना गये थे। तव दरवार में मैं उनसे मिला था। वापू को रात की गाड़ी से जाना था, इसलिए वे तो उठ गये। मैं भी उठा और उन्हें स्टेशन ले गया। एक तीसरे दर्जे का डिव्वा सिपाहियों से भरा हुआ था। वापू अन्दर जाने लगे तो वह सिपाही सामने संगीन दिखाकर खड़ा रहा। वापू वोले: 'कुछ फिकर नहीं' और भीतर घुसकर एक सिपाही के पैरों के सामने वैठ गये। हमने कहा: 'कहाँ वैठेंगे?' तो कहते हैं: 'कुछ फिकर नहीं।' फिर गाड़ी चलने का समय हो गया। मैंने जाते-जाते कहा: 'अव तो तृप्त हो गये? और किसी डिव्वे में चलिए।' तो कहते हैं: 'कुछ फिकर नहीं।' आप सव तो साथ में इतने ज्यादा रहते हैं, परन्तु मैं तो थोड़े में इन्हें समझ गया था। 'कुछ फिकर नहीं'।'

फिर नारणदास संघाणी की वात को लक्ष्य करके कहते हैं: 'आपने जव संघाणी को वेटा कहा, तव भगवान् राजाओं के दरवार में चरणामृत लेने खड़े रहे थे, उसका किस्सा याद आता है। शिशुपाल ने यों पैर पसार दिया। भगवान् ने अँगूठा धो लिया। फिर वह कहता है: 'घुटने से धोकर पी।' इस पर कृष्ण वोले: 'महाराज, यहाँ सवके घुटने इस प्रकार धोकर पीने लगूँ तो अन्त ही न आये। मेरे घर आइए, सत्यभामा और राधा और हम सव आपको नख-शिख नहलायेंगे।' आपने भी उस नारणिया के लिए ऐसा ही किया।

'एक और वात कहूँ: कृष्ण ने कौरव-पाण्डवों को अच्छी तरह लड़ाया और अन्त में अशान्ति पैदा कर ली अपने कुल में। आपने अशान्ति पैदा कर ली असहयोगियों में और ये सव झगड़े हुए। कृष्ण भगवान् अन्त में

उनमें सवसे छोटे का नाम नारायण था। यह उसे वहुत प्रिय था। अपने अन्तकाल के समय अजामिल ने 'नारायण' 'नारायण' कहकर पुकारा और पुत्र को वुलाया। यह सुनकर अजामिल को लेने आये हुए यमदूत वापस चले गये। इस प्रकार इस कथा में नारायण की महिमा वतायी गयी है।

परन्तु इसमें उसकी विवाहिता स्त्री की वात नहीं आती। इसलिए पट्टणी साहव के भजन के अन्तिम भाग में उसका उल्लेख समझ में नहीं आता। सं०

हरिणी की मौत मरे। आप हिमालय में जाने की बात करते हैं। परन्तु देख लेना। यदि वहाँ गये तो वहाँ आकर खड़ा हो जाऊँगा और कहूँगा: 'और सब हो सकेगा, परन्तु यह नहीं'।'

लक्ष्मी* का प्रसंग—उसके साथ नाश्ता—फिर लक्ष्मी कहती है: 'इतने-से एक नाश्ते के लिए चार रकाबियाँ?' पट्टणी साहब हँसते-हँसते बोले: 'बहन, बड़े आदमी फिर कैसे कहलायें? छोटी चीज को बड़ी करके दिखायें!'

दूसरे दिन रात को मेरी खूब बातें हुईं। लॉर्ड मॉर्ले के बारे में कहते हैं: 'सन् १९१० में बातें हुई थीं। ताजा ही लॉर्ड बना था। वह ऐसा आदमी था, जिसके साथ बातें करने को बहुत जी चाहता है। दरबार करने की बातें चल रही थीं। यह आदमी ऐसा था कि उसे कुछ भी कहने में संकोच नहीं होता। जी हलका किया जा सके और वह उसका दुरुपयोग न करे। मुझसे कहता है: 'तेरी क्या राय है?' मैंने कहा: 'राजाओं का दरबार मत करो, लड़ाई करेंगे, ईर्ष्या-द्वेष बढ़ेगा।' महाभारत में भी देखो न दरबारों से लड़ाई हुई। वह बोला: 'यूरोप में भी राजा मिलते हैं तो लड़ाई होती है। परन्तु अब तो क्या करें? ऐसा लगता है कि दरबार जरूर होगा।' सिडनहॅम—बड़ा होशियार आदमी। खराब हो गया होगा, परन्तु खराब था नहीं। अपने पारिवारिक दुःखों के कारण वह बाद में कड़वा हो गया था। लॉर्ड पील मुट्ठीभर लगता था, मगर व्यवहार-कुशल था।

'विलिंग्डन अच्छा और खिलाड़ी तबीयतवाला। कौंसिल में उपाध्यक्ष एक अंग्रेज को बना दिया। मैं ऊँचे दरजे का सदस्य था, इसलिए इस बारे में खूब चर्चा हुई। मैंने शेपर्ड से कहा कि 'भाई, तुझे ऊपर का दरजा भोगना हो, तो भले ही भोग ले, परन्तु मैं सिद्धान्त की खातिर लड़ना चाहता हूँ।' सारा मामला हार्डिंग के पास गया। उसने जवाब दिया कि 'मैं पट्टणी के साथ पूरी तरह सहमत हूँ। और ऐसी व्यवस्था कर रहा हूँ कि इस मामले में कोई प्रश्न ही न उठे।' वह पत्र आया तो विलिंग्डन ने मुझे अपनी मोटर भेजी। रविवार था तो भी—घर बुलाया और पत्र दिखाकर बोला: 'अन्त में आप जीते।' ऐसा खिलाड़ी दिलवाला था। अक्सर वह मेरी राय मान लेता था। फिर पूछता है: 'बोल, क्या

* गांधीजी की मानी हुई पुत्री। वह हरिजन थी।

लिखूं ?' मैं बोला : 'लिख कि माननीय सदस्य के साथ मेरी बात हुई है और मैं उनके साथ सहमत हूँ ।'

'सिडनहॅम के साथ टंटा दो बार हुआ—एक बार तब, जब पब्लिक सर्विस कमीशन आया था । बम्बई सरकार ने एक गुप्त योजना तैयार की थी—जिसमें छह भारतीयों को सनदी नौकरी में लेने की बात थी । छोटे आठ वर्ष के हों, तब उन्हें विलायत भेजा जाय और उन्हें शिक्षा देकर यहाँ लाया जाय । (इनके बारे की मेरी निजी टिप्पणी की नकल मेरे निजी कागजों में रणजीतराम के अक्षरों में लिखी हुई है ।) मैं विरुद्ध हो गया था । खूब चर्चा के बाद बहुमत से मुझे हरा दिया । परन्तु वह बहुत नाराज हुआ । मैंने कहा : 'परन्तु यह काम नहीं आयेगी । आपको जिरह करानी पड़ेगी ।' फिर मैं एक सदस्य से मिला । उसने कहा : 'हाँ, हम तो जिरह करेंगे ।' मैंने कहा : 'आपके साथ सहमत नहीं होता, तो भी बहुमत की राय स्वीकार करता हूँ ।' यह सिद्धान्त उसे बहुत पसन्द आया था और उसने मुझे बधाई दी थी ।

'दूसरे अवसर पर जातीय प्रतिनिधित्व के बारे में बातें हो रही थीं । लेडी सिडनहॅम भी मौजूद थीं । उसका पति सारी दलीलें जातीय प्रतिनिधित्व के पक्ष में दे रहा था । मैंने कहा : 'आप जात-पाँत की पद्धति की निन्दा करते हैं तो फिर ऐसा करके आप उसीको राजनैतिक दृष्टि से किसलिए माँगते हैं' ?'

गांधीजी के सम्बन्ध की बात करते हुए बोले : 'सन् १९०४ में मैं विलायत गया था, तब सर बेनेट से मिला था । उससे मैंने दक्षिण अफ्रीका के बारे में कहा था और बाद में पूछा था कि 'केनेडा और ऑस्ट्रेलिया लड़ें तो मदर कन्ट्री देखती रहेगी क्या? इसी प्रकार भारत और दक्षिण अफ्रीका के बीच झगड़ा हुआ है । तो मदर कन्ट्री कैसे देख रही है ?' यह बात बेनेट ने एंपथिल से कही और उससे गांधीजी ने सुनी तो उन्होंने मुझे बधाई दी और लिखा : 'अन्यत्र आप जहाँ मत फैला सकें, वहाँ फैलाइए ।' पत्र छोटा था, मैंने उत्तर दिया : 'मेरी वर्तमान स्थिति ऐसी है कि मैं अधिक क्या कर सकता हूँ ?' उन्होंने उत्तर में लिखा : 'आपकी बेनेट की बात से आप पर फिदा हो गया था, परन्तु आपके पत्र के पिछले भाग से मेरा मोह दूर हो गया ।' मैंने कान पकड़े थे और इसे मैं अभी तक भूला नहीं हूँ ।'

सर···के लिए कहते हैं: 'वह नीच-से-नीच और विलकुल झूठा था। मॉण्टेग्यु ने मेरी नियुक्ति की थी। उसकी नीयत राजपुत्रों को मुझसे जुदा करने की थी। एक दिन कहता है कि 'मैंने वाइसराय से पुछवाया है और वे भी मेरे मत के हैं।' इस पर मैंने अपनी स्त्री से कहा कि 'राज लेना है और राजपुत्रों को खोना है या राजपुत्र लेने हैं और राज्य को खोना है?' वह वोली: 'राजपुत्र लेने हैं।' मैंने लिख दिया कि 'मुझसे सेवा नहीं हो सकती। भावनगर में मैं विघ्न खड़ा नहीं करूँगा। परन्तु इस शर्त पर सेवा नहीं दी जा सकती।' इस पर वह घवराया, नाराज हुआ और अन्त में केरार से कहता है कि 'उसे वुलाकर कहा कि कुछ गलतफहमी हुई है। प्रशासन के मुखिया की हैसियत से तो राजपुत्रों की देखभाल आपको ही करनी है।' इस पर केरार के साथ मजेदार वात हुई। मैंने उससे कहा कि 'गलतफहमी किसी वात की भी नहीं हुई'।'

फिर फौलादी चौकटे के अफसरों के वारे में वातें हुईं। कहते हैं कि 'सर जेम्स डोवली और प्रोक्टर जैसे कोई नहीं देखे गये। सर जेम्स ने उस वनारसवाली घटना के वारे में हार्डिंग से कहा था कि 'अखवार-वाले तो कुछ भी कहें, उस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं।' For rather I would have ten Hardinges dead than...... यह वाक्य पूरा ही नहीं हुआ था कि श्रीमती वेसेण्ट ने शोर मचा दिया था।'*

---

* सन् १९१६ के फरवरी मास में वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भवन के शिलान्यास-समारोह के समय नियोजित व्याख्यानमाला में गांधीजी ने ता० ६-२-'१६ को एक व्याख्यान दिया था। उस समय वनारस में खुफिया पुलिस फिरती थी। वाइसराय को ऐसी पुलिस का संरक्षण ढूँढना पड़े या पुलिस को देना पड़े, यह जीते-जी मरने के समान है, यह कहकर गांधीजी वोले थे: 'Is it not better that even Lord Hardinge should die than live a living death.' इसके विरुद्ध एनी वेसंट ने शोर मचा दिया था। महादेवभाई की डायरी में पट्टणीजी ने 'For rather I would have ten Hardinges dead than...' ऐसा कहा, यह लिखा है। इन दोनों प्रकार के शब्दों में निहित स्वार्थ एक ही है, परन्तु पट्टणीजी के वोले हुए यही शब्द कहीं दर्ज हुए मालूम नहीं होते। थोड़े-बहुत वाक्य वोलने के वाद गांधीजी को शोर-गुल के कारण अपना वक्तव्य अधूरा छोड़ देना पड़ा था। सं०

मैंने मर्फी और विहार के गवर्नर की वातें की थीं कि वे बढ़िया आदमी थे ।

फिर भावनगर में

अहमदावाद लौटते हुए गांधीजी भावनगर के रास्ते से आये, तब उनके लिए भावनगर में एक सभा तो रखी ही गयी थी । वहाँ भी गांधीजी चरखे और अस्पृश्यता के विषय में ही वोले और पट्टणी साहव के कातने के अनुभव के वारे में कहा । धार्मिक श्रावकों को सम्वोधन करते हुए कहा : 'आप चींटी के विल भरते हैं, सो चींटी का पेट भरने के लिए; परन्तु चींटी अपना पेट भरने के लिए कुछ माँगती नहीं, क्योंकि उसका पेट भरनेवाला मौजूद है । फिर चींटी में आलस्य नहीं है । चींटी और मक्खी जैसे जन्तु तो हमें उद्यम सिखाते हैं । यदि उनकी नकल करें, तो हमारी भुखमरी खत्म हो जाय । इसलिए चींटियों को आटा डालना छोड़ देंगे तो प्रभु आपको माफ कर देगा, परन्तु आप कातेंगे नहीं तो यह समझ लीजिए कि ईश्वर आपसे जरूर पूछेगा ।'

अस्पृश्यता पर वोलते हुए कहा :

'शान्ति और सभ्यता का धर्म सीखना है । सवको अपने-अपने धर्म का पालन करना होगा । जो मनुष्य अछूतपन को अपना धर्म समझे, वह भले ही उसे निभाये। हम अपना धर्म पालन करें । शान्ति और सभ्यता से पालन करेंगे तो किसी दिन वह सुधर जायगा । हम अस्पृश्यता का सर्वथा त्याग करें, यही उपाय है । मैं वेटी-व्यवहार या रोटी-व्यवहार नहीं चाहता, यह अनेक वार कह चुका हूँ । मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि आपका भाई या लड़का वीमार हो और आप उसकी सेवा करें, वैसी ही अछूत वालक की भी कीजिए । इतना ही नहीं, वल्कि अपने आदमी की अपेक्षा अन्त्यज की सेवा पहले कीजिए, क्योंकि उसकी सेवा करनेवाला कोई नहीं होगा और आप लोगों की सेवा करनेवाले तो वहुत होंगे । इसमें सभ्यता है । इसमें पार उतरने की वात है । इसमें हिन्दू-धर्म है । इतनी सेवा करके आप अस्पृश्यता को धर्म माननेवाले की भी सेवा कीजिए, परन्तु उससे यह पाप छुड़ाने के लिए अत्याचार न करना ।'

पट्टणी साहव का भाषण यहाँ भी उल्लेखनीय है । उन्होंने कहा :

'अधिकार भोगनेवालों को आज आज्ञा के अधीन होने का समय आ गया है । मैंने महात्माजी के साथ इतने दिन विताये । एक ही हवा में

रहनेवाले को दूसरी हवा में रहने की बड़ी जरूरत है और इन चार दिनों की हवा में रहकर मैं तो अधिक पवित्र हो गया हूँ ।' यह बोलते-बोलते वे गद्गद हो गये । 'मैंने चरखा कातने का निश्चय किया, सो इस विचार से कि आपको चौबीस घंटे देता रहूँ और गांधीजी ने जो आधा घंटा माँगा, वह न दूँ तो मेरे बारे में अच्छा नहीं कहा जायगा। गांधीजी कहते हैं कि एक महीने में मैं बड़ा कुशल कातनेवाला बन जाऊँगा । परन्तु मैं बड़ा कातनेवाला बन जाऊँ, इसकी अपेक्षा मुझे गांधीजी का दिया हुआ चरखा कातते देखकर अनेक कातनेवाले बन जायँ तो वह अच्छा । इसमें कोई राजनैतिक बात नहीं है । यह देश का दारिद्रय मिटाने का साधन है । इसके बिना सनातन धर्म और दूसरी बातें फजूल हैं । उन्होंने ऐसे दो कातनेवालों की माँग की थी, जो चरखे से नाखुश थे । मैं एक मिला तो ५० फीसदी मिले । परन्तु जो खुशी से कात सकते हैं, उनमें से आपने ५० फीसदी भी कहाँ दिये हैं ?'

यह भाषण सुनकर नाखुश कातनेवालों के सौ फीसदी पूरा करने के लिए शहर के नगरसेठ उठे । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे पट्टणी साहब के शिष्य बनकर आधा घंटा नियमित कातेंगे । पट्टणी साहब हँसते-हँसते बोले : 'मुझे मंद विद्यार्थी दिया ।'

इसके बाद लगभग २७५ मन रूई एकत्रित होने की घोषणा हुई और ५४ कातनेवालों के नाम घोषित किये गये ।

पदवीदान-समारोह*

भावनगर से आकर तुरन्त गांधीजी विद्यापीठ के कुलपति के रूप में नये स्नातकों को पदवीदान करने गये । यह समारोह शान्त ढंग से हुआ । आरम्भ में महामात्र ने अपना विवरण पढ़कर सुनाया ।

इसके बाद प्रत्येक पदवीदान-समारंभ के समय जो मंत्र बोले जाते हैं, वे अर्थसहित बोले गये और कुरान शरीफ की पहली आयतें पढ़ी गयीं । बाद में नियमानुसार महामात्र ने स्नातकों को नीचे लिखी प्रतिज्ञा दिलायी, जो उन्होंने ली :

'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन-पर्यन्त अपने धर्म का पालन करने और अपने विद्यापीठ, देश और भाषा की प्रतिष्ठा बढ़े, इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहूँगा । परमात्मा की कृपा और गुरुजनों के आशीर्वाद से मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी हो ।'

---

* यह समारोह ता० १४-१-'२५ को हुआ था।

इसके वाद गांधीजी ने सबको पदवी के प्रमाणपत्र प्रदान किये और फिर नीचे लिखे अनुसार भाषण दिया :

'विद्यार्थीगण, भाइयो और वहनो,

'आप विद्यार्थियों ने आज जो पदवी प्राप्त की है, उसके लिए मैं आपको वधाई देता हूँ और आशा है कि आप ली हुई प्रतिज्ञा को पूरा करेंगे। ऐसे अवसर जव-जव आते हैं, तव-तव साधारण संस्थाओं में यह उल्लेख किया जाता है कि इस वर्ष विद्यार्थियों और शिक्षकों की संख्या वढ़ी। हर प्रकार से प्रवृत्ति वढ़ी। आज महामात्र ने रिपोर्ट पढ़ी, तव आपने देखा कि इस विद्यापीठ के चार वर्ष के कार्यकाल में संख्या घटती रही है। आम तौर पर इससे निराशा होती है, परन्तु मुझे निराशा नहीं हुई। इतना स्वीकार कर लूं कि हम अधिक विद्यार्थी-संख्या वता सके होते अथवा दूसरी तरह, जिसे दुनिया प्रगति कहती है, वह दिखा सके होते, तो मैं खुश होता। यह नहीं कह सकता कि आज की स्थिति से मैं खुश हो रहा हूँ, परन्तु मैं निराश न होता। मैंने और वहुत लोगों ने यह आशा तो जरूर रखी थी कि यह कार्य हमें एक ही वर्ष चलाना पड़ेगा, और एक वर्ष के अन्त में तो जिन संस्थाओं में से आप निकले थे, उन्हींमें शिक्षा प्राप्त करने लगेंगे। एक के वजाय तो चार वर्ष हो गये और अव कितने वर्ष यह देशनिकाला भोगना पड़ेगा, यह नहीं कहा जा सकता। मैं तो अव यह राय रखने लगा हूँ कि यह देशनिकाला ही नहीं है। कदाचित् स्वराज्य मिलने पर भी ऐसी कितनी ही संस्थाएँ सरकार से स्वतंत्र चलती होंगी। उस समय तवदीली इतनी होगी कि इन संस्थाओं को सरकारी संस्थाओं के साथ स्पर्धा नहीं करनी होगी, सरकारी संस्थाएँ विरोधी नहीं मानी जायँगी; त्याज्य नहीं समझी जायँगी। फिर भी उस समय भी अनेक प्रयोग तो होते ही रहेंगे और उनमें ऐसे विद्यापीठों और महाविद्यालयों को भी स्थान रहेगा। इसलिए मुझे आशा है कि जो विद्यार्थी महाविद्यालय में और विद्यापीठ के आश्रय में पढ़ते हैं, वे किसी प्रकार निराश नहीं होंगे। और वे यह न समझेंगे कि यहाँ पढ़े, तो इतने वर्ष हमारे वेकार गये।

'आज सवेरे मैं आश्रम पहुँचा। वहाँ एक पोस्टकार्ड आया हुआ था। उसमें महाविद्यालय पर आक्षेप किये गये थे। पोस्टकार्ड गुमनाम था। मैं कई वार 'नवजीवन' में आलोचना कर चुका हूँ कि कोई भी मनुष्य गुमनाम पत्र न लिखे। इसमें वेइज्जती है, एक प्रकार की भीरुता है और हमें यह छोड़ देना चाहिए। जो विचार दुनिया के सामने रख देने का

हममें साहस न हो, उन्हें भूल जाना, दफना देना ही अच्छा है। फिर भी यह प्रथा इस देश में कितने ही वर्षों से चली आयी है और कदाचित् अब भी चलती रहेगी। इसलिए वह गुमनाम पत्र मैंने पढ़ लिया। उसमें लिखा है कि 'आप महाविद्यालय को बन्द क्यों नहीं कर देते? आपकी आँखें क्यों नहीं खुलतीं? आपको विद्यार्थी भुलावे में डालते हैं। बहुत-से यहाँ से निकलकर सरकारी संस्थाओं में चले जाते हैं। आप कुछ भी मानें, परन्तु विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों को चरखे पर जरा भी श्रद्धा नहीं है।' मुझे यह सलाह मान्य नहीं। मैं चाहता हूँ कि आपको भी न हो। संसार में प्रत्येक प्रवृत्ति में उसका अन्दाजा इस बात से नहीं लगाया जा सकता कि उसमें कितना रुपया खर्च होता है, कितने आदमी काम करते हैं। इस तरह हिसाब लगाने बैठें, तो भुलावे में पड़ने का भय रहेगा। इस देश में आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति चल रही है, क्योंकि हमने असहयोग को आत्मशुद्धि के रूप में बताया है। इस समय हमारे पास विद्यार्थियों की संख्या बढ़ेगी ही, यह सोचना भूल है। बढ़े तो अच्छा है, न बढ़े तो हमें श्रद्धा रखनी चाहिए; और जब तक हममें विश्वास है, तब तक हमें इस प्रवृत्ति को करते ही रहना चाहिए।

'यह बात सही हो कि विद्यार्थियों को चरखे पर बिलकुल श्रद्धा नहीं, तो यह दुःख की बात है। जिसे चरखे पर श्रद्धा न हो, उसे विद्यापीठ का त्याग कर ही देना चाहिए। महासभा का राष्ट्रीय पाठशालाओं सम्बन्धी प्रस्ताव आपको याद तो होगा ही। उसका स्मरण यहाँ फिर से करा देता हूँ। उसमें राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था की जो व्याख्या की गयी है, उसके प्रति वहाँ एकत्रित लोगों का विरोध नहीं था। विरोध मन में था, फिर भी किसीने प्रकट नहीं किया, ऐसा मानना मेरे लिए, उनके लिए और देश के लिए भी हीनतापूर्ण है। इतने अधिक बुद्धिमान् लोग, स्वतन्त्र मनुष्य और प्रौढ़ व्यक्ति जो सम्मति दें, वह सच्ची नहीं, हार्दिक नहीं, यह मैं कैसे मान सकता हूँ? इसलिए मैं कहता हूँ कि उस व्याख्या में हजारों आदमी सहमत थे। अब काठियावाड़ परिषद् ने भी वह व्याख्या मंजूर कर ली है। वह व्याख्या क्या है? राष्ट्रीय विद्यामंदिरों की गिनती में वही पाठशाला आ सकती है, जिसमें चरखे की प्रवृत्ति होती है; जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी आधा घण्टा चरखा चलाते हैं और दोनों हाथकती, हाथबुनी खादी ही पहनते हैं; जिसमें मातृभाषा या हिन्दुस्तानी द्वारा शिक्षा दी जाती है; जिसमें व्यायाम के लिए पूरा स्थान है; जिसमें आत्म-

रक्षा की कला भी सिखायी जाती है; जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकदिल हों, इसके लिए प्रयत्न किया जाता है; और जिसमें अछूत का किसी भी प्रकार से त्याग नहीं किया जाता। राष्ट्रीय विद्यामन्दिर की यह व्याख्या महासभा ने की है। इसलिए यदि इस समय मैं कहूँ कि जिसे चरखे पर श्रद्धा न हो, उसे विद्यापीठ के आश्रय में चलनेवाली सभी संस्थाओं का त्याग कर देना चाहिए, तो आप यह न समझें कि मैंने अत्यधिक वात कही है। इसीमें प्रगति है। ऐसा करने से हमें यह मालूम हो जायगा कि हम कौन-सी दिशा में जा रहे हैं और हमारे साथ कितने स्त्री-पुरुष और विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियाँ हैं।

''सावरमती' में आये हुए एक लेख की टीका की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया गया था। कुछ शंकाएँ गलत हैं, क्योंकि उनमें आरोपित विचार मैंने किये ही नहीं। यह मैंने नहीं कहा कि विद्यार्थी सारा ही वक्त चरखे को दें। ऐसे विचार मेरे विलकुल हैं ही नहीं, सो वात नहीं। यदि मैं विद्यार्थियों को और देश को समझा सकूँ कि यही स्थिति देश के लिए उत्तम है तो जरूर कहूँ कि तुम सारे समय चरखा चलाओ। परन्तु आज मैं यह वात देश को नहीं समझा सकता। आज तो मैं खुद ही ऐसा नहीं कर सकता। मैं स्वयं सारे समय चरखा चला सकूँ, तव तो देश और विद्यार्थियों को भी कहूँ। मेरा आदर्श तो जरूर यह है कि मैं भारत को बता सकूँ कि चौवीसों घण्टे चरखा चलाने में शुद्ध विद्या निहित है। यों तो कोई भी स्वच्छ वस्तु लेकर वैठ जायँ और उसमें एकाग्रता प्राप्त करें, तो उसमें शुद्ध विद्या निहित है ही, क्योंकि उसमें हम योग की साधना करते हैं। परन्तु मैं यह वात अभी नहीं करता। अभी तो मैं विद्यार्थियों से इतना ही कहता हूँ कि तुम श्रद्धापूर्वक आनन्द से चरखा चलाओ, सुन्दर सूत कातो और चरखा चलाने का शास्त्र सीख लो और जैसे दूसरी विद्याओं के विषय में आतुरता और प्रेम रखते हो, वैसे इसके वारे में भी रखो। वाकी का सारा समय वाकी के विषयों को दो तो उससे मुझे द्वेष नहीं। इतना ही है कि जो करो, सो श्रद्धापूर्वक करो, वेगार न टालो, यह चाहता हूँ।

'दूसरा आक्षेप यह है कि एक समय मैंने कहा था कि विद्यापीठ को ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करके, जिससे आपकी आजीविका चले, उसकी योजना वनानी चाहिए। यह वात अव भी कहता हूँ। परन्तु विद्यापीठ के पास और आपके पास भी यह मुख्य विषय नहीं है, होना भी नहीं चाहिए। आप विद्या को केवल आजीविका का साधन मानने लगेंगे, उस समय

आपकी अधोगति भी हो जायगी। विद्या की जो व्याख्या विद्यापीठ ने स्वीकार की है, वह यह है कि 'जो मुक्ति दे, वह विद्या।' इसलिए ऐसे आदर्शवाली संस्था में केवल आजीविका को ध्यान में रखकर विद्या ग्रहण करना ठीक नहीं है। आजीविका के लिए वहुत साधन हैं। विद्या है तो मन, शरीर और आत्मा की उन्नति के लिए है। जिसके अंग समान हैं, जिसका शरीर सुव्यवस्थित और मजवूत है, जो सख्त सरदी-गरमी सहन कर सकता है, जिसका मन सोचा हुआ काम कर सकता है, जो संयमी है, जिसकी आत्मा स्वच्छ है—ऐसी स्वच्छ कि वह कह सके कि मैं अपने हृदय की ही गूंज सुनूंगा और आत्मा का स्थान हृदय है, इसलिए हृदय भी स्वच्छ होना ही चाहिए—उसने सच्ची विद्या प्राप्त की है। यह चीज जिसने प्राप्त की है, उसे आजीविका का पाठ लेने की क्यों जरूरत होगी? आजीविका के लिए चिन्ता क्यों होनी चाहिए? ऐसे व्यक्ति को तो विश्वास होगा कि जिसने दाँत दिये हैं, वह चवेना भी देगा। मुझसे कहा जाता है कि विद्यार्थियों को घर-गृहस्थी चलानी होती है, उन्हें दो-दो तीन-तीन आदमियों का पोपण करना होता है। पोपण भले ही करना हो और वह करना भी चाहिए; उसके करने में वहादुरी होती है; परन्तु उपर्युक्त साधन जुटाने में ही आजीविका मिल जाती है। आजीविका ढूंढ़ने से नहीं मिलती। विद्या को जो केवल आजीविका का साधन मानते हैं, उन्हें आजीविका भी नही मिलती। आजीविका की व्यवस्था तो विद्यापीठ आज भी कर रहा है। विद्यापीठ यह निश्चय कर देता हो कि विद्यार्थी के निकलते ही उसका तीन सौ या तीस से वेतन शुरू हो जायगा, यह खत आपको लिख दे, तो आप अपंग वन जायेंगे। फिर आप देश-सेवा नहीं कर सकते, आपसे पुरुषार्थ भी नहीं होगा। विद्यापीठ तो आपको केवल मुसीवतों के सामने डटे रहने की और उनसे निकल जाने की शक्ति देगा। असल में तो विद्यापीठ आपको कुछ नहीं दे सकता। आपमें जो कुछ होगा, उसका विकास कर सकेगा। इसलिए आप मानने लग जायँ कि विद्यापीठ में आकर न आपने कुछ खोया, न कुछ खोयेंगे।

'विद्यापीठ और महाविद्यालय का भविष्य क्या हो और उन्हें किस मार्ग पर ले जाया जाय, उस वारे में सुझाव देने के लिए महामात्र ने सूचना दी है। इस वारे में कुछ भी सुझाना मेरी शक्ति से वाहर है। मैं नहीं जानता कि इस वर्ष में भारतवर्ष का वातावरण क्या स्वरूप पकड़ेगा। मेरी आशाएँ तो वहुत हैं। मैं आशावादी हूँ और मरणपर्यन्त आशावादी

रहूँगा। परन्तु इस समय वे आशाएँ आपके सामने रखूँ, यह ठीक नहीं। आपसे तो इतना ही कहूँगा कि विद्यापीठ का भविष्य क्या होगा, इस प्रपंच में विद्यार्थी न पड़ें। आप मान लें कि आप विद्यापीठ में हैं, यह ठीक है। सरकारी पाठशाला में जायँ, यह ठीक नहीं है और सचमुच जो शिक्षा मिलनी चाहिए, वह इस स्थिति में वहाँ नहीं मिलेगी। आपके मन में जब तक यह बात है कि सरकारी पाठशालाओं द्वारा वह चीज न मिली और न मिलेगी, जो भारत को चाहिए, तब तक ही आप विद्यापीठ में रहें। आपको लगे कि सरकारी संस्थाओं में वह सब मिल जाता है, तो आपके लिए सरकारी संस्थाओं में जाना ही अच्छा है। फिर आप इस झंझट में न पड़ें कि विद्यापीठ का भविष्य क्या होगा। सरकारी पाठशालाओं के बारे में आपको दृढ़ वैराग्य हो जाना चाहिए। वैराग्य हो गया, तो उन पाठ-शालाओं के विषय में आपमें त्याग-वृत्ति होगी—राग नहीं होगा। जब तक राग होगा, तब तक आप विद्यापीठ की तुलना सरकारी पाठशालाओं से करते ही रहेंगे। हर वक्त मन कहेगा कि वहाँ इतनी सुविधाएँ हैं और यहाँ नहीं। विद्यापीठ की यही विशेषता है कि उसमें सुविधाएँ नहीं हैं। यहाँ सुविधाएँ पैदा करें, तो विपत्तियों को झेलना नहीं सीखेंगे। अथवा यहाँ भिन्न प्रकार की सुविधाएँ हैं। यहाँ कुछ-न-कुछ विशेषता तो होनी चाहिए। सरकार की पाठशालाओं के साथ इस विद्यापीठ की पाठ-शालाओं की तुलना हो ही नहीं सकती। इतना ही आपके मन में दृढ़ हो जाय, तो फिर आपको इसकी क्या चिन्ता है कि विद्यापीठ का भविष्य क्या है? आप इतना कर सकें तो काफी है कि आपके कर्तव्य-पालन से 'हमने स्वराज्य की लड़ाई में पूरी मदद दी।' इससे अधिक जानने का आपको और मुझको अधिकार नहीं है। मैं तो इतना जानता हूँ कि जब तक विद्यापीठ स्वराज्य की लड़ाई में सहायक है, तब तक वह चलेगा। जब वह स्वराज्य-संग्राम में मददगार नहीं होगा, तब उसका नाश हो जायगा। और नाश हो जाय, तो इसमें बुरा क्या है? नाश होना तो इष्ट ही है। भारत के स्वराज्य का जो भविष्य, वही विद्यापीठ का भविष्य।

'हमें जो अच्छा लगता है, वह हमेशा कल्याणकारी नहीं होता है। मैं बूढ़ा हो गया तो भी मुझे लगता है कि मुझे जो अच्छा लगता है, वह सारा ही मेरे लिए उपकारी नहीं होता। इसलिए अनेक मामलों में हमें बड़ों की सलाह लेनी पड़ती है। इसीलिए हमारे यहाँ पुरानी प्रथा रही है कि गुरु ढूंढ़कर उसकी शरण लें; उसका आधार लें; उसकी गोद में

सिर रखकर कहें कि 'अपनी इच्छानुसार मुझे चलाइए; आपको पसन्द हो, वही मेरे दिमाग में भरिए।' आजकल तो गुरु कहीं भी नहीं मिल सकते। इसलिए आजकल स्वार्पण की बात नहीं रही। यहाँ तो केवल शिक्षक हमें सही रास्ते चलाते हैं, बुरे मार्ग पर नहीं चलाते, ऐसी श्रद्धा की जरूरत है। अनेक वस्तुएँ जो आरम्भ में कड़वी होती हैं, परिणाम में अमृत बन जाती हैं, ऐसी श्रद्धा रखकर आपको कड़वी घूंटें भी पी जानी हैं। यह आपको मेरी सलाह है और विनती भी है।

'दुवारा फिर उस प्रतिज्ञा पर आना चाहता हूँ, जो आपने ली है। जो प्रार्थना भाई आठवले ने पढ़ दी है, उसकी ओर भी आपने ध्यान दिया होगा। दोनों चीजें बहुत मामूली थीं। जो चीज मामूली होती है, उसमें कितना जोर होता है, यह हम देख नहीं सकते। किसी कोठरी में चित्रकार ने निकम्मा चित्र बनाया हो, उसे देखकर हम वाह-वाह करते हैं, क्योंकि हमें ऐसी आदत ही पड़ गयी है। परन्तु हमारे सिर पर हमेशा जो भव्य चित्र है, उसकी कद्र कोई नहीं करता। यह विशाल आकाश, और उसमें जगमगाते हुए तारे और चाँद, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय होने-वाले अनेक रंग—ये सब कौन चित्रकार चित्रित कर सकता है? फिर भी हम इस पर ध्यान नहीं देते, क्योंकि हमारी नजर नीचे ही नीचे रहती है और बाहर के मिट्टी समान चित्र पर हम मुग्ध हो जाते हैं। यह दयाजनक स्थिति है। इसीलिए आज जो प्रार्थना सुनी और जो प्रतिज्ञा महामात्र ने आपको सुनायी, उसका रहस्य आप न समझ सके हों, यह सम्भव है। इसका बार-बार मनन करना। प्रतिज्ञा का पालन करना। इस प्रार्थना में कहे गये भव्य मंत्रों से पोषण मिलता है—जो पोषण भाषणों और लेखों से नहीं मिलता। यह माता के दूध-जैसा स्वाभाविक आहार है। माता बच्चे को दूध न पिलाये और अन्य कोई स्त्री उसे अनेक प्रकार की खुराक खिलाये, तो क्या परिणाम होगा? कोई बालक जीता न होगा। ये सामान्य वस्तुएँ ही अमृत-समान हैं। और हमारे पुरखों के इस विरासत पर मनन करें, उसे हृदय में उतारें, उसके अनुसार आचरण करें, तो हमारा जीवन सार्थक है। मेरा भाषण भूल जायँ, और सब भूल जायँ, परन्तु इस प्रार्थना के मंत्र और अपनी प्रतिज्ञा भूल न जायँ, तो आपका और मेरा समय व्यर्थ नहीं गया, ऐसा माना जायगा।'

चित्र-प्रदर्शन का उद्घाटन करने के बाद बोले: 'चित्रों के बारे में जो कह चुका हूँ, वह इस प्रदर्शन को लक्ष्य में रखकर नहीं। यह कोई

भी नहीं कहेगा कि सारे ही चित्र निकम्मे हैं। परन्तु उद्घाटन करने की जरूरत नहीं, मुझे इतना ही कहना है।'

काका*: 'चित्रकला एक ही कला है। प्राकृत चित्रकला असाधारण है। साधारण हो उसका अनुकरण नहीं करते। सच्ची चित्रकला अन्तर के भाव व्यक्त करने की कला का विकास करती है। यह भाव व्यक्त करने की कला विकसित हो, यह प्रार्थना करें।'

प्राणजीवन विद्यार्थी भवन

डॉ० प्राणजीवन महेता के ढाई लाख रुपये के दान से वने महाविद्यालय के मकान का उद्घाटन करते हुए डॉ० प्राणजीवन महेता के वारे में गांधीजी ने कुछ प्रसंगोचित उद्गार प्रकट किये और प्राणजीवनदास के साहसी और परोपकारी जीवन से प्राण—जीवन–प्राप्त करने का गांधीजी ने उपदेश दिया। डॉ० महेता का परिचय देते हुए वे वोले:

'हम वालमित्र थे। डॉक्टर ने जिन्दगी में वहुत कुछ देखा है। इनमें वहुत हिम्मत थी और इन्होंने वहुत परोपकार के काम किये हैं। इन्होंने नाम की खातिर इस मकान को अपना नाम देने की इच्छा रखी हो, ऐसी वात हरगिज नहीं है। मैं मानता ही नहीं कि इन्होंने जिन्दगी में नाम के लिए कुछ भी किया हो। परन्तु मित्रों ने ऐसा सोचा कि मकान के साथ इनका नाम लगा दिया जाय, तो लोगों को भी कुछ सवक मिले। आजकल वे अपंग हैं। मेरी प्रार्थना है कि वे दीर्घायु हों, ताकि वे अधिक देश-सेवा कर सकें। डॉ० महेता ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके वारे में सवको जानने की जरूरत है। इन्होंने मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई की, वहाँ स्वर्णपदक लिया था। फिर अध्ययन के लिए विलायत गये। वहाँ डॉक्टर भी वने और वैरिस्टर भी। और अव आपको पता नहीं होगा, वे हीरे के व्यापारी हैं। वे दीवान हो गये थे और जहाज वनाने का धन्धा भी किया। यह सव आपसे कहता हूँ तो इसीलिए कि मनुष्य सोचे, तो सव कुछ कर सकता है। इन्हें न तो वैरिस्टरी का मोह था और न डॉक्टरी का। ईमानदारी से कमाया और कमाई का वड़ा भाग देश के लिए खर्च किया है। इनके नाम और काम की वात आपके सामने करने में मेरी यह इच्छा है कि आपमें वहुत-से डॉ० महेता हों और आप अपनी विद्या और दौलत का देश के लिए उपयोग करें।'

---

* काका कालेलकर।

विद्यापीठ का पदवीदान-समारोह समाप्त करके गांधीजी १५ तारीख को पेटलाद तालुके के किसानों के सम्मेलन में जाने को निकले। ता० १५ से २० तक पाँच दिन सोजित्रा, पेटलाद, और वारडोली तालुके को दिये गये थे।

उल्टा पदार्थपाठ

लोगों की उमंग देखें, तो वह सन् १९२१ की तुलना में किसी तरह कम नहीं थी। सहज ही ऐसा लगता था कि 'अभी तक इस जनता में प्राण है।' परन्तु सन् १९२१ से आज तक हम जो 'उल्टा पदार्थपाठ' पढ़ते आये हैं और जिसके कारण ही हम अभी तक आज की दशा में हैं, उसे तो यहाँ भी देखा। खादी की टोपियाँ काफी दिखाई देती थीं, कोट उससे वहुत कम और धोतियाँ उससे थोड़ी।

पीज में तो हद हो गयी*। 'स्वराज्य लेना आसान है' वाला समूह-गीत कुछ वहनों ने गाया। इन छोटी लड़कियों ने 'मोटी खादी पहनो, परदेशी कपड़ा छोड़ो, मेरी वहनो! स्वराज लेना सहल है' गाया, तव सव खिलखिलाकर हँस रहे थे, क्योंकि एक भी लड़की खादी पहने हुए नहीं थी! फिर भी लड़कियाँ वेचारी इतनी निर्दोष थीं कि उन्हें तो कोई हँसी आ ही नहीं रही थी! उस दृश्य की करुणता कितनी गहरी थी, इसकी सव हँसनेवालों को शायद ही कल्पना होगी! प्रसंग के हास्यास्पद होने के वारे में लड़कियों का जितना अज्ञान था, उतना ही गहरा अज्ञान ऐसी वृत्ति से हँसनेवालों का था, जो उस प्रसंग को निर्दोष और क्षम्य मानकर जैसे कुछ हुआ ही नहीं, ऐसा समझते हों! इस प्रसंग को ध्यान में रखकर गांधीजी द्वारा कहे गये वचन सार्वजनिक महत्त्व के समझकर उद्धृत करता हूँ:

'आपके मानपत्र में जो वाक्य मेरी प्रशंसा में लिखे गये हैं, उनके लिए मेरी योग्यता कितनी है, इसे कोई निश्चित नहीं कर सकता। परन्तु मेरे जो गुण वर्णन किये गये हैं, वे हम सव प्राप्त करने का प्रयत्न करें और उनके अनुसार आचरण करें, तो कितना अच्छा! परन्तु इन वहनों के गीत से तो उल्टा ही पदार्थपाठ मिला है। इसलिए इस मानपत्र में जो कुछ वर्णन किया गया है, उसके वारे में भी कहीं ऐसा ही न हो! अपने भ्रमण में मैंने देखा है कि तारीफ करने की हमें कुटेव पड़ गयी है। इसमें दंभ होता है, सो वात नहीं, परन्तु अक्सर केवल उद्गार प्रकट करने में ही

* ता० १४-१-'२५।

हम सार्थकता मान बैठते हैं। मैं तो खादी के पीछे पागल हूँ, चरखे के पीछे पागल हूँ, इसलिए कहीं भी जहाँ कहीं चरखे को स्थान न हो, वहाँ मुझे जाना अच्छा नहीं लगता। यहाँ मैं चरखे की निन्दा होती देखता हूँ। इन लड़कियों के द्वारा तो निन्दा क्या होगी? परन्तु जिन्होंने यह गीत इन बच्चियों से गवाने की योजना बनायी, उनका दोष है। इसलिए मान-पत्रों में समय खर्च न करके कर्तव्य-पालन में ही हम समय लगायें तो अच्छा।

'पहली बात यह है कि मैं तो चाहूँगा कि और कुछ न हो तो भले ही न हो, परन्तु चरखे का काम तो करें ही। इसका परिणाम इतना बढ़िया होगा कि 'सूत के धागे में स्वराज्य' वाली कहावत हम सच्ची सावित कर सकेंगे। चरखा एकता का भी साधन है। कंगाल और गरीब लोगों के क्या हाल हैं? उनके लिए सदाव्रत खोलें? श्रीमती पट्टणी विचारशील महिला हैं। उन्होंने पूछा: 'यह सदाव्रत खुले तो लाभ है या हानि?' मैंने कहा कि हानि है, क्योंकि जिसके सारे अंग अविच्छिन्न हैं, उसे सदाव्रत पर रखना उसे आलसी बनाने का मार्ग है। ऐसे लोगों को पैसा देकर हम पाप करते हैं—पुण्य नहीं। जिसमें कमाने की शक्ति है, उसे पैसा देकर भटकाने में पाप है। चरखे से उसका भरण-पोषण जरूर होगा। इससे हमें पूरा काम मिलेगा। व्यक्ति का अर्थशास्त्र और समाज का—दोनों दृष्टि से विचार करने पर समझ में आयेगा कि चरखा जारी करना सामाजिक यज्ञ है। यहाँ इतने समझदार भाई और बहनें हैं। आप जनता की सेवा करना चाहते हों, मेरे प्रति आपका प्रेम हो, तो आप अवश्य आधा घण्टा कातें और सूत दें। आप धनवान् हों, आपको समय न मिले, तो भी चरखे के लिए समय निकालें। आपको अपने दीवान कहें कि यह नहीं हो सकता, तो भले कहें। परन्तु मुझे सूत भेजने से आपको कोई नहीं रोकेगा।'

अस्पृश्यता के प्रश्न के बारे में पाटीदार भाइयों को ध्यान में रखकर बोले:

'यह न भूलें कि आपकी अच्छी हालत अछूत भाइयों के कारण है। इनकी शिकायत आप देखें। खेड़ा का मेरा अनुभव दुःखद है। इस स्थिति के लिए अस्पृश्यता की प्रथा दोषी है। आप अछूतों पर जुल्म न करें। मैं नहीं कहता कि आप उनके साथ खान-पान करें।'

गांधीजी ने पूछा: 'यहाँ कोई अछूत है क्या?' पंडयाजी ने कहा: 'हाँ, व उस किनारे पर बैठे हैं।' गांधीजी ने अपने सामने रखा हुआ फल और

मूखे मेवे का थाल उन बच्चों में बाँट देने को कहा। 'मेरी तरफ से नहीं, परन्तु आपकी ओर से, आपके प्रेम की और इस बात की निशानी के तौर पर कि आप उनके प्रति अच्छा व्यवहार करना चाहते हैं, बाँट दीजिए।' एक आदमी कहता है : 'मुझे प्रसाद के तौर पर थोड़ा-सा नहीं मिल सकता ? मैं चेला हूँ।' गांधीजी बोले : 'तुम फूल ले जाओ, फल-मेवा अछूतों के लिए ही है।' इतने में तो पंड्याजी अछूतों के बच्चों को सभा के किनारे से लेकर आ गये। सभा में जरा खलबली हुई। कुछ बूढ़ों को मैंने बोलते सुना : 'गाँव में कलजुग आ गया, कलजुग।' इतने पर भी किसीने सभा में विरोध नहीं किया और इनकी विदाई के उल्लास में कोई कसर नहीं रखी। अन्त में गांधीजी बोले :

'यहाँ हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े न हों, सो बात तो नहीं, परन्तु मैं चाहता हूँ कि वे मिट जायँ।'

'स्वयंसेवक' कैसा हो ?

किसान सम्मेलन* का प्रबन्ध व्यवस्थापकों के खूब परिश्रम को सूचित करता था। इस सम्मेलन में हाजिरी भी बहुत बड़ी थी। सभापति डॉ० सुमन्त थे। उनके भाषण के बारे में लिखने को यह स्थान नहीं है। भाषण के कुछ भाग पढ़ने पर भी, भाषण देने के दिन गये, केवल काम ही बोलेगा—ये उद्‌गार ही मानो उनके भाषण का सार हो, इस प्रकार उन्होंने सभापति बनने की अपनी शर्त पेश करके, भाषण को पढ़ना छोड़कर बताया। कोई भी कार्यकर्ता लोगों को खुश करने की खातिर लोगों की शर्त कबूल करके नहीं, परन्तु अपने सिद्धान्त के पालन के लिए अपनी शर्त पर सेवा करे, यह है गांधीजी का मुद्रालेख। इसलिए इन्होंने तो डॉ० सुमन्त की शर्त को अपना लिया और सारे सम्मेलन के कार्य का केन्द्र डॉक्टर के माँगे हुए ४० स्वयंसेवक उन्हें दे देने को ही बनाया। इसलिए गांधीजी के भाषण का बड़ा भाग इन स्वयंसेवकों सम्बन्धी अपील का था। यह अपील करते समय स्वयंसेवक बनने की शर्तों पर उन्होंने विस्तार से विवेचन किया :

'मैं मानूँगा कि यदि सभापति महोदय की भिक्षा न दी जा सके तो यह सम्मेलन निरर्थक है। इनकी माँग बड़ी होती और आपके बूते से

* यह सम्मेलन सोजित्रा में ता० १५-१-'२५ को हुआ था।

वाहर होती तो कोई कहने की वात नहीं थी। इस सम्मेलन में ४० स्वयं-सेवक न मिलें, तो आप सवके लिए शर्म की वात होगी—जितनी आपके लिए, उतनी मेरे लिए भी, क्योंकि पाटीदारों के साथ मेरा निकट का सम्वन्ध है—यहाँ आकर काम करने लगा तव से नहीं, परन्तु दक्षिण अफ्रीका से। और उस सम्वन्ध की रू से मैं आशा रखता हूँ कि इतने समुदाय में से ४० स्वयंसेवक तो मिल ही जाने चाहिए। पुरुष ही नहीं, परन्तु स्वयं-सेविकाएँ भी जरूर मिलनी चाहिए। उनके लिए इस लड़ाई में स्थान न हो, तो हमसे आधा ही काम होगा।

'एक तरह से यह सच्ची वात है कि ये स्वयंसेवक वेतन न लेनेवाले हों। वेतन लेने के लिए वेतन चाहनेवाला स्वयंसेवक नहीं। परन्तु स्वयंसेवक की सेवा लेनेवाली जनता उसके निर्वाह की व्यवस्था करने के लिए जिम्मेदार है। ४० सेवक हमारे काम के लिए काफी नहीं हैं। भारत में तो ४० लाख सेवक भी चाहिए। हमने जो काम आज हाथ में लिया है, उसके लिए पाँच-सात हजार सेवक तो जरूर चाहिए और यह असम्भव है कि इस गरीव देश में इतने स्वयंसेवक निर्वाह के लिए कुछ भी लिये विना काम कर सकें। ईश्वर ने हमें इसलिए नहीं पैदा किया कि हम खायें और काम न करें। यदि इन्सान खाते हुए भी उसके लिए काम नहीं करता, तो हमने प्रकृति के सर्वसामान्य न्याय का भंग किया है। इस प्रकार कुछ हजारों रुपयों का खर्च करते हैं, तो हजारों भूखों मरते हैं। हिन्दुस्तान का अंग्रेज इतिहासकार हण्टर कहता है कि १० करोड़ मनुष्यों को मुश्किल से एक समय खाने को मिलता है और वह भी रोटी और नमक। कांग्रेस ने भी प्रस्ताव किया है कि यह नहीं चाहना चाहिए कि सव स्वयंसेवक विना पैसे मिलें और उदाहरण उपस्थित करने के लिए अग्रगण्य मनुष्यों को पहल करनी चाहिए। मुझे भी जरूरी मालूम हो तो पेटिया (सीधा) लेना चाहिए, वल्लभभाई को भी लेना चाहिए, यद्यपि मैं तो मित्रों से वेशुमार चीजें लेता हूँ। आज कदाचित् मुझे और वल्लभभाई को उसकी जरूरत न हो, परन्तु ऐसा समय आया, तो वैतनिक स्वयंसेवकों की भरती में वल्लभभाई और मैं दोनों शामिल हो जायँगे।

'तिलक महाराज और गोखलेजी की ही मिसाल लीजिए। फर्ग्युसन कॉलेज खुला, तव दोनों ने उसमें ४० रुपये के थोड़े-से वेतन से सन्तोष मानकर शिक्षा के लिए सेवा करने की दीक्षा ली थी। तिलक महाराज

वाद में कुछ कारणों से अलग हो गये थे । परन्तु जव तक रहे, तव तक वेतन लेने में मान समझते थे । गोखलेजी ने तो २० वर्ष पूरे किये । फिर वे विधानसभा के सदस्य थे, कई कमेटियों में काम करते थे, उनसे कुछ रुपया मिलता था । परन्तु उन्होंने फर्ग्युसन कॉलेज से जो मासिक मिलता था, वह तो वन्द किया ही नहीं । जव वे 'महान्' वन गये और जव ऐसी स्थिति थी कि १०,००० रुपया वेतन मिल सकता था, तव भी उन्होंने वड़ी रकमों को उतना मान नहीं दिया, जितना उस ७५ रु० मासिक को दिया था । अपनी पेन्शन की छोटी-सी रकम भी उन्होंने वड़े मान के साथ ली थी ।

'स्वयंसेवकों को दुनिया की निन्दा की चिन्ता नहीं करनी चाहिए । निकम्मा आदमी दोष देखा करता है, इसलिए निकम्मे लोग स्वयंसेवकों की निन्दा करें, तो उससे उन्हें घवराना नहीं चाहिए । स्वयंसेवक निन्दा को अपनी खुराक समझें । जो जगत् की निन्दा सहन न कर सके, वह स्वयंसेवक नहीं हो सकता । उनकी तो खाल भैंस की होनी चाहिए । नीचा सिर रखकर काम करते रहें, आगे-पीछे न देखें, केवल अपने में और अपने काम में ही ध्यान हो, उसे ऐसा योगी होना चाहिए । जो स्वयंसेवक मानता है कि वह जनता के हाथों विक चुका है, उसे अपने कार्य के ही सपने आने चाहिए, उसे आजीविका के लायक लेने में संकोच नहीं करना चाहिए—खीर-पूरी के लायक नहीं, परन्तु ज्वार-वाजरी के लायक लेने में। ऐसे कसे हुए स्वयंसेवकों को भरती हो जाना चाहिए, और सभापति महोदय को निर्भय कर देना चाहिए । सभापति महोदय को यहाँ कैद करना चाहते हों तो निकल पड़िए । इतने थोड़े में सन्तोष मान लें, ऐसा सभापति आपको और कहीं शायद ही मिलेगा ।'

स्वयंसेवकों की माँग तुरन्त हुई, नाम दर्ज किये जाने लगे ।

'मेरी प्रार्थना के अन्त में १६ नाम मिले । १५ थे ही । अभी ९ नाम घटते हैं । मुझे आशा है कि आप मुझे निराश नहीं लौटने देंगे । १० मिनट में मुझे काम पूरा करना है, इसलिए इतने में ही ९ नाम भेज दीजिए । जिन्होंने नाम दर्ज कराये, उन्हें धन्यवाद की जरूरत नहीं होगी । जरूरत हो तो वता दें । जो नाम दर्ज करा रहे हैं, वे फर्ज अदा कर रहे हैं । आपके पास काम क्या है, यह मैं नहीं जानता । मैंने स्थानीय दुःखों का अध्ययन नहीं किया ।

'भारत में आज जो सबसे बड़ी और प्रौढ़ प्रवृत्ति चल रही है, उसके बारे में कहे बिना काम नहीं चल सकता । वह प्रवृत्ति है खादी की, चरखे की। जैसे-जैसे कोई चरखे का विरोध करता है, वैसे-वैसे उसके बारे में मेरा विश्वास अधिक दृढ़ होता है । इसका यह अर्थ न करें कि मैं मूर्ख और जिद्दी हूँ और न समझते हुए भी एक चीज से चिपट रहा हूँ । जिस चीज की मैं बात कर रहा हूँ, वह तो मैंने हिन्दुस्तान के सामने इन चार-पाँच वर्षों से ही रखी है, परन्तु इसके बारे में मैंने अपना तर्क तो पहले कभी चरखे के दर्शन किये बिना ही 'हिन्द स्वराज' में पेश किया था । और जैसे-जैसे उसका विरोध होता है, वैसे-वैसे देखता हूँ कि इस विरोध के पीछे अनुभव और विचार नहीं और मेरी दलीलों में गहरा विचार और अनुभव है । मैं अपने को सीधा आदमी मानता हूँ । भूल स्वीकार करना अपना धर्म समझता हूँ । मैल मुझे पसन्द नहीं । शरीर में, मन में, हृदय में मैल रखना रोग है । इसलिए भूल न मानना भी एक रोग है । जो मनुष्य ईश्वर के सामने भूल स्वीकार न करे—यद्यपि वह तो सब कुछ देखनेवाला है, परन्तु वह मजाक करनेवाला है और भुलावे में डाल सकता है—जो मनुष्य ईश्वर के आगे अर्थात् जगत् के आगे अपनी भूल मंजूर न करे, उसे तपेदिक हो जाता है—उसे आध्यात्मिक क्षय हो जाता है । यह क्षय उस शारीरिक क्षय से अधिक हानिकारक है । पहले में केवल शरीर का नाश है, दूसरे में आत्मा का नाश है । आत्मा तो अमर है, अक्षय है, इसलिए उसका नाश नहीं, परन्तु उसके नाश की हमें भ्रान्ति होती है । इसलिए अमर आत्मा के नाश की कल्पना करने से दोहरा रोग होता है । इसलिए मेरी भूल हो तो उसे स्वीकार करने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होता । फिर मेरी भूल स्वीकार करने के परिणामस्वरूप तमाम चरखे बन्द हो जायँ और मैं पागल गिना जाऊँ, तो कोई बात नहीं । परन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसा समय नहीं आया । मुझे चरखे के बारे में इतना अधिक विश्वास है कि मेरी स्त्री, मेरे लड़के और मेरे लड़कों से भी अधिक साथी चरखा छोड़ दें, तो भी मैं अकेला ही उसका मन्त्र जपूंगा और उसे चलाता रहूँगा ।

'भारत में आलस्य का महारोग है । वह स्वाभाविक नहीं । किसान के लिए तो वह स्वाभाविक हो ही नहीं सकता । यदि हो तो उसकी खेती बरबाद हो जाय। हमारे यहाँ चरखे का नाश हुआ, तो आलस्य आया। करोड़ों बेकार हो गये । अब करोड़ों के लिए धन्धे के छोटे-छोटे प्रयोग

नहीं हो सकते—कोई कहे हम टोकरियाँ बनायेंगे, कोई कहे ताले बनायेंगे; कोई दियासलाई तो कोई साबुन। ये काम करोड़ों से नहीं होते और करोड़ों करें तो उन्हें कोई लेगा नहीं। इस ढंग से काम करें तो प्रजा-संघ नहीं होगा, व्यक्ति-संघ होगा। ऐसे कामों में उद्धार नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि भारत में सहायक-धंधे की जरूरत है। खेड़ा में बहुत थोड़े गाँव होंगे, जहाँ मैं न घूमा हूँ और थोड़े मनुष्य होंगे, जिन्हें मैंने न देखा हो। उनमें से अधिकतर के पास बहुत समय होता है। इस समय का उपयोग करने का साधन चरखा है, यों कहूँ तो सबको पसन्द नहीं आता। इसलिए कुछ चोरी करते हैं, कुछ कर्ज करते हैं, तो कुछ भूखों मरते हैं। ऐसी दयाजनक स्थिति में पड़े हुए—जबर्दस्ती से आलसी बने हुए—लोगों का नाश ही हो सकता है। यदि वे स्वयं जाग्रत न हों और दूसरों को जाग्रत न करें, तो नाश ही हो। यह समाजशास्त्र का नियम है। व्यक्तिगत शास्त्र का यह नियम नहीं; समाजशास्त्र का है। करोड़ों को इससे रोजगार नहीं मिल सकता और इसे आजीविका के साधन के रूप में तो रखा ही नहीं गया, परन्तु इसे अन्नपूर्णा बताया है। अन्नपूर्णा अर्थात् घी और दूध। असंख्य गरीबों को घी-दूध नहीं मिल सकते, गेहूँ की राब में दूध की बूँद या घी का छींटा डालने को नहीं मिल सकता। यह भयानक स्थिति है। इसका एक ही इलाज चरखा है। एक-एक आदमी एक रुपये का काम करे तो पता नहीं चलता, मगर सात हजार की आबादी का गाँव इस तरह सात हजार रुपये पैदा करे, तो देखा जा सकता है।

'इस चरखे के साधने से और कई गुण साथ-साथ आ ही जाते हैं। इसके साथ सादगी आती है, सरलता आती है, और एक बात की नियमितता अर्थात् सारे जीवन की नियमितता आती है—जैसे टेढ़े हो गये चौखटे का एक कोना खराब हो और उसे ठीक कर दें तो अपने-आप सारे कोन सीधे हो जाते हैं। यह तो भूमिति का न्याय हुआ। एक काम नियमित हो जाय, तो सभी नियमित हो जाते हैं। आज आप चरखा नहीं लेंगे तो बाद में मुझे याद करेंगे। पानी जब तक थोड़ा पड़ा है, तब तक पाल बाँधकर इकट्ठा कर लो। जब बाढ़ आती है, तब पाल बाँधनेवाला उस बाढ़ को नहीं रोक सकता और पाल तथा पानी दोनों खोता है।

'इसलिए आज समय है, तो आपसे कहता हूँ कि आप चेतें। जागें। बनियाई हिसाब न करें। चरखे से एक को कितनी आमदनी होगी, यह न सोचकर लोगों को कितनी आय होगी, इसका विचार करें। आपज जैसे छोटे-

से गाँव में जव वहाँ के लोगों को हिसाव करके वताया, तव वे चकित हो गये। काठियावाड़ उपजाऊ नहीं है। उसमें तो लकड़ी की फसल—पत्थर की फसल—पैदा होती है। और जमीन में कस नहीं है, इसलिए छह महीने तो क्या, परन्तु आठ महीने लोग चौपाल पर बैठकर गप्पें लगाते हैं और भले हों तो थोड़ी अफीम खा लेते हैं। मैंने ग्रापज के लोगों को समझाया कि वे आसानी से कैसे दो हजार वचा सकते हैं। सेर-भर रूई के पीछे अधिक-से-अधिक खर्च तो कताई का ही है, वुनाई का नहीं। आपके घर की रूई घर में साफ करो और कातो तो केवल वुनाई का ही खर्च लगे। और यदि वुनाई का ही खर्च पड़ता हो, तो हम दुनिया-भर की मिलों से स्पर्धा कर सकते हैं, क्योंकि वुनाई का खर्च तो मिलों को भी लगभग हाथकरघे के वरावर ही हो जाता है। इस कुंजी को भारत की जनता समझती थी, इसलिए उसने चूल्हे की तरह ही चरखे की साधना की थी। वह गया तो हमारे जीवन भी अपवित्र हुए, नास्तिक हुए, प्रभु का डर नहीं रहा। आप आस्तिक वनना चाहते हों, पवित्र वनना चाहते हों, अपनी वहनों के शील की रक्षा चाहते हों तो चरखे को स्वीकार करें। चरखे के पीछे देश की जाग्रति है, हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य है, देश की कंगालियत का उन्मूलन है, देश के किसानों का उद्धार है। हिन्दू-समाज-शास्त्र के पालन का आधार इसी पर है। शरीर ढँकना, लाज ढँकना खादी पर निर्भर है। आप समझ लें कि आध घण्टा देने में कोई वड़ा काम नहीं कर देंगे, आपको तो इसमें कुछ भी नहीं होगा। परन्तु मैं विदेशी कपड़े के वजाय खादी वनानेवाला वैठा हूँ। साथ-साथ पैदा किया हुआ सूत आपको इस्तेमाल करना चाहिए। हमारी मिलों में वनने-वाले कपड़े का भी त्याग करना ही चाहिए। खादी का भाव ऐसा हो जाना चाहिए, जैसे दो पैसे के टिकट का भाव है। खादी का प्रचार इतना और ऐसा हो कि खादी ले जानेवाले को ठीक-ठीक मिलती रहे। सोजित्रा के शहरियो, विदेशी कपड़े का वहिष्कार खेल की वात समझना।

'मैंने सुना है कि आप पाटीदार लोग अछूतों के साथ ठीक तरह वरताव नहीं करते। यदि आप अपने को क्षत्रिय मानते हों, तो अछूतों पर ज्यादती नहीं कर सकते, उनके साथ मार-पीट नहीं कर सकते, अधिक काम लेने और कम दाम देने का राक्षसी न्याय नहीं कर सकते। गीताजी देवताओं को राजी रखने को कहती है। 'देवताओं को सन्तुष्ट रखोगे तो देवता वरसात देंगे।' देवता आकाश में नहीं हैं; अन्त्यज और पिछड़े लोग ही

आपके देवता हैं । भारत के देवता भारत के कंगाल लोग हैं । विना दया का धर्म पाखंड है । दया ही धर्म का मूल है और उसे छोड़ देनेवाला ईश्वर को छोड़ देता है । रंक का त्याग करनेवाला सवका त्याग करता है । अछूत को और गरीव को अपनाया नहीं गया, तो हमारा क्षय निश्चित है।

'हिन्दू और मुसलमानों के बारे में वहुत कहने की आवश्यकता नहीं है । मुहम्मद अली नहीं आये, इसका मुझे दुःख है। उन्हें मुरादावाद जाना पड़ा, इसलिए वे गये और नहीं आ सके, इसके लिए वे लाचार हैं । यदि हिन्दू-मुसलमान एकदिल नहीं होंगे—वहादुर वनकर एकदिल नहीं होंगे तो स्वराज्य जैसी चीज असंभव है ।'

रात को माणिकराव के अखाड़े में गये । खूव थके हुए थे तो भी कहते हैं : 'माणिकराव को कैसे निराश करूँ ? मैंने उन्हें वचन दिया है ।'

१६-१-'२५

गोरक्षा के वारे में अव्वास साहव के साथ वातचीत चलने पर वोले :

'गाय को छोड़ देने से उसे मारना अच्छा है । उसे भूखों मारने के वजाय दयापूर्वक मार डालना चाहिए । मेरे पास पैसा हो और गाय अन्त तक खाती रहे, हँसती रहे और रँभाती रहे—उस गाय को तो मैं आखिर तक पालूँ । और जव उसका समय आ जाय, तव पत्ता झड़ता है, वैसे झड़ जाय । मैंने पिंजरापोल में डेरी वनाने का, दूध वेचने का और नस्ल सुधारने का सुझाव दिया है । यदि भारत में वूढ़े जानवरों को सभी निकाल वाहर कर दें, तो मैं आपसे कहूँगा कि उन्हें मार डालना अच्छा उपाय है । जानवरों को निकाल देनेवाले पिंजरापोल तो वहुत थोड़े हैं ।

'गाय को मुसलमान तो साग-भाजी समझते हैं । आप अंडे खानेवालों का विरोध कहाँ करते हैं ? धर्म को ढूंढ़ना हो, तो जैसे हीरे की खान में हीरा खोदना पड़ता है, वैसे ढूंढ़ना पड़ता है । अव्वास से यह कहूँ कि गाय को मारना है, तो साथ-साथ मुझे क्यों न मारते ? परन्तु यों नहीं कहते । श्रावक तो कहेगा कि गाय काटनेवाले पर विजली गिरे ।'

अव्वास : 'मैं तो गाय खाता हूँ, मगर अछूत को आप क्यों मारते हैं ? अछूत जोसफ, अब्दुल्ला या हुसैन वन जाय, तो आप उसका आदर करें और हीरिया रहा तो वह नालायक ?'

'बैल को हम कितना कष्ट देते हैं ? इसके मुकाबले तारीफ है अंग्रेजों की । वे घोड़े की पूजा करते हैं और उसे मजबूत और तन्दुरुस्त रखते हैं । अब्दुर रहमान तो उसे मिठाई खिलाता है । पहले हम स्वयं शुद्ध गोरक्षा करने लग जायँ और फिर गोरक्षा की बात करें । आप तो ढोरों की रक्षा नहीं करते । उन्हें छोड़ देते हैं । और फिर भी कोई इन्हें मारे तो उसे आँखें दिखाते हैं ।'

'मुसलमानों का विरोध करने के लिए हिन्दुओं ने यह ढोंग रचा है । गोरक्षा के मुल्क में गाय की जैसी हालत है, वैसी और कहीं नहीं ।'

'हमारे बैल विलायत में हों तो वे जुए के बजाय और कोई चीज ढूँढ़ें, ताकि उस पर से भार बचे ।'

'मनुष्य को पाप करने का हक है । ईश्वर यह हक देता है, मगर साथ-साथ कहता है कि तू पाप नहीं करेगा । हक ही शक्ति है । ब्रह्मचारी को व्यभिचार करने का हक जरूर है, लेकिन उसने यह हक छोड़ दिया, तो ब्रह्मचारी बन गया । इस अर्थ में मुसलमान को गाय मारने का हक है ।'

स्मरणीय

सोजित्रा से चार-पाँच मील की दूरी पर सुणाव है । गांधीजी को सुणाव जाने का समय न होगा, इसलिए उन्हें वहाँ बुलाने के बजाय वहाँ के शिक्षक १३० विद्यार्थियों को लेकर वहाँ से सुबह ४ बजे नहा-धोकर चल दिये और सबेरे ७ बजे* गांधीजी के दर्शन करने आ गये । मैं ऐसा कहूँगा कि इन बच्चों के साथ बितायी हुई उस सबेरे की कुछ घड़ियाँ धन्य घड़ियाँ थीं । गांधीजी को भेंट करने के लिए प्रत्येक शिक्षक और विद्यार्थी ने अपने हाथ से पींजी हुई रूई की अपने हाथ से बनायी हुई पूनियों का सूत काता था । वे कांग्रेस को तो सूत भेजते ही हैं । परन्तु यह तो पाठशाला के काम के अलावा गांधीजी के चरणों में रखने के लिए उन्होंने काता था । बढ़िया ढंग से काता हुआ और पैक किया हुआ लगभग २ लाख गज सूत गांधीजी के सामने रखा गया । आदर्श-पाठशाला के जहाँ सभी लक्षण हों, वहाँ गांधीजी क्या कहें ? गांधीजी को कोई भाषण तो देना ही नहीं था । उन्होंने अपना आनन्द प्रकट करके अपनी भावना व्यक्त कर दी । परन्तु विद्यार्थियों को तो कुछ-न-कुछ सुनना था; इसलिए गांधीजी ने बातें शुरू कीं ।

---

* ता० १६-१-'२९ ।

'कहो भाई, तुम इतना सारा कातते हो, सो किसलिए?'

एक लड़के ने उठकर जवाब दिया : 'आपने हम सबको कातने में लगाया । हम सबको जगाया ।'

'यह तो सच है, परन्तु मैं तुमसे कातने को कहता हूँ, इसीलिए कातते हो या तुम्हें कोई लाभ है ?'

तुरन्त ही जवाब मिला : 'हम परतन्त्र थे, सो स्वतन्त्र हो गये ।'

'स्वतन्त्र कैसे हुए ?'

'हमारे कपड़े हम अपने ही हाथ से काते हुए सूत से बनवाते हैं, इसलिए उतने स्वतन्त्र तो हो ही गये न ?'

'हाँ; तुम अपने कपड़े भी बना लेते हो ?'

एक शिक्षक ने कहा : 'इनमें ज्यादातर के कपड़े इनके हाथ के कते सूत के हैं ।'

गांधीजी ने पूछा : 'कितनों के ऐसे कपड़े हैं ?'

कुछ हाथ उठे । इस पर गांधीजी कहते हैं : 'अच्छा, तब ये तो स्वतन्त्र हैं । परतन्त्र कितने हैं ?' हँसते-हँसते परतन्त्रों ने हाथ ऊँचे किये ।

उनसे गांधीजी ने पूछा : 'अच्छा, तो तुम बुनवा लेने का निश्चय तो करोगे न ?'

इस पर झट-से एक लड़का खड़ा हुआ और बोला : 'हमें कांग्रेस को सूत भेजना पड़ता है और इसके सिवा फिर कपड़ों के लिए सूत कातना मुश्किल होता है ।'

'क्यों मुश्किल होता है ?'

जवाब में स्पष्टीकरण किया कि वह दूर के गाँव से रोज पैदल आता है और पैदल जाता है, इसलिए पाठ याद करने का समय भी मुश्किल से रहता है, अक्सर रात को भी कातना पड़ता है ।

गांधीजी सबको हँसाते हुए बोले : 'इससे मुझे कोई दया नहीं उमड़ आती । मैंने बहुत लड़कों को तुमसे ज्यादा चलाया है । दक्षिण अफ्रीका में सवेरे ४ बजते ही मैं, आश्रम के विद्यार्थियों को चलाता तो २१ मील तक । फिर थोड़ा नाश्ता होता, फिर शाम को २१ मील चलते, इस प्रकार ४२ मील हो गये । इसलिए मुझे तुम पर दया नहीं आती । इतना चलते रहो, काम करते रहो और अपने शिक्षकों की भी 'अकड़' निकालते रहो ।'

लड़के खूब हँसे । गांधीजी ने फिर पाठ लेना शुरू कर दिया। ''अकड़' निकालने का अर्थ जानते हो ?'

लड़के जरा विचार में पड़े ।

''अकड़' या 'बाँक' किसमें पड़ती है ?'

एक विद्यार्थी बोला : 'तकुए में।'

'तब 'बाँक निकालने' का अर्थ क्या ?'

दो-तीन विद्यार्थी बोल उठे : 'सीधा करना ।'

'हाँ, ठीक है । तब शिक्षकों को सीधा किस तरह किया जा सकता है ? उन्हें तंग करके ?'

'नहीं; सवाल कर करके—पूछ-पूछकर ।'

'ठीक कहा । गीताजी को जानते हो ? गीताजी में कहा है '**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**'* प्रणिपात करके, बार-बार प्रश्न करके, सेवा करके, श्रीकृष्णजी की 'अकड़' अर्जुन ने निकाली थी, वैसे तुम भी निकालना ।'

फिर पूछा :

'अच्छा तो अब तुम यह सूत लाये, इतना सारा सुन्दर काम दिखाया, इसके लिए तुम्हारा उपकार मानूँ क्या ?'

'नहीं ।'

'क्यों ?'

'यह तो हमारा फर्ज है । गरीबों के लिए भी कातना सबका कर्तव्य है । इसमें उपकार काहे का ?'

'और दूसरे कारण से भी मुझे तुम्हारा उपकार नहीं मानना चाहिए । वह तुम जानते हो ? तुम भले ही मुझे माँ-बाप के रूप में न मानो—जैसे तुम अपने शिक्षकों को मानते हो,—परन्तु मैं तुम्हारा बुजुर्ग तो माना ही जाऊँगा न ? बुजुर्ग के नाते मैं क्या तुम्हारा उपकार मान सकता हूँ ?'

महिला-परिषद्

किसान-सम्मेलन के व्यवस्थापकों की कुशलता के बारे में इशारा कर चुका हूँ । शामिल होने की फीस में सूत देकर शामिल होने के लिए खास व्यवस्था की गयी थी । इसलिए स्त्रियों का तो पूछना ही क्या ?

---

* अध्याय ४, श्लो० ३४ ।

हजारों स्त्रियाँ उमड़ आयी थीं । पूना में स्त्रियों की बड़ी-से-बड़ी सभा देखी हुई याद है, परन्तु स्त्रियों की यह परिषद् तो ऐसी परिषद् थी, जैसी पहले कहीं नहीं देखी । फिर भी शान्ति काफी रखी गयी थी ।

उन्हें सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले :

'बहनों के सामने मैं रामराज्य की बातें करता हूँ । रामराज्य स्वराज्य से भी बड़ा है । इसलिए रामराज्य कैसा है, इसकी बातें करूँगा । स्वराज्य की नहीं । रामराज्य वहीं हो सकता है, जहाँ सीता की उत्पत्ति संभव हो । हम कुछ हिन्दू श्लोक पढ़ते हैं, उनमें से एक श्लोक स्त्रियों के बारे में है । उसमें प्रातःस्मरणीय स्त्रियों का उल्लेख है । ऐसी स्त्रियाँ कौन हैं ? ऐसी स्त्री वह, जिसका नाम लेने से पुरुष और स्त्री दोनों पुनीत हों । इन सती स्त्रियों में सीता का नाम तो होगा ही । हम 'राम-सीता' नहीं कहते, परन्तु 'सीता-राम' कहते हैं और 'कृष्ण-राधा' नहीं कहते, परन्तु 'राधा-कृष्ण' कहते हैं । तोते को भी हम यही पढ़ाते हैं । हम सीता का नाम पहले लेते हैं, इसका कारण यह है कि पवित्र स्त्रियाँ न हों, तब तक पवित्र पुरुषों का होना असंभव है । बालक माता के जैसा ही होगा, पिता के जैसा नहीं । माता के हाथ में बालक की लगाम रहती है । पिता का काम बाहर है । इसीलिए कहता आया हूँ कि सार्वजनिक जीवन में भारत की स्त्रियाँ भाग न लें, तब तक भारत का उद्धार नहीं है । सार्वजनिक जीवन में वही भाग ले सकती हैं, जो तन और मन से पवित्र हैं । जिनके तन और मन एक ही दिशा में—शुद्ध दिशा में—चलते रहते हैं, ऐसी स्त्रियाँ जब तक भारत के सार्वजनिक जीवन को पवित्र न करें, तब तक रामराज्य अथवा स्वराज्य असंभव है; अथवा स्वराज्य संभव हो, तो जिसमें स्त्रियों का पूरी तरह हिस्सा न हो, वह स्वराज्य मेरे लिए निकम्मा है । ऐसी पवित्र मन और हृदयवाली स्त्री सदा ही साष्टांग नमस्कार करने योग्य है । मैं चाहता हूँ कि ऐसी स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में भाग लें ।

'ऐसी स्त्री किसे कहें ? सती का दर्शन उसके चेहरे में है, परन्तु फिर तो भारत में जितनी वेश्याएँ हैं, उतनी सतियाँ हैं, यह माना जाय ? क्योंकि उनका धंधा शरीर को सजाने का है । परन्तु ऐसा नहीं है । असली चीज हृदय की पवित्रता है । जिसका मन और हृदय पवित्र है, वह स्त्री हमेशा साष्टांग नमस्कार करने योग्य है । परन्तु प्रकृति का नियम है कि हम जैसे भीतर हैं, वैसे ही बाहर दिखाई देंगे । हम अन्दर

से मैले होंगे, तो बाहर मैल दिखाई देगा । आँख और आवाज दो बाह्य चिह्न हैं । जिसे परख है, वह आवाज से परख लेगा ।

'तो पवित्रता का क्या अर्थ है ? उसकी निशानी क्या है ? मैं खादी को पवित्रता की निशानी समझता हूँ । परन्तु मेरे यह कहने से यह मानने का कारण नहीं कि जो खादी पहने, वह पवित्र हो गया ।

'मैं कहता हूँ कि सार्वजनिक जीवन में भाग लो । सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का अर्थ क्या ? सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का अर्थ सभामण्डपों में हाजिरी देना नहीं, परन्तु यह है कि पवित्रता के चिह्न-स्वरूप खादी पहनकर भारत के नर-नारियों की सेवा करें । हमारे लिए राजा-महाराजाओं की सेवा करनी हो तो वह कैसे होगी ? महाराजा साहब के यहाँ जायँ, तो शायद द्वारपाल महाराज साहब के पास हमें पहुँचने भी न दे । इसी तरह करोड़पतियों की सेवा भी हमसे नहीं हो सकती । भारत की सेवा का अर्थ है गरीबों की सेवा । ईश्वर अदृश्य है, इसलिए हम दृश्य की सेवा करें, तो काफी है । दृश्य ईश्वर की अर्थात् गरीबों की सेवा ही हमारे सार्वजनिक जीवन का अर्थ है । इनकी सेवा करनी हो तो भगवान् का नाम लेकर गरीबों के बीच में जाकर चरखा कातो ।

'सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का अर्थ है, गरीब बहनों की सेवा करना । इन बहनों की हालत बहुत कंगाल है । उनकी मेरी स्त्री के साथ मुलाकात गंगा के किनारे, जहाँ जनक राजा हुए और सीताजी हुईं, वहाँ हुई थी । उनकी स्थिति दयाजनक थी । शरीर पर पूरे कपड़े नहीं थे । परन्तु उस समय मैं उन्हें साड़ी नहीं दे सका, क्योंकि उस समय मुझे चरखा नहीं मिला था । भारत की स्त्रियों को कपड़े मिलते हैं, तो भी नग्न हैं, क्योंकि देश में एक भी स्त्री को नंगी रहना पड़ता हो तो देश की सभी स्त्रियाँ नंगी हैं, यही कहा जायगा । अथवा सोलह सिंगार सजी हुई स्त्री हो, तो भी यदि वह अपवित्र आत्मावाली हो तो वह नग्न है । उससे कतवाना और बुनवाकर कपड़े पहनाना कैसे संभव है, यह हमें विचार करना है ।

'आजकल तो सेवा करनेवाले गाँवों में जाते हैं, तब लोगों को ऐसा लगता है कि शायद चौथ माँगनेवाले आ गये । वे ऐसा क्यों मानते हैं ? आपको समझना चाहिए कि आप गाँवों में देने जाती हैं—लेने नहीं ।

'हमारी माँ कातती थी तो क्या वह पागल थी ? अब मैं कातने को कहता हूँ, तब मैं आपको पागल लगता हूँगा । परन्तु पागल गांधी नहीं— आप स्वयं हो । आपको गरीबों पर दया नहीं है । फिर भी आप अपने मन को मनाती हैं कि भारत खुशहाल हुआ है और उस खुशहाली के गीत गाती हैं । आपको सार्वजनिक जीवन बिताना हो तो चरखा कातिए, खादी पहनिए । तन, मन शुद्ध होगा, तो आप सच्ची स्वदेशी बन जायेंगी । भगवान् का नाम लेकर कातिए । भगवान् का नाम लें अर्थात् आप कंगाल बहनों के लिए कातें । गरीबों को दान देना ईश्वर को देने के बराबर है । दान तो वही है, जिससे गरीब सुखी हों । किसीको भी दान देंगी तो यह कहा जायगा कि उस दान के देने में आप स्वच्छंदता बरतती हैं । जिसे ईश्वर ने दो हाथ, दो पैर और तन्दुरुस्ती दी है, उसे आप दान दें तो यह कहा जायगा कि आप कंगाल बनाने का धंधा लेकर बैठी हैं । ब्राह्मण को इसीलिए कि वह ब्राह्मण है, भिक्षा न देना । उससे कतवा-कर चुटकीभर ज्वार या चावल देना । मन की पवित्रता की पहली निशानी यह है कि ऐसे लोगों के बीच में जाकर खादी का काम करें ।

'दूसरी निशानी अन्त्यजों की सेवा करना है । आजकल के ब्राह्मण, गुरु वगैरह अछूतों को छूने में पाप मानते हैं । मैं कहता हूँ कि इसमें पाप नहीं, परन्तु धर्म है । मैं उनके साथ खाने-पीने को नहीं कहता, परन्तु सेवा के लिए छूने को कहता हूँ । सेवा के योग्य बीमार अछूत के लड़के की सेवा करने में धर्म है । अन्त्यज खाते हैं, पीते हैं, उठते हैं, बैठते हैं । और ऐसा तो सभी करते हैं । ऐसी बात नहीं कि ऐसा करने में ही अधर्म होता है या पवित्रता होती है । मेरी माँ भी किसी समय अन्त्यज बनती थी और तब वह किसीको छूने नहीं देती थी । मेरी स्त्री भी इस प्रकार अन्त्यज बनी है । उस समय वह अस्पृश्य बन जाती थी । हमारे भंगी भी जब ऐसा काम करते हों, तब अस्पृश्य बन जाते हैं । और उनके नहाये-धोये बिना उन्हें न छुओ तो हर्ज नहीं । परन्तु वह नहा-धोकर साफ हो जाय, तब भी आप उसे न छुएँ तो वह नहायेगा किसके लिए ? उसके लिए तो ईश्वर भी नहीं । वह मानता है कि दूसरे मेरी तरह ही आँख-नाकवाले हैं, फिर भी मेरा तिरस्कार करते हैं, तो मेरे लिए क्या होगा ? परन्तु आप विचार करें । रामचन्द्रजी ने अन्त्यज का तिरस्कार किया था ? जिस शबरी के जूठे बेर उन्होंने खाये थे* और

---

* रावण सीता का हरण कर ले गया, तब राम और लक्ष्मण उसकी तलाश में जा रहे

जिस निपाद से वे गले मिले थे, वह शवरी और निपादराज* दोनों अस्पृश्य थे।

'तीसरी वात मुसलमानों के लिए मित्रभाव पैदा करने की है। 'ये तो मियाँ हैं', 'मियाँ और महादेव की नहीं वन सकती', ऐसा कोई आपसे कहे, तो आप कहना कि इनके साथ दुश्मनी नहीं हो सकती।

'ये तीन वातें आप करें तो सार्वजनिक जीवन में पूरा भाग लिया है, ऐसा कहा जायगा। ऐसा करने से आप प्रातःस्मरणीया वनेंगी। यह कहा जायगा कि आपने भारत के उद्धार का कार्य किया। आप ऐसी वनें, यही प्रार्थना करता हूँ।'

क्षत्रिय वारिया परिषद्

धारालाओं की परिषद् हुई। इसमें उन लोगों ने स्वयं ही शराव न पीने, कन्या-विक्रय न करने और स्त्रियों का अपहरण न करने के प्रस्ताव किये। प्रस्ताव पेश करनेवाले भी धाराला थे और समर्थन करनेवाले भी वही थे। ये प्रस्ताव इतने जल्दी-जल्दी हुए कि उनके महत्त्व के वारे में गांधीजी को खूव विस्तार करना पड़ा। धाराला अपने को धाराला कहलवाने में वेइज्जती मानते हैं और क्षत्रिय कहलवाते हैं। इसलिए गांधीजी ने उन्हें क्षत्रियत्व के लक्षण—अपलायन, गरीवी, शरणागत और स्त्री की रक्षा तथा वचन-पालन—समझाये।

अपने प्रवचन में गांधीजी वोले :

'भाइयो, मुझे अफसोस है कि इस परिषद् का काम हमें अव १० मिनट में पूरा करना है। क्योंकि चार वजे अन्त्यज भाइयों को वुलवाया है। आप सव भाइयों ने तीन प्रस्ताव पास किये। ये तीनों अत्यन्त उपयोगी हैं। आपने शराव न पीने का निश्चय किया है, यह अच्छी वात है। यह सच है कि शराव पीने का ठीका आपकी ही जाति का नहीं है। दूसरी जातियाँ भी पीती हैं। कन्या-विक्रय और स्त्री-अपहरण न करने के आशयवाले प्रस्ताव भी आपने किये हैं। ये भी अच्छे हैं। आप तो क्षत्रिय हैं और आप यह मानते हैं कि आपमें क्षत्रिय के गुण हैं। हमारे शास्त्रों को देखें तो पता चलेगा कि सच्चा क्षत्रिय कदम रखने के वाद

थे कि रास्ते में शवरी नाम की (कथित) अछूत तपस्विनी के आश्रम में पहुँचे थे और उसके रखे हुए वेर खाये थे। मूल कथा में वेर जूठे होने का उल्लेख नहीं है।

* निपाद भीलों की एक जाति है।

हटता ही नहीं है। फिर वह औरों की रक्षा करता है। मेरा कहा किये बिना आप स्वयं ही ऐसा मानें कि ऐसा करना क्षत्रिय का गुण है। और ऐसा मानकर पीछे कदम न उठायें। प्रतिज्ञा लेने का अर्थ है वचन देना। भगवान् को साक्षी रखकर ही कुछ भी करना स्वीकार करें। शराब न पीने की, कन्या न बेचने की और अपहरण न करने की प्रतिज्ञा आपने ली है। परन्तु आप अपना वचन नहीं पालन करेंगे, तो सारे जगत् के प्रति अपराध माना जायगा। चारों ही वर्ण जो-जो प्रतिज्ञाएँ करें, उनका उन्हें पालन करना ही चाहिए।

'वचन-भंग करने का मतलब पीछे कदम हटाना है। इसलिए यदि एक बार प्रतिज्ञा लेने के लिए हाथ उठायें और फिर अपने वचन भूल जायँ तो आप क्षत्रिय नहीं रहेंगे। आपको ही शर्मिन्दा नहीं होना पड़ेगा, बल्कि मुझे भी लज्जित होना पड़ेगा। मुझे यह बात भारी पड़ेगी। आपके भीतर जो रविशंकर* काम कर रहे हैं, उन्हें आप चोरी न करने का वचन देकर चोरी करेंगे तो रविशंकर क्या करें? सरकार आपको सजा दे, परन्तु रविशंकर उपवास करके स्वयं दुःख सहन करें और ऐसा करके आपको बतायें कि आप दिये हुए वचन का भंग करते हैं, इससे अच्छा तो यह है कि मुझे मार डालो। ऐसे रविशंकर के सामने आपने वचन लिया है, इसलिए आप वचन तोड़ेंगे, तो उनसे उपवास कराने की बात होगी, मैं रविशंकर की जाति का ठहरा। उनके पीछे चलना मुझे आता है और मारना नहीं आता, परन्तु मरना आता है। और आप यह भी जान लेना कि रविशंकर एक नहीं है; उनकी तो बहुत फसल पैदा होने-वाली है। इतनी चेतावनी देने के बाद आपसे पूछता हूँ कि जो प्रतिज्ञा ली है, वह मंजूर है? यह नाटक नहीं है। मुझे नाटक करना नहीं आता और कोई जाति नाटक करके उन्नत नहीं हुई। हम पढ़े-लिखों ने आपके सामने नाटक करके आपको बिगाड़ा है। इसलिए अब भी विचार करके हाथ उठाना। हाथ उठाने से ही प्रतिज्ञा पूरी हुई, यह समझने का जमाना चला गया। इतना आपकी प्रतिज्ञा के बारे में कह दिया।

'अब और दो बातें। एक बात तो यह है कि आपको खादी पहननी चाहिए। आपको यह नहीं समझना चाहिए कि आपका मुल्क नर्मदा और साबरमती के बीच है, आपका मुल्क बहुत ज्यादा बड़ा है। वह १९००

---

* गुजरात के मूक सेवक रविशंकर महाराज।

मील लम्बा और १५०० मील चौड़ा है। आपको इतनी मंजिल तय करनी हो तो १९० दिन चाहिए। इस देश में रहनेवाले सब आपके भाई-बहन हैं। उनके लिए आपको सूत कातने की जरूरत है। और वह सूत महासभा को देना है। खादी सस्ती करने का कोई और उपाय नहीं है। आप रोज आधा घंटा कातिए। करोड़ों आदमी ऐसा करें तो खादी मुफ्त मिलने लगे।

'दूसरी बात अछूत जाति को अपनाने की है। क्षत्रिय का अर्थ है गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक। गाय का मतलब दो सींगवाला जानवर नहीं है; गाय का अर्थ है, कोई भी दुःखी प्राणी। अन्त्यज एक दुःखी जाति है। क्षत्रिय यदि अन्त्यजों का त्याग करे, तो वह क्षत्रिय न रहे। अपने-आपको क्षत्रिय माननेवाले यदि अछूतों का त्याग करें तो उन्हें कोई भी क्षत्रिय नहीं मानेगा।

'ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी प्रतिज्ञा के पालन में वह आपकी सहायता करे। आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहते हैं, तो मुझ गरीब की बात मानना। जिसे व्रत-पालन करना हो, उसे सवेरे उठकर राम-नाम, सोने से पहले राम-नाम लेना और यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे राम, मेरे सहायक होइए और प्रतिज्ञा का पालन करने में मदद दीजिए। यदि ऐसा करेंगे तो शराब देखकर आपका मन नहीं चलेगा, किसी बहन को देखकर विकार नहीं होगा। लड़की तो बेचारी गाय है, उसे बेचते समय आपको अपने प्रति तिरस्कार होगा।'

अन्त्यज-सम्मेलन

अन्त्यजों की सभा में प्रवचन करते हुए उन लोगों को मुबारकबाद दिया, जो अछूत न होने पर भी सभा में उपस्थित थे और सम्मेलन के व्यवस्थापकों को इसलिए कि उन्होंने साहस करके अपने धर्म का पालन किया। फिर अछूत जाति के जो भाई-बहन बीड़ी पीते हों, उनसे हाथ ऊँचा करने को कहा। अपने प्रवचन में गांधीजी बोले :

'हममें जो मैल है, उसे छिपाने और शरमाने की बात नहीं हो सकती। बहनें हुक्का पियें तो कष्ट होता है। उनके मुँह में दुर्गन्ध आती है। शराब की लत भी ऐसी ही है। शराब पीनेवाले की क्या दशा होती है, इसका मुझे अनुभव है। भाँग पीने का भी मुझे अनुभव है। शराब और भंग मौसेरी बहनें हैं। मैं चाहता हूँ कि आप यह सब व्यसन छोड़ दें। मेरा कहना मानें तो मांस बिलकुल छोड़ दीजिए।

'अछूतों को न छूनेवाले अनेक आपत्तियाँ पेश करते हैं। वहस छिड़ने पर वे मुझसे कहते हैं कि अछूत गन्दे हैं, शराव पीनेवाले हैं, मांस खानेवाले हैं। मैं उन्हें उत्तर देता हूँ कि ब्राह्मणों, वनियों और दूसरों में भी ऐसे आदमी होते हैं, फिर भी उनके वच्चे पाठशाला में जाते हैं, मन्दिर में जा सकते हैं, तव यह उल्टा तर्क क्यों ? परन्तु मैं उनके साथ ऐसी वहस करता हूँ तो भी आपसे तो यही कहता हूँ कि आपके विरुद्ध जो आक्षेप किये जाते हैं, उनसे आप वच जायँ। तो फिर उन लोगों को कुछ कहने को नहीं रहेगा। अपना काम करने के वाद आपको रोज नहाना ही चाहिए। भंगी का काम मैंने वहुत किया है, मेरे लड़कों ने भी यह काम वहुत किया है, आपके रावजीभाई ने भी किया है। इसमें वेइज्जती है ही नहीं, यह तो पवित्र काम है। मैला साफ करनेवाला आदमी तो पवित्र कार्य करता है। आप चमड़ा साफ करो तो उसे साफ करके भी स्नान करना। अच्छे आदमी हमेशा दातुन करते हैं, दाँत साफ रखते हैं और नहा-धोकर शरीर साफ रखते हैं। आप यह सव करना और फिर माला लेकर राम-नाम जपना। माला न हो तो अँगुली के पोर पर राम-नाम लेना। इस राम-नाम के जप से आपके व्यसन छूट जायँगे, आप साफ हो जायँगे और आपको सव पूजेंगे। सुवह उठकर राम-नाम लेने से और सोते समय राम-नाम लेने से दिन अच्छा वीतेगा और रात को खराव सपने भी नहीं आयेंगे। स्वच्छ रहने के लिए किसीका जूठा न लेना, सड़ा हुआ अन्न मत लेना, जूठी मिठाई मिले तो भी उसका त्याग करना और अपने हाथ से वनायी हुई रोटी खाना। आप जूठा खाने को पैदा नहीं हुए। आपके आँख है, कान है, नाक है। आप पूरे मनुष्य हैं। मनुष्यत्व कायम रखना सीखिए।

'आपको वहुत लोग कहने आयेंगे कि आपका हिन्दू-धर्म झूठा है, क्योंकि आपको पाठशाला में जाने की और मन्दिर में जाने की भी इजाजत नहीं मिलती। ऐसा कहनेवालों से कहना कि हम अपने हिन्दू भाइयों से निपट लेंगे; भाई-भाई और वाप-वेटा लड़ें तो जैसे उसमें कोई दखल नहीं देता, वैसे ही तुम भी हमारे मामले में हस्तक्षेप न करो—ऐसा जवाव उन्हें देना, और अपने धर्म में मजवूत रहना। मैं खुद जाति-वाहर हूँ, मेरे जैसे वहुत-से लोग जाति-वाहर हैं, तो क्या मैं अपना धर्म छोड़ दूँ ? अनेक ईसाई मित्र मुझसे कहते हैं कि तू ईसाई हो जा। उनसे मैं कहता हूँ कि मुझे अपने धर्म में कोई हानि नहीं, फिर किसलिए मैं उसका त्याग

करूँ ? मैं भले ही जाति-बाहर हूँ, परन्तु मैं पवित्र हूँ, स्वच्छ हूँ तो मुझे क्या दुःख है ? मैं अछूतों में मिल गया हूँ, इसी कारण मुझे कोई हिन्दू सताये, तो इससे क्या मैं हिन्दू नहीं रह जाता ? हिन्दुत्व मेरे अपने लिए है; मेरी आत्मा के लिए है। ईसाई और मुसलमान दोनों से आप यह बात कहना और हिन्दू-धर्म में दृढ़ रहना। अन्त्यज कोई मोहरे नहीं, शतरंज की बाजी नहीं कि जो चाहे सो इनसे खेल सके। मैं आपको भाई-बहन कहता हुआ आपके पास आता हूँ तो अपनी गरज से। मेरा स्वार्थ यह है कि मेरे माँ-बाप ने आपके प्रति जो पाप किया है, उसे मैं धो डालूँ। परन्तु आपके प्रति मैंने पाप किया है, इससे आपको क्या ? इसलिए आप क्यों धर्मत्याग करो ? प्रायश्चित्त तो मुझे करना है। आप राम-नाम क्यों छोड़ें ? राम का न्याय है कि जो राम का सेवक है, राम का दास है, उसे तो दुःख ही देता रहता है और दुःख देकर उसकी परीक्षा लेता है। इस परीक्षा में आप पास हों, यही चाहता हूँ।

'अन्त में आपसे दया रखने को कहता हूँ, क्योंकि हम सब जगत् की मुहब्बत पर जीते हैं। और अन्त में कहूँ कि सब चरखा चलाइए और खादी ही पहनिए।'

बारडोली ताल्लुके में

१७-१-'२५

बारडोली ताल्लुके में पहले वराड़ गाँव में गये। वहाँ के शिक्षक ने बड़ा आश्चर्य कराया। उद्यम और आग्रह का आदर्श उपस्थित किया। गांधीजी आनेवाले थे, इसलिए इस भाई ने अपनी पाठशाला के छह घंटों के बाद रोज ९ घंटे कातकर २० दिन में ७० हजार गज सूत तैयार रखा था। ऐसे शिक्षकों से लड़के उत्साह न लें तो क्या लें ? इस पाठशाला में अस्पृश्यता के प्रश्न ने फूट डाल दी थी। परन्तु गांधीजी के सामने नेताओं ने समझकर दूसरे ही दिन फूट मिटाने की प्रतिज्ञा की।

बारडोली ताल्लुके में जब सत्याग्रह की तैयारी हुई थी, तब मैं जेल में था, इसलिए उस दिन के साथ आज तुलना नहीं कर सकता, फिर भी बाह्य उत्साह तो आज भी बहुत लगा। बहनों की उमंग सन् १९२१ में इससे अधिक होगी, ऐसी मुझे कल्पना नहीं हो सकती। सारे गाँव के लगभग तमाम घरों की स्त्रियाँ रुपया, पैसा, सूत और नारियल लेकर आयी थीं। घंटों तक जारी रहनेवाला यह बहनों का प्रवाह देखकर किसीको भी

हैरत होती । दूसरी हैरत पैदा करनेवाली वात भी थी । हम जिस घर में वैठे थे, उसीमें अस्पृश्यता के प्रश्न को लेकर टूटी हुई पाठशाला के वारे में चर्चा हुई थी। इस समय अस्पृश्यता को छोड़नेवाला पक्ष एक भंगी भाई को लेकर वहाँ मौजूद था। वह भंगी भाई गांधीजी के सामने उपस्थित हुआ, तव सव प्रसन्नतापूर्वक वैठे रहे थे! यही दृश्य वांकानेर में देखा । ये दोनों वातें अस्पृश्यता के मामले में हुई प्रगति सूचित करती हैं, जब कि पाठशाला में इसी वात के कारण उत्पन्न हुई फूट लोगों की भीरुता प्रकट करती है। गांधीजी के सामने तो अन्त्यजों का स्पर्श सहन कर लिया जा सकता है, परन्तु गांधीजी के चले जाने के वाद जातिवाले कोई तूफान खड़ा करें तो!

यह सव देखकर गांधीजी वारडोली गाँव में आये। यहाँ की सभा निष्प्राण थी, ऐसा कहा जा सकता है। वहाँ गांधीजी ने अपने दिल का दर्द प्रकट किया।

'कहाँ सन् '२२ की जनवरी का दिन और कहाँ आज सन् १९२५ की जनवरी की १७ तारीख ! वारडोली में सत्याग्रह का निश्चय किया था, उसे सन् '२२ की फरवरी की ११ तारीख को मुल्तवी किया था। जव मुल्तवी किया, तव वारडोली के मुखिया आये थे। उनके साथ वातचीत हुई।

'उससे पहले के प्रसंग की याद दिलाना चाहता हूँ। हमने निश्चय किया था कि सत्याग्रह अवश्य करेंगे। परन्तु वाद में चौरीचौरा आ गया। वह न आया होता तो वारडोली के वहुत आदमी कैद में गये होते। मन में यह सोचा था कि वारडोली के जेल जाने से भारत की वेडियाँ टूटेंगी। एक समय ऐसा आया था, जव मैंने वाइसराय साहव को जो पत्र भेजा, वह भेजने से ही इनकार कर दिया था, क्योंकि कुछ शर्तों का पालन नहीं किया गया था, इसका मुझे पता चला था। वाद में उस पेड़ के नीचे वारडोली के २५-५० लोग वैठे और मैं वैठा। मैंने उनसे कहा कि 'आपने प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया', तव उनके मुँह उतर गये। उन्होंने कहा: 'प्रतिज्ञा का पालन करेंगे। सत्याग्रह जारी रखिए।' इस पर मैंने सत्याग्रह शुरू किया।

'परन्तु ईश्वर की कृपा है। इसलिए जो उसका नाम लेता है, उसे वह वचा लेता है। भूल को स्वीकार करना और छोटी-सी भूल को वड़ी वनाकर वताने में हमारा कल्याण है। वारडोली में सत्याग्रह नहीं किया, इससे भारत वच गया। चौरीचौरा में हमारे भाई पागल वने, यह ठीक

हुआ, क्योंकि वाद में हमें सव वीच में छोड़ना पड़ता और मजबूर होकर छोड़ना पड़ता तो हमें कष्ट होता। हम वच गये, यह मानने के और कारण भी थे।

'परन्तु अव तो देख रहा हूँ कि वारडोली प्रतिज्ञा के लिए तैयार ही नहीं था। वह प्रतिज्ञा लेनेवाले कहाँ गये? उस समय प्रतिज्ञा की थी कि वारडोली में छह मास के भीतर जितनी चाहिए उतनी खादी पैदा कर लेंगे, कातेंगे, जुलाहों को भरती करके, सीखकर, जितना कपड़ा चाहिए उतना वुनवा लेंगे। वह चीज कहाँ है? सफेद टोपी में ही अपनी पोशाक हमने मान ली है। धोती तक हम पहुँचे ही नहीं। गुजरात में वड़े अर्ज की धोतियाँ नहीं होतीं। वाहर से अर्थात् गुजरात के वाहर से हम धोतियाँ मँगवा नहीं सकते। इस समय हमारा धर्म तो यह है कि खादी कितनी ही मोटी क्यों न हो, हम उसे पहनें। वारडोली के वाहर से भी सूत न मँगवायें। हमने स्वदेशी का ५० फी सदी भी पालन नहीं किया। मैं देखता हूँ कि इन वहनों के शरीर पर खादी नहीं है। तिलक स्वराज्य-कोप का रुपया लाता, तव कहता 'ठीक है।' परन्तु अव रुपया आता है तो उतना सुख नहीं मिलता। हाँ, रुपया ले जाता जरूर हूँ। परन्तु आज कमी—सच्चे मनुष्यों की कमी—है, इने-गिने मनुष्य ही रह गये हैं।

'आपने अस्पृश्यता को नहीं निकाला। वांकानेर में अछूतपन का मैल भरा है। कितनों ने ही स्वीकार किया था कि निकालेंगे। इसी पेड़ के नीचे यह प्रस्ताव हुआ था कि अनेक राष्ट्रीय पाठशालाओं में अन्त्यजों को प्रवेश कराने का निश्चय है।

'मैं वराड़ से आ रहा हूँ। वहुत सुन्दर पाठशाला, वहुत सुन्दर शिक्षक। परन्तु अछूत वच्चों के लिए पाठशाला खुली रखने के विद्यापीठ के प्रस्ताव के वाद कुछ लोगों ने अपने लड़कों को हटा लिया। यह यही वताता है कि तालुका तैयार नहीं था। मुझे आपको खवर देनी चाहिए कि वराड़ ने फिर स्वीकृति दी है। मुझसे कहा गया है कि राष्ट्रीय पाठशाला वन्द करके जो देहाती पाठशाला खोली गयी है वह अलग है; और अव दोनों एक करनी हैं। इस प्रकार घड़ीभर में हमें भान हो और घड़ीभर में न हो, तो कैसे काम चले? हमें आशा थी कि अस्पृश्यता थोड़ी-थोड़ी तो मिटेगी ही। परन्तु आप कहेंगे कि वह तो शर्तिया थी। मगर जेल जाने की शर्त पर हम सन् १९२१ में नाटक नहीं करते थे। इतना हमारा विश्वास था

कि जब तक अस्पृश्यता दूर न हो जाय, तब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा। और मिले तो भी निकम्मा।

'खादी पहनना धर्म मानते हों, तो भी यह काम करते हुए भी स्वराज्य लेकर बैठ जायँ, तो इससे क्या? जो तालुका देश में अगुआ है उसका, सारी दुनिया चूके तो भी, त्याग नहीं करना चाहिए। इसका कारण क्या? कारण यह कि बारडोली को श्रद्धा थी। उसकी परछाईं भारत में पड़ती है। बारडोली में हम ढीले हैं—जैसे अमृतसर में, वैसे यहाँ भी नाक रगड़ने को तैयार हो जाते। यहाँ और वहाँ हम वैसे ही हैं। हिम्मत का एक मौका आता है, तो बेहिम्मत आदमी भी हिम्मत करता है। मुझे लगता है कि बारडोली में स्वतन्त्र साहस नहीं था। स्वतन्त्र साहस का अर्थ यह है कि २५ मनुष्य भी चले जायँ—जेल का दुःख जानते हुए भी। अब ऐसा लगता है कि यह हिम्मत भी नहीं थी।

'हिन्दू-मुसलमानों के बारे में कुछ नहीं कह सकता। यह तो हमारे बीच में झगड़े की बात ही नहीं थी। परन्तु तीसरी बात है। इस बार आपने इतनी बहादुरी और ठंडी हिम्मत दिखायी थी कि शराब की दूकानों पर आपने अत्याचार नहीं किया, मारपीट सह ली और बारडोली में आशा रखी गयी थी कि शराब पीनेवाले रहेंगे ही नहीं। हमें आशा थी कि शराब का पूरी तरह नाश होगा।

'दूबलों की चौथी बात। इन पर कितना अत्याचार हुआ है? बारडोली में आपके बुलाने से स्वयं आये। मैंने भी नहीं बुलाया। इनका क्या हाल हुआ, यह वर्णन नहीं करूँगा। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि जो भूल हुई है, उसे अब भी बारडोली सुधारे। मैं बारडोली के बारे में आशा नहीं छोड़ूँगा। बहनों के दर्शन करते हुए इनकी आँखों में जो चमक और प्रेम था, वह तो वैसा ही है। रुपया, नारियल और सूत लाने को किसीने कहा नहीं था, फिर भी मैं आनेवाला हूँ, इसलिए सब लेकर आयीं। बहनें तो करना चाहती हैं, परन्तु भाई शक्ति खो बैठे हैं। बराड़ में आपस में झगड़े होते रहते हैं।

'वल्लभभाई से भी मैं कहने आया हूँ कि आप सोच लें तो अब भी अपनी शक्ति से बात को ढँक सकते हैं। भाई रायचुरा ने गाया कि पंजाब-बंगाल प्रान्तों की गुजरात ने लाज रखी। परन्तु मुझे कहना चाहिए कि गुजरात ने लाज नहीं रखी। गुजरात को अब भी मौका है। आज जेल में जाने को नहीं कहता। जेल में जाना जरूर है, मगर इस समय आपसे

इस बारे में नहीं कहूँगा। इस बारे में तो मेरी अपनी ही कल्पना है। इस समय तो मद्यपान का निषेध, कालीपरज, दूबला वगैरह की उन्नति, खादी वगैरह की बात है। इसमें कम-ज्यादा की बात नहीं, परन्तु सम्पूर्णता की बात है। मनुष्यमात्र—छोटे हों या बड़े—नकल कर सकते हैं। मुखिया भाषण करे तो हम उसका अनुगमन करते हैं। इसलिए बारडोली इन मामलों में पहल करे तो दूसरे अनुसरण करें। इसका कारण यह है कि बारडोली के पास रुपया है। कालीपरज को दुःख देने की इसे जरूरत नहीं है। दक्षिण अफ्रीका में मुझे इनसे सम्पर्क आया था। मैंने अनुभव किया है कि इनमें बहुत स्नेह है। सूरत के बहुत लोग परदेश में गये हैं।

'आप नेताओं को यहाँ लाये थे। दास, नेहरू, हकीम साहब सबको लाये थे। यहाँ तमाम साधनों का उपयोग हुआ था। इतने सारे साधन होते हुए भी आप इतने तुच्छ काम भी न करें तो भारत को स्वराज्य कहाँ से मिले? शराब पीनेवाले से शराब छुड़वाना कोई बड़ी बात है? खादी पहनने में क्या संकट है? मैं कातने की बात करता हूँ। आप इसे धर्म समझकर करें, आपको समय मिलता है, उसका सदुपयोग करें। तब गरीब की अँतड़ियाँ ठंडी हों। मैंने आपसे रुपये की माँग नहीं की। मैं तो कहता हूँ कि आप अपना रुपया अपने लिए—अपने बच्चों के लिए दें। बाहर के लिए रुपया नहीं माँगता। अन्त्यजों के बच्चों को अपनाने में क्या बड़ी मुश्किल है? स्वराज्य लेने का अर्थ है संघ-शक्ति प्रकट करना। हमारे कुटुम्ब टिके हुए हैं, क्योंकि हममें उनका पालन करने की शक्ति है। इसी तरह सारी जनता को कुटुम्ब मान लें तो कुछ कठिनाई मालूम न हो।

'मैं यहाँ किसी आवेश में नहीं आया। केवल धर्म समझकर आया हूँ। मैं नहीं जानता, आपसे क्या कहूँ। मैं निराश नहीं हुआ, परन्तु उदासीन जरूर हुआ हूँ। जितना आपके हाथ में है, उतना ही बारडोली के—सूरत जिले के—स्वयंसेवकों के हाथ में है। सूरत की जितनी शक्ति है, वह सूरत जिले में ही खर्च होनी चाहिए। आज भी कहता हूँ कि बहुत स्थानों पर शक्ति खर्च करने के बजाय एक ही जगह उसे इस्तेमाल करें तो अच्छा। परन्तु आज तो हम सभी तरह का आत्मविश्वास खो बैठे हैं। आत्मसिद्ध अधिकार लेने में इतनी देर होती है, यह असल में हमारी कमजोरी ही है। एक बार फिर समझ लीजिए कि मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप जेल जाने को तैयार हों। मैं तो इस समय खादी, अस्पृश्यता, हिन्दू-मुसलमान की बात कह रहा हूँ। ये काम अपने-आपमें महत्त्व के हैं और इन्हें इन्हींके

लिए करना है। दूसरी चीज एक खास हेतु के लिए थी। वकालत का त्याग, पदवियों का त्याग वगैरह बातें क्षणिक थीं। ये स्वराज्य लेने के लिए ही थीं। उनको मैंने अलग कर दिया है। स्वराज्य के बाद भी खादी, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुसलिम-एकता चाहिए। स्वराज्य के बाद दूबलों के बन्धन तोड़ने ही होंगे। हममें योग्यता नहीं है, इसलिए जो स्वाभाविक बातें हैं, आत्म-शुद्धि की चीजें हैं, वे हम कर नहीं सकते। ये चीजें साधन नहीं, परन्तु साध्य हैं, क्योंकि ये हमेशा करने की हैं। यह बात आप कीजिए। स्वराज्य मिले या न मिले, परन्तु अस्पृश्यता का दोष दूर करना ही चाहिए। नहीं तो धर्म का नाश है। स्वराज्य मिले या न मिले, परन्तु यदि खादी न हो, तो हममें इतनी भुखमरी फैलेगी कि हमारा मांस कौवे और कुत्ते खा जायेंगे। यदि यह सब न करें तो ऐसे समारोह करना व्यर्थ है। परन्तु कोई परिणाम ला सकेंगे तो मेरा आना सार्थक माना जायगा। ईश्वर वह परिणाम लाने की शक्ति बारडोली को दे।'

इस सभा में भी वल्लभभाई ने सूत कातकर सदस्य बननेवालों के नाम माँगे। लगभग पचास हाथ उठे।

१८-१-'२५

इससे अधिक उदासीनता पैदा करनेवाली स्थिति देखने हम भुवासण गये। भुवासण में तो भाई नरहरि, जुगतराम, डॉ० त्रिभुवन दास वगैरह भाई आश्रम खोलकर बारडोली-कार्यक्रम पूरा करने के लिए गये थे। आरम्भ में इनका काम ठीक-ठीक चला। गाँव के और आसपास के लोग खूब कातने लगे, पींजना सीख लिया और पूनियों के लिए रूई रखी। परन्तु अन्त में एक छोटा-सा आत्मशुद्धि का प्रसंग सहन नहीं कर सके।

यहाँ पाँच-सात सौ लोगों की सभा थी। इनमें से वल्लभभाई के सवाल का जवाब देनेवाले तीन ही आदमी मिले। वल्लभभाई माँग कर रहे थे और धीरे-धीरे तीन हाथ उठे। यह सब गांधीजी दूर से देखते रहे। इस सभा को गांधीजी ने अत्यन्त करुण कंठ से, परन्तु अतिशय ममता से, रूठे हुए प्यारों को जैसे मनाते हैं वैसे, सम्बोधन किया :

'मनुष्य सोचता कुछ है और करता कुछ है? मैं आपके और अपने दुःख की कल्पना करना नहीं चाहता। बारडोली तालुके के द्वारा हम भारत का बहुत काम करने की आशा रखते थे। परन्तु मनुष्य कितनी आशा

रखे और ईश्वर कितनी पूरी करे, यह कोई नहीं जानता। ईश्वर हमें खिलौनों की तरह नचाता है।

'दो-चार बड़ी-बड़ी बातें कह दूं। आप खूब कातते थे; और पींजने में रस लेते थे। आपके बीच शंकरलाल बैंकर रहते थे। अभी खाते-खाते मैं उनसे पूछ रहा था कि जब वे यहाँ रहते थे, तब आप लोगों की स्थिति कैसी थी। उन्होंने कहा कि आप सब कहते थे कि 'और सब तो कुछ भी हो, परन्तु खादी का मंत्र हम समझ गये हैं। उत्तम रूई बोते हैं और पैदा करते हैं। हममें जानकारी है। हमारे पास समय है। फिर अपने कपड़े क्यों न पैदा करें?'

'यह अच्छी बात है। इससे आगे मैं तो यह भी चाहता हूँ कि बारडोली तालुका जैसे अनाज के बारे में स्वतन्त्र है, वैसे ही कपड़े के बारे में स्वतन्त्र हो जाय; और बारडोली के बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष आलसी के बजाय उद्यमी बन जायँ। जिसे ईश्वर रुपया दे वही ऐसे बनें, सो बात नहीं। जो दुर्बल न हों, उनके पास भी कुछ-न-कुछ उद्यम हो तो अच्छा। बेकार बैठा तो बिगाड़ ही करता है, यह कहावत सच्ची है। कातने-पींजने से हम अपनी स्थिति सुधार सकते हैं और भुखमरी मिटा सकते हैं। आप जैसों को भूख का पता नहीं होगा, परन्तु कालीपरज या दूबला लोगों को उसका पता है। उनकी स्थिति लगभग जानवर जैसी है। जमीनवालों की स्थिति अच्छी होगी; परन्तु जो लोग कथित ऊँचे वर्ग के लोगों के साथ सीधा खाकर रहते हैं, उनके आँख और दांत देखते हुए, उनकी स्थिति अच्छी होगी, ऐसा मैं नहीं मानता। एक गाँव में मैंने ऐसे दूबले खूब देखे थे।

'मैं किसीसे नहीं कहता कि किसीको जेल जाना है। मुझे, दयालजी को, वल्लभभाई को जाना है; परन्तु अभी नहीं। कारण, सन् '२१ में जिस नीति का प्रचार किया था, उसमें आगे होकर जेल में जाने की बात थी। अभी जेल में जाने का समय ही नहीं। जेल में जाने के लिए अलग तरह की शर्त है। इसके लिए जो गुण चाहिए, वे भारत के साधारण लोगों में नहीं आये। इसलिए मुझे लगता है कि इसके लिए छिटपुट मनुष्य ही काफी हैं। ऐसे छिटपुट लोग आपमें से इकट्ठे हों, ऐसी महत्त्वाकांक्षा है। परन्तु इसका अवसर अलग है। मेरी आशा तो और ही है।

'आप एक अच्छा काम करते थे। बारडोली तालुके में और कुछ न कर सकें, परन्तु खादी पैदा कर सकेंगे, ऐसी सबको आशा थी। आप यह

समझ गये थे कि ऐसा करने में ही हमारा भूषण है। परन्तु इस समय आप यह सब भूल गये हैं। आपकी श्रद्धा कहाँ चली गयी? मेरे जैसे कोई मनुष्य आपके पास आयें और जल्दी-जल्दी में एकाध काम उठा लें, जो आपको पसन्द न हो; परन्तु इससे आप दूसरे अच्छे काम भी छोड़ देंगे?

'परन्तु आपने तो यही किया। आपने आश्रम स्थापित किया। उसके लिए एक पारसी ने रुपया दिया। वह तो हातिमताई जैसा पारसी था। उसके जैसा उदार कोई नहीं है। वलि राजा जैसा और ईरान के किसी महापुरुष जैसा वह उदार था। उसका नाम था रुस्तमजी। उसका तो नाम रह गया! जव तक सरभोण है, तव तक वह रहेगा। यों तो आपके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। परन्तु पारसी रुस्तमजी ने धर्म का भेद ही नहीं माना। उसने जव सुना कि वारडोली के आदमी वहादुर हैं और कुरवानी करनेवाले हैं, तव उसने रुपया भेजा। और उससे आपने दो आश्रम वनाये, उनमें कार्यकर्ता रखे गये।

'इनमें गुजरात के अच्छे-से-अच्छे सेवक भी आये। इनमें नरहरि भी आये। परन्तु उसने तो आपका अपराध किया! मेरा लड़का, जिसे मैंने अपनी गद्दी दी होती, अपराध करे, तो वह मेरा अपराध माना जायगा। अलवत्ता विगड़ा हुआ हो, तो नहीं माना जायगा। नरहरि को तो मैंने गद्दी पर विठाया था। आश्रम में ये मेरे साथ काम करनेवाले हैं और मेरा इन पर भरोसा है। वारडोली में दूसरी जगह से लाकर रुपया उँडेला। वारडोली का नाम जगत् में जाहिर किया। भारत में वारडोली के गीत गवाये। उसकी वदनामी हो तो वुरा है, यह मानकर सवने विचार किया कि कार्यकर्ता वारडोली जायँ। उनमें नरहरि भी आये। उन्होंने आपका 'अपराध' यह किया कि दूवलों को पढ़ाने लगे और उनकी सेवा शुरू कर दी। मैं कहता हूँ कि उन्होंने करने योग्य अपराध किया है।

'हिन्दू-धर्म सिखाता है कि गरीव-से-गरीव की सेवा करके खाना चाहिए। हमारा धर्म दुवले ढोरों को पालने को कहता है। उनकी पसलियाँ दीखती हों, तो उन्हें न मार डाला जाय। हमें चींटियों को आटा खिलाना चाहिए। प्राणीमात्र पर दया करनी चाहिए। ऐसा सिखानेवाला सूक्ष्म धर्म यह नहीं सिखायेगा कि हमारे ही जैसे मनुष्य को हम जानवर की तरह रखें। वह यही सिखाता है कि गरीव आदमी पर दया रखें। भाई-भाई की तरह वरताव करना चाहिए। अनेक पुराने परिवारों में

नौकर नौकर नहीं, परन्तु सेठ जैसे हैं। उनके बच्चों को, जो हमारे बच्चों जैसे हों, खाने को क्यों न दो ?

'मैं कौन ? और नरहरि कौन ? जबरदस्ती नहीं हो सकती। नरहरि, जुगतराम और अन्य सब आप पर जबरदस्ती करने नहीं आये थे। परन्तु उन्हें दुःख हो तब क्या करें ? पुरुष निष्ठुर हो जाय और स्त्री को मारे, तो स्त्री क्या करे ? स्त्री रोये और खाना न खाये। इस पर पति क्रोध करे, तो ईश्वर का कसूर या पति का ? मैं अनुभव की बात कहूँ। मैं विवाहित हूँ और गार्हस्थ्य जीवन भुगता हुआ हूँ। स्त्री और पुरुष दोनों में खटपट हो जाय, तो स्त्री या तो गाली देती है या रोती है। नरहरि ने स्त्री जैसा बरताव किया। उन्होंने खाना बन्द कर दिया।[1] आपने यह समझा कि नरहरि ने आप पर जुल्म किया। परन्तु ऐसा नहीं। उन्होंने सत्याग्रह किया। सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करनेवाले ने आपके विरुद्ध किया। परन्तु सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह में उपवास के लिए स्थान ही नहीं है। आपने देखा है कि मैं नहीं करता। बम्बई[2] में मैंने उपवास किया, परन्तु वह हमारे लोगों के विरुद्ध—कांग्रेस और खिलाफतवालों के विरुद्ध था। परन्तु आपने जो काम किया है, वह मेरी मौत जैसा काम किया है। किसीको कष्ट दें, चौरीचौरा के लोगों ने जैसा किया वैसा काम करें, तो वह सरकार के विरुद्ध किया गया सत्याग्रह नहीं कहलाता। सरकार के विरुद्धवाले सत्याग्रह में जेल जाने की बात थी। उसमें भूखों मरकर दयालुता जाग्रत करने की बात नहीं थी। सरकार का हमारे विरुद्ध दुश्मनी का दावा था। परन्तु नरहरि का तो आपके साथ सेवा और प्रेम का दावा था; मित्रता का दावा था। उनका अन्तर तड़प उठा। आप नाराज हो गये। आपने इन्हें मार डाला होता तो कुछ नहीं, परन्तु आप अपने पर क्यों नाराज हुए ? खादी क्यों छोड़ी ? आपने यह मान लिया कि नरहरि झगड़ा करना चाहते हैं ? आप यह कह सकते थे कि हम

---

१. नरहरिभाई ने ता० १४-२-'२४ के आसपास एक सप्ताह का उपवास किया था।

२. हिन्दू-मुसलिम-एकता के लिए गांधीजी ने ता० १९-११-'२१ से ता० २२-११-'२१ तक बम्बई में और ता० १७-९-'२४ से ता० ७-१०-'२४ तक दिल्ली में उपवास किये थे। यह भाषण ता० १८-१-'२५ को दिया गया था। इसलिए दिल्ली का उल्लेख होना अधिक सम्भव है। परन्तु इस भाषण के महादेवभाई के नोट में और 'नवजीवन' में (अंक ता० ८-२-'२५ का पृष्ठ १८४) 'बम्बई' लिखा है, इसलिए यहाँ भी बम्बई रखा है। सं०

दूबलों के लिए कुछ नहीं करेंगे। परन्तु खादी, पींजन छोड़ने का क्या अर्थ ? यह कितना जुल्म ? कितना अनर्थ ?

'इसलिए आपसे कहना चाहता हूँ कि आप इन्हें फिर से अपनाइए, और इसका प्रायश्चित्त कीजिए। वह यही है कि मिल का कपड़ा छोड़ना धर्म समझिए और कातने लग जाइए। नरहरि ने मुझसे पूछा कि 'सरभोण छोड़ दूँ ?' मैंने कहा: 'नहीं। यह तो कायरों का काम है। ऐसा करोगे तो लोग चिढ़ेंगे, तुम इन्हें छोड़कर भाग नहीं सकते, स्थान-भ्रष्ट नहीं हो सकते। तुम्हें वहाँ रहकर ही बताना है कि तुम इनका बुरा करना नहीं चाहते। यह सेवा करके ही बता सकोगे—भागकर नहीं। परन्तु दृढ़ासन पर बैठ-कर काम करो। ऐसा करते हुए तुम्हारी सेवा कोई न ले तो तुम बैठे-बैठे कातो, बुनो और पींजते रहो।' यह मैंने उनसे कहा। इससे उनकी आत्मा को शान्ति मिली है या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। वे सहन न करें तो दूसरी बात है, परन्तु उनका धर्म है कि दूबले और अछूत कहें कि हमें पढ़ाओ तो वे पढ़ायें। परन्तु इतना अभय-वचन दे दूँ कि आपको दुःख में डालना नहीं चाहते।

'आपसे भी अभय-वचन चाहता हूँ। आपका एक हाथ नाराज हो जाय, तो आपको दूसरे को नाराज नहीं होने देना चाहिए। नाराज होने देंगे, तो इसमें न न्याय है, न अकल, न विवेक, न दूरंदेशी। इसमें पिछड़ी बुद्धि है। आपसे सवाल पूछे जा रहे थे, वे मैं सुन रहा था। आप लोगों को, सरभोण के आसपास के भाइयों को पींजना और कातना मुश्किल नहीं। फिर भी ये २००० गज न दें, तो कितनी शर्म की बात होगी ? जो बार-डोली बहादुरी की बात करता था, वह इससे डरता है! आजकल बराड़ की राष्ट्रीय पाठशाला में तमाम लड़के कातते हैं। पढ़ाई भी अच्छी हो रही है। सुणाव में सब कातते हैं। बराड़ के शिक्षक ने १५ घण्टे काम करके २० दिन में ७०,००० गज काता। वह भी बारडोली तालुके में ही है।

'आपको हम सबका डर लगता है कि आपको कोई कुएँ में डालना चाहता है। यह भय हो तो इसे निकाल डालिए। आपको किसीने दगा दिया हो, ऐसा एक भी प्रसंग है ? आपसे और क्या बात करूँ ?

'बहनो, आप नारियल, सूत और रुपये भेंट कीजिए, इससे मुझे आनन्द नहीं होता। बारडोली की बहनों से मुझे बहुत आशाएँ हैं। मैं यह चाहूँगा कि आप विदेशी वस्त्र को हरगिज स्थान न दें। आप हाथ से काते हुए

सूत को बुनवाकर पहनें तो कितना अच्छा हो? आपके द्वारा ही रामराज्य की आकांक्षा पूरी होगी। आप सीता-जैसी हो जायँ तो कितना अच्छा हो? आपके बच्चों को धर्म और कर्म दोनों सीखने चाहिए। आपमें से कुछ दक्षिण अफ्रीका से पाप करके रुपया भेजते हैं। परन्तु जुलाहा ४० रुपये कमाता है। आपके बच्चे यह धन्धा सीखेंगे तो सुखी होंगे। आप अन्त्यज पर प्रीति रखें। अस्पृश्यों के बारे में कोई स्त्री अशुचिता का विचार करे, तो वह सती नहीं रहेगी। आपके यहाँ दूबले हों, तो उन्हें प्रेम और दया की दृष्टि से देखना। घी चुपड़कर रोटी देना, नौकरों को जो अच्छी तरह रखे, उसके घर में बरकत होती है। देखो, पाखंड से कमानेवालों का क्या होता है? करोड़पति निर्वंश हो गये हैं। ईश्वर आपको ऐसा निर्मल हृदय और मन दे कि जो प्रार्थना हमने सुनी है, उसका अनर्थ न करके उसका सच्चा अर्थ आप ग्रहण करें।'

वांकानेर

अछूत बालकों ने आकर माला पहनायी। मास्टर खुशालभाई कहते हैं कि यहाँ अछूत सीखने को तैयार हैं।

गांधीजी बोले : 'वांकानेर की स्थिति देखकर मैं दुःखी हुआ। मास्टर अन्त्यज बालकों को लेकर बैठे। आँख चली गयी थी, उसे इन्होंने अच्छा किया। उन्होंने तो धर्म का काम किया है। परन्तु इससे वांकानेर के लोग इतने अधर्मी कैसे हो गये? इसका क्या कारण है? सन् '२२ की जनवरी में तो छुआछूत जानी नहीं। दक्षिण अफ्रीका में छुआछूत कहाँ थी?'

वेड़छी-कालीपरज-सम्मेलन

लोगों के हर्ष और आनन्द का पार नहीं था। नदी के एक भाग में जैसे अनेक बनजारों की लादियाँ पड़ी हों, ऐसे सबके गाड़ी-बैल छूटे हुए थे। एक किनारे पर छाया में प्रदर्शनी थी। उसमें डोड़े से लेकर उसे कातने तक की कला का प्रदर्शन कालीपरज के लड़के-लड़कियाँ और बूढ़े ही कर रहे थे। एक-दो बहनें थीं। उनसे पूछा : 'तेरी साड़ी खादी की है क्या?' उसने झट से उत्तर दिया : 'हाँ, मेरे ही हाथ के कते हुए सूत की और रँगवाई भी यहीं।' गांधीजी के आगे भी सूत का ढेर लग गया। एक कालीपरज के लड़के ने यह जानकर कि गांधीजी आ रहे हैं, रात-दिन काता और कातकर खुद ही बुना और गांधीजी को भेंट किया। और बहनों की निर्मलता की

क्या वात करूँ ? उनकी निर्मलता निहारने को तो निर्मल नयन चाहिए। एक वुढ़िया ने गांधीजी के सामने आकर सूत रखा, रुपया रखा और गांधीजी को निहारती रही और वोली : 'वापू को आज तक कहीं नहीं देखा था !' गांधीजी भी खिलखिलाकर हँसे । अपनी आँखों के सामने-वाली विराट् सभा देखकर वे वोले : 'इस सभा के सामने वोला क्या जाय ?' एक वृद्ध चौधरी—जीवण पटेल—स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। उनके भापण में कितना माधुर्य था ! उनके अपभ्रष्ट शव्दों में भी कितनी मिठास थी ! वे वोले :

'दो शव्द कहने की इजाजत चाहता हूँ । उन्हें ध्यान से सुनें । आप भक्त हो गये हैं । भक्ति-मार्ग का रस लगा है। यह उत्तम काम किया है । जगद्गुरु भगवान् महात्मा गांधी ने पधारकर हमारी इच्छा को पूर्ण किया है । हमने पहले भगवान् को पूजा होगा । इसके वाद कोई भी देवता अधिक अच्छी अकल देनेवाला नहीं । शराव-ताड़ी नहीं छोड़ोगे तो वेर के वरावर आँसू वहाकर खूव रोओगे ।'

गांधीजी का प्रवचन :

'भाई जीवणभाई, कालीपरज के भाइयो और वहनो, तथा दूसरे भाइयो और वहनो,

'अपनी जिन्दगी में मैंने वहुत सम्मेलन देखे हैं। ५० आदमी इकट्ठे हो जायँ तो उसे कांग्रेस कहते है और पाँच जमा हों तो उसे कान्फरेन्स कहते हैं । कुछ ऐसे भी सम्मेलन देखे हैं, जो उन्हींका होता है, जिन्हें हम नीच वर्ण के मनुष्य कहते हैं । ऐसे सादे सम्मेलन भी वहुत देखे हैं । भारत में ही नहीं, परन्तु अफ्रीका और यूरोप में भी देखे हैं । परन्तु ऐसा सुन्दर सम्मेलन और ऐसा रमणीय सम्मेलन तो पहला ही देखा है । इसके लिए स्वागत-समिति और स्वयंसेवक दोनों को धन्यवाद ! इस सम्मेलन में कम-से-कम खर्च किया गया है, यह ठीक है । गरीव मुल्क को यही शोभा देता है । सम्मेलन के साथ आपने सुन्दर आदर्श प्रदर्शनी रखी है । भारत के कोई भी नेता इस प्रदर्शनी को देखें और फिर भी उनके मन में कातने के वारे में अश्रद्धा रहे, तो उनकी स्थिति दयाजनक समझूंगा । देखने के वाद कोई भी यह नहीं मानेगा कि कातना-पींजना आवश्यक नहीं । सव मानेंगे कि यदि कंगाली दूर करना चाहते हों, तो यह आवश्यक है ही ।

'मुहम्मद अली नहीं आ सके, इसके लिए माफी चाहनेवाला तार उन्होंने भेजा है। आपको शायद पता न हो कि किसी समय वे बड़े ओहदे पर थे। बाद की बात आप जानते होंगे। इस बार उन्होंने कालीपरज के भाई-बहनों के सुख-दुःख में भाग लेने की कोशिश की थी। उनकी इच्छा थी कि फिर दर्शन करें और परिचय करें। इसके बाद वे बीमार हो गये। फिर उन्हें दो पत्र चलाने पड़े। मुझे तार दिया है कि न आ सकने के लिए माफी माँग लूँ।

'यह सम्मेलन तीन वर्षों से हुआ करता है। तीनों वर्षों में इस प्रकार प्रदर्शनी भी की गयी थी। उन सबके प्रस्ताव मैं पढ़ गया हूँ। इस बार प्रस्ताव तैयार नहीं किये गये। परन्तु पाँच-सात मिनट सलाह करके जाना है कि प्रस्ताव करेंगे जरूर।

'कालीपरज—काली प्रजा—का अर्थ रंग से काली नहीं। काली अर्थात् घटिया लोग; अर्थात् वे, जिन लोगों को मेहनत-मजदूरी से आजीविका प्राप्त करनी पड़ती है। ऐसे लोगों को सम्मेलन करने की जरूरत नहीं है। आज जमाना मजदूरों का है। जो मनुष्य मजदूरी को उमदा चीज—शराफत नहीं मानता होगा, वह स्वयं ही शरीफ नहीं रहेगा। आनेवाले जमाने में दर्जे होंगे ही नहीं।

'आज तो रुपया परमेश्वर माना गया है। परन्तु संसार में हमेशा उसका यह स्थान रहेगा? शैतान का स्थान हमेशा ऊँचा रहता है? जो ईश्वर से डरनेवाले हैं, उन्होंने तो ऐसा हरगिज नहीं माना। रुपया और शैतान एक-दूसरे के अर्थ के पूरक शब्द हैं। और कुछ शास्त्र यह भी कहते हैं कि दौलत के दुश्मन बहुत हैं। मेरा यह कहना नहीं है कि आपको रुपये की जरूरत नहीं है। आपको भी चाहिए। परन्तु प्रत्येक चीज अपने स्थान पर शोभा देती है। जो एक भी वस्तु पैदा नहीं करता, उसे समाज में स्थान नहीं होता। परन्तु हम स्थान चूक जाते हैं या उसका स्थान भूल जाते हैं। हम जब स्थान-भ्रष्ट होते हैं और रुपये को स्थान देते हैं, तब मार्ग से हट जाते हैं। रुपये को दूसरा स्थान दें, तब पीड़ा होती है।

'मैंने रुपये की इतनी बात की, इससे कोई यह न माने कि मैं रुपये-वाले की अवहेलना या निन्दा करता हूँ अथवा रुपयेवालों का बुरा चाहता हूँ। रुपयेवाले भी हमारे भाई ही हैं। इनसे भी काम लेना चाहता हूँ। ये लोग अपना स्थान समझकर रहें तो हम उसे सुव्यवस्था कहेंगे। आप मजदूर हैं, इसलिए पूज्य-पूजनीय हैं। जिस देश में मजदूर का आदर

नहीं और जहाँ उसकी निन्दा हो—उसका अनादर होता हो, वह देश नीचे गिरता है। यहाँ भी अनादर होता है।

'परन्तु यह संक्रान्ति-काल है। वहुतों ने अव समझ लिया है कि मजदूर का स्थान होना चाहिए। मजदूर के विना भारत का काम नहीं चल सकता। इसलिए कालीपरज अथवा मजदूर कहकर नीचे गिराना ठीक नहीं है। इन्हें और ऊपर उठाना चाहिए। कुछ लोग मजदूरों को धोखा देने और उनके द्वारा अपना स्वार्थ साधने का धंधा ले वैठे हैं। ऐसे लोगों ने मजदूरों का भला नहीं किया। परन्तु कुछ स्वयं मजदूरी करते हैं और मजदूरी के धंधे में मौज करते हैं। ये तो सुख भोगनेवाले ए। ऐसे आदमी आपके संसर्ग में आते हैं। मैं मानता हूँ कि कोई ादमी खोट या अपराध के विना गिरता नहीं। इसलिए जव हम अपना ाष दूर किये विना दूसरे की निन्दा करते हैं, तव हम और भी गिरते । मुझे लगता है कि आप कुछ ऐसा ही करते हैं। आप यह मानते कि आपकी स्थिति के लिए आप नहीं, परन्तु दूसरे जिम्मेदार हैं। मैं ाव से आया हूँ, तव से सवको समझाता हूँ कि दोष हमें नीचे गिराता और अच्छे काम—पुण्य कार्य—ऊपर उठाते हैं। प्रश्न यह नहीं है कि ोटी कैसे मिले? मजदूर के लिए यह प्रश्न हो ही नहीं सकता। जिसके ो हाथ और दो पैर हैं, वह मनुष्य स्वतन्त्र है। उस मनुष्य को दुःख ौन दिलाता है?

'दुःख के दो कारण हैं। आप शराव-ताड़ी पीते हैं। शराव के व्यसन से कतना दुःख होता है, इसका आप नमूना हैं। कालीपरज के भाई-वहनो, अव तो एक ऐसा संघ भी उत्पन्न हो गया है, जो कहता है कि शराव ा पीना पाप है। वह यह कहने में खुश होता है कि शराव न पीने से व्यसन मिट जाता है और उससे धंधा मिट जायगा। इस जाल में न फँसना। आपको याद दिलाता हूँ कि दो वर्ष पहले आप सवने शराव न पीने की प्रतिज्ञा ली थी। आप उस पर जमे रहना। कोई वैद्य आपसे कहे कि शराव न पिओगे तो मर जाओगे, तो उसकी कोई वात न सुनना। सरीर तो कभी न कभी जायगा ही। परन्तु वोल अमर है। इसलिए शराव न पीने से शरीर क्षीण हो तो मंजूर होना चाहिए। आप एक वार शराव छोड़कर फिर से मत गिरना। असंख्य मनुष्य अलग-अलग लालचों में पड़कर अनेक पाप करते हैं। हमें इससे छूटना हो, तो जीवन को

अपवादरहित बनाने के लिए जिसे सूत्ररूप मानें, उसमें छोटा-सा भी छेद न रखें। जैसे दीवार में छेद रखें तो जीव, जन्तु, चोर वगैरह घुस जाते हैं, वैसे ही आत्मा को सुरक्षित रखने के लिए रखी हुई व्रतरूपी दीवार में एक भी छेद रखेंगे, तो उस छेद में से होकर पाप की बाढ़ चली आयेगी। और फिर हम पछतायेंगे। इसलिए आप शराब से दूर रहना। दूर रहने में ही आपका कल्याण है।

'आपकी स्थिति का गहरा अज्ञान अक्षर का नहीं, आप लिखना-पढ़ना जानते हों या नहीं, सो नहीं। आपमें से बहुतों को पढ़ना नहीं आता, परन्तु आपको अनुभव का ज्ञान है। आप भोले हैं और गुमराह किये जाते हैं। भोला होना अच्छा है। सादगी और भोलापन ईश्वरीय गुण हैं। भोले-से-भोले को भी सच्ची बात कह रखी हो, तो उससे कोई उसे विचलित नहीं कर सकता। आप अपने भोलेपन में भूत-प्रेत को मानते हैं। आप मेरी भी मानता मानते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यह एक भूल है। मेरी मानता से किसीको कुछ नहीं मिलेगा। मेरी पूजा से भी कुछ नहीं मिलेगा। कल कोई बहकायेगा कि अब दूसरे की पूजा करो। आपसे कल कोई कहेगा कि शराब पिओ। मेरे नाम से कोई कहेगा कि चरखा छोड़ दो, तो आपका क्या होगा? आप स्वयं अपने लिए सौगन्ध लें कि शराब छोड़नी है। कुछ लोग मानते हैं कि वहम का उपयोग करके शराब छुड़वाने के लिए मुझे आप लोगों में भावना भरनी चाहिए। परन्तु इस वहम से भरे भारत में मुझे एक और वहम की वृद्धि नहीं करनी है। ऐसा नया वहम शुरू न करने से आपका शराब पीना न मिटता हो, तो कोई बात नहीं। मेरा तो यह कहना है कि जब तक आप समझकर नहीं छोड़ेंगे, तब तक शराब का त्याग सफल नहीं होगा। मैं तो चाहता हूँ कि आप छोड़ें और आपके आसपास के भाग में रहनेवाले भी मांस-शराब छोड़ें। सारा जगत् छोड़े। परन्तु झूठे वहम से नहीं। ऐसा करें, तो वह लम्बे समय तक नहीं टिकेगा। एक पाप दूसरे पाप से नहीं मिटाया जा सकता। मैंने चाहा था कि यह वहम दूर करूँगा और समझाऊँगा कि मेरे नाम से नहीं, परन्तु यह समझकर करना कि यह अच्छा है। कोई भी मनुष्य भ्रम में पड़ जाय, यह आपका अज्ञान है। इसे छुड़वाने के लिए मैंने आपके स्वयंसेवकों से कहा है कि आप धीरज रखना। धीरज से काम लेने को आज भी कहता हूँ। कदम समझ-बूझकर आगे बढ़ायें और आपसे समझपूर्वक कदम बढ़वाने का प्रयत्न करें।

'आपने पारसी भाइयों की शिकायत की है । मैं पारसी कौम पर मोहित हूँ । यह जाति छोटी-सी है, परन्तु उसने वहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है । उसमें वहुत गुण हैं । फिर भी उसमें दुर्गुण भी हैं । परन्तु आजकल वहुत-से पारसी भाई-वहन शराव छोड़ रहे हैं । अलवत्ता वहुत-से पीते भी हैं । पारसी शराव का व्यापार करते हैं । उसके लिए पाप करते हैं और अत्याचार भी करते हैं । परन्तु उनसे क्या कहूँ ? वे आपको लालच देंगे, इनाम देंगे और रिश्वत भी देंगे । इसे क्या कहूँ ? मेरा धन्धा हो, तो मैं भी ऐसा ही करूँ । आजीविका के लिए पेट सव कराता है । पेट वड़ा पापी है । पेट नाच नचाता है । उसीके लिए यह भाषण भी कर रहा हूँ । यह लिखा जा रहा है और इसे सजाना भी पड़ेगा । मैं चाहता हूँ कि आपमें चेतना आये ।

'जो शिकायत पारसियों के खिलाफ है, वैसी आप लोगों के विरुद्ध भी है । आपका एक संघ है । वह कहता है, जो न पिये सो पाप करता है । आपको इनसे लड़कर नहीं, परन्तु सौगन्ध—व्रत—पर टिके रहकर ही जीना है । आप पारसियों से कहना कि हमने शराव छोड़ दी है; और अव आप यह पेशा मत कीजिए । मेरे पारसी मित्र हैं । उनमें इंजीनियर, डॉक्टर, वकील और व्यापारी भी हैं । उनमें एक वुद्धिशाली और उदार व्यापारी थे । उन्होंने रुपया वहुत दिया था । उन्होंने एक आश्रम भी वनवाया था । मान लीजिए कि मैं पारसी कौम को समझा सकता हूँ । परन्तु फिर कल कोई और आयेंगे । ईसाई, मुसलमान, यहूदी, हिन्दू—कोई भी आये और आपसे कहे कि शराव पिओ; उन सवको कहाँ समझाने जाऊँ ? इसलिए सही इलाज यह है कि आप ही को समझाऊँ और आप खुद ही समझें ।

'गायकवाड़ और वांसदा सरकारों से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी सीमा के भीतर की शराव की दूकानें वन्द कर दें । परन्तु राजाओं को समझाना कठिन काम है । फिर भी उन्हें समझाने का प्रयत्न करूँगा । परन्तु वे भी पारसियों-जैसे हैं, इसलिए इसमें सफल होना मुश्किल है । उनके साथ भी व्यापार लगा हुआ है और उससे उन्हें वड़ी आय होती है । परन्तु आप तो उनकी रैयत—उनकी सन्तान कहलाते हैं । मेरा अनुभव है कि वच्चों को समझाना आसान है । माँ-वाप को समझाना कठिन है । इसलिए मेरा विश्वास आप ही पर है ।

'शराव छोड़ने में कितनी चीजें मददगार सावित होती हैं ? इनमें

चरखा मुख्य है । उसमें मैंने सर्वस्व होम रखा है । भारत का उद्धार होगा तो वह चरखे से ही होगा । छोटे वच्चों को कातते देखकर मैं मुग्ध हुआ हूँ और उसके प्रति मेरा विश्वास दृढ़ हुआ है । दिन-ब-दिन मेरा विश्वास वढ़ता जा रहा है । आपकी आजीविका का साधन खेती है । परन्तु आप गरीव हैं और खाने के लाले पड़े हुए हैं । इन हालात में चरखा आपका जीवनाधार है और शान्ति देनेवाला है । जव शराव पीने को मन करे, तव चरखा लेकर वैठ जाना । धीरे-धीरे उसे चलायेंगे तो शराव घट जायगी । मेरी इतनी-सी वात मान लेंगे तो भी काम चलेगा । वर्षा न आये तो धान जल जाय, परन्तु चरखा तो उपजाऊ है । इसका पूरी तरह पालन करेंगे, तव यह अन्नपूर्णा हो जायगा ।

'यहाँ होनेवाले प्रस्तावों में मैं आपसे प्रतिज्ञा लिवाना चाहता हूँ । यदि आप स्वीकार करते हैं कि शराव छोड़ना इष्ट है, तो आप यह प्रतिज्ञा लें । 'ईश्वर को साक्षी रखकर प्रतिज्ञा लेते हैं कि हम शराव-ताड़ी नहीं पियेंगे और अपने भाई-वहनों को भी न पीने के लिए विनय-पूर्वक समझाएँगे ।'

'अव दूसरी वात । आपको सव समझाने के वाद हाथ उठवाना चाहता हूँ । वुनने की वात समझ गये हो तो वहनें और भाई एक ऐसी प्रतिज्ञा लें कि आगे से हाथ-कती और वुनी खादी के ही कपड़े पहनेंगे । विदेशी कपड़ा पहनना भयानक है । आपमें से वहुत-से यहाँ से चले जाने के वाद विदेशी कपड़े पहनें, तो आपका साक्षी वननेवाले की तो मौत ही है ।

'भाइयो और वहनो, ये दो प्रतिज्ञाएं मैंने आपसे लिवायीं । इसमें हमने ईश्वर को साक्षी रखा है । मैं चाहता हूँ कि यह प्रतिज्ञा फले । प्रतिज्ञा पालन करना आसान नहीं है । परन्तु पालन करने का उपाय मैं आपको वताऊँ । इलाज दुखियों का सहारा है । इससे वहुत लोग पार उतरे हैं। सोजित्रा में अन्त्यजों और धारालाओं को मैंने यह वात वतायी । सवेरे जल्दी उठकर, मुंह साफ करके, मुंह धोकर, दांत साफ करके, आँखों से गीड़ (कीचड़) निकालकर राम-नाम लें । राम अर्थात् ईश्वर । राम-राम अर्थात् सव कुछ । उससे प्रार्थना करें 'हे राम, तू मुझे पवित्र रखना और मैंने वेड़छी में जो प्रतिज्ञा ली है, उसका पालन करने में मदद देना ।' आप थक जायँ और आपको नींद आती हो, तो भी एक मिनट के लिए राम का नाम लेना । और राम से कहना कि 'प्रतिज्ञा का पालन करने में तूने वहुत मदद की है । इसके लिए तेरा उपकार । रात को भी

मुझे शराव की गन्ध न आये। स्वप्न में भी न आये। विदेशी कपड़े की भी न आये।' फिर आपको भूत-प्रेत की जरूरत नहीं है। राम आपसे नारियल नहीं माँगता। वह आपके हृदय का भूखा है। वह प्रत्येक के अन्तर में बैठा हुआ है। आप उसे पहचानें। यह घड़ी टिक-टिक करती है। राम को टिक-टिक करने की जरूरत नहीं। राम आप सबका कल्याण करे।'

शाम को सम्मेलन पूरा हुआ कि तुरन्त उनकी छावनी घड़ीभर में तैयार हो गयी और गाड़ियों की कतारें अलग-अलग लीकों पर चलने लगीं। इसके बाद गांधीजी ने कार्यकर्ताओं की—अर्थात् कार्यकर्ताओं के चौधरियों की—समिति को इकट्ठा किया। काम करनेवालों के नाम लिखे जाने लगे। भाई चुन्नीलाल[1] और उनकी पत्नी—वह भी कुशल बुनकर हैं और उन्होंने गांधीजी को हाथ-कता और हाथ-बुना कपड़ा पिछले महीने में ही तैयार करके दिया था—उनके साथ और भाई जुगतराम के साथ रहकर काम करने को कौन नहीं ललचायेगा? उनमें स्त्रियाँ भी थीं। एक बहन के मुख पर का सरल, निर्मल हास्य कभी नहीं भुलाया जायगा। 'क्यों, तुम काम करोगी?' 'हाँ, मैं भी काम करने को राजी हूँ।' दूसरी ने अपना नाम तुरन्त ही दर्ज कराया, और सबने और पाँच-पाँच सहायक जुटा लेने की प्रतिज्ञा की। यह फौज सारे कालीपरज-क्षेत्र में मद्य-निषेध और खादी-प्रचार का काम करेगी। एक प्रातःस्मरणीय बूढ़े-का हाल तो गांधीजी खुद ही लिख चुके हैं। वह कालीपरज का अंगारा इतना तेजस्वी है कि केवल उसके ऊपर की राख उड़ा देने की जरूरत है, राख उड़ा दी कि फिर वह राख उड़ा देनेवाले को भी अपार गरमी देगा।

वेड़छी में चुन्नीभाई की पुत्री ने खादी दी।

रात को सियादला रहे।

बापू ने कहा : 'यह सब योजना बनानेवाले को सृष्टि-सौन्दर्य का बहुत भान होना चाहिए।'

२४-१-'२५

दिल्ली में एकता समिति[2] की बैठक गांधीजी की अध्यक्षता में हुई। उस समय की चर्चा :

---

१. नवजीवन ता० ८-२-'२५ के पृष्ठ १८४ पर 'चिमनलाल' बताया गया है, परन्तु यह ठीक नहीं है। सही नाम 'चुन्नीलाल' है।

२. सन् १९२४ के नवम्बर मास में बम्बई में एक सर्वदल-सम्मेलन हुआ था। उस समय

¶ जिन्ना : 'लखनऊ समझौता स्थायी हो, ऐसा इरादा था ही नहीं ।'

¶ लाजपतराय : 'साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व राष्ट्रीयता का इनकार है । भारत के हित के लिए भारत एक संयुक्त राष्ट्र है, इस प्रकार हमें चलना चाहिए । हमारे सामने इस समय जो प्रश्न है, वह यह है कि स्वराज्य किस प्रकार जल्दी-से-जल्दी लाया जाय । हमें केवल स्वतन्त्रता प्राप्त ही नहीं करनी है । परन्तु उसे प्राप्त करने के वाद टिकाये भी रखनी है ।'

श्रीमती वेसण्ट का भाषण वहुत जोशीला था । उन्होंने कहा :

¶ 'स्वराज्य का अर्थ है गरीवी और भुखमरी का हल । सवाल यह है कि भारत जियेगा या मरेगा ? छोटे-छोटे झगड़ों में हमें नहीं पड़ना चाहिए । यह जीवन-मरण का सवाल है । मैं रात-दिन इसका विचार करती हूँ । यह विल* मेरी अकेली के दिमाग से पैदा नहीं हुआ ।'

२५-१-'२५

इस समिति द्वारा नियुक्त उपसमिति की आज की वैठक में :

¶ कर्नल गिडनी : 'मुझे एक भारतीय के नाते विचार करना चाहिए । हम साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के पक्ष में हैं । इसके अतिरिक्त, हमारी संख्या के हिसाव से नहीं, परन्तु हमारे गुणों के हिसाव से हमारा मूल्यांकन होना चाहिए, ऐसी माँग करने का हमें हक है ।'

¶ मुदलियार : 'मेरे दल की नीति में एक सिद्धान्त यह है कि अल्पमत के हक, चुनावों में, साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व द्वारा सुरक्षित न हों तो वैसे स्वराज्य का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं । साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विना राष्ट्रीयता का विकास ही नहीं हो सकता । निर्वाचक-मण्डल संयुक्त हो या पृथक्, यह प्रश्न है । हमने तो पृथक् निर्वाचक-मण्डल माँगे ही हैं । परन्तु हम इस वारे में आग्रह नहीं रखते । यह प्रश्न तो जहाँ मुसलमान अल्पमत में हों, वहाँ स्वयं उन्हें तय करना होगा । आपको मुसलमानों के विचार जानने हैं । उन मुसलमानों का विरोधी दृष्टि-विन्दु आप समझना चाहते हैं । मद्रास के मुसलमानों को पृथक् निर्वाचक-मण्डल चाहिए । परन्तु उन्हें संयुक्त निर्वाचक-मण्डल से सन्तोष हो, तो मैं उन्हें धन्यवाद दूंगा । मैं तो जिन्हें पृथक् निर्वाचक-मण्डल चाहिए, उन्हें देने को तैयार हूँ ।' (वैश्यों और शूद्रों को भी)

सब दलों को मंजूर हो, ऐसा एक राजनैतिक संविधान तैयार करने को यह समिति नियुक्त की गयी थी ।

* कॉमनवेल्थ ऑफ इण्डिया बिल ।

¶ सी० आर० रेड्डी : 'राष्ट्रीयता कोई साम्प्रदायिक हितों का जोड़ नहीं है। साम्प्रदायिकता प्रतिगामी और राष्ट्र-विरोधी आन्दोलन में परिवर्तित हो जायगी। मैं यदि साम्प्रदायिकता चाहता, तो अपने को राष्ट्रवादी क्यों कहूँ ? आप यदि साम्प्रदायिक हितों का आग्रह रखते हों, तो आपको एकता चाहिए, यह आप कैसे कह सकते हैं ? आप द्विविध प्रथा रखिए। एक को राष्ट्रीय ढंग से चलाइए और दूसरी को साम्प्रदायिक ढंग से। मलावार क ही उदाहरण लीजिए। वहाँ कोई मुसलमान खड़ा ही नहीं हुआ। एक मलावारी ब्राह्मण खड़ा हुआ और दूसरा हिन्दू खड़ा हुआ। मुसलमान सव भयभीत हो गये थे।'

¶ सी० वाई० चिन्तामणि : 'आपकी वातचीत में मैं मदद कर सकूँ, ऐसा मुझे कुछ सूझता नहीं।'

¶ जोशी : 'मैं, संयुक्त निर्वाचिक-मण्डल हों और उनमें विशेप स्थान सुरक्षित हों, इसके पक्ष में हूँ।'

¶ गोकर्ण मिश्र : 'संयुक्त निर्वाचक-मण्डल के पक्ष में हूँ।'

[सदस्यों की मनोदशा का चित्र, महादेवभाई ने, नवजीवन के तारीख ८-२-'२५ के अंक में निम्न प्रकार दिया है।]

ता० २३ को यहाँ आये; उस दिन से चार-पाँच दिन तक एकता समिति की वैठकें हुईं। पहले दिन तो थोड़ी चर्चा के वाद गांधीजी ने सुझाया कि वड़ी संख्या से वनी हुई समिति की अपेक्षा हिन्दू-मुसलमानों के राजनैतिक मतभेदों के वारे में और स्वराज्य की योजना के सम्वन्ध में दो छोटी-छोटी समितियाँ वनें तो अच्छा। यह सुझाव मान लिया गया और उसके वाद दोनों समितियों की वैठकें लगभग परसों तक होती रहती थीं। दिल्ली में गांधीजी के उपवास के समय जो परिषद् हुई थी, वह दंगों और उपवास के कारण उपस्थित हुई थी। चूँकि दंगे धर्म के विवाद से हुए माने जाते थे, इसलिए दिल्ली में पाँच महीने तक धार्मिक मतभेदों की ही चर्चा हुई। वम्वई की एकता परिषद् ने स्वराज्य की योजना का सवाल आगे किया और जो कमेटी मुकर्रर हुई, उसके हल करने के विपयों में सारी जातियों के राजनैतिक अधिकारों का प्रश्न आ गया। एक पक्ष ऐसा था, जो कहता था कि स्वराज्य ही विचार करने लायक प्रश्न है और स्वराज्य मिलने के वाद और सव झगड़ों का निपटारा होगा, इसलिए उनका आज विचार न किया जाय। एक समय यह स्थिति थी—उदाहरणार्थ

सन् १९२१ में। परन्तु आज तो कैसा स्वराज्य चाहिए, यह विचार करने के लिए भी हिन्दू-मुसलमानों के मनों का मेल होने की जरूरत है, यह बात भूल जानी थी।

अन्त में दोनों प्रश्नों की दो समितियाँ बनीं। स्वराज्य-समिति तो अब भी चल रही है। दूसरी समिति में प्रतिनिधित्व के बारे में खूब चर्चा चली। और अभी तक वह पूरी नहीं हुई। स्वराज्य जिन्हें लेना है, उन्हें साम्प्रदायिक स्वराज्य तो नहीं लेना है, स्वराज्य सरकार हिन्दुओं या मुसलमानों के हित में शासन नहीं करेगी, परन्तु देश के हित में करेगी, यह दलील साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विरोधियों की थी। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व माँगनेवाले कहते थे कि सन् १९१६ में ही लखनऊ में आपने यह सिद्धान्त स्वीकार किया, उसके बाद महासभा ने भी पैक्ट (समझौता) तैयार करने के लिए कमेटी बनायी, अब इसमें से कुछ निकल नहीं सकता। छोटी जातियों को अलग नुमाइंदगी चाहिए, तो फिर छोटी जाति अकेले मुसलमान नहीं, और बहुत जातियाँ हैं, सबको प्रतिनिधित्व देना चाहिए और कोई जाति छोटी या बड़ी है, यह उसकी धार्मिक मान्यता की दृष्टि से ही ठहराया जा सकता है या और किसी दृष्टि से भी? कुछ लोग कहते हैं कि आबादी के हिसाब से विधानसभा में और स्थानीय मण्डलों में दोनों जातियों को प्रतिनिधित्व मिले और निर्वाचक-मण्डल मिला-जुला हो, ताकि हिन्दुओं से मुसलमान चुने जायँ और मुसलमानों से हिन्दू चुने जायँ। यह चीज कट्टर मुसलमानों या कट्टर हिन्दुओं को पसन्द नहीं है। इन्हें तो अपने ही निर्वाचक-मण्डल चाहिए और जहाँ इनकी बहुत थोड़ी संख्या हो, वहाँ विशेष व्यवस्था चाहिए।

सारा झगड़ा अविश्वास का है, ऐसा कहने में कोई गलती नहीं है। जो आज की परिस्थिति में फेरबदल चाहते हैं, उन्हें तो स्वराज्य न हो, तब तक सरकार से ही परिवर्तन कराना होगा और इस तीसरे पक्ष से न्याय कराना अथवा कानून बनवाना पड़े, तब तक स्वराज्य की आशा क्यों की जाय? इन सब पक्षों को गांधीजी की पूर्ण विश्वास की सलाह कैसे पसन्द आये? गांधीजी तो कहते हैं कि 'सिद्धान्त न छोड़ो; बाकी हक सामनेवाला जितने माँगे उतने दे दो; साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दूषित वस्तु है। इसे मान लेना हो, तो भी इसे आपस के समझौते से मानो।' यह चीज बहुत थोड़ों के गले उतरती है।

¶ एक जर्मन को लिखे गये पत्र में लिखा : 'स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने

में एक शर्त यह है कि लड़नेवाले को आत्मसंयम सीखना चाहिए। ऐसा करने के लिए उसे सांसारिक भोग-विलास को छोड़ना पड़ता है।'

२६-१-'२५

उपसमिति की आज की बैठक में गांधीजी ने बोलते हुए शुरू में कहा कि 'हकीमजी बहुत बीमार हैं और आ नहीं सकते, इसलिए हम सबको उनके यहाँ जाना चाहिए।'

उसी वक्त हकीमजी आ पहुँचे।

आज की बैठक को गांधीजी ने नया ही स्वरूप दे दिया। वह एक इकरार करनेवाली सभा* बन गयी। उन्होंने स्वयं बताया कि 'मेरे बारे में कहा गया है कि मैं पक्षपात करता हूँ। मेरी वृत्ति में मुसलमानों के लिए पक्षपात भरा है। मेरे पास ऐसी शिकायत आयी है कि बड़े-बड़े मुसलमान नेताओं ने अफगानों के साथ गुप्त सम्बन्ध रखा है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि एक-दूसरे के विरुद्ध सारा गुबार निकाल लें और एक-दूसरे के मन साफ कर लें।'

इसके बाद सबने कपटभरी इतनी बातें कीं, जितनी खुले तौर पर पिछले पाँच महीनों में कभी नहीं हुई थीं। कई भाषण हुए।

मुंजे का भाषण बढ़िया था। उन्होंने कहा : 'हजारों वर्ष पहले जब मुसलमान यहाँ आये और रहे, तब हिन्दुओं की बड़ी संख्या का उन्हें डर नहीं लगा था। आज भी नहीं लगना चाहिए। हमें भी मुसलमानों का नहीं लगना चाहिए। मुझे नहीं लगता। द्रोह किसी जाति का ठीका नहीं है। कुछ भी हो, तो भी हमें साथ रहना है। इसलिए मैं तो मुसलमानों को मजबूर करूँगा कि वे हमारे साथ सीधी तरह रहें और मुसलमान हमें विवश कर दें कि हम उनके साथ ठीक तरह रहें।

अन्त में जयकर ने विख्यात पत्रकार को—खासकर मुहम्मद अली को—एक उपदेशात्मक व्याख्यान दिया। इसमें कुछ भूल-भरी खबरें थीं, इसलिए मुहम्मद अली चिढ़े और उन्होंने कुछ कठोर और अनुचित शब्द कहे।

केलकर ने प्रतिवादी सहयोग की बातें कीं।

अन्त में निश्चय हुआ कि अवैध सभा हकीमजी के यहाँ हो।

गो-रक्षा

गो-रक्षा परिषद् ने बेलगाम में एक समिति नियुक्त की थी। उस समिति की जो बैठकें हुईं, वे बहुत अच्छी हुईं। उनमें गो-रक्षा की अनेक

* Confessionnel Generale

योजनाओं की चर्चा की गयी, गो-रक्षा के कई तरीकों की चर्चा हुई। उसमें लालाजी, स्वामी श्रद्धानन्दजी, केलकर, डॉ० मुंजे, चोंडे महाराज, पंजाववाले धनपतराय, लाला भगवानदास, दादासाहव करंदीकर थे। पशु-हत्या कैसे रोकी जाय, पशुओं को हृष्ट-पुष्ट कैसे वनाया जा सकता है, उनकी नस्ल कैसे सुधारी जा सकती है, गोचर-भूमियाँ कैसे घट गयीं, गाय को कसाई के यहाँ विकने से कैसे रोका जाय वगैरह-वगैरह प्रश्नों की खूव दिलचस्पी से चर्चा हुई। लाला धनपतराय देखने-योग्य मूर्ति हैं। उनका ऐसा दावा है कि वे सूखी गायों से काम लेकर तथा हल चलवाकर उन्हें दुधारू वनाते हैं। जहाँ-तहाँ वे यही वात रखते थे। 'गाय को वेचने से कोई लाभ नहीं, दूधरहित गाय को भी दुधारू वनाया जा सकता है और उसके मरने तक उसका उपयोग किया जा सकता है।' यह वात वे जहाँ-तहाँ कहते थे। वे वकील थे, उत्तरावस्था में अव केवल गो-रक्षा का ही काम करते हैं। मार्च मास के वाद दुवारा सभा होगी, वहाँ तो वे दूध देना वन्द की हुई और वाद में दुधारू वनायी हुई गाय और उसके वछड़े को लेकर आनेवाले हैं। दादासाहव करंदीकर तो कौटिल्य अर्थशास्त्र का गो-रक्षा विपयक प्रकरण निकालकर लाये थे।

इस परिपद् में वापू द्वारा दिये गये भापण के वारे में वातें करते हुए मैंने उनसे कहा : 'यह भापण वहुत सुन्दर है, परन्तु ऐसा लगता है कि गुजरात के साथ आपने जरा अन्याय किया है।' इस पर वापू ने लिखा : 'गुजरात में थोड़ी-सी रक्षा जरूर होती है, परन्तु काठियावाड़ तो अपवाद है। फिर भी जव अकाल पड़ता है, तव ढोरों को निकाल देते हैं। शायद ही कहीं पशुओं के प्रति हमारे व्यवहार के वारे में मुझे सन्तोप हुआ है, जव कि यूरोप में शायद ही कहीं असन्तोप देखने में आयेगा। अरवस्तान में घोड़े को लगभग पूजते हैं। उसकी सार-सँभाल भी ऐसी ही करते हैं। न जाने क्यों हम यहाँ गाय के प्रति निर्दय हैं। यूरोप के जानवर तो ऐसे होते हैं, जो हमें दिग्मूढ़ कर दें।'

इन समितियों की अनेक वैठकों के कारण गांधीजी का शायद ही घर रहना होता होगा। फिर भी मुलाकात करनेवालों का पार नहीं था। आजकल अमेरिकी यात्री तो यहाँ वेशुमार आते हैं। खास तौर पर दिल्ली में तो आजकल विधानसभा की वैठकें हैं, इसलिए उनकी वड़ी भीड़ हो गयी थी। केवल अमेरिकी ही नहीं, परन्तु एक-दो आस्ट्रेलियन, चार-पाँच अंग्रेज (जिनमें मजदूर दल के सदस्य और लॉर्ड कर्जन के दामाद भी)

थे और एक रूसी भी था। दिल्ली में आकर अनायास ही गांधीजी से मिलना हो सके तो क्यों न मिलें?

मि० मोजली ने मजदूर दल की वहुत वातें कीं और भारत के प्रति उनकी भावना की वात की। परन्तु गांधीजी ने उनसे कहा कि 'भारत मजदूर दल पर आशा नहीं रखेगा और असल वात यह है कि मजदूर दल सत्ता में होगा, तव भारत का हित साधने की अपेक्षा सत्ता में रहने की उसे अधिक चिन्ता होगी।' 'अमीरी-गरीवी का भेद दूर करने के ध्येय के वारे में आपका क्या कहना है?' इस प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने कहा:

'मैं यह कल्पना नहीं करता कि तमाम भेद मिट जायँगे और मनुष्य-मात्र की स्थिति समान हो जायगी। ऐसी समानता में प्राण भी नहीं होंगे। मैं तो असमानता और विविधता होने पर भी उसमें वन्धुत्व लाना चाहता हूँ। समानता लायी जा सकती हो, तो मुझे वुरी नहीं लगती, परन्तु वह मुझे अकल्प्य लगती है। मैं तो यह चाहता हूँ कि अमीर और गरीव के वीच प्रेम हो, मजदूर और धनिक के बीच प्रेम हो, राजा और प्रजा के वीच प्रेम हो। धन का द्वेष नहीं, परन्तु धन के दुरुपयोग का मुझे द्वेष है। सत्ता से द्वेष नहीं, परन्तु सत्ता के दुरुपयोग से द्वेष है। मजदूर और श्रमजीवी को अपने स्वातन्त्र्य और सामर्थ्य का भान हो, इतना करने के लिए मैं जूझ रहा हूँ।'

'हिन्दू-मुसलमान के सवाल से आप परेशान नहीं हुए?' इस प्रश्न के जवाव में कहा: 'जरा भी नहीं। आज हमें सफलता न मिले, परन्तु सफल हुए विना हम नहीं रहेंगे।'

'व्रिटेन दोनों को इकट्ठा नहीं करता?'

'इच्छा से नहीं; अनिच्छा से।'

'तव क्या हमने जो भूलें की हैं, उनका प्रायश्चित्त हम नहीं कर सकते?'

'करोगे तो जरूर। परन्तु तुरन्त नहीं। ऐसा करने में भी हमें आपकी मदद करनी पड़ेगी। आपको हमारे साथ न्याय करना चाहिए, ऐसा कहने से आप मान नहीं जायँगे, ऐसी वात नहीं है। हमारी ताकत और लियाकत आपको आँखें खोलकर देखनी चाहिए। आज आपके यहाँ न्याय के लिए जूझनेवाले कहाँ हैं? व्राइट और व्रॅडलॉ आज एक भी नहीं। इसलिए हमीं को लड़ लेना होगा।'

कुछ वहनें आयी थीं। वे तो केवल मिलकर ही चली गयीं, क्योंकि वह मौन-दिवस था। एक वहन 'सॅटरडे रिव्यू' की संवाददाता थी।

उसके साथ की वातचीत वड़ी मजेदार थी। उसे तो ऐसा लगता था कि अस्पृश्यता और ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़े कभी नहीं मिटेंगे।

'ये झगड़े और अस्पृश्यता कभी मिटेगी ?'

'क्यों नहीं ? इस वारे में मुझे लेशमात्र शंका नहीं कि वे सर्वथा निर्मूल हो जायँगे।'

'अंग्रेज भारत छोड़कर चले जायँ—और भारतीयों को तो पार्लमेंट के ढंग का स्वराज्य चाहिए, सेना तो अपनी वनेगी नहीं—अर्थात् ब्रिटिश सेना चली जाय, तो वाहर के हमले रोकने के लिए आप सेना खड़ी कर भी सकेंगे क्या ?'

'आपकी दोनों वातें गलत हैं। भारतवासियों को सेना की जरूर आवश्यकता है और वे सेना खड़ी कर सकते हैं, इसमें मुझे शंका नहीं। आज तो हमें कहाँ कोई जिम्मेदारीवाली जगह भी मिल सकती है ?'

'वे आगे आते ही नहीं।'

'इन्हें वड़ी जगह तो कहीं भी नहीं मिलती। भारतीय आज प्रधान सेनापति हो सकता है ? शायद कोई रो-धोकर कप्तान वन जाय। अरे, सिविल सर्विस देखिए न ? इसमें भी कितनी रुकावट खड़ी कर दी गयी है ?'

'क्या हिन्दुस्तानी हाईकोर्ट जज नहीं होते ?'

'होते हैं। परन्तु हाईकोर्ट जज एक कलक्टर के वरावर जिम्मेदार नहीं होता। कलक्टर तो सरकार के वरावर सत्ता चला सकता है। जज के पास क्या सत्ता होती है ?'

यह महिला तो सरकार का वड़ा वचाव करने लगी। ब्रिटिश शान्त होते हैं, भारतीय फ्रेंच लोगों की तरह जरा-सी देर में अशान्त हो जानेवाला है, इसलिए उसे सेना में वड़ी जगह नहीं दी जा सकती। इत्यादि-इत्यादि। गांधीजी ने उसके स्पष्टीकरण को हँसकर टाल दिया। इस पर और अधिक हँसने लायक एक और प्रश्न उसने पूछा :

'स्वराज्य मिल जाय तो उसके वाद भारत शिशु-वलि और सती की प्रथा फिर शुरू नहीं करेगा ?'

'यह हास्यास्पद सवाल पूछने के वजाय आप अपना पहला ही प्रश्न जारी रखिए। आप मुझे पूछ सकती हैं, 'आपसे अपनी रक्षा हो सकेगी' ?'

'हाँ, हाँ; यह सवाल तो है ही। आप सरहद पर शान्ति कैसे कायम रखेंगे ?'

'सरहद पर रखेंगे और अन्दर भी रखेंगे । सरहद पर तो झूठा तूफान है । सरहद पर जो लड़ाइयाँ होती हैं, वे सब मोल ली हुई लड़ाई होती है । यह मेरा मत नहीं, परन्तु एक कुशल ब्रिटिश अफसर का मत है । उसने तो साबित किया है कि सरहद पर की एक भी चढ़ाई का बचाव नहीं हो सकता । ये लड़ाइयाँ और चढ़ाइयाँ तो ब्रिटिश सिपाहियों को लड़ाई के लिए हमेशा तैयार रखने के लिए ही की जाती हैं ।'

'यह तो न मानने जैसी बात है । सरहद पर की टोलियाँ हमेशा लूटमार करती हैं ।'

'परन्तु यह लड़ाई लूट-पाट बन्द करने के लिए नहीं होती । हमारे हाथ में सत्ता हो, हमें अपने-आप निपट लेने दें, तो इन टोलियों के साथ हम तो तुरन्त ही सुलह कर लें । ऐसा कर-कर के क्या करेंगे ? टोलियों को राज्य तो स्थापित करने नहीं हैं ?'

'क्यों, मुगलों ने स्थापित नहीं किया ? इसी तरह उत्तर से दूसरे आ जायँ । उत्तर की पहाड़ी टोलियों को मैदान में आकर बसने की लालसा होती है ।'

'कुछ नहीं होती । परन्तु मान लीजिए कि होती है, तो भी क्या ? और हम हार जायँ और मुगलों जैसे आकर डेरा डालें तो भी क्या ? हम मुगलों के अधीन अभी हैं, उससे बुरी हालत में नहीं थे । मुगल हमारे घर में नहीं घुसे थे, हमारे गाँवों में नहीं घुसे थे, हमारे चरखों का उन्होंने नाश नहीं किया था, शराब और अफीम का व्यापार करके हमें भ्रष्ट नहीं किया था ।'

'जहाँगीर को अफीम की आदत नहीं थी ?'

'हो तो उससे क्या ? आज जैसा व्यापार होता है, अफीम और शराब से महसूल वसूल होता है, वैसा नहीं था । आज तो सब कुछ शास्त्रीय ढंग से हो रहा है, अनेक नकशे, शराब की दूकानों के नकशे, शराब की बिक्री के आँकड़े वगैरह तमाम साधन रखकर इस व्यापार को कैसे बढ़ाया जाय, यही बात है । मुगलों में व्यवस्था-शक्ति थी या नहीं, सो बात नहीं, परन्तु जब व्यवस्था-शक्ति विनाशक शक्ति के साथ जुड़ जाय, तब तो सत्यानाश ही हो जायगा न ? आज यही स्थिति है । मुगलों का हमारे प्रति प्रेम था अथवा वे हमारे हितैषी थे, सो बात नहीं, परन्तु उनके द्वारा की गयी शरारत अंग्रेजों द्वारा होनेवाली शरारत के मुकाबले में कुछ भी नहीं थी ।'

'परन्तु अफीम का व्यापार दूसरे देश करेंगे तो फिर भारत नहीं करेगा ?'

'दुनिया दुराचार से आय करे तो भारत भी करे ?'

'भारत में अफीम का व्यापार पुराने जमाने का व्यापार कहा जाता है न ?'

'पुराने जमाने की हमारी बुरी आदत होगी, परन्तु व्यापार तो हरगिज नहीं था। अंग्रेजों ने यह आदत हमें न लगायी हो, परन्तु इस आदत को उन्होंने शास्त्रीय स्वरूप दिया। अरे, अधिक क्या कहूँ ?—आपके सामने बोलते हुए मुझे संकोच होता है—वेश्यागमन के भी कानून बनाये गये। वेश्याओं को सेना के लिए रखा जाय ! इससे अधिक और क्या शर्म की बात हो सकती है ?'

इसका भी बचाव वह महिला करने लगी ? इस प्रकार सिपाहियों की विषय-वासना तृप्त करने के लिए कोई सामग्री न रखी जाय तो रोग बढ़े, और सेना बिगड़े। परन्तु इस दलील को केवल मर्यादा के लिए भी नहीं बढ़ाऊँगा। गांधीजी ने पश्चात्ताप किया।

'मुझे आश्चर्य होता है कि आप स्त्री होकर स्त्रीत्व पर होनेवाले एक असह्य अत्याचार का बचाव कर रही हैं। आपको कँपकँपी होनी चाहिए।'

'नहीं, मैं तो एक पक्ष पेश कर रही हूँ।'

'अरे, क्या पक्ष पेश करती हैं ! जब आपका खून उबल उठना चाहिए, तब आप पक्ष प्रस्तुत करती हैं ? मनुष्य को पशु बना डालें और फिर उसकी पशु-वृत्ति तृप्त करने के लिए सामग्री जुटायें ? देश की कथित रक्षा के लिए क्यों जवानों को आलसी रखकर शरीर बढ़ाने देने का प्रोत्साहन दिया जाय, इसीको मैं नहीं समझ सकता। दुनिया में ऐसी भयंकर अनीति का और कहीं भी जोड़ नहीं मिलता। आपको स्त्री के नाते इसका घोर विरोध करना चाहिए। परन्तु आप तो बचाव कर रही हैं। मुझे आश्चर्य होता है।'

(जरा खिसियानी-सी होकर) 'मैं बचाव नहीं कर रही हूँ; मैं तो स्पष्टीकरण कर रही हूँ।'

डॉ० अनसारी की शराफत की क्या बात की जाय ? रायसीना[1] में एक ही गाड़ी रह गयी थी। वह डॉ० अनसारी की थी। शौकत[2]

---

१. दिल्ली के एक मुहल्ले का नाम।

२. डॉ० अनसारी के पुत्र।

और मैं उसमें बैठ गये थे। डॉ० साहब और दूसरे बहुत बाकी रह गये थे। एक ताँगा खड़ा था। मैं और ब्रजकृष्ण उस ताँगे में जाने लगे। परन्तु डॉ० अनसारी उतरने ही नहीं दे रहे थे। वे अपने मित्र के साथ ताँगे में बैठे। मुहम्मद अली एक दिन कहते थे कि डॉक्टर की क्षमा-वृत्ति बापू के समान थी। एक दिन बेगम साहबा के साथ बड़ी दुर्घटना हो गयी थी। डॉक्टर साहब दिल्ली आये। परन्तु अपने लड़के या ड्राइवर पर नाराज नहीं हुए। सिर्फ इतना ही बोले: 'अरे भाई, यह क्या कर दिया ?'

१-२-'२५

श्री केलकर की अध्यक्षता में दिल्ली में हुई अछूतोद्धार परिषद् में गांधीजी को आमंत्रण था। वहाँ प्रवचन करते हुए वे बोले :

'आप मुझसे बड़े व्याख्यान की आशा न करें। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि छह बजे मैं अपना मौन आरम्भ करूँगा। मैं आपसे क्या कहूँ ? अस्पृश्य, अछूत वगैरह को दलित मानते हैं; ऐसा माननेवालों से मैं क्या कहूँ ? जैसे मैं कहता हूँ कि यह हुकूमत शैतानियत से भरी हुई है, वैसे ही हिन्दू-धर्म के लिए भी कहता हूँ कि इसमें एक शैतानियत भरी हुई है—वह अस्पृश्यता है। मेरे हृदय में बड़ा मंथन चल रहा है। मैं यह नहीं समझ सकता कि किसी भी मनुष्य को जन्म से अछूत कैसे माना जाय ? मैं जानता हूँ कि अस्पृश्यता के लिए स्थान है। मेरी माता प्रातः-स्मरणीया थी। उसे मैं रोज सुबह साष्टांग प्रणाम करता था। वह जब बच्चों का मैला उठाती, तब नहाती। मेरा जन्म वैष्णव-सम्प्रदाय में हुआ था। उसमें और अन्य सम्प्रदायों में अस्वच्छ काम करने के बाद स्नान करने को कहा गया है। प्रत्येक माता भंगी का काम करती है। उसी तरह आप कह सकते हैं कि भंगी भाई जब पाखाने साफ करते हों, तब वे अछूत बन जाते हैं। इसी प्रकार बीमार की सेवा करती हुई नर्स भी अस्पृश्य बनती है। फिर भी नर्स के प्रति हमारे मन में आदर रहता है। मैं नहीं जानता कि सभी नर्सें नहाती हैं। कोई यह कहे कि चमार स्नान करे तभी हम उसे छुएँ, तो यह मैं जरूर समझ सकता हूँ। इसमें व्यवहार है। यह भी कहा जायगा कि यह आरोग्य के लिए है। परन्तु यह कहना शैतानियत है कि वह मनुष्य हमेशा के लिए अस्पृश्य है। ऐसी अस्पृश्यता दूर न हो, तब तक स्वराज्य कैसे मिलेगा ? हमें अपने अपराध के लिए प्रायश्चित्त करना होगा। जब तक यह प्रायश्चित्त हमने

नहीं किया, तब तक अस्पृश्य हम हैं, वह नहीं। आज तो हम अछूत हैं ही। अमेरिकी मुलाकाती मुझसे मिलने आये थे, तब लाला सुलतान सिंह आ पहुँचे। वे लोग कहते थे कि उनके देश में किसीके प्रति विरोधी वर्ताव नहीं होता और उनके यहाँ प्रजातंत्र है। इस पर लालाजी ने पूछा कि 'मेरा रसोइया आपके यहाँ कैसे अछूत बन गया? उस आदमी के लिए अमानत के तौर पर मैंने रकम दी और सम्बद्ध लोगों को तार दिये, तभी मैं उसे अपने साथ रख सका।' दक्षिण अफ्रीका में भी क्या है? हमने जैसा बोया, वैसा आज काट रहे हैं। अपने पाप से पृथ्वीभर में हम अछूत बनते हैं। जहाँ-तहाँ हमारे लिए अलग बस्तियाँ खड़ी की जाती हैं। अर्थात् हमारे लिए एक अलग चमारवाड़ा बन जाता है। तब हमें क्या करना चाहिए? हमें कथित अस्पृश्यों को विद्यालय में स्थान देना चाहिए और मन्दिरों में भी जगह देनी चाहिए।

'दलितों का भी धर्म है। यों तो भंगी, चमार को कोई पहचान नहीं सकता। ब्राह्मण के साथ बैठे हों तो भी कोई पता नहीं लगा सकता। परन्तु उनमें कुछ खराबियाँ घुस गयी हैं। इसमें कसूर हमारा ही है। इसलिए मैं अन्त्यजों से कहता हूँ कि प्रायश्चित्त करने में तुम भी कुछ हमारी मदद करो। तुम मद्य-मांस छोड़ो। तुम स्वच्छता अपनाओ।

'भागवत में कहा है कि तेजस्वी मनुष्य को दोष नहीं। अन्त्यजों की तुलना में हम तेजस्वी हैं और अंग्रेजों के मुकाबले में हम गुलाम हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि हिन्दू-जाति का कल्याण करने और अन्त्यज जाति की सहायता करने की शक्ति हममें आये, ताकि अस्पृश्यता का जड़-मूल से नाश हो।'

५-२-'२५

कोहाट में हिन्दू-मुसलिम फसाद* के परिणामस्वरूप भागकर आये हुए रावलपिंडी में रहनेवाले हिन्दुओं के सामने बोलते हुए गांधीजी ने कहा :

'पिछले दिसम्बर मास में मैं यहाँ हाजिर हुआ था। और आपके साथ थोड़ी गुफ्तगू भी की थी। उस वक्त मैंने कहा था कि आप सब कोहाट नहीं गये होंगे तो मैं वापस आ जाऊँगा और आपके साथ बातचीत करूँगा। और यदि मुसलमान भाई कोहाट से आ जायँगे तो थोड़ी जाँच भी कर लूँगा।

* यह फसाद ता० ९-९-'२४ को हुआ था।

'थोड़े मुसलमान भाई कोहाट से आये हैं। और उनके साथ मैं बातचीत भी कर रहा हूँ। उसका परिणाम यह हुआ है कि मैं किसी भी तरह आपको सलाह नहीं दे सकता कि आप कोहाट लौट जायँ। मैं ऐसी आशा रखता था कि इनके साथ बातें करने से कोई अच्छा नतीजा निकलेगा। मैं नाउम्मीद तो नहीं हुआ, परन्तु आज तो कोई ऐसी चीज नहीं, जिससे मैं आपको सलाह दे सकूं कि आप कोहाट वापस चले जायँ, बल्कि इससे उल्टा कहने को जी करता है। संभव है कि इन मुसलमान भाइयों के साथ बातें करने में मैं सफल न होऊँ। फिर जिन मुसलमानों का प्रभाव आज कोहाट में जम गया है, वे यहाँ नहीं आये। उन्होंने तो ऐसा तार भी भेजा है कि 'यहाँ सुलह हो गयी है और हिन्दू कोहाट वापस आ रहे हैं। तब हमें किसलिए बुला रहे हैं? और सबको फिर दुबारा घबराहट में क्यों डालते हैं?' इसका मतलब यह कि शौकत अली को और मुझे इस पर सिर नहीं खपाना चाहिए। परन्तु जो मुसलमान यहाँ आये हैं, उनके साथ बातें करके जब मैंने पूछा कि 'आप हिन्दुओं को वापस कोहाट ले जाने की जिम्मेदारी लेते हैं?' तब उनमें से एक साहब ने साफ कह दिया कि 'अगर हिन्दू वापस आना चाहते हों, तो भले ही आयें, परन्तु हम कोई जिम्मेदारी नहीं ले सकते। हम इन्हें आमन्त्रण भी नहीं दे सकते। क्योंकि आज जो हिन्दू वहाँ हैं, उनके प्रति घृणा होती है।' इसलिए कोहाट वापस जाने की सलाह मैं आपको नहीं दे सकता।

'एक और बात है। यदि आप सरकार की ताकत से वहाँ जाना चाहते हों और सरकार के साथ बातचीत में आपमें कुछ विश्वास पैदा होता हो, तो आप वापस जाने को स्वतन्त्र हैं। परन्तु अन्त में तो इस सरकार के साथ और उसके मारफत काम लेने से हम फायदा नहीं उठा सकते, ऐसा अब भी मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ। और इसलिए मैं सलाह नहीं देता कि सरकार की ताकत से आप वहाँ जायँ। आपको जहाँ रहना है, वह आपको अपने बल पर आधार रखकर रहना है।

'कोहाट जाने के लिए यदि किसीके साथ बातचीत करने की जरूरत है, तो वह मुसलमानों के साथ है। एक तो उनकी संख्या बड़ी है। यदि संख्या समान होती, तो भी हम डरकर यहाँ भाग आये हैं, इसलिए उनके साथ बातचीत किये बिना वहाँ जाने में हमारा लाभ नहीं है। कोई आदमी रुपये के लिए या अपनी जान बचाने के लिए अपनी

इज्जत गँवाकर वहाँ जाय, तो वह दूसरी वात है। मेरे विचार के अनुसार इस प्रकार जीना कोई जीना नहीं, परन्तु मरने के समान है।

'जो अत्यन्त खेदजनक वात कल मेरी जानकारी में आयी, वह यह कि आपमें से कुछ ने तो अपनी जान वचाने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और फिर यहाँ आये। मेरी दृष्टि में वे सच्चे मुसलमान नहीं वने, परन्तु डर के मारे और जान वचाने के लिए मुसलमान वने हैं। ऐसा न हो तो वे क्यों यह कहें कि मेरी चोटी काटो अथवा मुझे कलमा पढ़ाओ। ऐसा करें, तव तो गायत्री का कोई अर्थ नहीं रहता और हमारा हिन्दूपन भी वेकार होगा। फिर भले ही वह सिक्ख हो या आर्यसमाजी। मेरे कहने का मतलव यह है कि हमारी हस्ती मिट जाय, तो भी हमारी मान्यता नहीं मिटनी चाहिए। हमारा असली धन द्रव्य नहीं, जमीन और जर नहीं। ये तो लुट जानेवाली चीजें हैं। परन्तु हमारा सच्चा धन धर्म है। जव हम यह खो देते हैं, तव यह कहा जायगा कि हम स्वयं ही अपने घर को लूटते हैं। जव से मैंने ऐसी वातें सुनी हैं, तव से मुझे लग रहा है कि वहाँ जाकर रहने में आपका फायदा नहीं। धन अथवा जिन्दगी की लालच से आप वहुत खो रहे हैं।

'मुसलमान किसी-किसीकी औरतों को भी भगाकर ले जाते हैं और उनसे इस्लाम कवूल कराते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा करने से वह स्त्री मुसलमान कैसे हो गयी! वह कुरान नहीं जानती। वह कलमे को नहीं जानती। अरे, वह तो अपने धर्म को भी वहुत थोड़ा जानती है। ऐसी स्त्री इस्लामी वन सकती है, यह तो मेरी समझ में आता ही नहीं। मेरी औरत को कोई भगा ले जाय और वह कलमा पढ़ ले तो मेरा पृथ्वी पर जीना असंभव हो जायगा। या तो मैं आपसे आकर कहूँगा कि मेरी मदद करो या उसे वापस हिन्दू-धर्म में ले लो। ऐसा न करूँ तो मैं नामर्द वन जाऊँ। मैं उसका पति होने का दावा नहीं कर सकता। यदि आप इन्सान हैं और इन्सान रहना चाहते हैं, तो आप इकरार कीजिए कि जव तक स्थिति वदल नहीं जाती, तव तक हम हरगिज कोहाट नहीं जायेंगे।

'मुझे कहा गया है कि यदि कोहाटी हिन्दू कोहाट वापस न जायें तो ऐसा हो सकता है कि दूसरे हिन्दू भी सरहद से भाग आयें। मेरा खयाल है कि ऐसा हो तो ठीक है। मैं तो कहता हूँ कि आप वहाँ अपने वल पर रहें या मुसलमानों की दोस्ती से रहें। मैं नहीं चाहता कि हिन्दू

नामर्द वनें । मैं हिन्दू-मुसलमान दोनों को मर्द वनाना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि दोनों की ताकत साथ-साथ वढ़े । हिन्दू की ताकत मुसलमान का नाश करके वढ़े या मुसलमान की ताकत हिन्दू का नाश करके वढ़े, यह मुझसे नहीं सहा जा सकता। हिन्दू-धर्म यह नहीं सिखाता कि मैं दूसरे धर्म का नाश करूँ ।

'कल जो मामला पेश हुआ था कि हिन्दू स्त्री को मुसलमान वनाया जा सकता है, यह वात मेरे गले नहीं उतरी । यह वात मैं मुसलमान भाइयों से अधिक समझ लेना चाहता हूँ । इस्लाम क्या यह सिखाता है कि कोई मेरी औरत को भगा सकता है ? मेरी स्त्री को पता भी न हो कि इस्लाम क्या है; ईसाई धर्म क्या है। वह हिन्दू घर में पैदा हुई है, राम-नाम लेती है, रामायण और भागवत पढ़ लेती है । इस्लामी वनने में उसने अपनी वुद्धि का उपयोग नहीं किया । वह अपने धर्म पर डटी रहती है; और वह भी पूर्ण श्रद्धा से ही । ऐसी स्त्री के लिए यह कहा जाय कि उसने इस्लाम धर्म स्वीकार किया है, तो क्या समझा जाय ? उसने जान-वूझकर इस्लाम कवूल नहीं किया और इसलिए वह अपने को इस्लामी मानने को तैयार नहीं । मैं मुसलमान भाइयों के साथ वात-चीत करना चाहता हूँ कि क्या आपका धर्म यह कहता है कि किसीकी स्त्री को भगाया जा सकता है ? और मुसलमान वनाया जा सकता है ? सरहद पर रहनेवाली किसी हिन्दू स्त्री पर वलात्कार हो, तो यह मेरे लिए असह्य है । यदि यह कहा जाय कि उसने इस्लाम कवूल किया है, तो मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ । इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यदि आप धर्म को प्यारा समझते हैं तो वहाँ वापस न जाइए । जव तक वहाँ के मुसलमान न कहें कि 'इज्जत के साथ आइए', तव तक न जाइए । वहाँ जाकर आप रुपया कमा लें, परन्तु धर्म को खोकर वहाँ रहें, तो वह मेरे लिए मिट्टी के वरावर है ।

'अव तक आप भूखों नहीं मर गये । दिसम्वर में मैंने यह भी कहा था कि मैं इस वात को भी वरदाश्त नहीं कर सकता कि जिसके हाथ-पैर चल सकते हैं, वह भीख पर रहे अर्थात् दूसरों से अनाज माँगकर जिये । यदि इस तरह जीने की मैं आपको सलाह दूँ तो मैं गुनहगार होता हूँ । आज भी उसी वात पर कायम हूँ । इसीलिए मैंने कोहाट के लिए एक पैसे की भी माँग नहीं की। मैं तभी चन्दा इकट्ठा करूँगा, जव

मुझे पता लगेगा कि यह रुपया किसलिए माँगा जा रहा है। मैंने कोई सूची नहीं वनायी। हाँ, यह सही है कि किसीने कुछ भेजा हो तो यहाँ भेज देता हूँ। परन्तु यदि आप मेरी सलाह के अनुसार चलें और जिसके हाथ-पैर हों तो उनके वल पर मिलकर खायँ तो मैं आपको पूरी मदद देने की फिर से प्रतिज्ञा लूँगा।

'मैं आपको सावरमती भी ले जाने को तैयार हूँ। वहाँ आपको रहने और खाने-पीने को जितना चाहिए, उतना दूँगा। जो मैं खाता हूँ, वह आपको दूँगा। पहले आपको खिलाऊँगा और वाद में मैं खाऊँगा। परन्तु रोज आठ घंटे काम लूँगा। अगर आप मजदूरी करना चाहते हों तो आपकी हर तरह सहायता करने को मैं तैयार हूँ। यदि आपमें से कोई यह कहे कि हम तो वकील हैं, इसलिए हमें वकालत दिला दीजिए, तो यह व्यवस्था मुझसे नहीं होगी। दो के वीच लड़ाई कराकर मैं.... को वकालतनामा नहीं दिला सकता। इसी तरह व्यापारी १०-२० लाख अथवा १० हजार माँगें, तो मुझसे नहीं दिलाया जायगा। मैं तो इतना करूँगा कि आपको कुछ-न-कुछ काम जरूर दूँ। इस दृष्टि से ही भारत के लोगों से कह रहा हूँ कि प्रत्येक आदमी आधा घंटा चरखा चलाये। चरखा मजदूरी का एक निशान है। जो चरखा चलाता है, वह दूसरी मजदूरी भी कर लेगा। मेरे पास जमीन का काम नहीं है। परन्तु कातने, वुनने, धुनने वगैरह काफी काम हैं, जिनसे लाखों को रोजी मिल सकती है। मैंने अखवारों में देखा कि मैसूर के महाराजा ने भी चरखा कातना शुरू किया है। आपमें जो कारीगर हों और उन्हें अपना काम करने के लिए जरूरी धन चाहिए—जैसे सुनार के औजार—तो उन्हें जुटा देना मेरा काम है। जिसका जो धन्धा हो, उसे करने के लिए व्यवस्था कर देना भी मेरा काम है। इसके लिए भिक्षा माँगने को तैयार हूँ। इसलिए आज आपसे फिर कहता हूँ कि आप ऐसी सूची वनाइए, जिससे पता चले कि कितने आदमी क्या धंधा कर सकते हैं और उनके परिवार में कितने इस तरह काम कर सकते हैं और कौनसा काम कर सकते हैं। कोई वीमार अथवा कमजोर हो, तो वह भी कोई-न-कोई काम कर सकता है। मैं अपनी विधवा वहन से भी काम लेता हूँ और उसके वाद ही उसे खिलाता हूँ। वह कहती है कि हम दीवान के वच्चे हैं, परन्तु मैं यह नहीं मानता। हम तो भारत के मजदूर हैं, इसलिए मुझसे और कुछ नहीं हो सकता। मैं तो जिसे खाने को दूँ, उससे काम लूँ।

मैं अपनी वहन और स्त्री के साथ इन्साफ कर लेता हूँ । और जो विधवा हो, उसके साथ भी कर लूंगा ।

'कुछ वातें सुनकर मैं वहुत शरमाया । मैंने सुना है कि कोहाटी हिन्दुओं में कुछ जुआ खेलते हैं; कुछ एक वार राशन लेकर भी दुवारा फिर राशन माँगते हैं और न मिले तो झगड़ा करते हैं; अपने पास चादर होने पर भी दूसरी माँगते हैं और उसे वेचकर रुपया जमा करते हैं । इससे मुझे वड़ा दुःख होता है । कोहाट में जो हुआ, वह मैं वरदाश्त कर सकता हूँ, परन्तु यदि यह सव सच हो, तो मुझसे वर्दाश्त नहीं होगा । आप अगर इसी तरह रहना चाहते हों, तो कोहाट वापस जाइए और अपने धर्म को डुवा दीजिए । मेरे विचार में धर्म का यह अर्थ नहीं होता कि कोई गायत्री पढ़ने मात्र से हिन्दू हो जाता है । मेरे मतानुसार तो वही हिन्दू है, जिसके हृदय में गायत्री लिखी हुई हो । ग्रंथसाहव का केवल पाठ कर लेने से ही कोई सिक्ख नहीं वन जाता । जो सच्चे तौर पर ग्रंथ-साहव को अपने हृदय में वसा ले, वही सिक्ख है । वेदमंत्रों को अच्छी तरह गाने मात्र से कोई आर्यसमाजी नहीं वनता । परन्तु उन मंत्रों को जीवन में उतारे, तो वह सच्चा आर्यसमाजी वनता है । मुसलमानों से भी कहूँगा कि केवल कलमा पढ़ लेने से ही मैं मुसलमान वन सकता हूँ ? इसलिए आपके वारे में जव से मैंने यह वात सुनी है, तव से मैं खूव घवरा गया हूँ ।

'यह कलियुग है और ऐसे ही प्रसंगों के कारण हमारा अधःपतन हुआ है । मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप इस तरह से आचरण करके मेरे जैसे को न शरमाइए । यदि आपको ऐसा ही करना हो, तो आप मुझे अलग कर दीजिए, क्योंकि मैं आपकी सेवा के योग्य नहीं रहता ।

'ऐसी हालत में कोहाट न जाने में मालवीयजी महाराज मुझसे सहमत हैं । मैंने उन्हें यहाँ आने की तकलीफ नहीं दी, क्योंकि वड़ी विधानसभा में वंगाल ऑर्डिनेन्स का फैसला हो रहा है और वे वहाँ रुके हुए हैं । वे आने को तैयार थे, परन्तु मैंने उनसे कहा कि इस वार आपको कष्ट नहीं दूंगा । लालाजी भी आज यहाँ आ गये हैं । उन्हें लाहौर से फोन किया था । मैंने उन्हें वुला लिया, परन्तु हमारे दुर्भाग्य से वे वीमार पड़े हैं और आज यहाँ नहीं आ सके । इन्हें यहाँ—रावलपिंडी—आने का कष्ट मैंने इसलिए दिया कि हम दोनों एकमत न हों, तो आपको धोखा होगा । हम तीनों की एक ही राय है । इस्लाम के वारे में जो

वात मैंने आपसे कही है, उसे वे नहीं जानते। परन्तु जो चीज कोहाट में हुई है, उसके वारे में उन्होंने यही राय कायम की है कि मौजूदा हालात में आपके लिए वहाँ जाना अधर्म है। मैंने स्वयं जो अधिक कहा है, वह यह कि जव तक मुसलमानों के साथ फैसला नहीं हो जाता, तव तक आपका वहाँ जाना अधर्म है।

'मैं यह भी नहीं चाहता कि आपको अभी जो मुफ्त खाने को मिलता है, वह जारी रखा जाय। गीता में लिखा है कि जो आदमी यज्ञ नहीं करता और फिर भी खाता है, वह चोरी करता है। यज्ञ के अनेक अर्थ हैं, परन्तु एक अर्थ शारीरिक श्रम भी है। इसलिए मेहनत किये विना खाना पाप है। मैं आप लोगों के साथ वात करने आया हूँ। आप और कुछ जानना चाहते हों, तो मुझसे पूछ सकते हैं। मैं तो इतना चाहता हूँ कि जो यहाँ काम कर रहे हैं, उन्हें आप कल ही कह दें कि हम जो यहाँ खाते हैं, उनके नाम लिख लीजिए और हम जो कुछ यहाँ से लेंगे, उसका वदला मेहनत करके चुकायेंगे। आप सबको काम ढूंढ़ लेना चाहिए। मेरे साथ सावरमती चलें, तो मैं काम देने को तैयार हूँ। मेरे मन में तो है कि यहाँ रहकर आपके साथ मेहनत-मजदूरी करूँ। परन्तु मेरे सामने आज दूसरा काम भी पड़ा है। इसलिए मैं आपके साथ यहाँ नहीं रह सकता। आप इकट्ठे वैठकर वातचीत करें और मेरी वात मंजूर हो, तो एक मकान किराये पर लेकर उसमें खड्डा खोदें और करघा लेकर काम करें। इस काम के लिए रुपया जुटा देने को मैं तैयार हूँ। ऐसे काम के लिए रुपया माँगने में शरम करने की मेरे पास कोई वात नहीं।

'अन्त में जो प्रार्थना मैं आपसे करना चाहता था वह मैं कर चुका; और जो आप पूछना चाहें, उसका जवाव देने को तैयार हूँ। जो वातें आपके विषय में सुनी हैं, वे यदि झूठी हों तो यह भी मुझे वताना। जिन्होंने आपको आश्रय दिया है, उनके लिए भी यही उचित है कि आप कोई काम शुरू कर दें।'

१०-२-'२५

कोहाट का दिग्दर्शन

३ तारीख को दिल्ली से रावलपिंडी के लिए रवाना हुए। ४ तारीख को वहाँ पहुँचे। साथ में डॉ० परसराम और जयरामदास थे। कोहाट से आये हुए मुसलमानों में रावलपिंडी में पीर कमाल और मौलवी अहमद

गुल (खिलाफत के मंत्री) थे । मौलवी अहमद गुल के साथ और पीर कमाल के साथ खूब बातें कीं--अथ से इति तक--दो ही प्रश्नों पर बापू ने अपनी सारी जाँच का मोर्चा खड़ा किया था :

१. दंगे और उसमें हुई भारी खूँरेजी और शैतानियत का कारण परचा नहीं हो सकता; तो और क्या था ?

२. जो आगजनी और लूट हुई, वह केवल ऊधम था या विचारपूर्वक वैर चुकाने की क्रिया थी ?

मौलवी या पीर दोनों इन मुद्दों में गर्भित वस्तु नहीं देख सके और इनके विषय के जवाबों में अनजाने बहुत-से सही उत्तर दे दिये । इस पर से गांधीजी ने सारा अनुमान लगाया । जाँच के बाद रात को कहते हैं : 'सारे वर्ष में आज मैंने बहुत कीमती काम किया है ।' ये दोनों बयान विस्तार से लिखवाये । इन बयानों के बारे में बोलते हुए कहते हैं : 'इतनी जिरह तो मैंने आज कितने ही बरसों के बाद की ।'

मैंने कहा : 'पंजाब के मामले के समय की थी न ?'

वे बोले : 'नहीं, नहीं, उसमें तो कुछ था ही नहीं । चम्पारण के समय भी बहुत थोड़ा था, क्योंकि उसका अध्यक्ष तो स्ले[1] था । इस बार तो जिरह की सारी कला इस्तेमाल की, ऐसा लगता है । साक्षी को महसूस ही न हो कि उसकी जिरह की जा रही है ।'

शौकत अली दूसरे दिन अपने निर्णय कहने लगे । शौकत अली ने पीर और सबको चेता दिया था कि 'आपके आपस में कितने ही मतभेद हों, परन्तु इस मौके पर एक हो जाना चाहिए ।' परन्तु पीर कमाल विरोधी पक्ष का वैर कहीं भूल सकते थे ? उन्होंने कहा : 'कोहाट में आज एक भी शरीफ आदमी के लिए स्थान नहीं रहा । हिन्दुओं को बुलाकर क्या करूँ ? मेरी सुननेवाला वहाँ कोई भी नहीं है । और ये आयें और फिर इनका उत्पीड़न, हँसी, मजाक और अपमान हो, तो मैं क्या करूँ ?'

अपने बयान में उन्होंने एक बड़ी खबर दी । 'हर साल डेढ़ सौ तक तबलीग[2] होता है । प्रत्येक जुम्मे में दो-चार आदमी तो ऐसे होते ही हैं । विवाहित स्त्रियों का भी होता है । परन्तु बड़ा सवाल यह हो

---

१. F. G. Slay

२. धर्म-परिवर्तन।

जाता है कि स्त्री किसकी ? शरीअत के अनुसार भी तो वह अपने पति के पास नहीं जा सकती ।'

गांधीजी ने इस अन्तिम बात का उल्लेख करते हुए जयरामदास से और मुझसे कहा : 'देखा न ? कितने ठंडे पेट बात कर रहा है ? मानो इसमें कुछ है ही नहीं ।' और शौकत अली को समझाया : 'अब आपको अपना विचार स्वतन्त्र रूप में बताना चाहिए। यह भयानक है । आप भी कुरान और शरीअत का अर्थ औलियों[1] से ढूंढें, तब तो जुल्म ही होगा न ?' शौकत अली कहते हैं : 'हदीस[2] तो मैं समझता नहीं । मुझे अरबी आती नहीं । इसलिए अर्थ तो मुझे दूसरों से ही जानना होगा' 'सो तो आप भले ही जान लें । परन्तु जो चीज बुद्धि और हृदय में न उतर सके, उसे स्वीकार ही कैसे किया जा सकता है ?' इसके सिवा अनेक मार्मिक वचन कहे । शौकत अली टालमटोल करते रहे ।

रात को १२ बजे तेल मालिश करते हुए मैंने बात छेड़ी ।

'बापू, धर्म-परिवर्तन दुष्ट वस्तु नहीं लगती ?'

'लगती तो है ।'

'लगती है तो आप कहाँ स्पष्टता के साथ ऐसा कहते हैं ? आपने तो मौलाना का बचाव करते हुए यह कहा था कि धर्म-परिवर्तन का इन्हें हक है । तब क्या हक का अर्थ तो यही हुआ न कि मनुष्य को व्यभिचार करने का भी हक होता है ?'

'हाँ, इसी अर्थ में । वैसे, सभी धर्म-परिवर्तन दूषित हैं; और इसीलिए मैं हिन्दू-धर्म को इस्लाम और ईसाई धर्म से श्रेष्ठ मानता हूँ ।'

७ तारीख को रावलपिंडी से चले । रास्ते में शौकत अली को खूब समझाया । शौकत अली बिलकुल चुप रहे । ८ तारीख को दिल्ली आकर मोतीलालजी, मालवीयजी, हकीमजी, सबके सामने कोहाट के अत्याचारों के बारे में बातें कीं । ९ तारीख को मौनवार रहा । तमाम दिन लिखने का काम किया । कोहाट का लेख[3] गाड़ी में ही लिखा गया और 'यंग इंडिया' का और काम हुआ । ९ बजे गाड़ी से उतरकर वल्लभभाई के साथ मोटर में आश्रम आये । आश्रम आते हुए वल्लभभाई ने पूछा :

'क्या हुआ ?'

---

१. गहरी समझ-शक्ति से रहित मनुष्य ।

२. मुसलमानों का स्मृति-ग्रन्थ ।

३. देखिए परिशिष्ट ५ ।

'बहुत अच्छा हुआ । जो मैं नहीं जानता था, वह सब जानने को मिला । एक अमूल्य काम हुआ । ऐसी जिरह मैंने जीवन में बहुत कम बार की है । जामनगर में एक मुसलमान की इस तरह से की थी । मेरे भीतर तो आग धधक रही थी । और पंडित मोतीलालजी भी बहुत दुःखी हुए·····हकीमजी भी स्तब्ध रह गये । अनसारी अच्छी तरह समझ गये ।'

'कोहाट का प्रायश्चित्त ठीक हुआ था, यह सिद्ध हुआ न ?'

'अब तो आश्रम में बैठ जाने का विचार होता है । इस गंदी राजनीति में कहाँ तक रहा जाय ? ऐसा लगता है कि यह हमारा काम नहीं ।'

'तो अब क्या करें ?' वल्लभभाई ने पूछा ।

'करें क्या ? जो करते आये हैं वही तो । इसमें फर्क पड़नेवाला है ?'

१० तारीख को प्रभात में एक बड़ा हृदयस्पर्शी विवेचन किया ।

बेलगाम जाते हुए एक अर्थभरी उपमा दी थी । 'मेरी तो उस अर्जिका* की-सी स्थिति है । उसकी बरात निकालते हैं, सुन्दर वस्त्रा-भूषण पहनाते हैं; परन्तु यह सब इसलिए कि वह अर्जिका बननेवाली है । मेरा अध्यक्ष-पद मेरी अर्जिका होने की तैयारी सूचित करता है ।'

ऐसी ही उपमा से आज का प्रवचन भी शुरू किया । 'बिस्तर के नीचे साँप है, यह पता लगे और बिस्तर झाड़कर कमरा बुहार दिया जाय, ऐसी मेरी स्थिति हो गयी है । कोहाट की स्थिति के बारे में मैंने जो नहीं जाना था, वह जानने का अवसर मिला । आपके सामने यह बात कहता हूँ, क्योंकि यह धर्म की बात है । हम सबको सचेत होना है । सचेत होने का अर्थ कोई खास नयी बात करना नहीं है, मगर मानसिक और हार्दिक रूप में तैयार होना है । हमें अधिक शुद्ध होना है ।'

इसके बाद कोहाट में होनेवाले तबलीग और उसकी संख्या की बात करते हुए बोले : 'और जगह शायद यह संख्या छोटी मानी जाय । परन्तु जिस प्रान्त में मुसलमानों की आबादी मुश्किल से १५००० है, वहाँ यह भयंकर मानी जायगी । हिन्दू जाग्रत हुए । इस जाग्रति को मुसलमान सह न सके और बैर लेने का अवसर ढूंढ़नेवाले को वह परचा अवसर के रूप में साबित हुआ । यही एक कारण होता, तो उस

* जैन साध्वी ।

आदमी को कैद कराते, उस मनुष्य को चीर डालते, शायद उस परचे से सम्वन्ध रखनेवाले सभी को चीर डालते। परन्तु यहाँ तो सारी जाति का उत्पीड़न किया गया। इसका कारण गहरा होना चाहिए। वह कारण मुझे अनायास मिल गया। धर्म-परिवर्तन की प्रवृत्ति के वारे में उन मुसलमानों ने सरलता से ही सव कह सुनाया। परन्तु इस प्रवृत्ति से मुझे वहुत आघात लगा है। ३० करोड़ हिन्दू शास्त्र-ज्ञान अथवा वुद्धि-ज्ञान से मुसलमान हो जायँ तो मुझे कुछ न लगे। मैं अकेला एक ही हिन्दू रहूँगा और इस प्रकार हिन्दुत्व को सुशोभित करूँगा। अथवा हिन्दुत्व के अविनाशी होने की शहादत दूँगा और यह कहूँगा कि ये और सव मुसलमान हो गये, क्योंकि वे हिन्दुत्व का तेज पचा नहीं सके। परन्तु वहाँ जैसे हुआ, वैसे लोग लालच के लिए मुसलमान हो जायँ, दवाव में आकर मुसलमान वन जायँ, यह नहीं सहा जा सकता। यह वात आपको दृढ़ाग्रही वनाने के लिए मैं कर रहा हूँ। धर्म पर अधिक कायम रहने के लिए कह रहा हूँ। इस पर भी मेरी अहिंसा-वृत्ति में, प्रेम-वृत्ति में, मुसलमानों के प्रति मेरी वृत्ति में फर्क नहीं पड़ेगा। मैं तो जहाँ इनकी कमजोरी दिखाई देगी, वहाँ उनकी अधिक सेवा करूँगा। मेरा प्रेम तो कायम ही रहेगा। परन्तु प्रेम की भाषा वदल जायगी—वह अधिक तेज वनी है और वनेगी—जैसे अंग्रेजों के वारे में मेरी भाषा अधिक तेज वनी है। परन्तु इतना ही। आपको आज के प्रभात में मैं जाग्रत कर दूँ, सावधान कर दूँ, इतना ही हेतु है, जाग्रत इसलिए कि किसी समय आप पर भी ऐसा प्रसंग आ सकता है। आश्रम में से किसी वालक का अपहरण हो या वालिका का अपहरण हो, तो मेरे सिद्धान्त का स्थूल अर्थ करके आप देखते न रहना। शुद्ध होना है, यह निश्चय ही वलवान् है। शुद्ध और पवित्र हृदयवाले को शरीर का विकास करने की जरूरत नहीं है। उसका शरीर अपने-आप ही वलवान् वनता है। और फिर तो केवल निश्चय ही काम करता है। सोने से पहले राम-नाम लेना चाहिए, यह मेरा निश्चय है। इसलिए यह नाम लिये विना मुझे कभी नींद ही नहीं आती। और आये तो भी नींद में करवट लेते हुए राम-नाम पुकारूँगा और अपने राम को वरावर खड़ा ही देखूँगा। यही प्रत्येक निश्चय के वारे में है।'

प्रवचन में एक और सुन्दर उपमा दी। 'आश्रम में वालक पर कोई आफत आये तो वह भी न डरे। उसके पास आत्मवल न हो, तो नाखून तो है ही। नाखून में मैल भर जाय तो उसे हम निकाल देते हैं। वे

वढ़ हो जायँ तो विघातक हो जाते हैं और उसे निकाल देते हैं। वैसे ही शरीर में विघातक तत्त्वों को भी हम एक-एक करके निकालते रहें।'

जमनालालजी ने पूछा : 'शौकत अली पर क्या असर हुआ ?'

गांधीजी : 'उन्होंने अपना असर मुझे वताया नहीं। परन्तु मुझे दुःख हुआ, इसलिए उन्हें दुःख हुआ, यह कहा जा सकता है। वे भी स्तब्ध रहे।'*

···को एक जरूरी पत्र लिखा था। 'तुम व्यभिचारी हो, ऐसा आरोप आया है। हम···थे, तव भी यह वात सुनी थी। परन्तु मैंने मानी नहीं थी। अव जिस आदमी ने वात की है, उसे मैं रद्द नहीं कर सकता। तुम व्यभिचारी हो ? तुम्हारी सरलता, तुम्हारी वहादुरी सव देखकर मैं मोहित हुआ था। परन्तु यह सच हो तो क्या हो ?'

इसके जवाव में उनका एक वड़ा पत्र आया था। इसमें उन्होंने वताया था कि 'वचपन में दोप हुए थे। उसके वाद कुछ भी किया हुआ हो, पराये पाखाने में अपने मल-मूत्र डाले हों, ऐसा याद नहीं। मेरा पत्र आप फाड़ डालेंगे, ऐसा आप लिखते हैं। परन्तु किसलिए ? मेरे पत्र तो···खोलती है और यह पत्र तो···से ही लिखा रहा हूँ। और मेरी पत्नी ने भी पढ़ा है।'

इसके उत्तर में गांधीजी ने लिखा :

'मैं कल रात को पिण्डी से लौटा। तुम्हारा पत्र आज मिला। इसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था।····लिखनेवाले पर रोप न करना। लिखनेवाले का नाम भी तुम्हें देने का प्रयत्न करूँगा। तुम एक भी पत्र को केवल खानगी नहीं मानते, यह पढ़कर मुझे तो मनुष्य-जाति के वारे में अधिक अभिमान हुआ है। मेरा गर्व उतरा है। मैं यह मानता था कि ऐसा तो मैं एक ही हूँगा। तुम वढ़ गये, क्योंकि तुम ऐसे वातावरण में हो कि जहाँ निजी जीवन को प्रकट करना कठिन होता है। लिखनेवाला खटपटी या दुर्जन होता तो मैं उसके पत्र में से तुम्हें कुछ भी न लिखता और अपने मन पर भी विलकुल असर न पड़ने देता। परन्तु लिखनेवाला सज्जन है, विवेकी है, संयमी है, विद्वान् है। उसे तुम्हारे प्रति द्वेप तो हो ही नहीं सकता। परन्तु मैं समझ सकता हूँ कि उससे भूल हुई है। तुम्हारे पत्र की नकल मैं उसे भेज रहा हूँ। इससे उसका उपकार ही होगा। वह इतने निर्मल मन का मनुष्य है कि तुम्हारे पास आकर क्षमा माँगे,

* गांधीजी तथा शौकत अली के निवेदन के लिए देखिए परिशिष्ट ६।

तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। मैंने तुम्हें अपना पत्र भले ही लिखा। तुम अपने से हुए दोषों का स्मरण करते हो। उनसे कौन मुक्त रहा होगा ? मैं तो तीन वार गिरने से वचा हूँ। सो भी अपने पुरुषार्थ से नहीं, परन्तु अपढ़ माता के प्रताप से। उसने प्रतिज्ञारूपी धागे से अपने लड़के को वांध लिया और वह वच गया। मैं···को···पहुँच रहा हूँ। वहाँ या कहीं भी मिलेंगे ?'

वासद-आंकलाव

११-२-'२५

आंकलाव में भाषण देते हुए वोले :

'स्वराज्य वह कहलाता है, जिसमें हमारे गरीव-से-गरीव सुख से रह सकें। भुखमरी के लिए, हम जिन्होंने भूख न सही हो, वे जिम्मेदार हैं। सौ वर्ष पहले इस गाँव में जो वहनें थीं, वे कातती थीं। और भाई या तो कातते थे या वुनते थे।

'धारालों में खराव व्यसन हैं। वे शराव पीते हैं और चोरियाँ करते हैं। यह सव जव तक होगा, तव तक धर्म की रक्षा नहीं होगी। दुर्भाग्य से हमारे यहाँ हिन्दू-मुसलमानों के दिल झगड़ते रहते हैं। धर्म प्यारा होना चाहिए, परन्तु यदि अछूतपन हिन्दू-धर्म का अंग हो तो मेरे लिए वह धर्म निकम्मा है। मैल से सना हुआ मनुष्य स्नान कर ले, फिर भी हम यह मानें कि उसे छुआ नहीं जा सकता, तो इसमें पाप है। भारत के लोग जगत् के ढेढ और भंगी हैं। मनुष्य जैसा करता है, वैसा भरता है। हमारी गुलामी के लिए दोष अंग्रेजों का नहीं। हममें जो अस्पृश्यता है, उसके पाप-वीज से गुलामी का वृक्ष पैदा हुआ है।'

वोरसद में

वोरसद के सत्याग्रह के विजयोत्सव में पिछले साल आये थे। उस समय प्रत्येक स्थान पर जो शानदार जलसे देखे थे, वे तो इस वार देखने में नहीं आये। फिर कार्यकर्ताओं ने धारालों के क्षेत्र में ही वड़े जलसे करने का विचार कर रखा था, इसलिए वोरसद में वाहर के गाँवों से किसीको वुलाया नहीं गया था। फिर भी वोरसद की आवादी के लिहाज से भी वोरसद की सभा वहुत छोटी कही जायगी। इस सभा में गांधीजी को विजयी वोरसद दिखाई नहीं दिया। उसे लक्ष्य करके उन्होंने सत्याग्रह की लड़ाई और दूसरी लड़ाइयों की तुलना करनेवाला विवेचन किया :

'खेड़ा की लड़ाई के बाद और आज तक एक ऐतिहासिक घटना हो गयी। उसकी तुलना में खेड़ा की लड़ाई छोटी मानी जाती है। आपकी लड़ाई में आपको विजय प्राप्त हुई, इसके लिए आपको जितनी बधाई दी जा सके, उतनी कम है। उस लड़ाई से बोरसद तीर्थक्षेत्र बन गया है। परन्तु भारत में दूसरे तीर्थक्षेत्र जैसे तीर्थक्षेत्र नहीं रहे, वैसे ही तो कहीं बोरसद का भी हाल नहीं हुआ? आपने जो लड़ाई लड़ी थी और जो विजय प्राप्त की थी, वह ऐसी-वैसी नहीं थी। परन्तु लड़ाई लड़ना एक बात है और उस लड़ाई को समेट लेना और बाद में रचनात्मक कार्य करना दूसरी बात है। उससे शुभ परिणाम निकालना मुसीबत की बात हो जाती है और अक्सर लड़ाई करना न करने जैसा बन जाता है। जैसे लम्बे उपवास करने के बाद उनका तोड़ना कठिन हो जाता है, वैसे ही लड़ाई करने के पश्चात् उसका निवारण मुश्किल हो जाता है, यह हमने खेड़ा की लड़ाई के बाद देखा। इस लड़ाई के बाद देखते हैं और बड़े क्षेत्र में यूरोप में भी देखा। वहाँ इंग्लैण्ड-जर्मनी के बीच भारी युद्ध हुआ, बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ दी गयीं और उनके परिणामस्वरूप हमने यूरोप की स्थिति के बदल जाने की आशा रखी थी। यह आशा रखी थी कि परिणामस्वरूप यूरोप के लोग अधिक नीतिमान्, अधिक पवित्र, अधिक सावधान और ईश्वर से ज्यादा डरनेवाले बन जायेंगे। परन्तु वहाँ जो पाखण्ड पहले हो रहा था, वही अब हो रहा है। और कुर्बानियाँ करनेवालों की स्थिति दयाजनक है। उस लड़ाई और इस लड़ाई में जो फर्क है, वह फर्क उनके परिणामों में भी होना चाहिए, यह आशा रखनी चाहिए। वह लड़ाई नाश करनेवाली थी। सत्याग्रह की लड़ाई में एक भी पक्ष का नाश नहीं है, दोनों का भला ही होता है। फिर भी सत्याग्रह जैसी शुद्ध लड़ाई के अन्त में भी जो परिणाम देखना चाहते हैं, वे क्यों नहीं होते? इसका कारण यही है कि दोनों में धाँधली सामान्य तत्त्व है। जो शान्ति और धीरज रखना चाहिए, वह नहीं रख सकते। इसलिए ऐसा लगता है कि की हुई सारी कमाई बर्बाद कर रहे हैं। परन्तु यहाँ तो दरबार साहब ने मुझे पहले ही चेता दिया था कि मैं आपको खादी-नगर नहीं दिखा सकूँगा; लड़ाई के परिणामस्वरूप लोगों ने खादी की महिमा पूरी नहीं समझ ली थी। इसलिए मैं बड़ी आशा रखकर नहीं आया और इसलिए मुझे बहुत असन्तोष भी नहीं हो रहा है।

'यहाँ जुलाहे हैं। वे मिल का ही सूत क्यों इस्तेमाल करें? यह शिका-

यत है कि हाथ का काता हुआ सूत जितना चाहिए, उतना पक्का नहीं मिलता। यह बात सच है कि सूत बलदार और पक्का हो, इतनी कला विकसित नहीं हुई। परन्तु जैसे माँ अपने बच्चों के प्रति, रोगी और कुबड़े होने पर भी अपना प्रेम उँड़ेलकर उनका पालन करती है, वैसे ही जुलाहे को अपने भाई-बहनों का काता हुआ सूत—जैसा भी हो—प्रेम-पूर्वक बुनना चाहिए। ऐसा लगता है कि इन बहनों ने बोरसद की लड़ाई में भाग नहीं लिया होगा। परन्तु भाइयों ने तो लिया ही होगा। बहुत भाई—९५ फी सदी तक—बिना खादी के क्यों हों? मेरा तो खयाल है कि इन लोगों ने लड़ाई में ऐसा भाग नहीं लिया होगा, जिससे वे खादी का मंत्र समझ सकें।

'कोई पूछेगा कि लड़ाई और खादी में क्या सम्बन्ध है? यह आदमी ऐसा सम्बन्ध किसलिए जोड़ता है? मेरा जवाब यह है कि वह लड़ाई शुद्धि की थी। धारालों के दुःखों के निवारण की थी। इस दुःख का निवारण कैसे किया जाय, यह रविशंकर जानता है। यह आदमी उपवास करके धारालों को सुधारता है। इन लोगों में चोरी, मद्यपान, स्त्री-हरण की आदत है। इनकी सेवा इतने से ही नहीं हो सकती कि एक बार सरकार से लड़े। सेवा हुई, यह तभी कहा जा सकता है, जब हम इनको स्वावलम्बी बना सकें। इनके पास जमीन होना ही काफी नहीं है। फसल पैदा होती है, परन्तु वह भी काफी नहीं है। आपमें से बहुत भाई कहेंगे कि खेती से ही सारा लाभ होता है। परन्तु यह भूल है, क्योंकि उन्हें ऐसे कुछ लाभ, जो इनको प्राप्त नहीं हैं, आपको मिले हुए हैं और इसलिए आप खेती से आजीविका प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु जिस किसान को खाद के लिए रुपया लेना पड़ता है और दूसरे साधनों के लिए रुपया लेना पड़ता है, उसकी आजीविका खेती से नहीं मिलती। इसलिए इन्हें तो अपनी कमाई खादी और चरखे से बढ़ानी ही चाहिए।

'बम्बई को भारत की गरीबी की कल्पना नहीं हो सकती, क्योंकि बम्बई गरीबों की रग-रग का शोषण करती है। इसी तरह आप तालुके की रग-रग का शोषण करते हैं। इस कारण आपमें लाली देखने में आती है। परन्तु यह कब तक चलेगा? मैं आपसे कहता हूँ कि आपका मार्ग उल्टा है। और इससे विनाश ही होगा। आप लड़ाई का रहस्य समझें। लड़ाई सरकार के साथ नहीं थी, परन्तु ये सारे दुःख मिटाने के लिए

थी। इनके जीवन को शुद्ध करने से और इनमें खादी दाखिल करने से यह काम हो सकता है।

'आपके पास पति-पत्नी दोनों हैं---दरबार और उनकी रानी। इन्हें कोई भूख नहीं थी। इन्होंने तो राज्य छोड़कर वैराग्य लिया; और छोटा छोड़कर बड़ा राज्य बना दिया। जिन्हें मैंने शाहजादे की तरह देखा था, उन्हें आज एक वस्त्र में देख रहा हूँ। इन्होंने तो बहुत त्याग किया, आप क्या करेंगे? आपको तो इतना त्याग करना नहीं है।

'कहते हैं कि खादी चुभती है। वह कैसे चुभती होगी, यह मैं नहीं समझ सकता। खादी पहनने में आपको क्या दुःख होता होगा, यह मेरी समझ में ही नहीं आता। खादी को जितनी उज्ज्वल रखना हो, उतनी आप रख सकते हैं। यों तो कितना ही समय बेकार खोते हैं। परन्तु हमें इसका पता नहीं। उसका उपयोग कातने में क्यों न करें?

'अछूतों की हालत देखो। वे भी समाज के एक अंग हैं। शरीर की तरह समाज का भी एक अंग सड़ जाय तो दूसरे भी सड़ जाते हैं। नासूर जैसी बात है। हिन्दू-मुसलमान का एक राष्ट्र हुए बिना स्वराज्य का नाम लेने का हमें क्या अधिकार है? गायत्री जपनी हो तो साफ जगह बैठने की, एकाग्र होने की और ईश्वर के साथ लौ लगाने की जरूरत है। इसी तरह स्वराज्य के मंत्र के लिए भी तैयारी की जरूरत है। कई बार मुझे ऐसा खयाल होता है कि मैं जेल में रहा होता तो ही अच्छा था। परन्तु यह तो दूसरी बात हुई। अभी तो मुझे आपसे चरखा, खादी, अस्पृश्यता-निवारण, मद्य-पान-निषेध, मन, वचन और काया की स्वच्छता के बारे में बातें करनी हैं। स्वराज्य सत्ता प्राप्त करने में नहीं है, परन्तु सेवा में है। रुपया जैसे हाथ का मैल है, वैसे सत्ता भी मैल है। यदि हमने सेवाधर्म स्वीकार किया होगा तो यह चीज अपने-आप हमारे आगे आकर नाचेगी। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि बोरसद सेवाधर्म स्वीकार करे और तीर्थक्षेत्र बन जाय।

'आप राष्ट्रीय पाठशाला को सरकार के साथ जोड़ने का विचार करते हैं। मैं पूछता हूँ कि आप स्वावलम्बी न रहकर परावलम्बी बनना चाहते हैं? क्या आपके पास धन नहीं है? व्यवस्थापक भाइयो, आप भले ही सहयोगी हों, वकील हों, सरकारी नौकर हों, परन्तु मैं आपसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि अपने बच्चों के लिए तो कुछ-न-कुछ रखिए। कुछ तो कष्ट कीजिए, जिससे इनमें शक्ति आये।

'एक पाठशाला चलाने में भी भारी शक्ति चाहिए। **यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे**, यह सूत्र सर्वत्र सत्य है। मुझे सत्याग्रहाश्रम अच्छी तरह चलाना आ जाय, तो मैं लॉर्ड रीडिंग की गद्दी भी आसानी से सँभाल सकता हूँ। सत्याग्रह आश्रम चलाने में मुझे जितनी परेशानी होती है, जितना विचार करना पड़ता है, जितने प्रश्न हल करने पड़ते हैं उतना तो इस लड़ाई के चलाने में भी नहीं करना पड़ता। लड़ाई चलाने में तो क्या करना पड़ता है ? अमुक कार्यक्रम वनाकर आपसे कह दूँ कि फलाँ काम करो। अपनी जवान चलाऊँ। परन्तु आश्रम चलाना उससे ज्यादा परेशानी की वात है। इस जन्म में वाइसराय वनने की इच्छा नहीं है। इच्छा तो केवल भारत का सच्चा शुद्ध सेवक वनने की ही है। परन्तु मैं कहना इतना ही चाहता हूँ कि वाइसराय का काम करते हुए आत्मा सुखा दी जाती है। परन्तु सत्याग्रह आश्रम चलाने में आत्मा को उससे भी ज्यादा सुखा डालना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि आप भी विनय मन्दिर चलाने में अपनी आत्मा को सुखा डालें, क्योंकि आत्मा को जितना सुखाया जाय, उतनी ही वह शुद्ध होती है।'

वल्लभभाई ने कहा : 'वोरसद की आफत के समय दौड़ता हूँ, क्योंकि मैंने उसका नमक खाया है। जव आप दरवाजे वन्द करके वैठ जाते थे, तव मैं और मेरे साथी यहाँ आये थे। मैंने आपसे कहा था कि आप ढाई रुपया मत दो, यह कहने के लिए मैं यहाँ नहीं आया, परन्तु जव आपकी दुर्वल स्थिति असह्य हो गयी, तव मैं आया था। अव अपराध थोड़े होते हैं, इसका कारण यह नहीं कि हम सुधरे हैं या सरकार की पुलिस सुधर गयी है। असली कारण तो यह है कि इने-गिने लोगों ने आकर अपराध करनेवालों के साथ मुहव्वत कर ली है। परन्तु हम तो दण्ड-कर (प्यूनिटिव टैक्स) वचाकर वैठ गये।

'भुखमरी से पीड़ित लोगों के वीच में रहना चीते-भेड़ियों के वीच में रहने जैसा है।'

भादरण में

वोरसद से चलकर रात को भादरण रहे। तटवर्ती धारालों के गाँवों में जाने का रास्ता भादरण में से है, इसलिए यह एक विश्राम का स्थान है। भादरण तो गायकवाड़ी राज्य का एक आदर्श नगर है। उसके वारे में मॉडर्न रिव्यू जैसे मासिकों में लेख लिखे गये थे। वह

पाटीदार जाति के वड़े किलों में से एक है; और गायकवाड़ी राज्य का, जिसमें अछूतोद्धार के लिए सरकार की तरफ से बहुत प्रयत्न होते हैं, एक आदर्श नगर होने के कारण यह आशा रखी जाती है कि वह अस्पृश्यता से मुक्त होगा । यहाँ तालुका पंचायत और विशिष्ट पंचायत के मानपत्र मिले । उनका जवाब देते हुए गांधीजी बोले :

'यहाँ मैं कुछ खास बात कहूँ, यह आशा आप नहीं रखते होंगे । आप सबके आदरपूर्ण विवेचन के लिए आपका आभार मानता हूँ । मानपत्रों में जो कुछ लिखा गया है, वह अक्षरश: मेरे लिए सत्य हो, ऐसी प्रभु से प्रार्थना करता हूँ और आशा रखता हूँ कि आप भी करेंगे। मैं तो इसके लिए प्रयत्नशील हूँ ही ।'

रात को ८।। बजे आम सभा हुई । सभा की स्थूल व्यवस्था में तो कोई कसर नहीं थी, परन्तु उसमें जो विभाग देखने में आये, उससे गांधीजी जैसे को तो सख्त आघात ही पहुँचना था । सभा में अस्पृश्यता को धर्म माननेवालों के लिए अलग बैठक होती तो अलग बात थी, परन्तु यहाँ तो अछूतों के लिए अलग विभाग था और एक बाड़ उसे दूसरे विभागों से पृथक् कर रही थी । यह दृश्य गांधीजी की आँखों में खटका और भाषण का आरम्भ—और मुख्य भाग—अस्पृश्यता के प्रश्न ने ही ले लिया।

उस विवेचन में इतनी अधिक बातें आ जाती हैं, गांधीजी की कार्य-पद्धति के विषय में उसमें इतनी स्पष्टता हो जाती है और हिन्दू-धर्म के रहस्य का इतना नवीन पृथक्करण होता है कि अस्पृश्यता सम्बन्धी गांधीजी के अनेक बार लिखे और बोले गये शब्दों से थके हुए और उकताये हुए लोगों से भी मैं एक बार प्रार्थना करता हूँ कि उन्होंने अभी तक अपने मन खुले रखे हों तो उस विवेचन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और इस प्रश्न के बारे में अपनी वृत्ति बदलने की कोशिश करें ।

हिन्दू-धर्म के तीन सूत्र

'आपके प्रेम और मानपत्र का आभार मानने से पहले मुझे एक प्रार्थना करनी है । आप आज रात को देर होने पर भी इतनी बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए हैं, इससे मुझे आनन्द होता है । यह न कहूँ तो मेरा अपराध होगा । परन्तु साथ ही साथ मुझे दु:ख भी होता है । इस सभा के व्यवस्थापकों ने जो व्यवस्था की है, वह जान-बूझकर की है या अनजाने की है, यह मुझे पता नहीं । परन्तु मेरी खासियतें अब तो

सम्मेलनों में जानेवाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष जानते हैं। इन खासियतों में से एक यह है कि यदि किसी भी समारोह में मैं अन्त्यजों के लिए अलग विभाग देखूं तो मुझे सख्त आघात पहुँचता है और मेरे लिए कुछ भी बोलना असंभव हो जाता है। परन्तु आप तो कह चुके और दूसरे भी कहते हैं कि अहिंसा मेरे जीवन का परम सूत्र है; अहिंसा को मैं अपने जीवन में बुन रहा हूँ। यदि यह बात सच हो तो आपको मैं आघात पहुँचाना तो चाह नहीं सकता। यह भी नहीं चाहूँगा कि आप बिना जाने कुछ करें, रोष में भी आपसे मैं कुछ नहीं करा सकता। मुझे तो कुछ भी कराना हो तो वह आपके हृदय और बुद्धि को रिझाकर ही होगा। इसलिए मेरी केवल प्रार्थना है कि आप अस्पृश्यता को हिन्दू-धर्म का कलंक मानते हों तो आप इस बारे में सहमत हो जाइए कि जो बाड़ हमें अपने अछूत भाई-बहनों से अलग करती है, उसका नाश हो।'

ये शब्द बोले ही जा रहे थे कि सभा में से शान्ति के साथ उठकर कुछ भाई बाड़ के बाँसों के बन्धन खोलने लगे! इस पर गांधीजी बोले :

'मैं यह नहीं कहना चाहता कि आप इसी समय इस बाड़ को तोड़ डालें अथवा सभा में खलबली मचाकर आप कुछ करें। मैं तो आपकी सहमति जानना चाहता हूँ। आप चाहते तो हैं कि यह बाड़ न हो और हमारे अन्त्यज भाई-बहन हमारे बीच में आकर बैठें? (बहुत-से हाथ उठे। विरोध में एक ही हाथ उठा। बाड़ के बन्धन छूटे और सब इकट्ठे हो गये।) आपने मुझे मानपत्र अभी दिया है। आपने जिस चौखटे में मढ़कर कागज पर या खादी पर छापकर मानपत्र दिया, उसकी मेरे लिए कुछ भी कीमत नहीं होगी अथवा उतनी ही होगी, जितनी आप अपने आचरण से सिद्ध करके बता सकेंगे। परन्तु अभी आपने बाड़ तोड़-कर मेरा जो सम्मान किया, वह सदा के लिए मेरे हृदय पर अंकित रहेगा। ऐसा ही मानपत्र मैं अपने हिन्दू भाई-बहनों से चाहता हूँ। आप मुझे थोड़ा-सा सूत दे दें या मेरे सामने तरह-तरह के फल-फूल या मेवे रख दें या अछूत लड़की के हाथों कुंकुम-तिलक करा दें (यहाँ कराया गया था) तो उससे मैं खुश नहीं होऊँगा। इतनी चीज तो मुझे कहीं से भी मिल जाती है, परन्तु आपने जो वस्तु मुझे अभी दी है, उसके लिए तो प्रेम की जंजीर चाहिए। और मुझे प्रेम की जंजीर के सिवा और कुछ नहीं चाहिए, क्योंकि प्रेम अहिंसा का भाग है, अहिंसा प्रेम में समा जाती है।

'सनातनी भाइयो, यह मत समझना कि मैं हिन्दू-संसार पर आघात पहुँचाना चाहता हूँ। मैं अपने को सनातनी मानता हूँ। मुझे मालूम है कि मेरा दावा बहुत थोड़े भाई-बहन स्वीकार करते होंगे। परन्तु मेरा यह दावा है और रहेगा। और मैंने कई बार कहा है कि आज नहीं तो मेरे मरने के बाद समाज जरूर स्वीकार करेगा कि गांधी सनातनी हिन्दू था। 'सनातनी' का अर्थ है प्राचीन। मेरे भाव प्राचीन हैं—अर्थात् इन भावों को मैं पुरानी-से-पुरानी पुस्तकों में देख सकता हूँ और उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करता हूँ, इसलिए सनातनी होने का अपना दावा मैं ठीक मानता हूँ। लावण्य के साथ शास्त्र पढ़नेवालों को मैं सनातनी नहीं कहूँगा। सनातनी तो वही हैं, जिनकी रग-रग में हिन्दू-धर्म व्याप्त है। इस हिन्दू-धर्म को शंकराचार्य ने एक वाक्य में बता दिया है : **ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या**[1]। दूसरे ऋषि ने कहा है कि सत्य के सिवा कोई और परम धर्म नहीं। और तीसरे ने कहा कि हिन्दू-धर्म का अर्थ केवल अहिंसा है। इन तीनों में से कोई भी सूत्र ले लें, तो भी उसमें हिन्दू-धर्म का रहस्य मिल जाता है। ये तीन सूत्र मानो हिन्दू-धर्म-शास्त्र को मथ-मथकर निकाला हुआ मक्खन है। ऐसे हिन्दू-धर्म का सनातनी होने का दावा करनेवाला मैं किसी भी व्यक्ति को आघात पहुँचाना हरगिज नहीं चाहता।

'आपसे अस्पृश्यों का केवल स्पर्श चाहता हूँ, क्योंकि अन्त्यज मनुष्य हैं; मैं चाहता हूँ कि उनकी सेवा हो, क्योंकि ये इसके योग्य हैं; क्योंकि जो सेवा माता बालक की करती है, वह सेवा ये समाज की करते हैं। उन्हें अछूत मानना, उनका तिरस्कार करना मनुष्यत्व खोने के बराबर है। भारत आज संसार में अछूत बन बैठा है, क्योंकि कई करोड़ मनुष्यों को—अर्थात् असंख्य नर-नारियों को—उसने अछूत समझा है। और परिणाम-स्वरूप हमारा सत्संग करनेवाले मुसलमान भी जगत् में अस्पृश्य बन गये हैं। ऐसा विपरीत परिणाम कैसे आया? इसका एक ही उत्तर है। जैसा करोगे वैसा भरोगे, यह ईश्वर का न्याय है। जगत् के द्वारा ईश्वर हमें यह न्याय दे रहा है। इसमें कोई रहस्य नहीं है। इसमें सीधा न्याय ही है। **ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**[2] जैसा मुझे भजोगे

---

१. ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। (निरालम्बोपनिषद्–२८)

२. गीता, अध्याय ४, श्लोक ११।

वैसा मैं तुम्हें भजूंगा, ऐसा भगवान् कृष्ण ने कहा है। इसलिए मैं आपसे क्या चाहता हूँ, यह आप समझ लें तो आपको कष्ट नहीं होगा। मैं डरा नहीं रहा हूँ। आपसे मैं बहुत ज्यादा माँग नहीं कर रहा हूँ। मैं यह कभी नहीं चाहता कि आप अन्त्यजों के साथ रोटी-बेटी व्यवहार जारी कर दें। यह आपकी इच्छा का विषय है। परन्तु अन्त्यज को अस्पृश्य मानना इच्छा का विषय नहीं। जिनको छूना चाहिए, उन्हें आप अछूत समझें और जो अछूत हैं, उन्हें स्पर्श करें, यह इच्छा का विषय नहीं है। अन्त्यज भाइयों का दुःख आप न देख सकें तो सर्वं खल्विदं ब्रह्म* कैसे किया जा सकता है? उपनिषद् लिखनेवाले कोई भी व्यक्ति पाखंडी नहीं थे, उन्होंने जगत् को ब्रह्ममय कहा, इसलिए हम उसके दुःख से दुःखी न हों तो हम जानवर से भी बुरे हैं। जो जीव जन्तु में है वही हम सबमें है, ऐसा हमारा धर्म पुकार-पुकारकर कहता है। और इस धर्म को आज हमने मरोड़ डाला है।

'अखा ने तो इसे 'फालतू अंग' कहा था। उसका त्याग कीजिए। उसे मिटा दीजिए। मुझे तो दयाभाव से, प्रेमभाव से, भ्रातृभाव कहें तो भ्रातृभाव से अस्पृश्यता का नाश करना है। यदि ऐसा करेंगे तो हिन्दू-धर्म सुशोभित हो जायगा। इसमें हिन्दू-धर्म की रक्षा भी निहित है। हेतु यह नहीं है कि अछूत लोग मुसलमान या ईसाई होना बन्द कर देंगे। कोई भी धर्म उसे धारण करनेवालों की संख्या पर आधार नहीं रखता। संख्या पर धर्म का बल निर्भर करता है, इस मान्यता जैसा ढोंग और कोई सामने नहीं आया। एक मनुष्य भी सच्चा हिन्दू रहे तो हिन्दू-धर्म का नाश नहीं होगा। परन्तु करोड़ों पाखंड करें तो उससे हिन्दू-धर्म सुरक्षित नहीं है, उसका नाश निश्चित है। जब मैं यह कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म सुरक्षित होगा तो यह अर्थ है कि हमने अपना प्रायश्चित्त किया होगा, अनेक युगों से चढ़ा हुआ ऋण चुका दिया होगा, तो हम दिवालियेपन से मुक्त हो जायँगे।

'अस्पृश्यता में द्वेष-बुद्धि तो निश्चित रूप से है। कोई कहे कि अस्पृश्यता को वह प्रेमभाव से मानता है तो यह मैं नहीं मानूंगा। मुझे तो इसमें कहीं प्रेमभाव नहीं लगता। प्रेम हो तो हम उन्हें दुतकारेंगे नहीं। प्रेमभाव हो तो हम उन्हें जूठन या खाया हुआ नहीं डालेंगे। प्रेम हो तो जैसे हम अपनी माता की पूजा करते हैं, वैसे ही उनकी पूजा करेंगे।

* यह सब ब्रह्म है। (छान्दोग्य उपनिषद् ३-१४-१)

प्रेमभाव हो तो हम स्वयं जिन कुओं और पाठशालाओं का इस्तेमाल करते हैं, उनसे अच्छे उनके लिए बनवायेंगे और उन्हें मन्दिरों में जाने देंगे। यह सब प्रेम की निशानी है। प्रेम तो अगणित सूर्यों से बना है। एक छोटा-सा सूर्य छिपा नहीं रहता तो प्रेम कैसे छिपा रहेगा? किसी माता को थोड़े ही कहना पड़ता है कि मैं अपने बच्चे को चाहती हूँ? जिसे अभी बोलना भी न आता हो, ऐसा बालक माँ की आँखों के सामने आये और दोनों की चार आँखें हो जायँ तो हम देखते हैं कि दोनों एक-दूसरे को किसी अलौकिक वस्तु से निहार रहे हैं।

'इतना कहने के बाद कोई यह न माने कि दक्षिण अफ्रीका से आया हुआ एक सुधारक हिन्दू अपना सुधार धर्म में घुसेड़ना चाहता है। मैं कह सकता हूँ कि मुझे सुधार की अभिलाषा नहीं है। मैं तो स्वार्थी मनुष्य हूँ और मैं अपने ही आनन्द में मग्न रहता हूँ। मुझे मेरी अपनी आत्मा का कल्याण चाहिए, इसलिए मैं तो तटस्थ निश्चिन्त मनुष्य बनकर बैठा हूँ। परन्तु मैं जो आनन्द अनुभव कर रहा हूँ, वह मैं चाहता हूँ कि आप भी भोगें। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि अन्त्यजों का स्पर्श करके, उनकी सेवा करके जो आनन्द मिलता है, उसका उपभोग करें।'

आदर्श भादरण

इस प्रकार भाषण की प्रस्तावना ही भाषण बन गयी। फिर भी अस्पृश्यता-निवारक सरकार के भादरण के बारे में इतना बोलकर, सुन्दर शहर के नमूने भादरण के बारे में और पाटीदारों के भादरण के विषय में भी वे थोड़ा-सा बोले :

'आदर्श गाँव कोई पाठशाला, वाचनालय अथवा अन्य संस्थाओं से नहीं बनता। आदर्श नागरिकों से ही होता है और आदर्श नागरिक तो स्वास्थ्य के नियमों का खूब पालन करनेवाले होते हैं। भादरण को आदर्श बनाना हो तो आप तालुका, पंचायत या सरकार पर आधार न रखना। यह तो प्रत्येक स्त्री-पुरुष का काम है। वह आदर्श तब होगा, जब कहीं भी कुछ मैला न हो, गन्दगी न हो, पाखाने वाचनालय जैसे साफ हों। प्रत्येक प्रजा की सभ्यता का अन्दाजा लगाना हो, तो उसके पाखानों और नालियों की जाँच करनी चाहिए—सफाई के विशेषज्ञ से जाँच करानी चाहिए। ऐसा स्वच्छता का शास्त्री मैं हूँ और आज अपने सूक्ष्म अनुभव के कुछ बिन्दु ही आपको दे रहा हूँ। मैंने देखा कि यहाँ

वहुत-से खाँसने लगे। मैंने तुरन्त अनुमान लगाया कि यहाँ धूल वहुत होनी चाहिए। धूलवाले रास्ते में कई खामियाँ रहती हैं। वह फेफड़ों को खराव करता है, इतना ही नहीं, परन्तु जानवरों को वोझा ढोने में भी वहुत तकलीफ होती है। इसलिए अच्छे और सख्त रास्ते हों, यह स्वच्छता का पहला नियम है। ऐसे अच्छे रास्ते होंगे तो ही आपकी पानी की टंकी भी शोभा देगी।

पाटीदारों से

'इसी प्रकार पाटीदारों की विवाह-पद्धति और कठोर रिवाजों के वारे में कहना चाहता हूँ। मैं सुन रहा हूँ और आज ज्यादा सुना कि पाटीदार के यहाँ लड़की का जन्म अप्रिय है। ऐसा कहा जाता है कि लड़की की माँ वनने से स्त्री का वाँझ रहना अच्छा है, क्योंकि उसकी शादी में भारी खर्च करना पड़ता है और वह करने की शक्ति न हो तो उसके लिए कर्ज भी किया जाता है। यह कर्ज चुकाते-चुकाते कई जन्म वीत जाते हैं। ऐसे रीति-रिवाज जवरदस्ती भी मिटाने पड़ेंगे। मैंने पूछा तो जवाव मिला कि यह तो पाटीदार-वर्ग पर ही लागू होता है। परन्तु पाटीदार भी समाज का एक अंग है। स्वराज्य लेना है तो अंग-अंग का विकास करना होगा। समाज में यह एक वड़ा अंग है और विवाह-विधि भी एक वड़ी विधि है। ऐसे कर्ज के वुरे परिणाम वताने की जरूरत है? विवाह-पद्धति को खर्चीला नहीं, परन्तु पवित्र वनाना चाहिए। विवाह में निहित संयमभाव को समझना चाहिए। हम तो वर और वधू को पुष्पमाला पहना दें। दोनों प्रेम की गाँठ में वँध जायँ तो और क्या चाहिए? एक-दूसरे को जीवन-साथी मिल जाय, इससे अधिक क्या चाहिए? जो इससे अधिक चाहे, उसे विवाह करने का अधिकार नहीं है। मैं चाहता हूँ कि कुरीतियों का गुलाम वनकर कोई विवाह न करे। ऐसे कठिन संयोगों में ग्रस्त पुत्री जीवनभर कौमार्य पालन करके तपश्चर्या करे, उमा की तरह व्रत लेकर वैठे कि मुझे शिवजी मिलें तो ही विवाह करूँगी, तो इस जन्म में नहीं तो अगले में उसे शिवजी मिलेंगे ही। ऐसी स्त्री सारी जाति को उज्ज्वल करेगी। विवाह भोग का साधन नहीं है, संयम का ही साधन है। मैं चाहता हूँ कि इस वात को सव समझ लें।'

अन्त में अन्त्यजों की वाड़ तोड़ने के लिए दुवारा आभार मानकर गांधीजी ने अपना गम्भीर भाषण सभा की अपार शान्ति के वीच पूरा किया।

भादरण सेवा समाज ने भी गांधीजी को मानपत्र दिया* । इस अवसर पर उस संस्था के युवकों की खास माँग पर ही उन्होंने ब्रह्मचर्य पर विवेचन किया । पहले वे समाज-सेवा पर बोले । उसका सार था : 'समाज-सेवा का अर्थ चाहे किसीकी सेवा नहीं और न आम तौर पर समाज की सेवा है। परन्तु समाज-सेवा का अर्थ है वह सेवा, जो कमजोर-से-कमजोर अंग देखकर उसकी सेवा से आरम्भ की जाय । आजकल अछूत सबसे कमजोर अंग हैं। इसलिए सच्ची समाज-सेवा का आरम्भ अन्त्यज-सेवा से ही होता है । जिस समाज-सेवा में इस अंग की अवहेलना हो, उसके लिए सेवा का नाम उचित नहीं ।'

फिर बोले :

'ऐसी माँग हुई है कि ब्रह्मचर्य के विषय में कुछ कहूँ । कुछ विषय ऐसे हैं, जिनके बारे में मैं प्रसंगोपात्त 'नवजीवन' में लिखता हूँ और शायद ही कभी उन पर बोलता हूँ। ब्रह्मचर्य ऐसा ही विषय है । इसके बारे में शायद ही बोलता हूँ, क्योंकि यह ऐसी चीज है, जो बोलने से नहीं समझी जा सकती और मैं जानता हूँ कि अत्यन्त कठिन वस्तु है। तुम जो ब्रह्मचर्य के बारे में सुनना चाहते हो सो तो सामान्य ब्रह्मचर्य के बारे में—सब इन्द्रियों का संयम जिसकी विस्तृत व्याख्या है, उस ब्रह्मचर्य के बारे में नहीं । यह सामान्य ब्रह्मचर्य भी शास्त्रों में अत्यन्त कठिन कहा गया है । इस कथन में ९९ फीसदी सत्य है, एक प्रतिशत की कमी है, यह कहने की छूट चाहता हूँ । इसका पालन कठिन लगता है, क्योंकि दूसरी इन्द्रियों का संयम हम करते नहीं । इनमें मुख्य रसनेन्द्रिय है । जो जीभ को काबू में रखेगा, उसके लिए ब्रह्मचर्य आसान-से-आसान चीज हो जायगी ।

'प्राणी-शास्त्र के अध्ययनकर्ताओं ने कहा है कि पशु जिस हद तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस हद तक मनुष्य नहीं करते। यह सच है । इसका कारण देखेंगे तो पता लगेगा कि पशु जिन्हेन्द्रिय पर पूरी तरह अंकुश रखते हैं—इच्छापूर्वक नहीं, परन्तु—स्वभाव से ही। केवल घास-चारे पर उनका निभाव है । वह भी ये पेट भरने लायक खाते हैं । वे जीने के लिए खाते हैं । खाने के लिए नहीं जीते ।

'उधर हम इससे उल्टा करते हैं । माता बालक को अनेक स्वाद लगाती है । वह यह मानती है कि अधिक-से-अधिक चीज खिलाकर ही

* यह मानपत्र ता० १२-२-'२५ को दिया गया था ।

बच्चे के साथ प्रेम किया जा सकता है । ऐसा करने में हम वस्तुओं में स्वाद नहीं भरते, परन्तु वस्तुओं का स्वाद ले लेते हैं । स्वाद तो भूख में रहता है । सूखी रोटी भूखे को जितनी स्वादिष्ट लगेगी, उतना भूख के बिना लड्डू स्वादिष्ट नहीं लगेगा । हम तो पेट को ठसाठस भरने के लिए अनेक मसालों का उपयोग करके अनेक बानगियाँ बनाते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन क्यों नहीं होता ? आँख ईश्वर ने देखने को दी है । उसे मलिन करते हैं और जो देखना है, उसे देखना नहीं सीखते ।

'माता क्यों न गायत्री सीखे और बालक को क्यों न गायत्री सिखाये ? इसके गहरे अर्थ में न जायँ तो उसमें सूर्य की उपासना होती है, इतना ही समझकर सूर्य की उपासना कराये तो भी काफी है । सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों करते हैं । सूर्य की उपासना—यह तो स्थूल-से-स्थूल अर्थ तुम्हारे सामने रखा । इस उपासना का अर्थ क्या ? हम अपनी गरदन ऊँची करके सूर्यनारायण के दर्शन करके आँखों का शौच करते हैं । इस गायत्री की रचना करनेवाले ऋषि थे, द्रष्टा थे । उन्होंने कहा कि सूर्योदय में जो नाटक समाया हुआ है, जो सौन्दर्य भरा है, जो लीला है, वह और कहीं देखने को नहीं मिलती । ईश्वर जैसा सुन्दर सूत्रधार और कहीं नहीं मिलेगा और आकाश से अधिक भव्य रंगभूमि अन्यत्र नहीं मिलेगी । परन्तु कोई माता बालक की आँखें धोकर उसे आकाश दिखाती है ? माता के भावों में तो अनेक प्रपंच ही भरे रहते हैं । बड़े मकान में जो शिक्षा मिलती है, उसके फलस्वरूप तो शायद लड़का अच्छा अफसर हो जायगा । परन्तु घर में जाने-अनजाने जो शिक्षा बच्चे को मिलती है, उसमें से वह कितना ले लेता है, इसका कौन विचार करता है ?

'हमारे शरीर को माँ-बाप ढँकते हैं । दम घोंटते हैं, सुशोभित करने की कोशिश करते हैं, इससे क्या शोभा बढ़ती है ? कपड़े अंगों को ढँकने के लिए होते हैं । शोभा बढ़ाने के लिए नहीं; सरदी-गरमी से शरीर की रक्षा करने के लिए हैं । ठंड से ठिठुरते बालक को अँगीठी के पास धकेलें या गली में दौड़ने को भेजें । अथवा खेत में धकेलें तो ही उसका शरीर वज्र जैसा बनेगा । जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, उसका शरीर तो वज्र जैसा होना चाहिए । हम तो बालक के शरीर का नाश करते हैं । हम उसे घर में रखकर जो गरमी देना चाहते हैं, उससे तो उसकी चमड़ी के अन्दर ऐसी गरमी आती है, जिसे हम खुजली की उपमा दे

सकते हैं। हमने शरीर को सहलाकर विगाड़ा है, हम लापरवाही करते रहे हैं।

'यह तो कपड़ों की वात हुई। फिर घर में होनेवाली वातचीत से हम उसके मन पर खराव असर डालते हैं। उसके शादी-व्याह की वातें करते हैं, उसे देखने को भी ऐसी ही चीजें मिलती हैं। मुझे तो आश्चर्य यह होता है कि हम केवल जंगली-से-जंगली क्यों नहीं हो गये? मर्यादा तोड़नेवाले अनेक साधनों के वावजूद मर्यादा की रक्षा हो रही है। ईश्वर ने मनुष्य को ऐसा वनाया है कि विगड़ने के अनेक मौके आने पर भी वह वच जाता है। ऐसी उसकी अलौकिक कला है। ब्रह्मचर्य के मार्ग में आनेवाले ऐसे अनेक विघ्न दूर कर दें तो उसका पालन संभव हो जाय, आसान हो जाय।

'ऐसी स्थिति होने पर भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुकावला चाहते हैं। इसके करने के दो रास्ते हैं, आसुरी और दैवी। आसुरी का अर्थ है शरीर-वल विकसित करने के लिए कुछ भी उपाय करना, चाहे जैसे पदार्थों का सेवन करना, शारीरिक स्पर्धाएँ करना, गोमांस खाना इत्यादि। मेरे वचपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहता था कि मांसाहार करना ही चाहिए और ऐसा नहीं करेंगे तो अंग्रेजों जैसा कद्दावर शरीर नहीं हो सकता। कवि नर्मदाशंकर ने भी इसी प्रकार की सलाह अपने एक काव्य में दी है। 'अंग्रेज राज करें देशी रहें दवकर।' 'वह पाँच हाथ पूरा' वाले पद्यों में यही भाव भरा है।* नर्मदाशंकर ने गुजरात पर अत्यन्त उपकार किया है, परन्तु उनके जीवन के दो विभाग थे—एक स्वेच्छाचार-काल और दूसरा संयम-काल। यह काव्य स्वेच्छाचार के समय का है। जापान को भी दूसरे देशों के साथ मुकावला करने का समय आया, तव वहाँ गोमांस-भक्षण को स्थान

---

* आत्मकथा के प्रकरण ६ में भी गांधीजी ने वताया है:

'इन्ही दिनों में नर्मदाशंकर का निम्न काव्य पाठशालाओं में गाया जाता था:

अंग्रेज राज करें, देशी रहें दवकर
देशी रहें दवकर, देखो दोनों के शरीर भाई।
वह पाँच हाथ पूरा, पूरा पाँच सौ को।'

इस कविता की रचना करनेवाले के नाम के वारे में निश्चय करने की जरूरत मालूम होने पर 'संस्कृति' मासिक के संपादक श्री उमाशंकर जोशी से सम्पर्क किया गया। उन्होंने इस मासिक के मार्च १९६३ के अंक में खुलासा किया है कि इस कविता की रचना करनेवाले नर्मदाशंकर नहीं, परन्तु नवलराम थे। सं०

मिला । इस प्रकार आसुरी ढंग से शरीर को वनाना चाहते हैं, तो ऐसे पदार्थों का सेवन करना पड़ता है ।

'परन्तु यदि दैवी ढंग से शरीर को वनाना हो तो ब्रह्मचर्य ही एक उपाय है। मुझे जव नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता है, तव मुझे अपने पर दया आती है । मुझे दिये गये मानपत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है । इसलिए मुझे कहना चाहिए कि जिसने मानपत्र तैयार किया, उसे पता नहीं था कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ? उसे इतना भी विचार नहीं हुआ कि जो आदमी मेरी तरह विवाहित है और जिसके सन्तान हुई है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कहलायेगा ? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को तो कभी वुखार नहीं आता, कभी सिर भी नहीं दुखता, न कभी खाँसी होती है, न अपेंडिसाइटीस होता है । डॉक्टर कहते हैं कि अँतड़ी में नारंगी का वीज फँस जाने पर भी अपेण्डिसाइटीस हो जाता है । परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और नीरोगी है, उसके शरीर में वीज टिक ही नहीं सकता। जव अँतड़ियाँ शिथिल हो जाती हैं, तव वे अन्दर की ऐसी चीजों को अपने-आप वाहर नहीं निकाल सकतीं । मेरी भी अँतड़ियाँ शिथिल हो गयी होंगी । इसीलिए मैं ऐसी कोई चीज पचा नहीं सका हूँगा। वालक ऐसी कई चीजें खा जाते हैं, उन पर माता थोड़े ही ध्यान देती है ? कारण उनकी अँतड़ियों में इतनी शक्ति स्वाभाविक रूप में होती ही है । इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरे अन्दर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न वने । नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझमें जितना है, उससे कई गुना होना चाहिए । मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं हूँ । यह सच वात है कि मैं ऐसा वनना चाहता हूँ ।

'मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव में से थोड़े-से विन्दु रखे हैं, जो ब्रह्मचर्य की वाड़ (मर्यादा) वताते हैं। ब्रह्मचारी रहूँ, इसलिए स्त्रीमात्र का स्पर्श न करूँ, अपनी वहनों का भी स्पर्श न करूँ, सो वात नहीं। परन्तु ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि जैसे कागज को छूने से मुझे विकार नहीं होता, वैसे ही किसी भी स्त्री का स्पर्श करने पर भी मुझे विकार न हो, ऐसी स्थिति होनी चाहिए । मेरी वहन वीमार हो और उसकी सेवा करने से, उसका स्पर्श करने से ब्रह्मचर्य के कारण मुझे अटकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य धूल के समान है । जैसी अविकारी दशा मृत शरीर को छूकर हम रख सकते हैं, वैसी ही अविकारी दशा कोई वड़ी सौन्दर्यवती युवती को छूने पर भी रख सकें तो हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप चाहते हों कि बच्चों

को ऐसा ब्रह्मचर्य प्राप्त करना चाहिए, तो अपना पाठ्यक्रम आप तैयार नहीं कर सकते, पर मेरे जैसा अधूरा भी ब्रह्मचारी ही तैयार कर सकता है।

'ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी है, ब्रह्मचर्य आश्रम संन्यास आश्रम से अधिक ऊँचा आश्रम है, परन्तु इसे हमने गिरा दिया है। इसीलिए हमारा गृहस्थ आश्रम विगड़ा है और वानप्रस्थ आश्रम भी विगड़ा है। संन्यास का तो नाम भी नहीं रहा। ऐसी हमारी दीन अवस्था है।

'ऊपर जो आसुरी मार्ग वताया, उसका अनुसरण करके तो हम पाँच सौ वर्ष में भी पठानों का मुकावला नहीं कर सकेंगे। दैवी मार्ग का अनुसरण आज हो तो आज ही पठानों का मुकावला हो सकता है। क्योंकि दैवी मार्ग से यथेष्ट मानसिक परिवर्तन क्षणभर में हो जाता है, जव कि शारीरिक परिवर्तन करने में जुग-जुग वीत जाते हैं। इस दैवी मार्ग का अनुसरण हम तभी कर सकेंगे, यदि हमारे पूर्वजन्म के पुण्य होंगे और माँ-वाप हमारे लिए योग्य सामग्री पैदा करेंगे।'

भादरण छोड़कर गांधीजी वोरसद के तटवर्ती गाँवों में हो आये। सव जगह एक ही वात की चर्चा और एक-ही-एक प्रश्न। कठाणा जैसे धारालों के गाँव में भी यही सवाल, सुणाव जैसे पाटीदारों के गाँव में भी यही प्रश्न और नड़ियाद में भी वही। कठाणा में अन्त्यजों को दूर वैठे देखकर उन्हें पास वुलाने के वारे में गांधीजी ने सभा की राय माँगी। किसीने विरोध में हाथ नहीं उठाया, परन्तु सवके चेहरे पर से उनकी भावना समझी जा सकती थी। अन्त में एक-दो वूढ़ों ने पुकारा। 'नहीं-नहीं, ढेढ़ यहाँ नहीं वैठ सकते।' इसलिए गांधीजी ने उनके साथ चर्चा शुरू कर दी :

'क्यों नहीं वैठ सकते ?'

'आप तो पवित्र हैं। इन लोगों की करनी दूसरी। सवको अपने-अपने कर्म मिलते हैं।'

'इनके वे कौनसे कर्म हैं ?'

'हमारे जैसे थोड़े ही हैं ? हम लड़की नहीं वेचते, ये लोग कुत्ते घसीट-कर डालते हैं, मरी भैंस को घसीटकर डालते हैं।'

'आप यह न्याय की वात कर रहे हैं क्या ? ढेढ़ भंगी कुत्ते घसीट-कर डालेंगे, इसमें ऐव क्या ? मेरे आँगन में कुत्ता मर जाय तो मैं ही घसीटकर डाल दूंगा। मेरे घर में एक वार प्लेग था और मेरे मकान

के सामने प्लेग का एक चूहा पड़ा था । उस चूहे को कौन उठाये ? मेरे पास कोई ढेढ़-भंगी नहीं थे । मैं तो पाखाना भी खुद ही साफ करता हूँ, इसलिए चूहे को वहाँ से उठाया और घासलेट डालकर जला दिया । अगर यह काम खराब हो, तो मैं तो भंगी से भी खराब ठहरा, क्योंकि मैं तो मरजी से ऐसा करता हूँ, वे मजबूरी में करते हैं । मैंने अपने लड़कों के ही नहीं, परन्तु दूसरों के भी पाखाने साफ किये हैं । इन रावजीभाई ने कितने साफ किये, यह किसीको पता है ?'

'आपको क्या कहें ? आप तो परमेश्वर हैं ! आपने बीस दिन लंघन किये, रविशंकर ने ग्यारह दिन किये । हमसे हो सकता है ?'

'आपसे भी हो सकता है । मेरी बात भूल जाइए । आपकी स्त्रियाँ आपके बच्चों का मैला साफ करती हैं या नहीं ?'

'करती ही हैं । परन्तु वे औरों का मैला कहाँ साफ करती हैं ?'

'मैं तो करता ही हूँ ।'

'क्योंकि आप तो सबको अपना बच्चा मानते हैं ।' अट्टहास हुआ ।

एक आदमी बोला : 'ऋषि-मुनियों ने वर्णाश्रम बनाया था, उसका पालन नहीं करना चाहिए ? अनादिकाल से जो चला आया है, वह कैसे मिटेगा ?'

'तब तो आपके बाप-दादा चोरी करते थे, इसलिए आपको भी करते रहना चाहिए ?'

'परन्तु इन्हें छूने से फायदा क्या ? जो चला आ रहा है, वह चलता रहेगा ।'

उस बूढ़े ने दूर से बोलते हुए सारी गुत्थी की मूल गाँठ बता दी : 'हमें लड़की लेनी-देनी पड़ती है, उसे कौन लेगा और देगा ?'

'ये वल्लभभाई ढेढ़ों को छूते हैं, फिर भी इनके लड़के का तो ब्याह होगा ।'

'आप बड़े आदमी हैं । आपके बच्चों की शादी हो जायगी । हमारे बच्चों की नहीं होगी । हमारे बच्चों को लेनेवाले मिलें तो हम भी ढेढ़ों को छूना स्वीकार कर लें ।'

'अच्छा तो उन ढेढ़ों को यहाँ बुलाऊँ तो आप क्या करेंगे ?'

'तब तो बैठे ही रहेंगे !'

इस पर एक बूढ़ा नाराज होकर बोला : 'यह नहीं हो सकता, नहीं हो सकता, महात्मा पुरुष को साफ कह देना चाहिए कि नहीं हो सकता ।'

'परन्तु आप घर जाकर नहा लेना। शास्त्र में अधिक-से-अधिक तो छूकर नहा लेने को ही लिखा होगा। छुआ ही न जाय, यह तो कहीं भी नहीं लिखा!'

'आप अपने-आप जैसा करना हो कीजिए। आप मालिक हैं, बिठाइए अपने हाथ से।'

'परन्तु आपके साथ?'

'यह नहीं हो सकता।'

'क्यों?'

'यही तो बात है। यह नहीं हो सकता!'

'क्या यह लोग आयें तो इन्हें मारेंगे?'

'हम नहा लेंगे, पास बैठने आयें तो जरूर मारेंगे।'

'और कल ऐसा करें तो?'

'कल की बात कल जाने।'

गांधीजी ने बात आगे चलायी :

'हमने एक कथा पूरी की और दूसरी कथा खोलें। जो सुधार ठाकरड़ा, धाराला, वारैया वगैरह ने किया, उससे मुझे आनन्द है। मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि चोरी और लूटपाट छोड़ दी, तो बहुत अच्छी बात की। इस अच्छे विचार पर कायम रहना। शराब छोड़ने के लिए धन्यवाद देता हूँ। अफीम, बीड़ी छोड़ने के लिए भी धन्यवाद देता हूँ। चोरी कबूल करनेवाले को भी धन्यवाद दूंगा। हमारा धर्म तो यह है कि हम किसीको मरने न दें। दुःखी न होने दें।

'अन्त्यज भाइयों की बात हँसी-दिल्लगी के लिए नहीं की। मैंने बात हँसकर की, परन्तु हृदय रोता है। चोरी छोड़ने की बात की, परन्तु अन्त्यजों को छूने की बात तो बाकी ही रही है। हम बाप के कुएँ में डूबकर मरना नहीं चाहते। अनादि तो एक ईश्वर है। बाकी सब चीजें क्षणिक नामरूप हैं। छुआछूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सब अनादि नहीं। जिस वस्तु का आरम्भ है, उसका अन्त है। अस्पृश्यता का भी अन्त होनेवाला है। मैंने अन्त्यजों को नहीं बुलाया, परन्तु मन में घुट रहा हूँ कि मुझे आपके पास बैठने का क्या हक है? आप याद रखना कि ऐसा होता रहा तो हिन्दू-धर्म का नाश हो जायगा। रविशंकर से बातें करना। अन्त्यजों को छूने में पाप नहीं है।

'खादी पहननी चाहिए। जहाँ चरखा होगा, वहाँ बरकत होगी। भारत

में जितने चूल्हे, उतने चरखे होने चाहिए । ऐसा होगा, तभी गया हुआ तेज और नूर वापस आयेगा । मैं शराव नहीं पीता, मांस नहीं खाता, अन्त्यज-सेवा के काम करता हूँ । जो नहाता है, जो राम-नाम बोलता है, उसे क्यों न छुएँ ? जो अन्त्यज नहीं, उन्हें मैंने शराव पीते देखा है, मांस खाते देखा है, विषय करते देखा है। यह सब होने पर भी उन्हें कौन नहीं छूता ? और हम पर राज करनेवाले गोमांस खाते हैं, फिर भी उनके साथ हाथ मिलाने में हम अभिमान करते हैं । वे जिस कुरसी पर बैठे हों, उस कुरसी को छूने में धन्यभाग्य मानते हैं । हम उन्हें छूते हैं और इसमें इज्जत समझते हैं; परन्तु जो हमारी सेवा करते हैं, उन्हें छूने में अधर्म मानते हैं । मैं तो धर्म की ही बातें करता हूँ । अधर्म की बातें नहीं करता ।'

वीरसद की सभा में बोले : 'ईश्वरी रचना तो देखो । मैं किसलिए आनेवाला था और किसलिए आया ? डाह्याभाई[1] और यशोदा के विवाह में काशीभाई[2] ने निर्णय किया है कि विवाह में कोई गलत खर्च न किया जाय । इससे उन्होंने अपने रिश्तेदारों का रोष मोल ले लिया है। मैं धनवानों को नोटिस देता हूँ कि जिनके पास रुपया अधिक हो गया है और विवाह में खर्च करनेवाले हों तो वे यह रुपया मेरे पास भेज दें । मैं उसका सदुपयोग करूँगा । आडम्बर के लिए किया हुआ खर्च रुपये का सद्व्यय नहीं कहलाता । हम उल्टे रास्ते चलाये गये हैं। परिणामस्वरूप पाटीदार जाति में बेटी का बाप होना असह्य वेदनारूप हो गया है । जब काशीभाई ने कहा कि मुझे कुछ भी खर्च नहीं करना है, तब हम सब सहमत हुए । आपकी भी इसमें सहमति चाहता हूँ । आप भी अपने मन में प्रार्थना करें कि सादगी से परन्तु धार्मिक क्रिया से ऐसी विधि करने की शक्ति आपमें आये ।

'आपके मानपत्र के लिए आभार मानने की जरूरत नहीं है । इसके लिए आभार मानने की बात ही नहीं । मानपत्र में आपने खादी और चरखे की बात की है। यदि खादी में दैवी शक्ति भरी हो, यदि चरखे में स्वराज्य दिला देने की शक्ति हो और यदि वह सच्चा सुदर्शन चक्र हो, तब तो खादी को अपना लेना चाहिए । नहीं तो ऐसे मानपत्र देना और उनमें चरखे और खादी के बखान करना तथा लड़कियों से उनके गीत गवाना व्यर्थ है ।

---

१. सरदार वल्लभभाई के पुत्र ।
२. डाह्याभाई के ससुर ।

'इस सभा में अन्त्यज पीछे क्यों बैठे हैं? इनकी तो मैं पूजा करता हूँ। मैं अपने को अन्त्यज कहने में अभिमान मानता हूँ। मैं कई बार कह चुका हूँ कि मुझे दूसरा जन्म लेना पड़े तो मैं अन्त्यज के रूप में जन्म लेना पसन्द करूँगा। आजकल मैं उनकी सेवा नहीं करता—प्रायश्चित्त करता हूँ; आत्मशुद्धि करता हूँ। हिन्दू-समाज से पूछता हूँ कि अन्त्यजों की तरह मेरा भी त्याग करना चाहते हो न? मैं यह नहीं कह सकता कि इस समय अन्त्यजेतर होने पर भी नीति के सभी नियमों का मन-वचन-काया से पालन करता हूँ। परन्तु प्रभु से मेरी प्रार्थना यह है कि मेरा दूसरा जन्म हो, तो मैं पूर्णपुरुष पैदा होऊँ और वह भी अन्त्यज परिवार में। इन्हें पीछे बिठाना क्षात्रधर्म नहीं। पाटीदार जाति बहादुर है। उसमें गुण बहुत हैं। दोष भी हैं। परन्तु दुनिया में कोई पूरी तरह गुण-रहित नहीं है; पूरी तरह दोष-रहित नहीं है। हम कोई पूर्ण पुरुषोत्तम नहीं हैं। इस कलिकाल में यह असंभव है। इसलिए मेरे मन में यह जँचता ही नहीं कि अन्त्यजों को नीचा माना जाय। इसलिए इनके साथ रहकर अस्पृश्य बनना आपके साथ रहकर स्पृश्य बनने से बेहतर है। मुझे तो प्रभु के दरबार में क्षमा प्राप्त करनी है। ईश्वर मुझसे कहेगा कि यदि तूने इन लोगों को अछूत माना होगा तो ये लोग मुझे तमाचा मारेंगे, क्योंकि अपने भाइयों को जानवर समझने का पाप मैंने किया है। क्षत्रिय पीछे कदम नहीं हटाता। अन्त्यज को पिछड़ा हुआ रखने में पीछेहट है। मैं आपसे कहता हूँ कि आप उन्हें पीछे रखकर निश्चय ही अधर्म करते हैं। इसीलिए कहता हूँ कि इस अधर्म को छिपाने का प्रयत्न हुआ है।

'पाटीदार हलके वर्णों पर जुल्म करते हैं, मारते हैं और बेगार कराते हैं। मैं जानता हूँ कि यह बात सही है। आप ऐसे काम से डरें। आप ऐसा करेंगे तो आपकी बहादुरी बेकार हो जायगी। जो सुखी हो, उसे सबको सुखी करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम दुःख उठाकर जगत् को सुखी करें, यह धर्म है। हम सुखी होकर दूसरों को दुःखी करें, यह आसुरी वृत्ति है। मुझे आपका मानपत्र नहीं चाहिए। मैं तो चाहता हूँ कि आप अन्त्यज भाइयों को सुखी करके सुखी हों।'

पालज गाँव में प्रवचन* करते हुए गांधीजी बोले :

'लड़ाई के अन्त में निडरता और रचनात्मक कार्य के अन्त में हममें योजना-शक्ति, कार्य-शक्ति आनी चाहिए। यदि हममें यह दूसरी शक्ति न आये,

* यह प्रवचन ता० १३-२-'२५ को दिया गया था।

तो हम राज्य नहीं चला सकते। अहिंसा से राज्य लें तो सेवा-वृत्ति से वह कायम रहे। सत्ता प्राप्त करने के लिए प्राप्त की जाय, तो वह हिंसा से ही टिकेगी। अहिंसा का वल पोषण के योग्य है। सत्ता का वल छोड़ने लायक है। हममें संग्राहक-शक्ति न आयी हो, तव तक अहिंसा से स्वराज्य लेना असंभव है। इसीलिए त्रिविध कार्यक्रम लोगों के सामने रखा है।

'किसी काम के सिलसिले में धर्म के नाम पर जितना हमला करना हो, उतना किया जा सकता है। परन्तु जव यह मालूम हो जाय कि यह कृत्य अधर्म है, तव वह नहीं चल सकता। मेरे खयाल से गुलामी से भी अस्पृश्यता अधिक अधर्म है। जव यहाँ अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन हो रहा था, तव ऐसी वात कहलायी गयी थी कि इसमें ईसाई वगैरह भी भाग लें। परन्तु मैंने आपत्ति की थी। अस्पृश्यता-निवारण के काम में वाईकोम में जॉर्ज जोसफ जैसे निर्मल मनुष्य शामिल होना चाहते थे, परन्तु मैंने उन्हें मना कर दिया था। हम सारी दुनिया से मदद लेने जाते हैं, तो हमारी जिम्मेदारी वढ़ जाती है।'

पालज से गांधीजी सुणाव गये। वहाँ सभा करने से लोगों ने इनकार कर दिया था—इस डर से कि शायद सभा में कोई गांधीजी का अपमान करे तो क्या हो? हम सवने यह सोचा था कि वहाँ तो सभा होगी ही नहीं और वहाँ की पाठशाला के विद्यार्थियों से गांधीजी मिल लेंगे। परन्तु गांधीजी के प्रति भावना को कोई थोड़े ही रोक सकता था? पाठशाला के प्रांगण में खासी वड़ी सभा अनायास ही हो गयी! उन लोगों के साथ गांधीजी ने इसी प्रश्न पर वातें कीं और फिर पाठशाला के विद्यार्थियों को काम करते देखने गये। चड़स खेंचने (पुरवट चलाने) में खुद भी शामिल हो गये! सुणाव के विद्यार्थियों के साथ सोजित्रा में हुआ संवाद तो पहले दिया जा चुका है। आज उन्हें कातते, पींजते, वुनते और चड़स खींचते देखकर गांधीजी का हर्ष नहीं समाया। 'तुम्हारी पाठशाला में से झट चला जाना पड़ रहा है, यह अच्छा नहीं लगता।' ऐसा कहलवाया गया। अस्पृश्यता का प्रश्न होते हुए भी जीवटवाले शिक्षकों ने पाठशाला को जिन्दा रखा है और टेकवाले विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

१५-२-'२५

राजकोट ठाकुरसाहव ने गांधीजी को राजकोट आने का निमंत्रण भावनगर में ही दे दिया था और गांधीजी ने यह कहकर उसे स्वीकार किया था कि 'मेरी खादी की झोली भर दी जाय तो मैं वहाँ आऊँ।'

ठाकुर साहब का गांधीजी के प्रति अत्यन्त आदर, स्थान-स्थान पर उनका खूब सम्मान करने की उत्कंठा, यह सब बहुत आदर उत्पन्न करनेवाला था। उन्होंने गांधीजी का सम्मान करने के अनेक प्रसंग नियोजित किये थे। प्रत्येक का समय पहले से निश्चित हुआ था और उस समय का पालन गांधीजी की तरह ही ठाकुर साहब ने सावधानी और तंत्रनिष्ठा से किया। यह देखकर गांधीजी भी चकित रह गये।

राजकोट प्रजाप्रतिनिधि मण्डल का मानपत्र देने के अवसर पर पंडितों ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'हे पुतलीबाई के पुत्र, आपका जयजयकार हो, **एषा भट्टस्य भारती**।'*

मानपत्र राजकोट ठाकुर साहब के हाथ से अर्पण हुआ। उस समय ठाकुर साहब बोले :

'आज मुझे जो आनन्द, हर्ष और गर्व हो रहा है, वह मैं व्यक्त नहीं कर सकता। हिन्दू-मुसलिम एकता साधने का आपका प्रयास, विद्यापीठ जैसी शिक्षा-संस्था स्थापित करने में आपकी दीर्घदृष्टि, प्राणीरक्षक संस्थाएँ स्थापित करने में आपकी दयाभावना और काठियावाड़ राष्ट्रीय परिषद् जैसी संस्था स्थापित करने में आपकी दी हुई प्रेरणा किसी दिन भी भुलायी नहीं जा सकती। आपने महासभा की बागडोर सँभाली है, यह हमारे लिए गर्व की निशानी है। आपके द्वारा उसकी सेवा हो सके, तो हम अपने को भाग्यशाली मानेंगे। हमारे यहाँ से महासभा के सदस्य काफी संख्या में हों, तभी हम कृतकृत्य होंगे। आप निश्चिन्त रहें कि आपकी महासभा के साथ यथाशक्ति सहयोग करना मेरे राज्य का उद्देश्य है। आपके कुटुम्ब का हमारे साथ का दीर्घकालीन परिचय मैं इस समय विस्तार से नहीं कह सकता। आपका नाम हमेशा के लिए अविचल रहेगा।'

गांधीजी ने मानपत्र का उत्तर देते हुए जो भाषण किया, जो वातावरण उत्पन्न कर दिया, उसकी पूरी तस्वीर देना असंभव है। भाषण शब्दशः देने जानेवाला वातावरण को चूक जाय और भाषण के नोट लिये बिना याद रखकर वातावरण को चित्रित करनेवाला भाषण के अमूल्य उद्‌गार चूक जाय। इस प्रकार कई बार गांधीजी के भाषणों का विवरण देनेवाले की दशा त्रिशंकु जैसी कर डालता है। यह अवसर ऐसा ही था। उस भाषण की ठीक-ठीक कद्र करने के लिए दरबारगढ़ देखना चाहिए।

---

* ऐसी यह भट्ट की वाणी है।

'लवाजमा' जैसे दरबारी रिवाज जानने चाहिए और समझने चाहिए। ब्रिटिश सल्तनत की शैतानियत हजारों मंचों पर से घोषित करनेवाले और जहाँ-तहाँ राजद्रोह के कारखाने खोलनेवाले गांधीजी ने एक वफ़ादार प्रजाजन के नाते, राज्य के एक भूतपूर्व दीवान के पुत्र के नाते, दरबारी ढंग होते हुए भी कोई दरबारी प्रकट न कर सके, उतनी लगन से ठाकुर साहब से रोकर राज्य माँग लिया। उनका राज्य अर्थात् चरखा और अस्पृश्य-सेवा।

मानपत्र का जवाब देते हुए गांधीजी बोले :

'माननीय ठाकुर साहब, सदस्यो, भाइयो और बहनो,

'पहले तो मुझे माननीय ठाकुर साहब से क्षमा माँगनी है कि मैं खड़ा रहकर दो शब्द कह नहीं सकता। मुझमें चलने की शारीरिक शक्ति है, परन्तु खड़ा रहकर भाषण करने की शक्ति मैं खो बैठा हूँ। इसलिए इस सभा में मुझे बैठकर बोलना पड़ रहा है। यह मेरे लिए लज्जाजनक बात है। परन्तु मेरी अशक्ति जानकर मुझे क्षमा करेंगे।

'आज सबेरे इस दरबारगढ़ में प्रवेश करते ही मुझे पहले का एक पवित्र स्मरण याद आया। और इसकी मैं भाई लीलाधरभाई से बात कर रहा था कि इतने में मोटर आकर खड़ी हो गयी। वह पवित्र स्मरण मैं आज आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

'भूतपूर्व ठाकुर साहब की तरफ से एक बार कानपुर और धरमपुर— दो बरातें शादी करके लौट रही थीं। ऐसे अवसर पर मेरे पिताजी लड़कों को पीछे ही रखते थे; और आज इस बात का विचार करता हूँ, तब मुझे मन में खयाल होता है कि यह ठीक ही था। इससे हम दोनों भाइयों ने कुछ भी नहीं खोया। मेरी माताजी की स्थिति दूसरे प्रकार की थी। वह हमें बरात में भेजना चाहती थी। उन्हें धन का लोभ था। और कीर्ति तो नारी ठहरी, इसलिए वह नारी से विवाह कैसे करे? फिर भी उन्हें कीर्ति का लोभ भी रहता था। इस बरात के समय हमको पास बुलाकर उन्होंने कहा : 'ठाकुर साहब सज्जन पुरुष हैं, उनके पास जाओ और रोने लगो तो वे तुम्हें जाने देंगे।' बरात तो जा चुकी थी। मेरी माँ यह चाहती थी कि मेरे लड़कों को धरमपुर भेजा जाय, क्योंकि वहाँ से अधिक रुपया मिल सकता था। इसलिए बस हम तो माता की सीख मानकर पहुँचे तुरन्त ठाकुर साहब के पास।

'यह दरबारगढ़ देख रहा हूँ और जिस जगह हम ठाकुर साहब के पास अपनी प्रार्थना लेकर गये थे, वह भी मुझे याद आ रही है।

हमने तो ठाकुर साहब के पास जाकर रोना शुरू कर दिया। ठाकुर साहब ने मेरे पिताजी से पूछा : 'ये लड़के क्यों रोते हैं?' पिताजी ने हमारी तरफ आँखें निकालीं—उनमें विनय की तो कमी नहीं थी, फिर भी वे कभी-कभी ठाकुर साहब की भूल प्रतीत होती तो उनकी ओर भी आँख दिखाते थे। हम डर गये तो ठाकुर साहब कहते हैं : 'तुम्हें जो कहना हो सो कहो, डरो मत।' हमने कहा : 'हमें धरमपुर जाना है।' ठाकुर साहब ने कहा : 'बरात तो चली गयी, अब तो तुम्हें कानपुर भेजेंगे।'

'इस प्रकार उस समय हम दोनों भाइयों ने रोकर राज रखा था, और आज भी मैं रोकर राज रखना चाहता हूँ। शास्त्रीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा था कि कीर्ति कुँआरी है। यह कीर्ति भले ही कुँआरी रहे, क्योंकि मुझसे शादी करेगी, तब तो मेरे टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। इसलिए मुझे कीर्ति नहीं चाहिए, परन्तु एक-दो चीजें चाहिए, जिनके लिए तो मुझे रोना ही पड़ेगा। मानपत्र में मेरे बारे में बहुत कहा गया है और माननीय ठाकुर साहब ने और बहुत कहा। परन्तु इससे मैं भुलावे या धोखे में नहीं आऊँगा। इससे मैं यह नहीं मान लूंगा कि इन सब बातों के मैं लायक बन गया हूँ। ठाकुर साहब ने मुझे दाहिने हाथ बिठाया और मानपत्र दिया, इससे मैं यह नहीं मानूंगा कि राजा बन गया। मुझे राजा नहीं बनना। मैं तो रैयत ही हूँ और रैयत ही रहना चाहता हूँ। इतना ही है कि ठाकुर साहब के विनय का त्याग नहीं कर सकता। मुझसे जो कुछ होगा, वह इस विनय से होगा, ऐसे मानपत्रों से मैं अलिप्त ही रहूँगा, अपनी हद नहीं छोड़ दूंगा, पागल नहीं बनूंगा।

'मानपत्र के लिए आभार मानते हुए मुझे यह कहने की इजाजत लेनी चाहिए कि उसमें दो बातें छूटी हुई दीखती हैं। मैं नहीं जानता कि ऐसा भूल से हुआ है या जान-बूझकर। इसमें मेरी सेवाओं का हिसाब लगाया गया है और अहिंसा और सत्य को मेरे जीवन का मंत्र बताया गया है, यह ठीक है। सत्य और अहिंसा मेरे जीवन में से चले जायँ तो मैं मृत-देह जैसा रह जाऊँगा और इस जीवन का शेष समय व्यतीत करना मेरे लिए असंभव हो जायगा।

'परन्तु इस सत्य और अहिंसा को कायम रखनेवाली दो वस्तुएँ, दो साधनाएँ, जिनका मैं पालन कर रहा हूँ, उनके बारे में मानपत्र में लिखना आप कैसे भूल गये, यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है। इन दो चीजों की साधना में जो शक्ति भरी है, वह हिन्दू-मुसलिम एकता में भी

नहीं है । बल्कि इन दो में से एक की भी साधना के बिना हिन्दू-मुसलिम एकता भी असंभव है । एक मुसलमान मित्र ने मुझसे कहा था कि 'आप जब तक यह मानेंगे कि हिन्दू-धर्म में अछूतपन का स्थान है, तब तक हिन्दू-मुसलिम एकता कैसे संभव होगी ?' ये भाई पवित्र मुसलमान हैं । मुसलमानों को अपवित्र माननेवाले भी मौजूद हैं, परन्तु मेरा खयाल है कि ऐसा माननेवाले अधर्म करते हैं । गीताजी और हिन्दू-धर्म-शास्त्र यह सिखाते हैं कि हिन्दू और मुसलमान अलग—अखंडित—विभाग हों, यह असंभव है ।

'जिस हिन्दू-धर्म से मैं आज चिपटा हुआ हूँ, उसे गंगोत्री कहता हूँ। इसकी अनेक शाखाएँ हैं, परन्तु उसका मूल एक ही है । जैसा मूल एक है, इस प्रकार इसका मुख भी एक ही है । इसका साक्षात्कार हमारे धर्मशास्त्रों में हुआ, तब मैंने निश्चय किया कि अब मैं हिन्दू ही कहलाऊँगा और मरूँगा । यह सही है कि एक समय ऐसा भी था, जब मैं हिन्दू-धर्म के बारे में शंका करता था और पादरी से कहता था कि जन्म हिन्दू के यहाँ हुआ है, परन्तु अब क्या हूँ, इसका मुझे पता नहीं । मगर यह तो पुरानी बात है—हिन्दू-धर्म के विषय में मुझे सच्चा ज्ञान होने से पहले की बात है । इस समय कोई शास्त्री मेरी परीक्षा करें तो मैं मानता हूँ कि मुझे सौ नम्बर मिलें । उनको भी मेरी अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए। आज मुझे हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में सब कुछ मिल जाता है और एक भी कमी नहीं लगती, जिसके लिए मुझे और कहीं कुछ भी खोजबीन करने की जरूरत हो । मैं यह नहीं कहता कि मैं उसमें से सब कुछ प्राप्त कर सका हूँ। परन्तु उसमें इतना है कि मुझे जितनी जरूरत हो, उतना प्राप्त कर सकता हूँ ।

उस मुसलमान भाई ने मुझे सावधान किया। उसने यह कहा कि 'हिन्दू-धर्म में ही अगर अछूतपन को अखंडित स्थान हो तो मुसलमान, ईसाई वगैरह दूसरे लोग अछूतों को कैसे सहन करें ?'

'ये अछूत माने जानेवाले ढेढ़-भंगी इस वर्ण में पैदा हुए, इससे क्या ? चांडाल जैसी तो कोई जाति नहीं है । ढेढ़ जाति है ? ढेढ़ शब्द शास्त्रों में है ? हरगिज नहीं । रूढ़ि में जरूर है । ढेढ़ का अर्थ है जुलाहा, भंगी का मतलब है पाखाना साफ करनेवाला । परन्तु मैं तो आज ही भंगी हूँ । बच्चा मैला करे तो उसे मैं साफ कर डालूँ । मेरी माता भी भंगी थी और उसके हाथ हमारा मैला साफ कर-करके घिस गये थे । आपकी

माता भी सीता जैसी सती होंगी, पतिव्रता होंगी तो उन्होंने भी बालकों का मैला साफ किया होगा, इसलिए भंगी का काम किया होगा। सती सीता प्रातःस्मरणीय थीं, परन्तु उन्होंने भी बहुत मैला उठाया था, इसलिए वे भी भंगी बनी थीं? उन माताओं का जैसे त्याग नहीं हो सकता, वैसे भंगी का भी त्याग कैसे हो सकता है? इसलिए हिन्दू-धर्म-शास्त्र में अछूतपन जैसी चीज अखंडित हो, तो मैं हिन्दू कहलाने में गर्व न मानूं। शास्त्री भी उद्धत होकर कहेंगे कि हिंन्दू-धर्म में अस्पृश्यता को स्थान नहीं है और कहते ही रहेंगे कि नहीं है।

'कार्यक्रम देखने पर जब मैंने यह देखा कि कार्यारंभ से पहले शास्त्री मुझे आशीर्वाद देंगे तो मैं खुश भी हुआ और मुझे खेद भी हुआ। खुश इसलिए हुआ कि अपने अस्पृश्यता-निवारण-कार्य के लिए भी मुझे शास्त्रियों की तरफ से आशीर्वाद मिलेगा। खेद इसलिए हुआ कि राजा की छाया के नीचे खड़े रहकर शास्त्री कुछ भी वचन निकालें तो उनका मूल्य क्या? मुझे बहुतों ने कहा था कि काठियावाड़ के शून्य में और कुछ नहीं तो एक राजा ऐसा है, जो वन्दनीय है। सब जानते हैं कि ठाकुर साहब प्रजाजन का हित चाहनेवाले हैं। परन्तु भूल तो प्राणीमात्र से हो सकती है और मुझे ठाकुर साहब की भूल मालूम हो, तो राजकोट की प्रजा होने के कारण, प्रजा का अधिकार इस्तेमाल करके ठाकुर साहब से कहूँ कि आपकी भूल हो रही है।

'मैं राज्य के अपने समय के शास्त्रियों को अब भी जानता हूँ। उनमें से एक मावजी जोशी थे। वे शास्त्री और ज्ञानी थे, फिर भी उनका ज्ञान कई बार फिसल जाने का अवसर आता था। वे खरी कहनेवाले थे, उन्हें भी कभी-कभी समय देखकर बोलना पड़ता था। मैंने सोचा कि ठाकुर साहब ने हुक्म दिया होगा कि गांधी को शास्त्रियों से आशीर्वाद दिलाया जाय। नहीं तो शास्त्री क्यों मेरे जैसे को आशीर्वाद देने लगे? इस प्रकार मिले हुए आशीर्वचन किस काम के? मैं तो चाहता हूँ कि शास्त्रियों में इतना तेज हो कि वे मुझे हिन्दू न मानें, तो ऐसा कहें और मुझे चांडाल मानें, तो चांडाल कहें।

'मैं तो शास्त्रियों का भ्रम मिटाना चाहता हूँ। उनसे कहना चाहता हूँ कि जो अहिंसा-धर्म को भजते हैं, वे किसीको अछूत न समझें। इसलिए मुझे दुःख होता है कि शास्त्रियों से मुझे आशीर्वाद दिलाने पर भी मेरी अन्त्यज-सेवा के बारे में मानपत्र में उल्लेख तक नहीं। इस बारे में

मैं ठाकुर साहब के सामने अवश्य शिकायत रखूंगा, रोकर राज्य लूंगा। इसलिए उनसे कहूँगा कि आप जो स्नेह-दृष्टि प्रजा के अन्य वर्गों पर रखते हैं, वही स्नेह-दृष्टि अन्त्यजों पर भी रखना और तभी यह राज्य छोटा-सा होने पर भी सारी पृथ्वी पर सुशोभित होगा और रामराज्य बनेगा। वाल्मीकि कवि ने कहा है कि श्री रामचन्द्र ने कुत्ते को भी न्याय प्रदान किया और तुलसीदास ने कहा कि जो चांडाल कहलाता है, उससे राम ने दोस्ती की। भरत निषादराज के पीछे पागल होकर गये थे, और उसके चरण धोये थे।* उन्हीं भरत के आप वंशज हैं। आप गरीबों को न भूलना, आप रात को घूमकर इस बात की जाँच रखना कि प्रजा का दुःख क्या है। अन्त्यजों का प्रतिनिधि होने के कारण आपसे चाहता हूँ कि आप यह पूछना कि पाठशालाओं में अछूतों को स्थान मिलता है या नहीं, स्थान न हो तो अन्त्यजों का प्रवेश कराना और ऐसा करने से वे खाली रहें तो खाली रखना।

'यहाँ जब मैंने बालचर देखे तो मुझे लगा कि बॉय स्काउट्स की वर्दी भी खादी की नहीं? इन्हें खादी की वर्दी मिले तो मेरे अन्त्यज भाइयों का भी कुछ हो, काठियावाड़ की असंख्य गरीब स्त्रियों का भी कुछ हो। एक गरीब बहन ने मुझसे कहा: 'चरखा चलाते हैं, परन्तु आपके आदमी आकर चरखा ले गये।' मैं चौंक गया। मेरे आदमी चरखा ले जायँ! मेरे आदमी चरखा ले लें, तब तो पृथ्वी रसातल ही चली जाय न! मैंने तो उससे कहा: 'मेरे आदमी चरखा चलवाते थक गये होंगे, इसलिए बन्द कर दिया होगा!' आपने मेरा बहुत सम्मान किया, परन्तु मैंने जो अमोघ मार्ग बताया, मेरी भिक्षा तो उसके लिए है। आप मुझे खादी दें। आप सब खादी पहनें। प्रजा प्रतिनिधि मण्डल में भी खादी के प्रस्ताव करायें। आपने तो मुझे सोने से मढ़ा हुआ मानपत्र दिया। इसके लिए मैं तिजोरी कहाँ से लाऊँ? और तिजोरी माँगूं तो फिर उस तिजोरी का रक्षक भी माँगना पड़ेगा। रक्षक कहाँ से लाऊँ? और मेरा रक्षक तो राम है। इसलिए ऐसे मानपत्र लेता हूँ, उन्हें रखनेवाले जमनालाल बजाज जैसे धनवान्

---

* अयोध्या छोड़कर वनवास को जाते हुए राम, सीता और लक्ष्मण शृंगवेरपुर के गुह राजा के मेहमान हुए थे। वह निषादों के राजा थे, इसलिए निषादराज भी कहलाते थे। रामचन्द्रजी के पीछे आनेवाले भरत भी निषादराज से मिले थे और रामचन्द्रजी की सेवा करनेवाले इस राजा से प्रभावित हुए थे। परन्तु भरत ने निषादराज के पैर धोये थे, ऐसा उल्लेख मूल कथा में नहीं है। सं०

हैं, जो मेरे बेटे बन बैठे हैं । मेरे यहाँ तो केवल खादी को स्थान है और उसे मैं किसीसे भी माँग सकता हूँ । मैंने तो लॉर्ड रीडिंग से भी कहा था कि मैं चाहता हूँ कि आप और आपके दरबान खादी-भूषित हों । यही शब्द मैं आपसे और आपकी प्रजा के प्रतिनिधियों से कहता हूँ ।

'और इसी कारण मुझे यह खटकता है कि आपने मानपत्र में अस्पृश्यता-निवारण और खादी को—जो मेरी दो मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—छोड़ दिया । इस समय मुझे कानपुर और धरमपुर की बारातों में जाना है । ठाकुर का असली विवाह तो प्रजा के साथ है और शादी होने के लिए बरात में जाने की मेरी माँग खादी और अछूतोद्धार की है । प्रजा तो कुमारिका है और उसका कुँआरापन मिटाना चाहते हों तो उसका वरण कीजिए, उसे सुखी कीजिए, उसका निरीक्षण कीजिए, रात को गश्त लगाकर उसके दुःखों और शिकायतों का अध्ययन कीजिए । राम ने धोबी की उड़ती हुई बात सुनकर सीताजी का त्याग किया था। आप भी प्रजा-मत जानकर उसके अनुसार चलने की कोशिश कीजिए । राजा की तलवार संहार करने का चिह्न नहीं, वह तो इस बात की साक्षी है कि राजा का धर्म खाँड़े की धार पर चलना है । खाँड़ा हमेशा याद दिलाता है कि खाँड़े की धार पर चलना, सीधे रास्ते चलते रहना। आड़े-टेढ़े न जाना। इसका अर्थ यह है कि राजकोट में एक भी आदमी व्यभिचारी न हो, एक भी मनुष्य शराब पीनेवाला न हो, धुत न हो । प्रत्येक लड़की सीता का स्थान लेने योग्य हो ।

'मुझे अपने पिता का स्मरण होता है । मेरे पिता में ऐब थे, परन्तु गुण भी बड़े थे । भूतपूर्व ठाकुर साहब में भी दुर्गुण थे, गुण भी थे । उनके सब गुण हममें आयें, प्रजा में आयें । दोषों को प्रयत्नपूर्वक दूर करना हमारा धर्म है । दुर्बलता के बजाय सबलता लाना, मैल के बजाय पवित्रता लाना हमारा धर्म है । इसलिए गरीबों पर दया रखना, उन्हें खिलाकर खाना । आपकी तलवार आपके अपने गले के लिए है । प्रजा से आप कहना कि 'अधिकार की मर्यादा से च्युत हो जाऊँ तो यह तलवार मेरे गले पर चलाना ।' मैं झूठी खुशामद करूँ तो यह अधर्म होगा । मैंने इस दरबारगढ़ का नमक खाया है । भूतपूर्व ठाकुर साहब ने मेरे पिता को ४०० गज जमीन मुफ्त और बिलाशर्त बख्श दी । ४००० गज देने लगे थे, मगर मेरे पिता ने मना कर दिया और ४०० गज माँग ली । इस तरह नमक खाया था, इसलिए आपसे आज कुछ न कहूँ तो बेवफा बनता हूँ ।

सारी पृथ्वी मेरा सम्मान करे तो भी मैं फूल नहीं जाऊँगा। आपका आदर मुझे बहुत भाता है, क्योंकि मैं राजकोट में ही पला हूँ, अनेक बच्चों के साथ खेला हूँ, असंख्य स्त्रियों ने मुझे खिलाया और आशीर्वाद दिया था। परन्तु असंख्य स्त्रियाँ मुझे आशीर्वाद दें और मेरी माँ न दे तो वह कैसे अच्छा लगे? मुझे दूध के बजाय शराब मिले, मिश्री माँगूं और सिगरेट मिले तो वह किस काम की? मैं तो स्त्रियों, गरीबों और अछूतों का दुःख-निवारण चाहता हूँ। अन्त्यजों के साथ मैं अन्त्यज बन गया हूँ। स्त्रियों से कहता हूँ कि तुम्हारे लिए मैं स्त्री हो गया हूँ। तुम्हारी पवित्रता की रक्षा के लिए पृथ्वी पर पर्यटन कर रहा हूँ। मैं यहाँ कंगाल के रूप में आया हुआ हूँ। मुझे आप बतायें कि राज्य में कितने चरखे चलने लगे हैं, कितनी खादी चल पड़ी है, तो मुझे खुशी होगी। मुझे आप खबर देंगे कि रानी साहिबा भी खादी पहनती हैं, सारे राज्य में, दरबार के कोने-कोने में खादी प्रचलित हुई है, तो मैं नंगे पैरों आकर आपको प्रणाम करूँगा। आपका भला हो और प्रजा का कल्याण करने को ईश्वर आपको समर्थ बनाये।'

ठाकुर साहब बोले:

'आपने शिक्षा दी, उसे हम स्वीकार करते हैं। अन्त्यजों को अपनाने और खादी के प्रचार के निश्चय हैं ही। इन कामों के लिए हमेशा के लिए छूट दे दी गयी है। आप निश्चिन्त रहें।'

प्रजामण्डल की बैठक में गांधीजी और दूसरे मेहमानों को निमंत्रित किया गया था। सदस्यों ने स्वतन्त्रता और देशी राज्यों को अभिमान करने जैसा वाक्स्वातंत्र्य बताया। परन्तु अधिक आश्चर्यकारक तो ठाकुर साहब की साफदिली थी। मद्य-कर बन्द करने का प्रस्ताव हुआ, उसके बारे में बोलते हुए ठाकुर साहब ने कहा: 'मुझे ही शराब चाहिए तो मैं इसे प्रजा के लिए कैसे बन्द कर सकता हूँ?' शराब पीनेवाला किसीको शराब छोड़ने का उपदेश नहीं दे सकता, इतना ही ठाकुर साहब के कहने का तात्पर्य हो तो उसके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठा सकता, परन्तु अपनी कमजोरी के कारण प्रजा में वह कमजोरी पोषित की जाय, इसका यह अर्थ होता हो तो उसमें से तो भयंकर अर्थ निकलेगा। 'गांधीजी के गाढ़ परिचय का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ', यह कहकर ठाकुर साहब ने पहले दिन के भाषण में खेद प्रकट किया था। गांधीजी के परिचय के लिए सज्जनों के परिचय की तरह सात कदम चलना काफी

है । उन्होंने अपना परिचय मानपत्र के जवाब में ही दे दिया था और ठाकुर साहब के चरणों में ऐब छोड़ने की प्रार्थना कर दी थी और खाँड़ा पकड़नेवाले को खाँड़े का महत्त्व भी समझा दिया था ।

शाम को राष्ट्रीयशाला का उद्घाटन राजकोट के ठाकुर साहब के हाथ से हुआ । उस समय गांधीजी उपस्थित थे ।

इस पाठशाला की स्थापना असहयोग-आन्दोलन से ही हुई है । जमीन बहुत सस्ती दर पर ठाकुर साहब ने ही दी है और शाला का मकान देशप्रेमी सज्जनों के रुपये से बना है । इसमें सबसे बड़ा हिस्सा दानवीर डॉक्टर प्राणजीवनदास महेता का ही है । शाला की प्रबन्ध-समिति में श्री श्री रेवाशंकरभाई जैसे देशप्रेमी वयोवृद्ध और अनुभववृद्ध सज्जन अध्यक्ष हैं। आरम्भ में उन्होंने शाला का इतिहास सुनाया । १५० विद्यार्थियों की शाला केवल अछूतों के प्रश्न के कारण आज ४० की हो गयी है, यह बताते हुए उन्होंने अस्पृश्यता के प्रश्न-सम्बन्धी कुछ दर्दभरे उद्गार प्रकट किये थे और काठियावाड़ की ही पुण्यभूमि में पैदा हुए भक्त नरसिंह महेता, महर्षि दयानन्द और गांधीजी का स्मरण कराया था । श्री रेवाशंकरभाई को वक्ता के रूप में कोई भी नहीं जानता, फिर भी अस्पृश्यता पर विवेचन करते हुए उन्होंने अपने उद्गारों में जो भावना भर दी, उससे मालूम होता था कि सार्वजनिक रूप में कभी न बोलनेवाला भी जब ऐसे प्रश्न पर अपना जलता हुआ अन्तर उँडेलता है तब कितना असर कर सकता है ।

ठाकुर साहब ने शाला का उद्घाटन करते हुए जबानी ही भाषण किया । आरम्भ में उन्हें उचित शब्द नहीं मिल रहे थे, परन्तु बाद में तो उन्होंने आश्चर्यकारक स्पष्टता से भाषण दिया । अस्पृश्यता के प्रश्न की चर्चा उन्होंने नागरिकता की दृष्टि से की । अस्पृश्यों में, जिन्हें हम डेढ़ कोस दूर रखते हैं, कोई वीर या भक्त क्यों नहीं पैदा हो सकता ? हम उन्हें दूर रखकर प्रजा को ऐसे वीरों और भक्तों से वंचित नहीं रखते ? ऐसे भाव से उन्होंने जैन विद्यार्थी आश्रम का उद्घाटन करते हुए पूछा था कि 'मेरा दीवान अन्त्यज क्यों न हो ?' स्वदेशी धर्म के पालन और अस्पृश्यता के त्याग की जो शर्तें इस शाला के शिक्षकों को लेना जरूरी है, ऐसा रेवाशंकरभाई ने सूचित किया था । उनका उल्लेख करते हुए ठाकुर साहब ने सबको खूब हँसाया : 'गांधीजी से मैं कहता हूँ कि इन शर्तों को वे जरा ढीली कर दें तो अच्छा, क्योंकि ऐसी शर्तों पर यदि शिक्षक बनना हो तो मेरे जैसे को जरूर विचार करने की बात हो जायगी ।'

गांधीजी ने भाषण देते हुए वताया :

'माननीय ठाकुर साहव ने सवकी प्रार्थना स्वीकार करके इस पाठशाला का उद्घाटन करने की कृपा की, इसके लिए साथियों की और अपनी ओर से मैं इनका आभार मानता हूँ। मैं आशा रखता हूँ कि जो पाठशाला इनके शुभ हाथों से खोली गयी है, उसे अपनी इच्छा से वन्द करने की नौवत कभी नहीं आयेगी। इन्होंने अपने भाषण में आश्वासन दिया है कि संकट आये तव इनसे मिलने दौड़ा जाय! और ये यथाशक्ति सहायता देने में पीछे नहीं हटेंगे। इतना मेरे लिए काफी है।

'इन्होंने कहा कि शिक्षा का राज्य की आय पर पहला हक है। इनकी यह वात अच्छी है। मैं तो एक कदम आगे जाऊँगा। यह पाठशाला अथवा वह विद्यापीठ, जिसमें से यह निकली है, भारत में आज हो रहे महान् प्रयोगों में से एक है। दरवार और राज्य ऐसे प्रयोग शायद ही करते हैं—उनका रवैया लकीर पीटने का होता है। ऐसे राज्य शायद ही होंगे, जो चालू रास्ता छोड़कर दूसरे प्रयोग अपनायें। ऐसे प्रयोग करना प्रजा का काम है—राज्यकर्ताओं का नहीं। राज्यकर्ता प्रजा के रक्षक और प्रतिनिधि हैं। इससे आगे वढ़कर कहूँ तो शुद्ध राजा प्रजा का सेवक है। इसलिए उससे प्रजा की कीमत पर प्रयोग नहीं हो सकते। और इस दृष्टि से ठाकुर साहव ने शिक्षकों के वारे में जो कहा, वह ठीक है। परन्तु हमारे लिए, जिन्होंने ऐसे प्रयोग करने में ही जीवन अर्पण कर दिया है, दूसरी चीज असंभव है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हम जैसों पर ठाकुर साहव की कृपादृष्टि रहे। जिस प्रजा में नवजीवन आ गया है, जो प्रजा स्वतन्त्र होना चाहती है अर्थात् संयमी वनना चाहती है, उसके शिक्षक जिन नियमों के अधीन होंगे, वे अत्यन्त कठोर न होंगे तो सामान्य पाठशालाओं के लिए मध्यम प्रकार के शिक्षक भी मिलना मुश्किल हो जायगा।

'शिक्षकों से कहना चाहता हूँ कि वे विघ्नों का सामना करते रहें, मरणपर्यन्त धर्म का पालन करते रहें। १५० से भले ही ४० विद्यार्थी हो जायँ, तो भी वे इस पाठशाला की सेवा करते रहें। उनकी निष्ठा ही इस पाठशाला को लोह-चुम्वक वनाकर भविष्य में दूसरे विद्यार्थियों को खींचेगी। हम आरम्भशूर कहलाते हैं और संकट आने पर संकटमोचन का स्तवन करने के वजाय अहंभाव से काम छोड़कर वैठ जाते हैं। प्रजाओं का इतिहास देखेंगे तो मालूम होगा कि जहाँ प्रजा स्वतन्त्र है, वहाँ अनेक स्त्री-पुरुष अपने जीवन के सिद्धान्तों का मरणपर्यन्त पालन करते

रहे हैं। पाँच वर्ष नहीं, परन्तु वीस वर्ष तक पाठशाला में भले ही उत्कर्ष दिखाई न दे। शाला के अस्तित्व में वीस वर्ष की कोई गिनती नहीं है। फल भले ही न दिखाई दे, परन्तु यदि शिक्षकों में आत्मविश्वास हो, तो स्वयं उन्हें जो सीधा सच्चा मार्ग दिखाई दे, उसी पर चलें; और परिणाम-स्वरूप सुन्दर किनारा जरूर नजर आयेगा।

'इस पाठशाला की विशेषता के बारे में दो शब्द कहने की आवश्यकता है। एक विशेषता तो यह है कि अन्त्यजों के कारण इसने वहुत कष्ट सहे हैं। और दूसरी विशेषता यह है कि शरीर-श्रम को इसने प्रथम स्थान दिया है। इस पाठशाला की जमीन में जो हरियाली हम देख रहे हैं, उसमें शिक्षकों और बालकों का बड़ा हाथ है। यह शरीर-श्रम यज्ञ-रूप है। परन्तु इस देश के और इस युग के लिए सबसे अच्छा यज्ञ चरखे का है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को देश के नाम पर, अछूतों के नाम पर, देश के असंख्य गरीबों के नाम पर, असंख्य विधवाओं के नाम पर रोज आध घंटे चरखा चलाना चाहिए। माँ-वाप को जानना चाहिए कि विद्यार्थी की केवल वुद्धि नहीं, परन्तु शरीर को भी वनायें; स्वार्थ को ही नहीं, परन्तु परमार्थ को भी साधें। और चरखे में परमार्थ समाया हुआ है, यह जो समझ लें, वे उसे कभी न छोड़ेंगे। परन्तु मैं तो सुनता हूँ कि माँ-वाप को यह पसन्द नहीं कि वच्चे शरीर-श्रम करें, उनका कातना भी अच्छा नहीं लगता। सच्चे ज्ञान का अर्थ है शरीर, आत्मा और वुद्धि के विकास का समन्वय। यह त्रिवेणी साधने में ही श्रेय है। स्वार्थत्यागी और परिश्रमी शिक्षकों को भी भीरु वनना पड़े, ऐसा है यह देश। ऐसे वातावरण के भीतर रहनेवाले शिक्षकों पर कृपा-दृष्टि रखें, यह ठाकुर साहव से प्रार्थना करता हूँ।

'पाठशाला का कार्य क्या नीति-विरुद्ध है? यदि नीति-विरुद्ध हो तो अलग वात है। अस्पृश्यता का प्रश्न कदाचित् ऐसा माना जाता हो, तो जो माँ-वाप इसे भ्रष्टाचार समझें, वे भले ही अपने वच्चों को न भेजें। ऐसी हालत में मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि मेरी भूल हो रही हो तो मुझे उससे वचाना अथवा माँ-वाप की भूल हो तो उनसे वह दुराग्रह छुड़वाना।

'परन्तु अन्त में इतना कहूँगा कि यह पाठशाला न तो ठाकुर साहव की सहानुभूति से चलेगी, न माँ-वाप के प्रयत्न से। और न चलेगी मेरी या वल्लभभाई की कोशिश से अथवा भूखे विद्यापीठ की सहायता के

वचन से। सारा आधार शिक्षकों पर है । मैं नहीं जानता कि रुपये से ही कोई संस्था चल सकती है । रुपये से ही कोई संस्था चलायी जा सकती हो तो कलकत्ते का हार्डिंग स्कूल वन्द न हो जाता । ऐसी संस्थाओं में जिनकी जरूरत थी, वे पाठशाला के सच्चे संचालक और प्राणदाता नहीं थे । इसलिए वह नहीं चली । आप प्राणदाता वनें और ईश्वर का नाम लेकर काम करें। अवलारूप वनकर ईश्वर का नाम लेकर जो काम करेंगे, द्रौपदी का आर्तनाद करके जो ईश्वर की सहायता माँगते रहेंगे, उन्हें न तो जरूरत होगी ठाकुर साहव की मदद की और न विद्यापीठ की सहायता की । इसलिए यदि पाठशाला वन्द करने की नौवत आयेगी तो केवल शिक्षकों को ही दोष देना पड़ेगा ।

'अन्त में मैं चाहता हूँ कि पाठशाला का भला हो । राजकोट का भला हो । और ठाकुर साहव का उपकार और कृपादृष्टि पाठशाला पर वनी रहे, यह उनसे प्रार्थना करता हूँ ।'

जैन-विद्यार्थी-गृह

राजकोट का जैन-विद्यार्थी-गृह वनवानेवाले भी डॉ० महेता ही हैं । इसका उद्‌घाटन करते हुए ठाकुर साहव ने वहुत लम्वा भाषण दिया । यह कहा जा सकता है कि तीन दिन के सार्वजनिक कार्य से इनकी वाणी अधिक खुल गयी थी । उन्होंने आरम्भ में राज्य की भूतकालीन और वर्तमान स्थिति की तुलना की और वताया कि कितने आगे वढ़े हैं । उन्होंने आशा प्रकट की कि चार-पाँच वर्ष में सारे राज्य में एक भी स्थान पाठशाला के विना नहीं रहेगा । फिर भी शिक्षा-सम्वन्धी अपने विचार वताते हुए उन्होंने भविष्य के वारे में कुछ निराशा प्रकट की । 'शिक्षा आज की शिक्षा नहीं, परन्तु वह शिक्षा है, जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी की मानसिक वृत्तियों की जाँच की जाय और जिसमें वुद्धि अच्छी चल सकती हो, उसीमें उसे प्रगति करने की अनुकूलता कर दी जाय। आज तो एक विषय के अज्ञान के कारण और एक विषय में अरुचि के कारण विद्यार्थी को पाठशाला छोड़ने की नौवत आ जाती है । स्थिति यह होनी चाहिए कि पाठशाला से निकलनेवाले किसी भी विद्यार्थी के लिए यह प्रश्न ही न रहे कि पाठशाला से निकलकर वह क्या करे । परन्तु ऐसी पाठशालाओं के प्रयोग अपने छोटे-से राज्य में कैसे करूँ ? यूरोप में ये आसान होंगे, यहाँ छोटे-से क्षेत्र में वहुत मुश्किल है ।' ऐसे आशय के विचार प्रकट

करते हुए वे जातियों की संस्थाओं के बारे में बोले : 'एक ही जाति के नहीं, परन्तु सब जातियों के लिए ऐसे विद्यार्थी-गृह होने चाहिए और अमुक जाति के लोग अमुक ही काम करें और अमुक जाति के अमुक ही करें, ऐसी जो कर्म-मर्यादा है, वह टूटनी चाहिए ।' यह बताते हुए वे राजपूत जाति के बारे में बोले और इस सम्बन्ध में उन्होंने वे आश्चर्यकारक उद्‌गार प्रकट किये थे । 'राजपूत गांधीजी के अनुयायी क्यों न बनें ? मैं खुद गांधीजी का लेफ्टिनेंट बनना चाहता हूँ । किसलिए मैं वल्लभभाई जैसे इनके अनुयायियों को निशाना नहीं बना सकता ?' उपसंहार करते हुए उन्होंने देशाभिमान और देशप्रेम के वचन कहे थे : 'सारा देश बीमारी में ग्रस्त है । राजकोट का मैं डॉक्टर बनकर बैठा हूँ । परन्तु महात्माजी बड़े डॉक्टर हैं । दवा करेंगे न ?'

गांधीजी से भी प्रसंगोपात्त कहने की प्रार्थना की गयी तो 'ठाकुर साहब ने मेरे लिए जो शब्द कहे हैं, उनमें मैं अपने लिए अत्यन्त सम्मान और अवर्णनीय प्रेम अनुभव करता हूँ' कहा। उन्होंने ठाकुर साहब के भाषण में बताये गये विषयों के सम्बन्ध में अपने भी विचार बताये :

'ठाकुर साहब ने शिक्षा के बारे में बढ़िया विचार बताये, परन्तु निराशा प्रकट की कि इतने छोटे राज्य में यह सब कैसे किया जा सकता है । परन्तु ऐसी निराशा का कारण नहीं है । उल्टे राज्य छोटा होने में अनेक लाभ रहते हैं । राजकोट की प्रजा ऐसी नहीं, जिससे कोई काम न लिया जा सके । यूरोप के छोटे-छोटे राज्य—जैसे स्वीडन, नार्वे, स्विट्‌जरलैण्ड, जिनके नाम पिछली लड़ाई में शामिल न होने के कारण संसार की जबान पर नहीं चढ़े—ऐसे राज्य हैं कि उनकी सभ्यता दूसरे बड़े राज्यों की अपेक्षा जरा भी घटिया नहीं और उन्होंने शिक्षा के अनेक सफल प्रयोग किये हैं । बड़े राज्यों की कठिनाइयाँ भी बड़ी हैं। लॉर्ड रीडिंग जैसों को कितनी कठिनाई होती होगी, यह मैं ही समझ सकता हूँ—अनेक दलों, अनेक हितों का विचार करना और विस्तृत क्षेत्र में काम लेना होता हो, तो क्या काम हो सकता है, जब कि अच्छी योजनाओं का अमल छोटे राज्यों में ही अधिक आसानी से हो सकता है । गुजरात विद्यापीठ कुछ अंश में यही चीज कर रहा है । आदर्श विद्यार्थियोंवाली एक आदर्श पाठशाला स्थापित करें तो उसमें से कई उत्पन्न हो जायेंगी । शून्य में से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता । शून्य का गुणाकार नहीं होता, परन्तु एक के अनेक गुने हो सकते हैं । इसलिए निराशा का कोई कारण नहीं है ।

निराशा का कारण हमेशा मनुष्य स्वयं ही होता है । आत्मा ही अपना शत्रु और आत्मा ही अपना मित्र है । पुरुषार्थ की मर्यादा बाँधने की जरूरत नहीं; यदि आकाश तक जाने में कहीं भी मर्यादा हो तो पुरुषार्थ की मर्यादा हो । ऊँचा चढ़ने के लिए खुला आकाश विद्यमान है । नीचे गिरने की मर्यादा है । ईश्वर ने, कुदरत ने स्वयं ही धरती, पत्थर, पानी वगैरह जैसी मर्यादा बाँध दी है। इसलिए निराशा का कुछ भी कारण नहीं है । प्रजा से इतना कहूँगा कि 'राजा से जितना हो सके, लाभ उठाओ ।' राजा से इतना ही कहूँगा कि 'आपने खूब किया, परन्तु अभी बहुत करना बाकी है' ।'

इतना तो प्रसंगोपात्त दुवारा राजा को कह दिया । परन्तु प्रजा के लिए भी थोड़ा-सा तो बोलना था ही :

'प्रजा और राजा को एक-दूसरे में ओतप्रोत हो जाना चाहिए । जैसे 'यथा राजा तथा प्रजा' सत्य है, वैसे ही 'यथा प्रजा तथा राजा' भी सत्य है । आप यदि स्वयं कुछ न करें तो राजा की कितनी ही इच्छा हो तो भी राजा कुछ नहीं कर सकता । आप दंभ, खुशामद, पाखंड अपने जीवन में प्रविष्ट कर लें, तो इसकी परछाईं राजा के जीवन में भी पड़ेगी । इस बारे में इशारा करना पड़ता है, क्योंकि 'मीठे तो शहद से भी अधिक' वचन अब भी सच है ।'

जेतपुर
१६-२-'२५

१७ तारीख को युवराज के जन्म-दिवस पर भरे गये दरबार के अवसर पर कुछ लोग सोचते थे कि राजकोट के ठाकुर साहब चरखे को बढ़ावा देनेवाली कोई व्यवस्था घोषित करेंगे, और कुछ नहीं तो वर्तमान मद्य-नीति, जिसके विरुद्ध प्रजा आवाज उठा रही है, उसे बदलने के बारे में कुछ-न-कुछ कहेंगे । परन्तु उल्टे उसी रात को दिये गये भोज में गांधीजी की आँखों के सामने शराब परोसी गयी !

१९-२-'२५

जन्मभूमि-दर्शन

पोरबन्दर तो पुण्यतीर्थ है । वहाँ जाने के लिए मन छटपटा रहा था । बापू के पुराने घर के दर्शन किये, घर में बापू का जन्म-स्थान भी बताया गया । उस कमरे का अँधेरा देखकर जरा खयाल हुआ कि भगवान् ने घोर अंधकार को चीरने के लिए ही बापू को भेजा होगा न ! इस घोर

अँधेरे कमरे में जन्म लेने के कारण ही मानो बापू को भारत के करोड़ों घोर अन्धेरे कमरों की गरीबी की पलभर में कल्पना होती है और वे इसे क्षणभर भी भूलते नहीं। उस अँधेरे कमरे को देखकर कुछ विचित्र आशा अनुभव की, विचित्र प्रकाश प्राप्त किया। पोरबन्दर में दोपहर को दो बजे सार्वजनिक सभा रखी गयी थी। वहाँ के भाषण के एक-एक शब्द में जन्मभूमि—पोरबन्दर और भारत-भूमि—के प्रति प्रेम अवर्णनीय मधुरता से सुना जा रहा था। पोरबन्दर के लोगों ने मानपत्र तो दिया, परन्तु वह चाँदी की पेटी में न देकर पेटी की कीमत के बराबर अर्थात् २०१ रुपये का एक चेक उन्होंने दिया। इतनी एक छोटी-सी वस्तु में से गांधीजी ने अपने भाषण की भव्य भूमिका तैयार की थी। अपना भाषण शुरू करते हुए उन्होंने बताया कि :

'मुझे पोरबन्दर की प्रजा ने यह मानपत्र दीवान साहब के हाथ से दिलाया, इसके लिए मैं इनका आभार मानता हूँ और चाँदी अथवा चंदन की डिबिया के भीतर यह मानपत्र देने के बजाय आपने २०१ रुपये का चेक दिया है, इसमें निहित आपके विवेक के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। यदि पोरबन्दर के शहरी मेरी अभिलाषा न समझें और उसे पूरा न करें तो पृथ्वीतल पर और कहाँ मैं यह आशा रखूँ? मैंने कई जगह कहा है कि मेरे पास चाँदी वगैरह रखने के साधन नहीं हैं। ऐसे साधन रखना ही उपाधिरूप है; ऐसी वस्तुओं का त्याग करने से ही मैं अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सकता हूँ। इसलिए मैं भारत से कह रहा हूँ कि जिसे सत्याग्रह का पालन करना है; उसे निर्धन होने और किसी भी समय मृत्यु से आलिंगन करने की तैयारी रखनी चाहिए। मेरे पास चाँदी की पेटी रखने को स्थान कहाँ? इसलिए आपने मुझे उसके बजाय चेक दिया तो उससे मुझे आनन्द ही होता है।

'परन्तु एक तरफ से आपको बधाई देता हूँ तो दूसरी ओर से मुझे अपनी कंजूसी पर दया आती है। मेरी भूख बड़ी है। इतने-से कागज के टुकड़ों से मेरा पेट नहीं भरेगा। २०१ रुपये तो मेरे लिए काफी नहीं होंगे। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि आपसे मैं जितना लूँ, उससे दुगुना या और भी अधिक आपको मुझसे मिल जायगा, ऐसा मैं विश्वास दिला सकता हूँ। क्योंकि मेरे पास एक भी पैसा ऐसा नहीं आता, जिससे रुपये के पेड़ न उगते हों—ब्याज से नहीं, परन्तु उसके उपयोग से। ब्याज लेकर काम चलाने से तो मरना बेहतर। परन्तु एक

पैसे से जितना रस लूटा जा सके, उतना मैं लुटाऊँ। इसका उपयोग भारत की पवित्रता की रक्षा करने, भारत के नंगों के तन ढँकने के लिए ही होगा। पाई-पाई का हिसाब रहेगा।

'मुझे आज तक एक भी मनुष्य ऐसा नहीं मिला, जिससे मैं कहूँ कि तुमने मुझे बहुत दिया। मेरे मेमन मित्र इसीलिए मुझसे भागते हैं, नहीं तो उमर हाजी अहमद झवेरी जैसे तो यहाँ होंगे ही। वे कहते हैं कि तू तो अब सामने मिल जाय तो लूटने की ही बात करता है! इस प्रकार आज के कठिन काल में मेरे साथ मित्रता रखना भयंकर है। आज के कठिन समय में जो भाई हिन्दू होकर अपना रुपया भंगी को लुटवाने के लिए तैयार हो, जो भाई देश को आजादी दिलवाने के लिए अपनी सारी शक्ति अथवा अपना तमाम धन खर्च कर देने को तैयार हो, वही मेरी दोस्ती रख सकेगा।

'राजकोट के ठाकुर साहब ने मुझ पर प्रेम की वर्षा की थी। उसमें मैं सराबोर हो रहा था। परन्तु मैं काँप रहा था कि 'अरे जीव, इस राजा की मित्रता तू कब तक रख सकेगा?' मेरे पिता जिस राज्य के दीवान थे, उसके राजा के हाथ से मानपत्र लेना मुझे क्यों न अच्छा लगे? आज के महाराणा साहब के पितामह के राज्य में मेरे पितामह दीवान थे। उनके भी पिता के राज्य में मेरे प्रपितामह दीवान थे। राणा साहब के पिताजी मेरे मित्र थे, मेरे मुवक्किल थे। मैंने इनका खाया-पिया है—इसलिए महाराणा साहब का आमंत्रण भी मुझे क्यों न पसन्द आये।

'परन्तु सारी दोस्तियाँ निभाना मुश्किल है—जैसे मैं अंग्रेज की दोस्ती कायम नहीं रख सका, क्योंकि दुनिया में एक ही मित्रता कायम रखने की मुझे जरूरत मालूम होती है। वह मित्रता है ईश्वर की। ईश्वर अर्थात् अन्तरात्मा। उसकी झनकार उठे और मुझे लगे कि जगत् की मित्रता छोड़नी चाहिए तो उसे छोड़ने को तैयार हूँ। आपकी मित्रता का मैं भूखा हूँ और आपका तमाम रुपया ले जाऊँ तो भी मैं अघाऊँ नहीं। आपसे मैं माँगता ही रहूँगा और आप मुझे देशनिकाला देंगे तो ईश्वर के घर में अपना स्थान ले लूँगा। मेरा घर हिन्दुस्तान है। जब तक भारत में दुःख का दावानल जल रहा है, तब तक भारत को छोड़कर कहीं भी जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। दक्षिण अफ्रीका मुझे संग्रह कर सकता है, परन्तु आज मुझे वहाँ जाना पसन्द नहीं है, क्योंकि यहाँ की आग बुझने पर ही वहाँ की आग बुझ सकती है। यह आग बुझाने में मदद देने की प्रार्थना सब राजाओं

से कर रहा हूँ। इसमें पोरबन्दर से अधिक-से-अधिक आशा रखूँ तो क्या बुरा ?

'प्रजा से भी इसीकी आशा रखकर बैठा हूँ। मैं आप सबका सहयोग चाहता हूँ। इसके परिणामस्वरूप शायद हम अंग्रेज के साथ भी सहयोग करने लग जायँ। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अंग्रेज के पास दौड़ जायँ। दौड़ते हुए वही आयँगे। वे मुझसे कहते हैं कि तू भला है, परन्तु तेरे साथी बदमाश हैं। तुझे चौरीचौरा जैसा दगा देंगे। परन्तु मैं तो मनुष्य-स्वभाव में विश्वास रखनेवाला हूँ। प्रत्येक में आत्मा का निवास है और प्रत्येक आत्मा की शक्ति मेरी आत्मा के बराबर ही है। मेरी शक्ति आप देख सकते हैं, क्योंकि मैंने अपनी आत्मा को नम्रता से ढोल बजाकर और उसके आगे नाचकर जाग्रत रखा है। आपकी इतनी जाग्रति नहीं होगी। परन्तु स्वभाव से तो हम सब सरीखे ही हैं।

'राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान लड़ते रहते हैं, परन्तु इन लोगों को ईश्वर की मदद न हो तो एक तिनका भी नहीं हिला सकते। प्रजा यह माने कि हम बलवान् होकर राजा को तंग करेंगे और राजा यह समझे कि मैं बलवान् बनकर प्रजा को कुचल डालूँगा; हिन्दू मानें कि सात करोड़ मुसलमानों को कुचल डालना मुश्किल नहीं और मुसलमान समझें कि बाईस करोड़ शाकाहारी हिन्दुओं को हम कुचल देंगे; तो राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान दोनों मूर्ख हैं। यह खुदा का कलाम है, वेद का वाक्य है। बाइबल में लिखा है कि मनुष्यमात्र एक-दूसरे के भाई-बन्धु हैं। प्रत्येक धर्म पुकार रहा है कि स्नेह की गाँठ से ही संसार बँधा हुआ है। यह स्नेह-बन्धन न हो तो विद्वान् शास्त्री सिखाते हैं कि पृथ्वी के कण-कण बिखर जायँ। पानी में भी स्नेह न हो तो उसकी बूँदें अलग-अलग हो जायँ। इसी तरह मनुष्य-मनुष्य के बीच यह न हो तो हम मुर्दा बन जायँगे।

'इसलिए हम स्वराज्य चाहते हों, राम-राज्य चाहते हों, तो हम सबको स्नेह की गाँठ बँधवानी होगी। यह स्नेह की गाँठ है हाथ-कते सूत-की गाँठ। यह सूत विदेशी हो तो वह लोहे की बेड़ी बन जाय। आपका मेल तो आपके गाँवों के साथ, रैबारियों के साथ, पहाड़ी मेरों के साथ होना चाहिए। इनके बजाय लंकाशायर या अहमदाबाद के साथ हो तो इसमें पोरबन्दर का क्या फायदा ? असली चीज जो प्रजा माँग रही है, यह है कि हमारे श्रम का उपयोग करो, हमें बेकार रखकर भूखों न मारो। राणावाव के पत्थर के बजाय आप इटली से पत्थर मँगायें तो कैसे काम

चले ? इसी तरह अपने गाँवों में बुने हुए काँजीवाले कपड़े और अपनी ही गाय-भैंस का घी छोड़कर कलकत्ते से मँगायें तो कैसे चलेगा ? आप अपनी चीजों का उपयोग न करके परायी जगह से मँगायेंगे तो मैं कहूँगा कि आप वेड़ियों में जकड़े हुए हैं । जब से मुझे यह शुद्ध स्वदेशी का मंत्र मिला है, जब से मैं समझा हूँ कि गरीब-से-गरीब के साथ मेरा मेल होना चाहिए, तब से मैं मुक्त हो गया और मेरा आनन्द लूटने में न तो राणासाहब शक्तिमान् हैं, न लॉर्ड रीडिंग या राजा जॉर्ज ही !

'बहनों से कहूँगा कि आपके दर्शन करके भी मैं तभी पावन बनूँ, जब आप खादीधारी होंगी और कातती होंगी। आज आप हवेली में जाकर धर्म रखना चाहती हैं, परन्तु जो कातती होंगी, उनका हृदय मन्दिररूप बन जायगा । इसीलिए आपसे कहता हूँ कि आपके सामने हिमालय के चमत्कार की बातें कहूँ, तभी आप सुनेंगी ? क्या आपसे घर-घर चूल्हे के साथ चरखा रखने को कहूँ तो आप यह कहेंगी कि इस बूढ़े का दिमाग बिगड़ गया है ? मैं तो सयाना हूँ । मैं तो समझदार हूँ । अपना अनुभव पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ ।

'मुझसे एक आदमी ने पूछा था कि 'तू पोरबन्दर का मानपत्र लेकर क्या करेगा ? पहले यह तो जान ले कि पोरबन्दर में खादी पहननेवाले कैसे हैं ।' परन्तु पोरबन्दर में खादी पहननेवाले कैसे हैं, यह पूछने के बजाय यह पूछूँ कि खादी पहननेवाले ही कहाँ हैं । आप बारीक कपड़े पहनने की इच्छा रखती हैं । मुझे करोड़पतियों ने कहा कि बारीक तो हमेशा करोड़पति भी नहीं खरीद सकते । परन्तु जैसे आप घर में बारीक-बारीक सेव बनाती हैं, वैसा बारीक कातें तो आप जरूर बारीक पहन सकेंगी ।

'जब तक यह उपाय न करें, तब तक स्नेह की गाँठ नहीं बाँधी जा सकेगी। सारी दुनिया को आप इस गाँठ से बाँधना चाहते हों तो दूसरा उपाय नहीं, नहीं और हरगिज नहीं । हिन्दू-मुसलिम सवाल के लिए भी कोई और उपाय नहीं । मेरे साथ राजकोट में भाई श्वेब कुरैशी आये हुए थे । उनसे वहाँ के मुसलमानों ने कहा कि गांधी तुम्हें धोखा देता है, खादी का प्रचार करके विलायती कपड़ों का व्यापार करनेवाले मुसलमानों को भिखारी बनाना चाहता है । परन्तु श्वेब कोई सुननेवाला नहीं था । वह जानता है कि मैं विदेशी कपड़ों का व्यापार करनेवाले मुट्ठीभर आदमियों पर जूठी नजर नहीं डालता । वे स्वयं खादीभक्त हैं और

जानते हैं कि जितनी सेवा मैं इसलाम की कर रहा हूँ, उतनी खादी की या देश की नहीं कर सकता । मुसलमान भाइयों को समझना चाहिए कि उनकी जन्मभूमि यही है और इसे स्वतन्त्र किये विना इसलाम के स्वतन्त्र होने की आशा नहीं है ।

'मेरी काठियावाड़ की शायद यह अंतिम यात्रा हो। कदाचित् मेरा बहुत थोड़े वर्ष जीना हो । मैंने वड़ी मुश्किल से महासभा का अध्यक्ष-पद स्वीकार किया । काठियावाड़ राजकीय परिषद् का भी स्वीकार किया । अव केवल दस ही महीने रहे हैं । मैं आपके पास इसी कारण आया हूँ कि आप मुझे खास तौर पर भाई समझें—यद्यपि मैं तो जीवमात्र का भाई हूँ—तो मेरी प्रार्थना समझना और आध घंटा चरखा कातना । इसमें आपका कुछ नहीं जायगा और देश का दारिद्र्य मिटेगा । आप मुझसे कितना दु:ख रुलाना चाहते हैं ? आप अस्पृश्यता नहीं मिटायेंगे तो धर्म का नाश है । सच्चा वैष्णव धर्म वही है, जिसमें अधिक-से-अधिक पोषक शक्ति हो । अभी तो वैष्णव धर्म के नाम पर अन्त्यजों का नाश हो रहा है । अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का रहस्य नहीं । अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम एकता और खादी मेरी त्रिवेणी है। यह मैं भाई-वहन, राव और रंक सबसे चाहता हूँ ।

'यहाँ काठियावाड़ राजकीय परिषद् का एक भी सदस्य न हो तो काम चल सकता है। मगर आपके यहाँ सुशोभित चरखे न हों तो काम नहीं चलेगा। यहीं तो चरखे चलने चाहिए । मैं चाहता हूँ कि आप सवमें ईश्वर निवास करे । यह सबसे आसान वस्तु समझिए । कर्तव्य समझने में पोथी-पन्ने की जरूरत नहीं है । । हृदय की जरूरत है। अक्षर-ज्ञान के साथ हृदय का अर्थात् धर्म का ज्ञान न दें तो अक्षर-ज्ञान राक्षसी बन जाता है । इस राक्षसी ज्ञान को प्राप्त करनेवालों की क्या दशा होती है, इसका विचार करना ।

'शराव की वुराई का नाश जरूर होना चाहिए और वह भी प्रजा के ही प्रयत्न से । मुझे शंका नहीं है कि प्रजा के ही प्रयत्न से यह वदी रुक सकती है । कुछ मूर्खों ने जवरदस्ती के उपाय न अपनाये होते तो भारत में यह वुराई कभी की खत्म हो गयी होती । मैंने सुना है कि पोरवन्दर में वहुत-से खारवों ने शराव छोड़ दिया और यह भी सुना है कि राणा-साहव इससे सहमत हैं और मदद देने को तैयार हैं । हम जब तक शराव की लत नहीं छोड़ेंगे, तव तक स्वतन्त्र नहीं हो सकते । स्वतन्त्रता के लिए

यूरोप के उपाय हमारे काम नहीं आयेंगे। वहाँ के लोगों और आवोहवा तथा हमारे लोगों और हमारी आवोहवा में जमीन-आसमान का फर्क है। वहाँ के लोग दया का त्याग कर सकते हैं, हम नहीं कर सकते। मुझसे विदेशों के मुसलमान कहते हैं कि यहाँ के मुसलमानों की हड्डी तुलना में कमजोर है। यह अच्छा है या वुरा, सो तो हिन्दू-मुसलमान ही कह सकते हैं या जगत् कह सकता है। परन्तु मेरा खयाल है कि वे कमजोर हैं, इससे हम कुछ खोनेवाले नहीं हैं। दयालु वनने का अर्थ डरपोक वनना या लाठी का त्याग करना नहीं है, परन्तु लाठी होने पर भी लाठी को काम में न लाना है। लाठी इस्तेमाल करनेवाले से लाठी इस्तेमाल न करके भी छाती खोलकर दुश्मन के सामने खड़ा रहनेवाला ही अधिक वलवान् है। अपना स्थान न छोड़ना और पीठ न दिखाना पहलवान का मंत्र और क्षत्रियत्व का रहस्य है। गुण प्राप्त करने के लिए मादक पदार्थों के त्याग की जरूरत है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि पोरवन्दर की प्रजा शराव विलकुल छोड़ दे।

'राजकोट में शराव की वुराई वहुत फैल रही है। सिविल स्टेशन के दूकानदारों से स्पर्धा हो रही है, इसलिए शराव वहाँ सोड़ा के दामों पर वेची जाती है। परन्तु जिन्हें शराव इतनी सस्ती मिलती है, वे खून के आँसू वहा रहे हैं। मजदूरों की स्त्रियाँ मुझसे कहती हैं कि 'आप ठाकुर साहव से नहीं कहते? हमारे घर में इस वदी ने सत्यानाश कर दिया है, हमारे घर में गृहयुद्ध मचा हुआ है। हमारे पति व्यभिचारी हो गये हैं, हमारे घर में दरिद्रता छा गयी है।' इन गरीव स्त्रियों के आशीर्वाद लेने हों तो हम सवको कटिवद्ध होना पड़ेगा और राजा से कहना होगा कि इस कष्ट से प्रजा को वचाइए। इससे कमाई होती हो तो भी क्या? इससे क्षणिक आनन्द मिलता हो तो भी क्या? यह वदी फैलेगी तो देश की ऐसी खराव हालत होगी कि उसका अपने-आप नाश हो जायगा। किसीको नाश करने का प्रयत्न करने की जरूरत ही नहीं रहेगी। ईश्वर आपका कल्याण करे। मेरे दीन वचन सुनने और समझने की ईश्वर आपको शक्ति दे। और इससे सारी दुनिया का भी भला हो।'

जहाँ-जहाँ गये, वहाँ अन्त्यजों की मुलाकात होती ही थी। पोरवन्दर में भी गांधीजी अन्त्यजों की मुलाकात के लिए गये थे। यह एक मधुर प्रसंग था। छाया के जुलाहे सुन्दर कम्वल लेकर आये थे। उन्होंने गांधीजी को एक सवसे वढ़िया कम्वल भेट किया। गांधीजी गद्गद हो गये। उन्होंने

कहा : 'इसे लेकर मैं कहाँ जाऊँ ? मुझे तुमसे लेना शोभा भी देगा ? मेरे बच्चे मुझे भेंट दें, यह कैसे हो सकता है ? मुझे वहुत देनेवाले मिल जाते हैं, इसलिए अभी तो तुम्हें देकर ही खुश होऊँगा। जव मुझे देनेवाला कोई नहीं रहेगा, मेरा त्याग कर देंगे, तव मैं तुम्हारे पास आकर रहूँगा और तुमसे कहूँगा कि मुझे ओढ़ा दो।' अत्यन्त आग्रह के वाद ही उन्होंने कम्वल वापस लिया। फिर पाठशाला के वालकों को भाई देवीदास घेवरिया ने गांधीजी से खादी के कुरतों और टोपियों का इनाम वँटवाया।

सभा में गांधीजी वोले :

'दीवान साहव, अन्त्यज भाइयो और वहनो,

'तुम सवको देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। तुम सव जो अन्त्यज भाई—अन्त्यज अर्थात् ढेढ़, भंगी, चमार, जिन्हें भूल से नीच जाति का माना जाता है, वे सव—यहाँ आये हैं, उनसे मिलकर वहुत प्रसन्न हुआ। तुम जानते हो कि अन्त्यजों को दूसरे उच्च वर्ण के हिन्दू छूते नहीं। ये लोग मानते हैं कि जो जूठन हो, वह अन्त्यजों को दी जा सकती है। इस प्रकार अनेक तरह की वेइन्साफी और अन्याय होता रहता है। यह सव मिटाने के लिए हिन्दुओं में से कुछ आदमी वड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। महासभा में वड़ी चर्चा और कोशिश हो रही है।

'परन्तु अकेले इनसे सव नहीं हो सकता। तुम्हारी मदद की भी जरूरत है। मुझसे वहुत-से हिन्दू कहते हैं कि 'तू इनका पक्ष लेता है, मगर तू देख तो सही कि ये लोग कैसे हैं ? ये लोग मुर्दा जानवर का मांस खाते हैं और नहाते-धोते भी नहीं। इन्हें देखकर घृणा से कँपकँपी आये। इनके रीति-रिवाज मैले। हम कैसे इन्हें छुएँ ?'

'यह वात आधी सच्ची है। जितना सत्य है, उतना तुम्हारे सुनने योग्य है। इसमें जो खराव हो, वह तुम्हें छोड़ देना चाहिए और तुम्हारे सुधार में स्वयं तुम्हें भी मदद करनी चाहिए। जो अपने-आपकी मदद नहीं करता, उसकी मदद ईश्वर भी नहीं करता। इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम स्वयं अपनी सहायता करो। सवेरे के समय चार वजे उठकर मुँह धोयें, आँखें साफ करें और भगवान् का स्मरण करें। स्मरण कैसे करना, यह पूछो तो कहूँगा कि राम-नाम लो। किशन, किरशन जो कहो सो सव सच है, परन्तु राम-नाम सवसे आसान है। भगवान् से भीख माँगो कि 'हे भगवन्, तू हमें अच्छे वनाना।' तुम कई दिन वाद नहाओ, यह ठीक नहीं। रोज नहाना चाहिए। मजदूर मजदूरी करके रात को नहा लें।

तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए। अपने बच्चों को साफ रखो। इन्हें साफ नहीं रखते, इसमें तुम सबका दोष है। पाठशाला के गुरुजी बेचारे क्या करें? तीसरी बात यह है कि शराब न पियो। शराब पीकर इन्सान हैवान जैसा हो जाता है। तुम सड़ा हुआ मांस भी न खाओ। असल में तो मांस ही न खाया जाय। रोटी और दूध मिल जाय तो काम न चले? जो बुनने का काम जानता हो, वह बुनता रहे। तुम न कातो तो मैं बर्दाश्त कर लूँ, परन्तु ये सब बुराइयाँ बर्दाश्त नहीं की जा सकतीं।'

२०-२-'२५

वांकानेर

वांकानेर के संस्मरण ऐसे हैं, जो भुलाये नहीं जा सकते। राजा साहब की बात अन्यत्र आयेगी। वहाँ के दीवान भी बड़े संस्कारी और सज्जन हैं। उन्होंने खादी तो पहनी हुई थी ही, और सुना है कि उनके घर में चरखा भी चलता है। वांकानेर के मानपत्र में खादी, चरखा और अस्पृश्यता का खास उल्लेख था। पाठशाला में अन्त्यजों के बच्चे पढ़ते हैं, यह बात भी बतायी गयी थी और २५०० चरखे और २५० करघे चल रहे हैं, यह भी बताया गया था। इन सब बातों से गांधीजी बहुत खुश हुए। फिर भी आम सभा में भाषण का आरम्भ तो उन्होंने अस्पृश्यता के प्रश्न से ही किया। उन्होंने कहा :

'अन्त्यज यदि आपकी पाठशाला में आते हों तो अधिक कहना ही नहीं है। हिन्दू-धर्म में जब तक हम अस्पृश्यता को स्थान देंगे, तब तक बड़ी जोखिम है। यदि इस अविभाज्य अंग को हम अलग रखेंगे तो हमारा नाश हुआ समझ लीजिए। आजकल तो धर्मों की तुलना हो रही है। धर्म को हम तिजोरी में बन्द करके ताली लगाकर नहीं रख सकते। सब धर्मों को सारे जगत् की कसौटी पर चढ़ना पड़ता है। बड़े तत्त्वज्ञानी शोध कर रहे हैं। हमारा धर्म इनकी परीक्षा में पास न हो तो हमारा लोप ही हुआ समझ लीजिए।

'यदि आप सचमुच हिन्दूधर्मी हैं तो निर्भय होकर सत्य और अहिंसा पर डटे रहना। निर्भयता का आधार ये दो चीजें हैं। दुनिया में घूमते और विचार करते हुए—४४ वर्ष तक विचार करते हुए—मुझे मालूम नहीं होता कि कोई दूसरी कसौटी धर्म के लिए हो सकती है। जब मैंने जान लिया कि हिन्दू-धर्म दूसरे धर्मों के साथ इस कसौटी में पार उतर सकता है, तब मुझे गर्व महसूस हुआ। एक समय था, जब मैं संशयग्रस्त था और

पादरी से पूछता था। परन्तु यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। आज-कल तो मेरी अपनी खोज से जो चीज मिली है, वह अन्त्यजों के सामने रख रहा हूँ। यदि हम इनके साथ अपने भाई-बहन की तरह बरताव नहीं करेंगे तो धर्म का नाश है। हिन्दुस्तान ७ करोड़ मुसलमानों से नहीं टिकेगा। टिके तो हिन्दुस्तान न कहलाये। भारतवर्ष न कहलाये। बड़ा खंड न कहलाये। उल्टे वह पश्चिम का दूसरा अनुकरण कहलायेगा।

'बहनो, आपसे एक रिवाज के बारे में कहूँगा। मैंने अपनी आँखों से अपने घर में देखा है। उसे मेरी माता ने किया था और इस समय जब मैं उसका विचार कर रहा हूँ, तब मुझे शर्म आती है। कुत्तों और अन्त्यजों को जूठन डालते मैंने उन्हें देखा है। सब कहते कि ऐसा रिवाज है। हम मानते हैं कि पहले के लोग जो कुछ करते थे सो सब अच्छा और अनुकरणीय होता है। परन्तु हमारे पूर्वजों के कुएँ में डूब मरना ठीक नहीं है। हमें छलाँग तो लगानी है, परन्तु वह इतनी ही लगायें कि उसमें से निकल आयें। पुराने रिवाजों में से हमें गुणों को स्वीकार करना चाहिए और दोष का त्याग करना चाहिए। शास्त्र-ग्रन्थों में भी नीरक्षीर-विवेक करना है। दोष-रहित कोई नहीं है।

'जो कर्म मेरी माता ने किया, वह ठीक नहीं। इस समय वे हों और ऐसा करें तो पहले उन्हें नमस्कार करूँ, परन्तु फिर पूछूँ कि 'तू यह क्या करती है?' उनसे कहूँ 'जिस धर्म का तेरे दूध में मैंने पान किया है, वह इसमें नहीं है।' यदि आप उन्हें खाने को देना चाहती हों तो अपने खाने में से इनका भाग निकालकर देना। इसमें हमारी सभ्यता है। गरीब-से-गरीब के लिए पहले निकालें। तो ही हमारी सम्पत्ति पर किसीका द्वेष न हो; और किसीकी मैली नजर न हो।

'इस समय तो स्थिति यह है कि सेवा करनेवाले से कुछ कम सेवा हुई हो तो हम सहन नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि हम दयाधर्म भूल गये हैं। ज्यों-ज्यों इसके बारे में विचार करता हूँ, त्यों-त्यों काँपता हूँ और मन से पूछता हूँ कि अरे जीव, सुवर्णमय हो जाने पर भी ग्लानि क्यों होती है!

'काठियावाड़ में अन्त्यजों का बहुत अपमान होता है। स्टेशन मास्टर उन्हें गालियाँ देते हैं इत्यादि-इत्यादि। मेरी माता अत्यन्त पवित्र थी। उसमें असंख्य गुण थे। उसके कारण मैं आपके सामने उजला लगता हूँ। परन्तु बहुत पुराने समय की आदत से वह भी ऐसी हो गयी थी। इसलिए

मैं आपसे कहता हूँ कि आप अन्त्यजों को अच्छी-से-अच्छी वस्तु दीजिए। आपसे यह भी कहूँगा कि आप पाखाना ऐसा न बिगाड़ें, जिससे उसे साफ करने में घृणा आये। मैंने खुद तो पाखाना छोड़ दिया है। परन्तु आपसे, जिन्होंने ऐसा नहीं किया, कहता हूँ कि उसे पुस्तकालय जैसा साफ रखें। इस सफाई में ही शौचधर्म अर्थात् पवित्रता समायी हुई है। इसमें भंगी पर केवल दया का ही प्रश्न नहीं। आप अन्त्यजों का केवल स्पर्श करेंगे तो उससे आपके कर्तव्य का पालन नहीं होगा।'

उसके बाद चरखा-खादी की बात की। फिर बोले:

'अनायास राजा साहब के साथ चरागाहों और काठियावाड़ की वर्तमान स्थिति की बात हुई। उन्होंने कहा कि 'काठियावाड़ में बरसात दिन-दिन कम होती जा रही है। और समय ऐसा आयेगा, जब बरसात बिलकुल बन्द हो जायगी।' बरसात का न आना हम ईश्वरीय कोप मानते हैं। परन्तु ईश्वरीय कोप यों ही नहीं उतर आता। कुछ-न-कुछ दोष हममें हों तो ही ऐसा होता है। हममें आध्यात्मिक दोष हों, इससे भी वर्षा न आये और भौतिक पापों के कारण भी ऐसा हो जाय। मैंने धीमी आवाज में राजा साहब से कहा कि 'काठियावाड़ के जंगलों का नाश कर दिया गया है, यह भी कारण होगा।' दक्षिण अफ्रीका में चरागाहों जैसा मुल्क था। वहाँ के लोग विचक्षण हैं और भौगोलिक शास्त्र के जाननेवाले हैं। इसलिए वे अपूर्व परिश्रम करके पेड़ लगाने लगे। परिणामस्वरूप वहाँ बरसात खूब आती है। बम्बई में भी इतनी झाड़ी थी कि वहाँ १०० इंच तक वर्षा होती थी। फिर वह काटी गयी। परन्तु उसका एक फल इस समय भोगना पड़ रहा है। बरसात घट गयी और अब ७०-८० इंच पानी पड़े तो यह माना जाता है कि बहुत बरसात आयी। हमें भौतिक कारणों का विचार करना चाहिए। यदि पानी के लाले पड़ेंगे तो राजा-प्रजा सबको यहाँ से भागना पड़ेगा। अमेरिका में अनेक गाँव बसे और उनका नाश भी हुआ। जहाँ पानी सूख जाय अथवा वनस्पति न हो, वहाँ मनुष्य कैसे बसें? वहाँ तो शिकारी बसें। परन्तु पानी के बिना एक भी भाग बस्ती-वाला नहीं हो सकता।

'बरसात बिलकुल बन्द होने में देर लगेगी। परन्तु इतना सोचना चाहिए कि आज भी बरसों से अमरेली में वर्षा नहीं है। आँधी भी नहीं आयी। तो क्या करें? हाँ, मजदूरी की जा सकती है। परन्तु सारे काठियावाड़ में किसानों को बारहों महीने मजदूरी नहीं मिलती। बरसात

आये तव मिले, परन्तु जिस जमीन पर एक ही फसल पैदा हो, वहाँ के लोग एक वर्ष के आठ मास में क्या करें? देशाटन अपनाया जाय? ईश्वरीय नियम रोज आठ घण्टे काम करने का है। जहाँ ऐसा नहीं किया जाता, वहाँ भुखमरी आती है। भारत में भुखमरी है, इसका कारण यह है कि २२ करोड़ लोगों को साल में छह महीने काम नहीं मिलता। भुखमरी से मनुष्य भयभीत वनता है। परन्तु जो मनुष्य भयभीत होता है, उसे चरखा चलाना भी सूझता है? वह कव चलाये? वह तव चलायेगा, जव राजा चलायेगा और दीवान चलायेगा। हमारी खेती होती तो रहेगी, परन्तु उसमें सुधार करने की जरूरत है। फिर इस उद्यम में चरखा हमारा सहायक उद्यम है। मैं आपके मन भ्रमित नहीं करना चाहता। हम भारत को स्वतन्त्र करना चाहते हों, गरीवों के लिए कुछ करना चाहते हों और यह मानते हों कि जो कंगाल प्रजा इस समय पीड़ित है, उसका भी हमारी स्वतन्त्रता में भाग है, तो कोई यह नहीं वता सकेगा कि भारत में सहायक उद्योग के रूप में दूसरा कोई भी उद्योग है। यज्ञरूप में, आत्मत्यागरूप में, वलिदानरूप में हमें चरखा चलाना पड़ेगा। गरीव यह सव तभी समझें, जव राजा चरखा चलाये, दीवान चलाये, नगर-सेठ चलाये, गांधी चलाये और देवचन्द चलाये। इस समय हम अज्ञान में नाच रहे हैं और जलसों में नाच रहे हैं। परन्तु स्वतन्त्रता का फल इतने से नहीं आता। इसके लिए वहुत परिश्रम करना पड़ेगा और वहुत ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। इन सव चीजों का आधार चरखा है। खादी उसकी उत्पत्ति है।

'लड़कियाँ विलायती कपड़े की साड़ी पहनती हैं, वे जंगली जैसी लगती हैं। विलायत में कोई ऐसा नहीं करता। वहाँ एक भी वस्तु ऐसी काम में नहीं लायी जाती, जिससे लोगों की हानि हो। रानी एलिजावेथ मोटा गोटा पहनती थी। उसने हॉलैण्ड से कारीगर वुलाये और उनसे इंग्लैण्ड के कारीगरों को सिखलाया। ऐसी रानी थी वह। एक दृष्टि से उसकी वृत्ति राक्षसी थी। वह दुनिया को घेरनेवाली थी। परन्तु दूसरी दृष्टि से देखें तो वह वहादुर और साहस को प्रोत्साहन देनेवाली थी। उसके इन गुणों के लिए मैं उसका प्रशंसक हूँ। हम भी उसका क्यों न अनुसरण करें? अहमदावाद से कपड़ा मँगवायें तो वहाँ से रोटी क्यों नहीं मँगवाते? जवाव में आप कहेंगे कि अहमदावाद से दो पैसे में पड़नेवाली रोटी भी यहाँ महँगी पड़ेगी और कहेंगे कि यह अर्थशास्त्र भाड़ में जाय।

हमारा कुबड़ा बच्चा भी दूसरे के सुन्दर बालक से हमें प्यारा लगता है। तो फिर आपको यह क्यों नहीं लगता कि वांकानेर की खादी मोटी, असमान हो तो भी वह सबसे अच्छी होगी ? राजमहल में काम आनेवाला कपड़ा खादी का क्यों न हो ? हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना इसमें ओतप्रोत है।

'आपके प्रेमपूर्ण मानपत्र के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ। परन्तु स्वयं अधीर बना हुआ आदमी हूँ। मैं देखता हूँ कि राजा-प्रजा के मन रुष्ट हो गये हैं। यह बात कानों से सुन रहा हूँ और चमड़ी से स्पर्श कर रहा हूँ। यह चीज मेरे मन में रम रही है। परन्तु काठियावाड़ के राजा और प्रजा जो अपार प्रेम मुझ पर बरसा रहे हैं, उसका बदला मेरे हृदय में आज जो भाव रम रहे हैं, उन्हें बताकर और ये भाव इनमें प्रकट हों, ऐसी प्रार्थना करके ही दे सकता हूँ। ईश्वर आपका और सारे जगत् का भला करे।'

वांकानेर से चलकर वढ़वाण आये*। स्वर्गीय शिवलाल नीमजीभाई ने एक लाख की सम्पत्ति खादी के काम के लिए दी थी। उनके घर गांधीजी हो आये। फिर छावनी में हुई आम सभा में गये। सभा को सम्बोधन करके बोले :

'आज शिवलालभाई की कमी खटकती है। उन्होंने काठियावाड़ तथा देश के लिए कितने काम किये हैं, यह आपने सुना। भारत का दुर्भाग्य है कि जो-जो अच्छे आदमी जाते हैं, उनके बदले में नये पैदा नहीं होते। जाना तो सबके भाग्य में लिखा है। जन्म और मरण की जोड़ी साथ-साथ चलती है। इसके बारे में मोह या शोक नहीं होना चाहिए। फिर भी किसीकी मौत होती है, तब खेद होता है। मेरा खयाल है कि यह खेद स्वार्थ का है। जब शिवलालभाई का पवित्र स्मरण करता हूँ, तब समझता हूँ कि उस मृत्यु के साथ हमारा स्वार्थ कितना था। यदि हम उनकी स्मृति स्थायी रखना चाहते हों तो उनकी जगह ले लेनी चाहिए। इसमें शर्म नहीं होनी चाहिए कि इससे ज्यादा काम हमसे कैसे हो ? वारिस को जितनी विरासत मिले, उसमें वह वृद्धि न करे तो उसके लिए शर्म की बात होगी। मरे हुए के उत्तराधिकार में कुछ-न-कुछ बढ़ोतरी करनेवाला ही सच्चा उत्तराधिकारी कहलाये। शिवलालभाई की विरासत

---

* वढ़वाण ता० २१-२-'२५ को आये थे।

में वृद्धि करना हमारा कर्तव्य है। ऐसा नहीं हुआ, इसलिए मुझे खेद हो रहा है।

'मेरी तो अभिलाषा है कि खादी का काम सार्वजनिक हो और गाँव-गाँव में प्रवेश करे। जब तक प्रत्येक गाँव में चरखे का प्रवेश न हो और सब खादी न पहनने लगें, तब तक शुद्ध स्वराज्य का प्रवेश होना असम्भव है। हिन्दू-मुसलमान एकदिल नहीं हुए। इन हिन्दुओं और मुसलमानों को एकदिल होना हो तो दोनों कातने लग जायँ। खादी में अन्त्यजों का प्रश्न भी शामिल है। इस प्रश्न पर वढ़वाण में कोलाहल हुआ था। क्यों वह किया गया, यह मैं नहीं समझता। खादी को सार्वजनिक करना चाहते हों तो हमें अन्त्यजों में मिलना होगा। मुसलमान और अन्त्यज जुलाहों पर ही भारत की साख टिकी हुई है। बुनकरों के संगठन के बिना मनचाही खादी नहीं मिलेगी। मैं वांकानेर से आ रहा हूँ। वहाँ ३०० मुसलमान जुलाहे हैं। बहुत सुन्दर बुननेवाले हैं। परन्तु हाथ का काता हुआ सूत बुननेवाले तो सिर्फ दो-तीन ही हैं। दूसरों से भी खादी बुनवाना चाहें, तो हम सबको कातने लग जाना चाहिए। जो बहनें पैसों के लिए कातती हैं, उनसे हम दूसरी कमाई रोककर कतवाना नहीं चाहते। जिन्हें दो पैसे भी नहीं मिलते, उनसे ही कतवाना चाहते हैं। सूखी रोटी और मैला नमक ही जिस देश में मिलता है, उसमें हमारा चरखा कामधेनु है। इतना यज्ञ आवश्यक है। वह सुव्यवस्थित होता रहे तो अच्छा।

'कातने की क्रिया की अपेक्षा बुनने पर न उतर पड़ें। बारीक सूत कतवाने की इच्छा हो तो वह हाथ से ही कातना पड़ेगा और उसके बिना यहाँ के नाजुक भाई-बहनों का क्या करें? एक सेर सूत पर बुनाई के छह आने देंगे, आठ आने देंगे, परन्तु छह आने में ४० नम्बर का सूत आपको कोई कातकर नहीं देगा।

'शिवलालभाई की स्मृति रखना चाहते हों तो आप उनका काम ताजा रखना। शिवलाल का अन्तिम और प्रथम कार्य खादी का प्रेम था। इसके लिए उन्होंने इतना रुपया दिया और हम कुछ भी काम न करें तो हमें शरमाना चाहिए।'

वढ़वाण बाल-मन्दिर

सार्वजनिक सभा से जाकर डॉ० प्राणजीवनदास महेता के द्वारा निर्मित बाल-मन्दिर में मुकाम किया। शहर के बाहर सुन्दर एकान्त में भोगावो

नदी के किनारे, जहाँ पतिव्रता रानी राणकदेवी सती हुई थीं, उसी स्थान के पास यह मन्दिर स्थित है। इस मदिर का—अर्थात् फूलचन्दभाई के राष्ट्रीय शिक्षा फैलाने के प्रयत्नों का—इतिहास सब जानते हैं। फूलचन्द-भाई की पाठशाला कितनी अच्छी चलती थी, उसमें अस्पृश्यता के प्रश्न पर कैसे फूट हुई, बच्चों की संख्या कैसे घटी और २५ तक चली गयी, यह सब लोग जानते हैं। काकासाहब ने वढ़वाण आकर शिक्षण-समिति से अस्पृश्यता-त्याग का सिद्धान्त स्वीकार कराया था, फिर भी लोगों ने लड़कों को हटा लिया और पहले जो रुपया देने के वचन दिये थे, वह भी नहीं दिया। बाल-मन्दिर का उद्घाटन करते हुए गांधीजी ने जो भाषण दिया, उसमें इन सब बातों का उल्लेख तो है, परन्तु और कई बातों का उसमें समावेश होने के कारण वह भाषण जरा विस्तार से देना पड़ेगा।

फूलचन्दभाई कई वर्ष सत्याग्रह आश्रम की सेवा कर चुके थे। उनके बाल-मन्दिर का उद्घाटन करना था, इसलिए गांधीजी ने ऐसे भाव से भाषण दिया, मानो अपनी ही संस्था का उद्घाटन कर रहे हों। राजकोट की पाठशाला का तो उद्घाटन करना नहीं था और वहाँ ठाकुर साहब को भी कुछ बातें सुनानी थीं, इसलिए इस भाषण ने दूसरा ही स्वरूप ग्रहण कर लिया। पाठशाला के साथ एक पुस्तकालय का शिला-न्यास भी करना था। पाठशाला का चाँदी का ताला था, चाँदी की कुंजी से गांधीजी ने खोला, और ये चाँदी के ताला-कुंजी उन्हें अर्पित किये गये; और शिलान्यास करते समय जो चाँदी की तगारी काम में ली गयी, वह भी उन्हें दी गयी। इन सारी बातों ने गांधीजी को बोलने के लिए अपूर्व सामग्री जुटा दी।

चाँदी के ताले-कुंजी के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा :

'ये ताला-कुंजी और तगारी, जिन्हें मिट्टी का स्पर्श तक नहीं हुआ, मुझे साथ में ले जाना है। भाई धोराजीवाला ने जो सोने की मुहर दी है, वह तो मैं फूलचन्दभाई को सौंप दूँगा। इन दोनों वस्तुओं का अर्थ है। इस देश में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। कौन जानता है उनमें कितना सत्य, कितना त्याग और कितना भाव निहित है। मैं स्वयं तो नहीं जानता। मुझे इतना पता है कि आज भारत में जो अनेक संस्थाएँ चल रही हैं, उनमें से बहुत कम में आत्मा अथवा जीवन है। एक अंग्रेज कवि ने स्वर्ग का वर्णन करते हुए कहा कि स्वर्ग के द्वार पीटर सँभाले बैठा है और उसकी कुंजी सोने की नहीं, लोहे की है। इस

वात का स्पष्टीकरण करते हुए दूसरा कवि कहता है कि स्वर्ग का द्वार खोलना आसान नहीं है; वह सोने की कुंजी से नहीं खुलता, क्योंकि सोना नरम चीज है, लोहा अधिक-से-अधिक सख्त माने जानेवाले धातुओं में से एक हैं, इसलिए लोहे से ही खुल सकता है।

'कोई चीज करना वहुत कठिन हो तो उसके वारे में हम काठियावाड़ में कहते हैं कि लोहे के चने चवाने होंगे। तो ऐसी संस्थाओं की सुव्यवस्था लोहे के चने चवाने के वरावर है। पुस्तकालय की तामीर के लिए चाँदी की तगारी काम नहीं आयेगी, लोहे की ही जरूरत होगी और उसे वन्द रखने के लिए चाँदी के ताले से काम नहीं चलेगा, लोहे का ही चाहिए। इसलिए हमने इन दोनों क्रियाओं का आरम्भ कृत्रिमता से किया है। मैंने तो सिर्फ थोड़ी-सी मिट्टी डालकर नींव रखी, इसकी रचना तो राज ही करेंगे और मन्दिर खोलने की क्रिया शिक्षकों द्वारा ही होगी। पुस्तकालय का अर्थ पुस्तकों का मकान नहीं, पुस्तकें भी नहीं और उसमें केवल जानेवाले और उपयोग न करनेवाले भी नहीं, अन्यथा तो पुस्तक वेचनेवाले भाई चरित्रवान् होने चाहिए। वाल-मन्दिर सुशोभित है, इसमें रुपया भी काफी खर्च किया गया है, इससे क्या वह चल गया ? इसे मजवूत ढंग से चलानेवाले होंगे, इसमें आत्मा होगी तो ही यह चलेगा।

'आम तौर पर ऐसी संस्थाओं के उद्घाटन की क्रिया मुझे पसन्द नहीं है, क्योंकि इनका उद्घाटन करके मुझे क्या करना है? परन्तु इस संस्था का उद्घाटन करना मैंने मंजूर किया, इसका कारण यह है कि इसमें काम करनेवाले पर मेरा विश्वास है। वैसे मैंने आकर यह जो उद्घाटन की क्रिया की, उससे यह मत मानना कि कुछ भला होगा। मैं तो उड़ता पंछी हूँ—आज यहाँ, तो कल अहमदावाद और परसों दिल्ली। फिर भी मेरे नाम का इस्तेमाल करके जितना भला किया जा सके, उतना कराने में मैं सहमत हूँ।

'इस मन्दिर की हस्ती का आधार न तो धनिकों पर है, न वालकों पर और न इस पर कि कोई लाखों सोने की मोहरें दे। उल्टे इतनी मोहरें तो विघ्नकारक वस्तु वन जाय। मैंने अपने अनुभव से देखा है कि जब वहुत आर्थिक सहायता मिली है, तव मेरी प्रवृत्ति में विघ्न आये हैं। जव दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई चल रही थी और इस देश से रुपये की वर्षा हुई, तव वहाँ प्रवृत्ति की शक्ति कहीं चली गयी—जैसे युधिष्ठिर ने 'नरो वा कुञ्जरो वा' कहा, तव उनके रथ का पहिया फँस

गया था, उसी तरह। ईश्वर ने २४ घण्टों की ही सबके लिए व्यवस्था की है अर्थात् आठ घण्टे की मजदूरी से २४ घण्टे के लिए जो चाहिए सो मिल जाता है। इतने से ही सबको सन्तोष मानना चाहिए। इस कारण इस संस्था की आर्थिक सम्पन्नता मैं बिलकुल नहीं चाहता। केवल इस संस्था के पास इतना हो, जिससे संचालक यहाँ प्राण कायम रखकर रह सकें और जरूरत पड़े, तब इसे छोड़ सकें।

'जैसे आर्थिक सम्पन्नता विघ्नकारक है, वैसे कठिनाइयों का अभाव भी बाधक है। जिसे कठिनाई न हो, वह बिल्ली के टोप की तरह होता है। इस टोप को उगाना नहीं पड़ता। वह तो अपने-आप उगता है—जरा भी मेहनत किये बिना। जिस संस्था को बहुत रुपया मिल जाय और पाँच आदमी मिल जायँ, उसकी उत्पत्ति को तो मैं बिल्ली के टोप जैसी उत्पत्ति कहूँ। वह पाँच दिन रहेगी और उस टोप की तरह ही उसका नाश हो जायगा। यह सब मैं कह रहा हूँ, उसका तात्पर्य यह है कि जो भाई यहाँ आये हैं और जिन्होंने इस संस्था के लिए प्राण अर्पण करने की प्रतिज्ञा की है, वे परमात्मा पर आधार रखकर बैठें और जब डूबने जैसा लगे, तब भी श्रद्धावान् रहकर तैरने का प्रयत्न करते ही रहें। नहीं तो निश्चित समझना कि भारत का शाप लगेगा। ऐसा भव्य सुन्दर मकान खोलकर बैठना हमें शोभा नहीं देता। ऐसे मकान राजा-महाराजाओं को शोभा देते हैं, भारत की गरीबी में हरगिज शोभा नहीं देते—यदि हम इसका बदला प्रजा को न दें, यदि इसके संचालकों को यह न लगे कि यह मकान प्रजा को बदला न देता हो, तब तक खाने को दौड़ता है। जैसे जनक राजा महल में रहते हुए भी त्यागी माने गये हैं, वैसे फूलचन्द और उनके साथी त्यागी बनकर इसमें रहें तो इस संस्था का अस्तित्व सार्थक हुआ और मेरा उद्घाटन करना सार्थक हुआ। परन्तु त्याग नाम की चीज उड़ गयी और यहाँ भोग को प्रधानता मिली तो इसका नाश होगा। राष्ट्रीय पाठ-शाला वही है, जिसके द्वारा स्वराज्य ले सकेंगे; वही है, जिसके शिक्षक सब नियमों का पालन करें, त्यागवृत्तिवाले हों, कठिन जीवन बिताते हों।

'वढ़वाण के शहरियों ने इसको छोड़ दिया है, इससे मुझे दुःख होता है। यह स्थिति भारतवर्ष में आज लगभग हरएक संस्था की है। परन्तु संस्था को जब तक चलाना हो, तब तक उसके लिए स्थानीय धन मिल ही जाना चाहिए और संचालकों को भी स्थानीय व्यक्तियों को प्रसन्न रख सकना चाहिए। हमारे जैसे स्वराज्यवादी प्रजा-सेवकों की स्थिति विषम है, क्योंकि

वे सुधारक भी हैं। सुधारक की स्थिति विचित्र हो जाती है, क्योंकि वह वातावरण में प्रवेश नहीं कर सकता और बाहर से जो पोषण मिले, वह ले लेता है और जहाँ से लेना हो, वहाँ से नहीं लेता। नहीं तो रंगूनवाले डॉक्टर का और इस पाठशाला का क्या वास्ता?

'फूलचन्द के अत्यन्त सेवा के विचार शहरी भाई जानते थे, फिर भी उन्होंने पाठशाला में रुपया दिया और अब परित्याग क्यों कर दिया, यह समझ में नहीं आता। मैं चाहता हूँ कि वे मेरे पास आकर सफाई कर लें और मुझसे जो कहना हो, सो कहें। उनके साथ इस चीज की चर्चा करने को मैं तैयार हूँ। मण्डल या फूलचन्द का दोष हो, तो वे बतायें। यदि दोष न हो, तो उनके लिए यह उचित है कि इस संस्था को अपना लें—बच्चे भेजकर और रुपया देकर। मैंने सुना है कि संस्था अन्त्यजों की सेवा करती है, यही एक कारण नहीं था। यह विचार करना चाहिए कि हम जो मुट्ठीभर मनुष्य सेवा कर रहे हैं, उनकी शक्ति प्रजा के साथ चलने की न हो अथवा प्रजा का मन रखने की न हो, तो हमारा क्या होगा।

'राष्ट्रीय पाठशाला चलाने का एक ही आदर्श है। राष्ट्रीय का अर्थ है सरकार के साथ सम्बन्ध नहीं। परन्तु इस समय इतना ही अर्थ नहीं है। राष्ट्रीय का मतलब है राष्ट्र के जीवन का पोषक। राष्ट्रीय संस्था की बुनियाद तो चारित्र्य ही है। आजकल शिक्षा में एक बाढ़ आ रही है। वांकानेर की पाठशाला में ढेरों बालक-बालिकाएँ पढ़ रही हैं, यह मुझे प्रिय लगता है। परन्तु इतना अधूरा लगता है कि इसकी हद बाँधने के लिए शब्द नहीं। इसमें स्वराज्य नहीं है। इसमें देश का कल्याण नहीं है। इसमें धर्म की शिक्षा तो है ही नहीं। मैंने राजा साहब से पूछा: 'शारीरिक शिक्षा देते हैं?' उन्होंने लाचारी बतायी। वांकानेर के शहरी चाहते हैं कि बच्चे कैसे रुपया कमायें। इसे शिक्षा नहीं कहते। इसे शिक्षा का दुरुपयोग कहेंगे। यहाँ जो बच्चे आते हैं, उन्हें आजीविका भले ही मिल जाय, परन्तु शिक्षा का हेतु यह नहीं है कि वह आजीविका पैदा करने-वाले बनाये। इसका हेतु तो यह है कि बच्चों की आत्मा को जाग्रत करे, उसे बाहर लाये और बालकों की आत्मा, शरीर और बुद्धि का विकास करे। हम पहले दोनों को कुचलकर अन्तिम का विकास करें तो हम तो बनिये हो गये। यह कहा जाता है कि वांकानेर की पाठशाला में बहुत

वच्चे भेजे जाते हैं, क्योंकि वहाँ से सौ फी सदी विद्यार्थी परीक्षा में पास होते हैं। यह माप ठीक है, परन्तु वालिश्तभर का है।

'यह वात सच है कि वहाँ शिक्षक अच्छे होंगे, परन्तु जो वच्चे वहाँ भेजे जाते हैं, वे इसलिए नहीं कि शिक्षकों के पास वच्चे नीति सीखते हैं, वल्कि इसलिए कि शिक्षकों की कुशलता के कारण पास हो जायें। इस वालिश्ती माप में से हमें निकल जाना चाहिए और इसीके लिए विद्यापीठ की हस्ती है, और इसीलिए माता-पिताओं से कहता हूँ कि ऐसी पाठशाला को प्रोत्साहन देना। और शिक्षकों से कहता हूँ कि आप अपने ध्येय पर डटे रहना, तपस्या करना और वालकों को अपने चारित्र्य से आकर्षित करते रहना। ऐसा होगा तो मेरा यहाँ आना और इस मकान का उद्घाटन करना सार्थक कहा जा जायगा। प्रभु शिक्षकों को साहस, धीरज और धर्मभान दे, ताकि वे आदर्श से तिलभर भी न हटें।'

इस क्रिया के वाद वच्चों की सूत की मालाएँ स्वीकार करते हुए गांधीजीने किसीका कुरता खोलकर, तो किसीका पाजामा खोलकर, तो किसीके कान पकड़कर या वाल खींचकर वात्सल्य से विनोद किया।

शाम को ७ वजे दरवारगढ़ में गये। वहाँ रंगमहल में दरवार के साथ वातें कीं। महल को खादी से सजाने का अनुरोध किया। ठाकुर साहव की माताजी से मिलने को भी ठाकुर साहव ले गये। वहाँ गांधीजी को सूत के हार पहनाये गये।

अन्त्यजवाड़े में

कुछ धन्य घड़ियाँ अन्त्यजवाड़े में वीतीं। अंध कवि हंसराज वढ़वाण आये हुए थे। उन्होंने वाल-मन्दिर में तो सुनाया ही था, यहाँ भी आ गये थे। आरम्भ में अन्त्यज भाइयों से ही कुछ भजन गाने को कहा गया। एक भक्त ने **'हरिनो मारग छे शूरानो'** अपने तुतलाते और अशुद्ध किन्तु अत्यन्त मधुर उच्चारण से गाया। वह तो हृदय को हिला डालनेवाला था। इसके वाद कवि हंसराज से गाने को कहा गया। उन्होंने प्रसंग के अनुसार ही गाया, जिसका भाव यह था: 'हम मुक्ति की राह पर चल रहे थे, लेकिन ईश्वर को भूल गये, मंजिल पर जाते हुए हम भटक गये। हमने शराव पी, मुर्दा मांस खाया, वीड़ी पी, स्नान नहीं किया, भगवान् का नाम नहीं लिया। अव हम पशु-वल की जड़ काट देंगे,

अन्धसागर की तरफ कदम नहीं रखेंगे, ईश्वर की प्यारी मातृभूमि को सुशोभित करेंगे और इस तरह तुरन्त मंजिल पर पहुँचेंगे।'

गांधीजी ने इस भजन के आधार पर ही अपना उपदेश शुरू किया। स्त्रियों से पूछा, 'भूधर' कौन और अलग करके पूछा, पृथ्वी को धारण करनेवाला कौन? इस पर उत्तर आया, 'भगवान्!' और गांधीजी ने समझाया: 'कवि कहता है कि हम ठीक जगह जा रहे थे कि हमारे पाप ने हमें भटका दिया, परन्तु भूधर को याद करके फिर रास्ते लग जायेंगे तो जल्दी पार लग जायेंगे, ऐसी आशा रखकर हम सब बैठे हैं। तुम भी सीधे रास्ते जा रहे थे कि तुम व्यसन करने लगे, शराब पीने लगे, स्नान नहीं किया, मैले रहे, मांस खाया और भगवान् का नाम नहीं लिया। इसीलिए तुम्हें छूने के लिए समझाने को शास्त्रियों के पास जाता हूँ तो वे मुझसे कहते हैं कि 'देख लिये तुम्हारे भंगी। ऐसे मैले गन्दों को कौन छुए?' तुम ये सब व्यसन छोड़ो, स्वच्छ हो जाओ, तो किसीको उँगली उठाने का मौका ही न मिले।'

आम सभा में

अभी आम सभा तो बाकी ही थी। मालूम होता है, आम सभा का लोगों ने बहिष्कार किया था। आरम्भ में आदमी मुट्ठीभर थे, अन्त में थोड़े बढ़ गये।

उन्हें सम्बोधन करते हुए गांधीजी बोले:

'इस सभा के साथ यहाँ का कार्यक्रम पूरा होता है। परन्तु मैं भाषण करने नहीं आया था। मेरा काम सिर्फ बाल-मन्दिर का उद्घाटन करना था और पुस्तकालय की नींव का शिलान्यास करना था। राष्ट्रीय बाल-मन्दिर इस शहर का भूषण होना चाहिए, परन्तु मैं जानता हूँ कि इस बाल-मन्दिर के विषय में लोगों में मतभेद है। कुछ झगड़ा मेरे पास भी आया था, और मैंने थोड़ा-बहुत 'नवजीवन' में भी लिखा था। शहरियों ने कुछ लिखा था। शिकायत मुझे इस वक्त याद नहीं है। परन्तु इतना कह दूँ कि मुझे लिखनेवाले भाई मौजूद हों और उन्हें मुझसे कुछ कहना हो, तो वे भले ही मुझसे मिलें।

'परन्तु आपसे एक सिफारिश करनी है। आप इस शिक्षा-मण्डल को ऐसी-वैसी सभा न समझें। नये तजुर्बों से और नवीन प्रयोगों से चौंकिए नहीं। यह प्रयोग तो अन्त्यजों को पाठशाला में भरती करने का है।

सरकारी पाठशाला में तो उन्हें भरती होने का हक है ही। इसीलिए कवि ने सुनाया कि जिस भारत में भगवान् क्रीड़ा करता हो, वह परतन्त्र कैसे है ? फिर भी आज स्थिति यह है कि इस देश की दयाजनक दशा हो गयी है। जिस वस्तु को आदर्श मानते हों, उस पर अमल करना चाहते हैं। हमें स्वतन्त्र ढंग से निर्णय करना है कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म में रह सकती है या नहीं ? वह हिन्दू-धर्म का अंग है या नहीं ? जब तक अस्पृश्यता का मैल हिन्दू-धर्म में होगा, तब तक भारत के लिए न स्वराज्य है, न सुख या शान्ति। कुछ लोग धनवान् बनकर बैठ जायँ और कुछ के पास महल हों और इसलिए मान लें कि हम सब सुखी हैं, तो यह भयानक स्थिति है। भारत के दसवें भाग को मुश्किल से सूखी रोटी और मैला नमक मिलता है। हमें अपनी कंगाल हालत की कल्पना नहीं है। हम जैसा करेंगे, वैसा भरेंगे। हमारी आज की दयाजनक स्थिति हमारे स्थूल और सूक्ष्म पापों का परिणाम है। इसीलिए आपको कष्ट भोगने पड़ते हैं और उसके कारण देश इतना कंगाल है। जिस धर्म में एक अंग का स्पर्श तिरस्कृत हो, उसकी क्या हालत होगी ? किसी भी धर्म में यह लिखा हो कि मनुष्य का त्याग किया जाय, तो वह दया का पात्र नहीं हो सकता। जन्म से किसीको अछूत मानने जैसा दूसरा पाप नहीं हो सकता। चींटियों को खिलाना अथवा पिंजरापोल बनाना ईश्वर का कहा हुआ काम नहीं है, फिर भी हम इसे करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से हमें पुण्य मिलता है। परन्तु हम किसी जाति का तिरस्कार करें, तो उस पुण्य की कोई कीमत नहीं। रिवाज के लिए गायत्री का पाठ करूँ तो इससे कोई आत्मदर्शन थोड़े ही हो जायगा ? कोई भी जब ज्ञानपूर्वक, जान-बूझकर करे, तभी उसका फल मिले। बिना विचारे किये का कोई फल नहीं मिलता। इसलिए आप अन्त्यजों का बहिष्कार न करना। मैं अभी-अभी अछूत मुहल्ले में होकर आया हूँ। वहाँ बैठना मुझे बहुत अच्छा लगा। क्योंकि वहाँ बैठने में मैं अपना कर्तव्य कर रहा था। यहाँ बैठने के बारे में ईश्वर मुझसे जरूर पूछेगा कि तू वढ़वाण के शहरियों के लिए कोई नयी बात करने गया था ? परन्तु आपको क्या नयी बात सुनाऊँ ? कौन-सा नया चमत्कार बताऊँ ? जिससे आप मोहित हों और अपना धर्म पालन करें। मैं तो आपसे इतना ही कहता हूँ कि आज जिसे धर्म समझ रहे हैं, उसमें पाप है और उसे आप छोड़ें। हाँ, आपका जी न मानता हो तो यह कहने का कोई अर्थ नहीं कि आप मेरे लिए करें, क्योंकि इसमें आपको क्या लाभ

है ? आप इस पर खूब विचार करना। और मेरा कहना सच लगे, तो अन्त्यजों की सेवा करना। मैं यह भी नहीं कहता कि आप उन्हें छू लें। इतना ही चाहता हूँ कि आप उन्हें अछूत न मानें।

'इस पाठशाला को बाहर से मदद मिलती है, यह मुझे खटकता है। कोई भी संस्था बाहरी सहायता से चले, यह मुझे खटकेगा। भारत में अलग-अलग स्थानों में कुछ ऐसे मनुष्य मौजूद हैं, जो कुछ बातों की प्रतिज्ञा लेकर बैठे हैं। इसीसे ऐसी संस्थाएँ चलती हैं। प्रतिज्ञा लेनेवाले को चाहे जो कुर्बानी देकर उसका पालन करना चाहिए।

'यहाँ खादी की बातें न करूँ तो कैसे काम चले ? २६ लाख की आबादी में अधिकांश किसान हैं। वे सुखी नहीं हैं। मर्जी के माफिक मेह नहीं बरसता। जमीन ऐसी नहीं कि जिसमें इतना काम हो कि बारहों महीने चले और फसल पैदा हो। कुछ अच्छे मकान बन गये होंगे, परन्तु उनसे मोहित न होइए। इसमें आबादी नहीं है, बरबादी है। सन् '१६ में हिन्दू-विश्वविद्यालय के उद्घाटन के समय मैंने उद्गार प्रकट किये थे, जो भयंकर थे। महल बनते देखता हूँ तो मेरा हृदय काँप जाता है, क्योंकि ये गरीबों को कुचलकर बनाये जाते हैं। भारत में उल्टा न्याय है। प्रतिवर्ष ६० करोड़ रुपया विदेश चला जाता है। यह रुपया हम किसानों से छीनकर भेजते हैं। मध्यमवर्ग दलाली करता है। जितने करोड़ रुपये बाहर भेजते हैं, उसमें से ५ प्रतिशत कमीशन मिलता है और उससे महल बनते हैं। परन्तु भारत के गाँव बरबाद होते जा रहे हैं। अंग्रेज मंत्रियों ने भी स्वीकार किया है कि भारत देश गरीब होता जा रहा है। हमें, जो शहरों में बसते हैं, पता नहीं है कि ऐसा होने से बड़ा दुःख होनेवाला है। यह कब तक चलेगा ? आसमान फटे तो कितने पैवन्द लगायेंगे ? जब यह हालत देखता हूँ तो मुझे लगता है कि स्वदेशी का अर्थ खादी और चरखा है। इन दो प्रवृत्तियों पर हम काम करने लगें तो गाँव ताजा हो जायँ। अभी तो अच्छे-अच्छे मनुष्यों से निराशा के वचन सुनता हूँ।

'हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात में आपको लगाना नहीं चाहता।

'स्थानीय सहानुभूति के बिना कोई संस्था नहीं चलती, यह बात सच है। वढ़वाण के शहरी इसमें शामिल न हों, तो स्थिति विषम हो जाय। इस समय भारत में ऐसी ही विषम स्थिति है। परन्तु कोई भी संस्था केवल रुपये के अभाव में बन्द नहीं रहनी चाहिए। मैं आपको अपना ही उदाहरण दूँ। जब मैं हिन्दुस्तान में आया, तब अहमदाबाद जाकर वहाँ के

शहरियों से पूछकर, उन्हें अपने विचार वताकर, उनसे यह स्वीकार कराकर कि वे मदद देंगे, मैंने अपना आश्रम वहाँ स्थापित किया था। अन्त्यजों के वारे में भी वात हुई थी। मैंने कहा था कि मैं तो किसी विधर्मी के साथ भी भेद नहीं करूँगा और अन्त्यजों को तो जरूर लूंगा। उन्होंने कहा था: 'ऐसे अन्त्यज आपको नहीं मिलेंगे।' मैं गया, रहा, मुझे वरतन-भाँड़े मिले, परन्तु रुपया नहीं मिला था। परन्तु मैंने तो विश्वास रखा। महीनों वीतने पर दूदाभाई आये—ठक्कर का पत्र लेकर। उन्हें मैंने स्थान दिया तो अहमदावाद के भाइयों ने मेरा वहिष्कार करने का निश्चय किया। जिस कुएँ से मैं पानी भरता था, उस कुएँ के लोगों ने मेरा वहिष्कार कर दिया, परन्तु मैंने उनसे कहा: 'कुछ भी कर लो, मैं सहन करूँगा, परन्तु अहमदावाद से नहीं जाऊँगा, ईश्वर को मुझे रखना होगा तो वह रखेगा, कुछ भी नहीं होगा, तो अछूत मुहल्ले में जाकर रहूँगा। मैं तो अपनी मान-मर्यादा समझनेवाला आदमी हूँ, तुम रोष करो, इसमें कोई अपमान थोड़े ही समझूंगा ?' पाँच दिन के वाद कुएँवाले पिघले। दूदाभाई को कुएँ से पानी भरने दिया।

'मगर रुपया ? रुपया जिस दिन विलकुल नहीं था, उसी दिन ईश्वर अपने हाथ से मुझे रुपया दे गया। एक दिन एक मोटर आकर खड़ी हुई। उसमें से एक गृहस्थ ने, जिनको मैं कभी जानता नहीं था, आकर कहा: 'मुझे १३००० रुपया देने की जरूरत है, लेंगे ?' दूसरे दिन वे १३००० के नोट देकर चले गये। वह सत्याग्रह आश्रम आज मौजूद है। मुझे तो अपने सत्याग्रह पर डटे रहकर अहमदावाद में वने रहना चाहिए था। आज अहमदावाद के शहरियों ने मेरा वहिष्कार नहीं किया हुआ है, वे सव मेरे पास आते हैं और मुझसे सवकी सहानुभूति है। इसका कारण यह है कि मैंने उन्हें प्रेम की जंजीर में वाँध लिया था, और मैंने मान रखा था कि मुझे अपने प्रेम का वदला अहमदावाद से ही मिलना चाहिए। यह विश्वास सही निकला और मैं दृढ़ासन होकर वैठ गया।

'फूलचन्द ऐसे मनुष्य हैं, जो मेरी तरह दृढ़ासन होकर वैठें। ये वढ़वाण किसलिए छोड़ें ? वहाँ वैठे-वैठे इन्हें भूखों मरना पड़े तो भी इन्हें हटना नहीं चाहिए। वे कुछ रोप से करें, दुराग्रह से करें, आपको ताने मारें तो यह पाप है; परन्तु यदि इनके व्यवहार में प्रेम होगा तो आपको ये पिघला लेंगे। इनके व्यवहार में क्या है सो ईश्वर जाने, जैसा होगा वैसा परिणाम आयेगा।'

हंसराज के भजन की बापू ने फरमाइश कर दी :

हरि आवो रे, प्रभुजी पधारो रे, तमारे घरे अंधारुं घोर
घरे अंधारुं घोर खूणे खूणे खातर पाड़े चोर··· हरि०
श्वास जतां दरबार बनीने रह्या चलावी दोर
आप विना ये उद्धत केरो कोण उतारे तोर··· हरि०
राज लूटाये, साज लूटाये, लूटाये स्वजन समाज
रैयतनी घणियात करीने, क्यां महालो महाराज··· हरि०
देह पूरीनी दिव्य द्वारिका आज दीसे छे डूल
मन पवन प्रलयमां वधुंय मेळवी देशे धूळ··· हरि०
मोह सुरानुं पान करीने झगड़े जादव कूळ
जदुपति जो नहि आवो तो जाशे जड़ामूळ··· हरि०
उर सिंहासन सूनां पड्यां ने सूनां हृदय मंदिर
त्रिभुवनना तेज पधारो टाळवाने तिमिर··· हरि०
घर बांधीने शिद बेठा जो, भमवुं'तुं घर बहार
अने रखडु थईने रमवुं'तुं तो शिद मांड्यो संसार··· हरि०
पुण्य प्रज्ञा पटराणी तमारी करी रही कल्पान्त
ज्ञान गुरुनुं कह्युं नहि माने, माने नहि वेदान्त··· हरि०
आवो पूज्य मुख मोरली धारे मस्तके मुकुट मोर
ओळखीता पर आवा न थइए काळजाना कठोर... हरि०

सभा में से दो व्यक्तियों ने खानगी में स्पष्टीकरण करने की मांग की थी। उन्हें पूरी तरह सन्तोष देने का आश्वासन दिलाकर गांधीजी ने सभा बरखास्त की और दोनों सज्जनों के साथ रात के लगभग ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तक बातें कीं। आशा है, इस बातचीत का परिणाम अच्छा निकलेगा।

[पोरबन्दर, वांकानेर और वढ़वाण-यात्रा के सिलसिले में महादेवभाई ने 'नवजीवन' में जो लिखा है, वह आगे दिया जाता है :]

राजकोट में थे, तब वहाँ पोरबन्दर के राणासाहब का निमन्त्रण भी आया ही था। १८ तारीख को रात में पोरबन्दर की गाड़ी पकड़ी, १९ तारीख पोरबन्दर में बितायी, २० तारीख वांकानेर में और २१ तारीख वढ़वाण में। प्रत्येक स्थान पर राज्य की तरफ से सत्कार और प्रेमभाव तो अनुभव हुआ ही और एक या दूसरी तरह से गांधीजी राज्य

के ही मेहमान थे। 'एक या दूसरी तरह' कहता हूँ, क्योंकि हर जगह अलग हालात थे। राजकोट के ठाकुर साहव ने तो मानो पहल की थी, इसलिए स्वयं ही स्टेशन पर लेने आये थे और पहुँचाने भी खुद ही आये थे। इनके प्रत्येक अवसर पर गांधीजी के साथ रहने में क्षम्य अभिमान मालूम हो रहा था। पोरवन्दर में राणासाहव ने अपनी जगह दीवान साहव को स्वागत करने भेजा था और गांधीजी को राज्य के अतिथिगृह में ठहराया था और राजमहल में भोजन पर बुलाया था। वांकानेर में तो राजा साहव ने हद ही कर दी। वे राजकोट से वांकानेर के आधे रास्ते गांधीजी को लेने आये थे! वढ़वाण के ठाकुर साहव के यहाँ तो उनके भाई का विवाह था, इसलिए अत्यन्त व्यस्त होने पर भी उन्होंने गांधीजी को राजमहल में निमन्त्रित किया था।

सवके साथ गांधीजी की खूब गुफ्तगू हुई। सब जगह वात तो खादी, अस्पृश्यता और मद्य-निषेध की ही करनी थी। यह कहा जा सकता है कि राजकोट के ठाकुर साहव से मद्य-निषेध के वारे में वहुत अनुनय-विनय करना पड़ा। इस मामले में इनकी वृत्ति विचित्र है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की वे दलील देते हैं, परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि राज्य के प्रत्येक नागरिक का मद्य-निषेध के वारे में मत लिया जाय, तो ९९ प्रति सैकड़ा लोग शराव का कर वन्द करने की माँग करें। राजकोट के ठाकुर साहव का शिक्षा-प्रेम एक सिपाही की प्रामाणिकता के साथ कुछ अलगपन और कर्कशता को सूचित करता है। उनमें यह वृत्ति है कि यह करना वह करना और फिर दुनिया की परवाह न करना, इसलिए प्रजा को इनके साथ सावधानी से काम लेना होगा। पोरवन्दर के राणा साहव का सौम्य चेहरा इससे उल्टी ही वातों का भास कराता है। इस सौम्यता में शायद कुछ-न-कुछ भीरुता भी हो। गांधीजी को उन्होंने अपने राज्य के छाया गाँव के हाथ-कताई के कम्वल दिये और अपने खादी-प्रेम का चिह्न प्रकट किया। वे खादी का उपयोग भी काफी करते मालूम होते हैं, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपने सारे विभागों में खादी प्रचलित करेंगे या नहीं। वांकानेर के राजा साहव की मिलनसारिता मोहक है, तमाम राजाओं में वही एक ऐसे दिखाई दिये, जो ऐसे लगते हैं कि काठियावाड़ की भूमि के और काठियावाड़ के लोगों में से ही हों। उनकी वाणी में काठियावाड़ के किसान की सादगी और मिठास है। किसीको भी यह प्रतीत हुए विना नहीं रहता कि वे सवसे अधिक प्रजा के आदमी हैं। जिस सरलता

से वे अछूत मुहल्ले में गांधीजी के साथ गये और अन्त्यज भी उनके साथ जिस खुलेपन से बातें करते थे, वह इस बात की गवाही देती है। ऐसे राजा चाहें तो घड़ीभर में नया युग ला सकते हैं। वढ़वाण के ठाकुर साहब को बहुत देखा भी नहीं और वे बहुत कम बोलनेवाले हैं, इसलिए उनसे बहुत सुना भी नहीं। परन्तु उनके सत्कार में एक चीज ध्यान खींचनेवाली थी। उन्होंने और उनके भाइयों ने गांधीजी को विदा देते समय सूत के हार पहनाये।

२५-२-'२५

वल्लभभाई के पुत्र के विवाह का प्रसंग।

वर-कन्या को आशीर्वाद देते हुए गांधीजी बोले :

'प्रार्थना का समय आशीर्वाद देने के लिए उपयुक्त है। इससे पहले दो अवसर ऐसे थे, जिनमें विवाह आश्रम में ही पले हुए बच्चों के थे। वे प्रसंग भी हममें से बहुत नहीं समझ सके। आश्रम में जो आयें, बालक या विवाहित, वे सब ब्रह्मचर्य का पालन चाहते हैं; और जिस आश्रम का इरादा सबको ब्रह्मचर्य के पालन की प्रेरणा देना है, वहाँ विवाह कैसे हो, ऐसा प्रश्न सबके मन में उठना स्वाभाविक है। फिर भी तीन विवाह करने पड़े, क्योंकि आश्रम में नियम कड़े रखने पर उनके पालन में हम असमर्थ सिद्ध हुए। ब्रह्मचर्य की शिक्षा बच्चों को देना आसान बात नहीं है। बड़े भी ब्रह्मचर्य का पालन अच्छी तरह कर सकते हों, सो बात नहीं है। जो मनुष्य किसी ध्येय को पूरा करना चाहे, उसके मन में आतुरता होनी चाहिए। यह चीज इतनी बड़ी है कि इसमें ज्यों-ज्यों घुसता जाता हूँ, त्यों-त्यों वह भयानक लगती है। और उसमें सौन्दर्य भी देखता जाता हूँ और रस के प्याले पी रहा हूँ।

'परन्तु आश्रम में बालकों को रखकर और नवयुवकों को रखकर उन पर बलात्कार नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि उनका विवाह अनिवार्य हो जाय। ऐसे तीन प्रसंग आये हैं। इसलिए इसमें मन को मनाने का पहला मार्ग ढूंढ़ा। विवाह-विधि आश्रम की मर्यादा के बाहर होनी चाहिए। जगत् और आत्मा को धोखा न देकर विवाह कर लेना चाहिए। और फिर आश्रम में बैठकर सारे आश्रम का आशीर्वाद लिया जाय।

'यह विवाह करना ही हो तो वह भोगवृत्ति के पोषण के लिए नहीं, परन्तु संयम के लिए है, यह विवाहितों को भी बताया जाय और आश्रम-

वासियों को भी बताया जाय। आश्रमवासी को यह तो हरगिज इच्छा नहीं होनी चाहिए कि विवाह की नौबत जरूर आयेगी। परन्तु वह अनिवार्य हो जाय तो दूसरी बात है। यह अवसर तो आत्मा का परमात्मा के साथ का है। इसलिए अंग्रेजी में आत्मा को नारी-जाति कहा है। और जयदेव ने आत्मा को नारी कल्पित करके यह कहा कि वह परमात्मा के साथ प्रणय करती है। ऐसे ईश्वरीय विवाह के बाद जगत् में कुछ करने को रह नहीं जाता। परन्तु ऐसा मेल न हो तो फिर विवाह का प्रसंग आये तो भले ही आ जाय। इसलिए इस चौथे अवसर पर सबके सामने बताना मेरे लिए जरूरी है कि तुम्हारा विवाह भोग के लिए नहीं है, त्याग के लिए है। तुम आज निश्चय करते हो कि रति-सुख लेना हो तो उसमें भी मर्यादा का पालन करना है। हममें अव्यभिचार का धर्म केवल स्त्री के लिए ही माना गया है। यद्यपि विवाह-संस्कार में अन्तिम चार ग्रास खिलाते हैं, तब अपने मांस, आत्मा, अस्थि का मेल है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि पुरुष के लिए हम ऐसी कल्पना नहीं करते। इसलिए मुझे बताना होगा कि मर्यादा में रहना और समझ लेना कि रति-सुख केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही है।

'आज के भयंकर काल में एक सन्तान पैदा करने का भी किसे अधिकार है? भारत में असंख्य लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और यूरोप में भी ऐसे बहुत हैं। रोमन कैथलिक संप्रदाय में प्रौढ़ पुरुष और स्त्रियाँ मौजूद हैं, जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। १८ वर्ष की लड़की गृहस्थ आश्रम में से निकल पड़ती है और फिर ब्रह्मचर्य का अखण्डित पालन करती है। ऐसे मठ भी हैं, जहाँ ऐसे स्त्री-पुरुष रहते हैं। इस विषम समय में भारत में सन्तान-उत्पत्ति का अधिकार नहीं है। जब तक वीर्यवान् नहीं हो जाते, तब तक यह अधिकार नहीं है।

'आश्रम में विवाह हो, यह इच्छा मेरी इस कारण थी कि वहाँ पुरोहित सारी क्रिया समझाकर करे तो यह समझ में आ जाय कि क्रिया में भोग नहीं, संयम ही भरा है। इसलिए तुम दोनों इस प्रसंग का विचार करना और याद रखना। मैंने अपने ऊपर एक ही जिम्मेदारी रखी है। इसके लिए मुझे पश्चात्ताप तो होगा ही नहीं। शुभ परिणाम आयेगा ही। वल्लभभाई के साथ मेरा सम्बन्ध जानते हो। उन्होंने यह विवाह मेरे हाथ से कराने का आग्रह किया सो अपनी इच्छा से। काशीभाई भी अनुकूल हो गये। खर्च करना क्या विवाह का अंग है? तपस्या अंग है।

परन्तु दूसरी जगह खर्च किये विना विवाह नहीं होता। वरात वगैरह सव कुछ वन्द करके केवल विवाह-विधि करना असम्भव हो जाता। इसलिए यहीं विधि हो गयी। जो वीज वोया जाता है, उसका वृक्ष होगा। परन्तु उस वीज के पोषण के लिए तुम अपने माता-पिता को सुशोभित करो और संसार के प्रलोभनों का त्याग करो। खर्च न करने में रुपया वचाने की वृत्ति नहीं थी। रुपया न वखेरने की भी नहीं थी। लोभ की तो दृष्टि ही नहीं थी। परन्तु ऐसे खर्च का भार संसार पर--पाटीदार संसार पर--पड़ता है; इससे निवृत्त रहने का विचार किया था।

'डाह्याभाई को वहुत समय से जानता हूँ। यशोदा को भी जानता हूँ। मेरा खयाल है कि दोनों में विवाह को संयममय वनाकर सुशोभित करने की शक्ति है। आश्रमवासियों को जो कहना है, वह जितना चाहिए उससे अधिक वार नहीं कहा जाता। मैं ऐसे प्रसंग ढूँढ़ना नहीं चाहता। यह मेरा काम नहीं है। फिर भी ऐसे प्रसंग आ जायँ तो ऐसा करने से केवल संयम की ही वृद्धि हो सकती है। इसमें आभास भी हो सकता है। तो भी प्रसंग आने पर उसके वश में न हों, यह मैं नहीं चाहता। फिर भी यहाँ के सव लोगों के वारे में चाहूँगा कि तुम सव ऐसे अवसरों से अधिक संयम सीखो। इसीलिए ऐसे मौके पर सव इकट्ठे होते हैं। हम प्रभु से प्रार्थना करें कि हमारी भावनाएँ पूर्ण हों कि यहाँ ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ उत्पन्न हों, जिनका ऐसे मामलों में ध्यान ही न रहे, जिनका मन वच्चे पैदा करने में न लगे, जो दुनिया के वच्चों को अपने समझें और जो दुःखी वालकों की सेवा करने में ही अपना समय दें। डाह्याभाई और यशोदा को स्वतन्त्र रूप में विचार आने ही चाहिए कि इनकी जिम्मे-दारी कितनी वढ़ गयी है। ऐसा लगता है कि आज तो वे स्वतन्त्रता खो वैठे हैं। परन्तु इसमें सौन्दर्य भी हो सकता है। वे सुखी हों, संयमी हों, त्याग-वृत्ति पैदा करें और माता-पिता और हमको सुशोभित करें, ताकि किसीको ऐसा कहने का मौका न आये कि आश्रम में ऐसा प्रसंग कैसे आया?'

२६-२-'२५

डॉ० प्राणजीवनदास महेता के पुत्र की शादी के वाद उसे आशीर्वाद देते हुए गांधीजी ने कहा :

'हम सव ईश्वर का उपकार मानें कि किया हुआ संकल्प सफल हो। दोनों दीर्घायु हों, अच्छे रहें, तुम्हारे सुख में वृद्धि हो। तुम धर्मपरायण वनो और केवल ईश्वर का डर तुम दोनों के मन में रहे। जो प्रतिज्ञा

सात कदम उठाते समय चंपा ने ली है, उसका पालन पूरी तरह हो सके तो किसी भी दिन न पत्नी को कोई दुःख हो और न पति को। इन दोनों ने एक-दूसरे से कहा : 'तेरा मांस, अस्थि, चमड़ी और प्राणों के साथ मेरे मिले हुए हैं।' यह भावना अत्यन्त शुद्ध है। ये दोनों बालक यह भावना याद रखें। दोनों एक-दूसरे में ओतप्रोत होकर रहें। स्वेच्छाचारी न बनें। संयमी बनें और विवाह का उपयोग भोग भोगने के लिए नहीं, परन्तु भोग का त्याग करने के लिए करें। कुत्ता जैसे जूठन में भटकता है, वैसे मन अनेक जगह भटकता है। तुम्हारे मन ऐसे न बनें। स्त्री माने कि मैं एक ही पुरुष से वरी हुई हूँ, और पुरुष माने कि मैं एक ही स्त्री से वरा हुआ हूँ। तुम दोनों सेवाधर्म सीखो। तुम सबने उपवास किये हैं। शास्त्रों में पवित्रता की बात कही गयी है। शास्त्र नहीं कहते कि अब तुम भोग भोगो। यह कहा कि उपवास करना। गणपति पूजा करने को कहा। अच्छे भावों से मिलो। भोग के लिए नहीं, सेवा के लिए मिलो। प्रातःकाल उठकर तुम इसीके चिन्तन में दिन बिताओ।'

२७-२-'२५

¶ एस० वी० बापट को पत्र : 'आपका पत्र मिला। जिसके पास अधिक हो, वह अधिक लालसा रखता है और परिणामस्वरूप अधिक खोता है। मेहरबानी करके मुझे माफ करें।'

दिल्ली

२८-२-'२५

डॉ० मोकरवेर को लिखा :

¶ 'आपके पत्र के लिए धन्यवाद। सत्याग्रह और असहयोग में मेरा विश्वास पहले जितना ही है। मैं स्वयं आज भी असहयोग ही कर रहा हूँ, और हिन्दुस्तान में दूसरे हजारों स्त्री-पुरुष भी ऐसा ही कर रहे हैं। मुझसे भिन्न मत रखनेवालों के साथ मैंने जो समझौता किया है, उसका इतना ही अर्थ है कि असहयोग-आन्दोलन को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में अभी मुल्तवी रखा जाय। इस स्थगन के फलस्वरूप देश की विधान-सभाओं में जाने की इच्छा रखनेवालों को ऐसा करने की स्वतन्त्रता मिलती है।'

●

परिशिष्ट : १

ये पवित्र सप्ताह

१. तप की महिमा

[तृतीय खण्ड में इसके पहले के तीन अंश गये हुए हैं। यह चौथा अंश है।]

हिन्दू-धर्म में पग-पग पर तप है । पार्वती को शंकर चाहिए तो वह तप करे । शिव से भूल हुई तो उन्होंने तप किया । विश्वामित्र तो तप की मूर्ति ही थे । राम वन में गये तो भरत ने योगारूढ़ होकर घोर तपस्या शुरू कर दी और शरीर को निचोड़ डाला ।

ईश्वर और किसी तरह मनुष्य की परीक्षा ही नहीं ले सकता । यदि आत्मा देह से भिन्न है तो देह को कष्ट देने पर भी आत्मा प्रसन्न रहेगी । अन्न शरीर की खुराक है, ज्ञान और चिन्तन आत्मा का आहार है । यह चीज प्रसंगोपात्त प्रत्येक को अपने लिए सिद्ध करनी होती है ।

परन्तु यदि तपादि के साथ श्रद्धा, भक्ति, नम्रता न हो तो तप मिथ्या कष्ट है । वह दम्भ भी हो सकता है । ऐसे तपस्वी की अपेक्षा सुखपूर्वक खानेवाले प्रभुभक्त हजारगुना अच्छे हैं ।

मेरे तप की कथा लिखने जितनी आज मेरी शक्ति नहीं; मगर इतना कह दूँ कि इस तप के विना मेरा जीना असम्भव था । अब मेरे भाग्य में फिर से तूफानी समुद्र में छलाँग लगाना है। प्रभु, मुझे दीन जानकर तू तारना ।

ता० ८-१०-'२४, नवजीवन

मोहनदास गांधी

परिशिष्ट : २*

अहिंसा और असहयोग

१. संयुक्त वक्तव्य

नीचे लिखा वक्तव्य कलकत्ते में ता० ६ नवम्बर को गांधीजी, देशबन्धु और पण्डित मोतीलालजी के हस्ताक्षरों से प्रकाशित किया गया था :

चूंकि भारत के प्रत्येक दल का ध्येय स्वराज्य है, फिर भी विरोधी दिशाओं में काम करते दिखाई देनेवाले दलों में देश बँट गया है; चूंकि ऐसे परस्पर-विरोधी कार्य जनता की स्वराज्य-प्राप्ति की दिशा में प्रगति को पीछे हटाते हैं; चूंकि यथासम्भव ऐसे प्रत्येक दल को कांग्रेस में एक ही छत्र के नीचे इकट्ठा करना इष्ट प्रतीत होता है; चूंकि कांग्रेस में ही दो दल हो गये हैं और सामान्य ध्येय को आगे बढ़ाने के हेतु से इन दोनों दलों को फिर से एकत्र करना आवश्यक है; चूंकि गवर्नर जनरल की मंजूरी से बंगाल की स्थानीय सरकार ने दमन-नीति शुरू कर दी है; चूंकि नीचे हस्ताक्षर करनेवालों के मतानुसार यह दमन-नीति वास्तव में किसी हिंसावादी दल को ध्यान में रखकर नहीं, परन्तु बंगाल के स्वराज्यदल अर्थात् वैधानिक और नीतिपूर्वक होनेवाले आन्दोलन के विरुद्ध अपनायी गयी है; और चूंकि इस दमन-नीति के विरुद्ध जनता का संयुक्त बल लगा देने के लिए प्रत्येक दल का सहयोग माँगना और प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है; इसलिए हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रत्येक दल और अन्त में बेलगाम-कांग्रेस की स्वीकृति के लिए नीचे लिखी सिफारिश करते हैं :

भारत से बाहर के कपड़े पहनने या काम में लेने की मनाई-सम्बन्धी मामलों के सिवा असहयोग का सारा कार्यक्रम सार्वजनिक कार्यक्रम के रूप में कांग्रेस स्थगित कर दे ।

---

* देखिए पृष्ठ ५६ तथा ६२ ।

कांग्रेस खास तौर पर यह निश्चय करे कि कांग्रेस के अलग-अलग विभागों का काम कांग्रेस के भिन्न-भिन्न पक्ष जैसा उन्हें उचित प्रतीत हो उस ढंग से करें; और कातने-बुनने और हाथ-कती खादी के प्रचार में आवश्यक क्रियाओं का प्रसार करने और अलग-अलग जातियों—खास कर हिन्दू-मुसलमानों—के बीच एकता बढ़ाने और हिन्दू अपने में से अस्पृश्यता दूर करने का काम कांग्रेस में रहकर प्रत्येक पक्ष आगे बढ़ाये; कांग्रेस के संविधान के एक अंग के रूप में कांग्रेस की तरफ से स्वराज्यदल बड़े और प्रान्तीय विधान-मण्डलों का काम करे; इन कामों के लिए स्वराज्य-दल अपने नियम बना ले तथा कोष इकट्ठा करे और उसका प्रबन्ध करे।

कपड़े के मामले में भारत को स्वयंपूर्ण बनाने के लिए सार्वजनिक कताई की जरूरत अनुभव से स्पष्ट दिखाई देती है; और आम लोगों और कांग्रेस में काम करनेवाले स्त्री-पुरुषों के बीच स्पष्ट और स्थायी एकता स्थापित करने का यही एकमात्र साधन है; इसलिए हाथ-कताई और उसकी पैदावार को लोकप्रिय बनाने के लिए कांग्रेस संविधान की सातवीं धारा को हटाकर उसके बजाय नीचे लिखी धारा रखी जाय :

कांग्रेस की किसी भी समिति या संस्था के सदस्य ऐसे मनुष्य नहीं रह सकते, जो अठारह वर्ष से कम उम्र के हों और जो राजनैतिक तथा कांग्रेस-सम्बन्धी काम के समय अथवा कांग्रेस का कार्य करते हुए हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी न पहनते हों और हर महीने अपने हाथ का काता हुआ समान बटवाला दो हजार गज सूत का चन्दा न देते हों—हाँ, बीमारी, अनिच्छा अथवा ऐसे ही किसी कारण से इतना ही सूत किसी और का काता हुआ हो सकता है ।

मो० क० गांधी
चित्तरंजन दास
मोतीलाल नेहरू

ता० १६-११-१९२४, नवजीवन

२. प्रेमपन्थ

एक मित्र मुझसे कहते हैं कि मैं स्वराज्यवादियों, नरम दलवालों और अन्यों का प्रेम सम्पादन करने के प्रयास में अपरिवर्तनवादियों को

भूल गया हूँ, और अपरिवर्तनवादी पक्ष मुझमें हो रहे परिवर्तनों को देखकर स्तब्ध हो गया है। वही मित्र अपरिवर्तनवादी के दृष्टि-विन्दु से मेरे विचार पेश करके मेरे रवैये में दीखनेवाले रूपान्तर का स्पष्टीकरण करने को मुझसे कहते हैं। और बम्बई में कारपोरेशन के अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में किये गये भाषण के भीतर उल्लिखित असहयोग अथवा सत्याग्रह के सौम्य स्वरूप की भी सम्पूर्ण व्याख्या चाहते हैं।

मेरे मूल विचार ज्यों-के-त्यों हैं, यह कहकर पहले ही मैं थोड़ी-सी कठिनाई तो दूर कर दूं। अहिंसात्मक असहयोग और उसमें समाये हुए सब बहिष्कारों पर मेरी वैसी ही अचल श्रद्धा है। परन्तु जो वस्तु मैं जुहू में नहीं देख सका, वह मैं आज दीपक की तरह साफ देख रहा हूँ कि सारे देश ने अहिंसा का मर्म नहीं समझा और इसलिए जिस प्रकार का असहयोग उसके सामने रखा गया, उसे भी वह नहीं समझ सका।

इसलिए मैं यह भी साफ देख रहा हूँ कि अहिंसा के मुख्य सिद्धान्त के विना केवल असहयोग को कायम रखने में देश की हानि ही है। देश को भिन्न-भिन्न दलों में बाँटकर उसने इतने समय में नुकसान कर दिया है। ऐसे हालात में राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में असहयोग को अभी तो स्थगित रखना ही होगा। असहयोग का मूल सत्याग्रह में है और सत्याग्रह का अर्थ है प्रेम। प्रेम का तत्त्व—फिर उसे आकर्षण-शक्ति कहिये, नैसर्गिक एकता कहिये अथवा संयुक्तता कहिये—संसार पर अधिकार किये हुए है। मृत्यु के पंजे में फँसा हुआ होने पर भी जीव जाग्रत रहता है। चारों ओर निरन्तर हो रहा विनाश ब्रह्माण्ड के अस्तित्व को रोक नहीं सकता। असत्य पर सत्य विजयी सिद्ध होता है। प्रेम द्वेष की पराजय करता है। परमेश्वर सदा शैतान को वश में करता है।

मैंने अपने मन में जिस असहयोग की कल्पना की थी, वह विखरी हुई शक्तियों को इकट्ठा करने के लिए था। कांग्रेस में पड़ी हुई दरारों ने, उससे भी अधिक हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों ने असहयोग को फूट पैदा करनेवाला तत्त्व सावित कर दिया है। इसलिए मेरे वास्ते तो यह मार्ग रह गया है कि मैं स्वयं पूर्ण रूप से नम्र वनकर अपना आग्रह छोड़ दूं और असहयोग को मुल्तवी करने की सलाह देकर उसके सौम्य स्वरूप का अनुभव कराऊँ। ऐसा करने में मुझे अपरिवर्तनवादियों को रिझाने की जरूरत नहीं। वे

अहिंसा और उसका गूढ़ार्थ समझने का दावा करते हैं । वे और सब बातों को एक तरफ रखकर शुद्ध रचनात्मक कार्य में पूर्ण श्रद्धा रखते हैं । मैं उस कार्यक्रम से तिलभर भी नहीं हटूंगा । इतना ही नहीं, परन्तु मैं जो कदम उठा रहा हूँ, वह उस कार्यक्रम को बल पहुँचाने के लिए ही है।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न बहुत महत्त्व का है । हम सारे देश की भावना के बल से उसका निराकरण करना चाहते हैं । विजय प्राप्त करने के लिए हमें पहले विनम्र बनना पड़ेगा । हमें अपने व्यक्तित्व में असहयोग को पूरी तरह कायम रखकर हमारे साथ मतभेद रखनेवालों का मार्ग हमारे लिए और देश के लिए रचनात्मक कार्यक्रम में सहायक होने की दृष्टि से सुगम कर देना होगा । हमने बहुत कमाया है, परन्तु और बहुत खोया भी है । इसलिए कमाया हुआ बचाकर, खोया हुआ फिर से प्राप्त करने के लिए धीरज के साथ प्रयत्न करना है । आम लोगों की जाग्रति—यह बड़ा लाभ हुआ है । उससे चिपटे रहना ही चाहिए । परन्तु आपस में पैदा हुई कटुता—यह बड़ा-से-बड़ी हानि है । इस स्थिति को तत्काल सुधारना हमारा काम है । असहयोग का उग्र रूप स्थगित न करें तो सिद्धि नहीं मिलेगी । अगर अपरिवर्तनवादियों में कुछ भी तेज हो तो उनका कर्तव्य आत्मविलोपन करके शान्तिपूर्वक काम करना है । उन्हें अधिकार प्राप्त करने, ओहदे हासिल करने के लिए कोशिश नहीं करना है । परिणाम के प्रति उदासीन रहकर काम करते रहें । उनके साथी स्वराज्यवादियों और नरम दलवालों की—यदि वे फिर से कांग्रेस में आ जायँ तो—कृपा पर ही जियें ।

ऐसा करने का रास्ता बताने का सरल-से-सरल उपाय मेरे पास यही है कि मैं खुद उसे करके दिखाऊँ । इसलिए मैं इस समय अपने सामर्थ्य की आखिरी हद तक स्वराज्यवादियों और नरम दलवालों की शरण में जा रहा हूँ । अपरिवर्तनवादियों की शरण में जाने की बात मेरे लिए रहती ही नहीं, क्योंकि हमारे बीच मतभेद हरगिज नहीं होना चाहिए ।

मुझे किसी भी दल का आदमी समझा जाना बन्द होना चाहिए और यही सलाह मैं अपरिवर्तनवादियों को दे सकता हूँ ।

स्वराज्यवादियों के अति कठिन कार्य में हमें विघ्न हरगिज नहीं डालना है । जहां तीव्र विरोध के बिना बहुमत न मिलता हो, वहां हम प्रसन्नता-

पूर्वक, राजी-खुशी से और शोभास्पद ढंग से हथियार समेट लें। यदि अपरिवर्तनवादियों को अधिकार मिलता हो या पद प्राप्त होते हों तो वह मतों की खटपट से नहीं, परन्तु सेवा के वल से मिलें। मत प्राप्त करके अधिकार में प्रवेश करने का मार्ग तो है ही। मगर वे मत बिनमाँगे मिलते हों तो ही काम के हैं। जहाँ सेवा-भावना है, वहाँ अधिकार अथवा ओहदे या प्रतिष्ठा की क्या जरूरत?

मैं तो चाहूँगा कि हम सब देश के सेवक ही रहें। मैं चाहता हूँ कि अपरिवर्तनवादी अपने व्यवहार द्वारा स्वराज्यवादियों, नरम दलवालों और अन्य सबको बहुत ही आत्मीय लगें। परन्तु वे ऐसा करें या न करें, मेरे लिए तो अपनी श्रद्धा अन्त तक सच्ची सावित करनी ही रह जाती है। ईश्वर ने पिछली महासमिति के समय मेरी परीक्षा ली और मैं फेल हो गया। मेरे अहंकार ने मुझे यह सिखाया कि मुझे स्वराज्यवादियों से लड़ना चाहिए। लेकिन मुझमें निवास करनेवाला सदा-अतृप्त सेवाभाव मुझे यही कहता है कि मुझे न तो स्वराज्यवादियों से, न नरम दलवालों से, न अंग्रेजों और न किसी और से लड़ना है। मैंने उनके मित्र होने का हमेशा दावा किया है। मुझे उसे सच्चा सावित करके ही दिखाना है। मेरा एक ही धर्म है—ईश्वर की और इसलिए मानव-जाति की सेवा। यह सेवा तब तक असम्भव है, जब तक मैं एक भारतीय के नाते भारत की और हिन्दू के नाते हिन्दू-मुसलमान भाइयों की सेवा न करूँ। स्वेच्छा से की गयी सेवा ही शुद्ध प्रेम है और ऐसे शुद्ध प्रेम की मुझमें जितनी भी शक्ति हो, उस सारी शक्ति को मेरे प्रत्येक छोटे-से-छोटे कार्य में भी प्रकट करने का प्रयत्न इस आगामी शुभ वर्ष में मुझे करना है।

नवजीवन, ता० ६-११-१९२४

३. असहयोग का झण्डा झुकाया नहीं

अपरिवर्तनवादी अभी तक परेशान होते ही रहते हैं। उनमें से जिन अच्छे-से-अच्छे आदमियों की सलाह और सहयोग को मैं मूल्यवान् मानता रहा हूँ, वे तो हैरत में पड़ गये हैं। वे मानते हैं कि दो दलों को जोड़ने की खातिर मैंने अपने आजीवन सिद्धान्तों को भी मानो ताक में रख दिया है। इस प्रकार का एक पत्र उद्धृत करता हूँ:

महादेवभाई की

'स्वराज्यवादियों से लड़ने की आपकी आज की अशक्ति के कारण आपने गम खा लिया है और भविष्य में मुनासिब मौका मिलने की बाट देख रहे हैं, इस आशय की बात आपने कही बतायी। परन्तु ऐसा किसलिए? अहिंसा और सत्य के ध्येय की यह मन्शा है कि स्वराज्यवादियों और कांग्रेस से बाहर रहकर और किसीसे दुश्मनी किये बगैर आप हमें साथ रखकर झण्डा फहराता रखें। एक बार खुदा की ताकत पर भरोसा रखनेवाले मुहम्मद पैगंबर के सिर्फ तीन ही अनुयायी रह गये थे। शत्रु की सहायता करके और उसकी शरण में जाकर आप स्वयं तो ऊँचे होते ही हैं। मगर असहयोगियों को जब आप उनका झण्डा फहराते रखने की छूट देने के बजाय मना करते हैं, तब कार्य को अत्यन्त हानि ही पहुँचती है। कोई भी धार्मिक वृत्तिवाला मनुष्य उस राजनीति में रस नहीं लेगा, जिसे सत्य और अहिंसा का सहारा प्राप्त न हो। दावँपेच की एकता में ईश्वर का अधिष्ठान नहीं, क्योंकि ऐसी एकता करके सरकार के साथ की जानेवाली लड़ाई अनीतिवाली बन जाती है। फिर धार्मिक प्रयत्न और उच्च नैतिक आदर्शों से भरी हुई आपकी पुरानी कारगुजारी की तरह स्वराज्यवादियों की कारगुजारी के दौरान अधीर आदर्शवादियों की हिंसक प्रवृत्तियों को रोकनेवाली कोई चीज रह नहीं जायगी। अब तो केवल निराशा और निरर्थकता ही उनके सामने आँखें फाड़कर खड़ी रहेगी।'

यह कहा जा सकता है कि ये मित्र अधिकांश असहयोगियों की ओर से बोल रहे हैं। वे हमारी लड़ाई के आध्यात्मिक स्वरूप के कारण ही लड़ाई की ओर आकर्षित हुए थे, इसलिए उनका यह सन्देश मैं कई बार ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। मैं मानता हूँ कि उन्होंने अपना निर्णय मेरे भाषण के गलत-सलत और गलतफहमी पैदा करनेवाले विवरण के आधार पर किया है। वे स्वयं परिषद् में मौजूद नहीं थे। बम्बई में भी नहीं थे। केवल अखबारों के समाचार पढ़कर ही किसी गतिविधि का अनुसरण करना बहुत कठिन है। जैसा ये भाई कहते हैं, वैसा विवरण अखबारों में आया हुआ मैंने नहीं देखा। मुझे लगता है कि 'स्वराज्यवादियों से लड़ने' की बात वाक्य को उसके पूर्वापर सम्बन्ध से तोड़कर ही की गयी है। ऐसा किया जाय तो मेरे कथन का बिलकुल अनर्थ हो जाना पूरी तरह सम्भव है। मैं उसका यहाँ स्पष्टीकरण करूँगा। यदि स्वराज्यवादी

मुझे न समझें, यदि अपरिवर्तनवादी शान्ति से नियोजित अहिंसा की लड़ाई का मर्म न समझें, यदि सरकार इस लड़ाई का मेरी कल्पना के बाहर लाभ उठाये अथवा लड़ाई को उचित वातावरण न मिले, तो मैं स्वराज्य-वादियों के साथ लड़ाई कर ही नहीं सकता। अब इनमें से प्रत्येक वस्तु थोड़ी-बहुत हुई है। यह भी याद रखना जरूरी है कि मेरे हिसाब से लड़ाई की सलामती का आधार संख्या-बल पर नहीं। मेरी योजनाओं पर जल्दी अमल होने में मेरी कथित लोकप्रियता मुझे बहुत बाधक होती है। बम्बई के हुल्लड़ में या चौरीचौरा के हत्याकाण्ड में भाग लेनेवाले यदि अहिंसा को स्वीकार करनेवाले न होते अथवा वे मुझसे बिलकुल अपरिचित होते तो मैं उनके कृत्य के लिए हरगिज प्रायश्चित्त न करता। इस कारण जब तक भीड़ मेरी ओर आकर्षित होती है, तब तक मुझे बहुत ही सँभलकर चलना पड़ता है। बड़ी फौज का सेनापति अपनी इच्छानुसार तेज कूच नहीं कर सकता। उसे अपनी सेना के प्रत्येक दल का विचार करना पड़ता है। मेरी स्थिति कुछ-कुछ ऐसे सेनापति जैसी है। यह कोई सुखद स्थिति नहीं। फिर भी वह है, और जैसे निश्चित अवसरों पर वह बलदायक है, वैसे ही किसी समय बड़ी बाधक भी जरूर है। इस पर से 'स्वराज्यवादियों के साथ लड़ने की मेरी अशक्ति' का सही अन्दाजा हो सकता है।

असहयोग का झण्डा मैंने हरगिज नहीं उतारा। मैंने उसे झुकाया भी नहीं। अपनी मान्यता से इनकार करने को किसी भी असहयोगी से कहा नहीं गया। महान् पैगम्बरों अथवा संसार के धर्म-प्रवर्तकों के उदाहरण देने में हमेशा जोखिम रहती है। मैं तो 'घोर अन्धकार' में से प्रकाश की ओर रास्ता तय करनेवाला एक सांसारिक जीव हूँ। मैं बार-बार भूलें करता और गलत हिसाब लगाता हूँ। परन्तु यदि इस मामले में महान् पैगम्बर की मिसाल दी ही गयी है तो मुझे निरभिमान होकर कह देना चाहिए कि मेरे साथ केवल दो ही साथी रहें या एक भी न रहे, तब भी मुझे जरूर आशा है कि मैं अपनी श्रद्धा की कसौटी पर कायम रहूँगा। मुझे ईश्वर में पूरी तरह विश्वास है। और उसी विश्वास के बल पर मैं प्रत्येक मनुष्य में भी विश्वास रखता हूँ। पैगम्बर के जीवन से यदि हमें कुछ सीखना हो, तो वह यही कि कुरान में जिनकी कड़े-से-कड़े शब्दों

में निन्दा की गयी है और जिनके साथ पैगम्बर साहब का कुछ भी साम्य नहीं था, उनके साथ भी उन्होंने सुलह की थी। असहयोग, हिजरत, सत्याग्रह और हिंसा तक सारी चीजें पैगम्बर के जीवन की केवल अलग-अलग मंजिलें थीं। उस जीवन में एकमात्र सत्य ही सब कुछ था।

ऊपर लिखनेवाले मित्र जैसा मानते दीखते हैं, मैं नहीं मानता कि एक मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति करे और उसके आसपास के लोग नीचे पड़े रहें। मैं अद्वैत को मानता हूँ। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे', इस न्याय से मैं मानता हूँ कि मनुष्यमात्र में ही नहीं, बल्कि जीवमात्र में एक ही आत्मा व्याप्त है। इसलिए मैं मानता हूँ कि जिस हद तक एक मनुष्य उठता है या गिरता है, उस हद तक सारा जगत् उठता या गिरता है। यदि इस समय मैं विरोधियों को मदद दे रहा हूँ, तो ऐसा करके मैं अपनी और अपने साथियों की मदद ही कर रहा हूँ। श्रद्धालु असहयोगियों को अकेले या सामूहिक रूप में अपना झण्डा न फहराने की सलाह मैंने नहीं दी है और न ऐसी माँग ही की है। उल्टे, चाहे जितनी विपत्तियाँ सहकर भी उसे ऊँची-से-ऊँची चोटी पर फहराता रखने की ही मैं उनसे आशा रखता हूँ।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि लोग या कांग्रेस असहयोग कर रही है। वस्तुस्थिति की तरफ आँखें बन्द न करनी हों, तो हमें स्वीकार करना ही चाहिए कि जनता अर्थात् कांग्रेस, जिस हद तक जनता की प्रतिनिधि है, उस हद तक अहसहयोग का कार्यक्रम नहीं चला रही है। ऐसी हालत में असहयोग व्यक्तियों तक ही सीमित हो जायगा। असहयोगी वकील, पदवीधारी, शिक्षक और विधान-मण्डलों के सदस्य अब भी अपना असहयोग पूर्ण रूप में ज्यों का त्यों रखें और फिर भी कांग्रेस में रह सकते हैं। उनका अपना कार्यक्रम हाथ-कताई और खादी है। इन चीजों को कांग्रेस ने अभी तक छोड़ा नहीं है। स्वराज्यवादी इस मामले में अपरि-वर्तनवादियों के साथ यथाशक्ति पूरे मिठास के साथ निभाव कर रहे हैं। वे अपरिवर्तनवादियों की भाँति यह नहीं मानते कि विदेशी वस्त्रों का जल्दी बहिष्कार पूरा करने के लिए हाथ-कताई को देशव्यापी बना डालना जरूरी है। और फिर भी अपरिवर्तनवादियों का सहयोग बनाये रखने, अथवा आप यह भी कह सकते हैं कि मेरा सहयोग बनाये रखने और साथ ही सिद्धान्त की दृष्टि से हाथ-कताई के विरुद्ध उन्हें कोई

आपत्ति न होने से, हाथ-कताई को मताधिकार की शर्त के तौर पर कांग्रेस के संविधान में शामिल कराने में वे शरीक हुए हैं। नहीं तो मि० स्टोक्स का ही उदाहरण लीजिए। स्वयं बड़े उत्साही कातनेवाले हैं, फिर भी हाथ-कताई के मताधिकार की ऐसी शर्त बना देने के विरुद्ध उन्हें सैद्धान्तिक आपत्ति है, इसलिए वे आज उसका बड़ा विरोध कर रहे हैं। हमारे बहुत-से नामांकित देशवासी तो मताधिकार की शर्त बनाने के इस आग्रह की आज हँसी उड़ा रहे हैं। ऐसी दशा में स्वराज्यवादियों को यह शर्त मंजूर होना छोटी बात नहीं। इसलिए यदि स्वराज्यवादी अपना वचन-पालन करें (और मुझे इस बारे में शंका करने का कारण नहीं) तो असहयोगियों को अपनी अलग संस्था बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। अपरिवर्तनवादियों को विधान-मण्डलों की प्रवृत्ति में भाग लेने की जरूरत नहीं; उन्हें लेना भी नहीं चाहिए। और इसलिए विधानसभा के कार्यक्रम का सारा अधिकार और परिणामस्वरूप उसकी तमाम जिम्मेदारी भी स्वराज्यवादियों की ही रह जाती है। वे कांग्रेस के नाम का उपयोग हक की रू से करेंगे, मगर इसके लिए वे अपरिवर्तनवादियों के नाम का उपयोग नहीं कर सकते। कांग्रेस एक साझा है, जिसमें कुछ मामलों की जिम्मेदारी संयुक्त है और कुछ प्रवृत्ति एक निश्चित पक्ष को सौंपी हुई है और उसे उसने स्वीकार किया है।

यदि जातीय एकता, अस्पृश्यता-निवारण और चरखा देश की राजनीति के मुद्दों का अंग हों तो अपरिवर्तनवादियों के पक्ष में सारा सत्य, सारी अहिंसा और संपूर्ण धार्मिकता मौजूद ही है। अपरिवर्तनवादियों की सरकार के विरुद्ध लड़ाई मुख्यतः आत्मशुद्धि करने और अपना बल बढ़ाने में है। परन्तु ऐसा करने में उन्हें अपने किसी भी कार्य से स्वराज्यवादियों की अथवा जिन्हें वे अपने समान ही प्रामाणिक मानने को बँधे हुए हैं, उनकी शक्ति घटाने का हक नहीं। जो अपरिवर्तनवादी हैं, वे पवित्रता या शुद्ध हेतु का अपने अकेले का ही ठीका कभी न मानें। और यह मान लें कि स्वराज्यवादियों का ढंग भद्दा है तो भी अपरिवर्तनवादी यह मानकर तो चल ही कैसे सकते हैं कि वर्तमान सरकार का तंत्र उस ढंग से भी खराब नहीं? मनुष्य कितना ही अहिंसावादी हो तो भी उसको यह तो देखना ही पड़ेगा कि दो विरोधियों के बीच ज्यादा खराब कौन है अथवा अधिक

न्याय का पक्ष किसका है। जापान और रूस के बीच टॉल्स्टॉय ने जापान का पक्ष लिया। इंग्लैण्ड और डच दक्षिण अफ्रीका के बीच स्वर्गीय डब्ल्यू० टी० स्टेड ने बोअरों का पक्ष लिया और इंग्लैण्ड की हार के लिए प्रार्थना की। इसी प्रकार स्वराज्यवादियों और इस सरकार के बीच मुझे चुनाव करना पड़े, तब किसे पसन्द किया जाय, इसका निर्णय करने में विलम्ब होगा ही नहीं। स्वराज्यवादी सन् १९२० के असहयोग के कार्यक्रम के विरुद्ध खड़े हुए, इतने के लिए उनके विरुद्ध हमें क्रोध से अन्धे होने की जरूरत नहीं। चर्चा की खातिर यह मान लीजिए कि स्वराज्यवादी उतने ही बुरे हैं, जितने हमसे सरकार मनवाना चाहती है, तो भी मैं कहूँगा कि स्वतन्त्र व्यवहार अथवा सच्चे विरोध का जरा भी अनुभव होते ही उन्हें कुचल डालने की अपार शक्तियाँ रखनेवाली इस सरकार के मुकाबले में तो ये खराब स्वराज्यवादी भी हजार दरजे ज्यादा पसन्द करने लायक हैं। मैं कोई 'दावँपेच' की एकता चाहता ही नहीं। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि कांग्रेस में सब पक्ष प्रस्तुत हों और एक-दूसरे की राय को सही रूप में लेना सीखें, हम एक-दूसरे को समझने लगें, परस्पर असर डालें और एक सर्वमान्य कार्यपद्धति खोजने में सफल न हों तो भी कम-से-कम स्वराज्य की एक सर्वमान्य योजना तो तैयार कर ही डालें। लिखनेवाले मित्र के अन्तिम विचारों के साथ मैं सहमत हूँ कि विधान-मण्डलों का कार्यक्रम अधीर आदर्शवादियों को हिंसा-मार्ग से दूर नहीं रख सकता। केवल अहिंसक असहयोग ही मनुष्य के कुर्बानी के जोश को अधिक-से-अधिक प्रेरणा और अवसर देनेवाला होने के कारण आदर्शवादी को उसके भूलभरे मार्ग से परावृत्त कर सकेगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया, जिससे चुस्त असहयोगी नरम हो जाय। मैंने तो अपने साथ उसे भी परीक्षा में डाला है। निर्व्याज प्रेम की वेदी पर वह अधिक-से-अधिक बलिदान करे तो फिर वह देखेगा कि सारी कांग्रेस उसके अधीन होकर रहेगी। परन्तु ऐसा प्रेम अदृश्य रूप में काम करता है। कोई भी शक्ति जैसे अधिक मजबूत होती है, वैसे ही अधिक सूक्ष्म और नीरव होती है। प्रेम जगत् की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म शक्ति है। अपरिवर्तनवादियों में वह होगी तो उनका और सभी का कुशल ही है।

('यंग इंडिया')

परिशिष्ट : ३*

कोहाट का कहर

भारत सरकार ने कोहाट के कहर पर पर्दा डाल दिया है। पण्डित मालवीयजी को रावलपिंडी सनातन धर्मसभा के प्रस्ताव के जवाब में वॉइसराय ने जो तार भेजा था, उसी पर से लोगों ने तो भविष्य-वाणी की थी कि जैसा अभी ऐलान हुआ है, ऐसा ही कोई-न-कोई प्रस्ताव सरकार प्रकाशित करेगी। यह प्रस्ताव जैसे सरकार की अबाधित सर्वोपरिता और लोकमत की अवहेलना का नमूना है, वैसे ही उससे जनता की अशक्ति का भी प्रमाण मिलता है। मेरे खयाल से तो कोहाट का जुल्म हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के परिणाम की अपेक्षा स्थानीय अधिकारियों की पूरी अयोग्यता और अक्षमता का परिणाम है। यदि उन्होंने लोगों के जान-माल की रक्षा करने का अपना प्रथम कर्तव्य-पालन किया होता तो दिन-दहाड़े जो मनस्वी उत्पीड़न आरम्भ हुआ और जारी रहा, उसे आसानी से रोका जा सकता था। परन्तु जैसे प्राचीन रोम जल रहा था, तब राजा नीरो नाच-गान में मशगूल था, वैसे ही अधिकारी कोहाट को जलता देखते रहे और तागड़धिन्ना करते रहे। वे शायद ही अपने बचाव में कह सकें कि वे निरुपाय थे। उनके पास बहुत साधन थे। अपनी दण्डनीय उपेक्षा और क्रूरता के कारण उन्हें कोई मार्ग न सूझा हो, यह समझ में आ सकता है। परन्तु किसी भी समय उन्हें अपनी निःसहायता से तो घबराहट हरगिज नहीं हुई थी।

अब स्थानीय अधिकारियों के अपराध में भारत सरकार साझीदार बन गयी है—उसने स्थानीय अधिकारियों के कृत्यों को धो डाला है, इतना ही नहीं, परन्तु उनकी गफलत को, बल्कि अपराध को धीरज और साहस का रूप दिया है।

---

* देखिए पृष्ठ ११२।

कोहाट में जो कहर हुआ था, उसे देखते हुए उसके बारे में पूरी तरह, खुली और स्वतन्त्र जाँच की आशा रखी जाती थी, परन्तु उसके बजाय जाँच तो एक सरकारी विभाग ने की और उसमें लोगों से कुछ पूछा नहीं गया। इसलिए उसके निर्णय पर लोगों का विश्वास बिलकुल नहीं हो सकता। रायबहादुर सरदार माखनसिंह से लेकर लगभग तमाम कोहाटियों ने, जिनसे मैं और मेरे मुसलमान साथी रावलपिंडी में मिले, यद्यपि यह स्वीकार किया था कि लाला जीवनलाल ने अत्यन्त अपमानजनक तुकबन्दियोंवाला एक परचा प्रकाशित किया था, तो भी उन्होंने यह भी बताया कि इस परचे के प्रकाशित करने के बदले में जितना प्रायश्चित्त करना चाहिए, उतना प्रायश्चित्त भी हिन्दुओं ने किया था; और हिन्दुओं ने गोली चलाने की शुरुआत नहीं की थी, परन्तु जब मुसलमानों ने उत्पीड़न शुरू किया, तब बाद में केवल आत्मरक्षार्थ ही गोली चलायी थी। कोहाट के मुसलमानों के पक्ष में यह दलील दी गयी थी कि काफी प्रायश्चित्त नहीं हुआ था और मुसलमानों ने उत्पीड़न शुरू किया और आग लगायी तो हिन्दुओं के गोलीबार करके मुसलमानों को मारने के बाद ही। दुर्भाग्य से कोहाट के मुसलमानों के रावलपिंडी न आने के कारण सच्चे तथ्य हम नहीं जान सके। इसलिए सरकार ने दोष का जो बँटवारा किया है, वह सही है या गलत, यह कहना मुश्किल है। परन्तु उसका निर्णय निष्पक्ष या स्वीकार करने योग्य तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। यह आशा नहीं रखी जा सकती कि कोहाट के हिन्दू उसे स्वीकार करेंगे या उसके आगे झुक जायेंगे। सरकार का प्रस्ताव मुसलमानों के पक्ष में है, इसलिए कोहाट के मुसलमानों को तो अच्छा लगेगा, ऐसा भी नहीं। क्योंकि आज वह उनके पक्ष में है, केवल इसीलिए उसका स्वागत कर लेना मुसलमानों के लिए शायद ही उचित कहा जायगा। कोई भी प्रस्ताव संतोषजनक तो तभी कहलायेगा, जब वह दोनों पक्षों ने किया हो और वह भी हिन्दू-मुसलमान दोनों कौमों के निष्पक्ष रूप में स्वीकार किये गये मनुष्यों ने किया हो। इस कारण भारत सरकार का प्रस्ताव दोनों जातियों के लिए एक आह्वानस्वरूप है। रावलपिंडी में आकर बसे हुए हिन्दू आश्रितों को लज्जाजनक शर्त मानकर कोहाट जाने को उस प्रस्ताव में कहा गया है, जब कि उसमें मुसलमानों को अपने हिन्दू भाइयों पर लज्जाजनक शर्तें लादने के लिए प्रलोभन दिये गये हैं।

मैं आशा रखता हूँ कि हिन्दू बेआबरू होकर कोहाट में जाकर सुखी होने के बजाय कोहाट के बाहर इज्जत के साथ रहकर सूखी रोटी जुटाकर गुजर करना ज्यादा पसन्द करेंगे। मुझे आशा है कि मुसलमान सरकार का दिया हुआ लालच लेने से इनकार करने की मर्दानगी बता सकेंगे और कोहाट में बहुत थोड़ी संख्या में बसनेवाले हिन्दू भाइयों पर अपमानजनक शर्तें लादने से साफ इनकार करेंगे। पहली भूल अथवा उत्तेजना किसीकी भी तरफ से हुई हो, तो भी इतना तो निश्चित है कि हिन्दुओं को कोहाट से तो लगभग भाग जाने को विवश होना पड़ा था। इसलिए मुसलमानों का फर्ज है कि वे रावलपिंडी जाकर हिन्दू-आश्रितों को प्रेम से और उनके जान-माल की रक्षा का पूरी तरह आश्वासन देकर कोहाट ले आयें। कोहाट से बाहर के हिन्दू अपने व्यवहार से मुसलमानों के लिए ऐसा अनुरोध करना आसान बना दें। कोहाट से बाहर के मुसलमानों को कोहाट-निवासी मुसलमानों के वहाँ के इने-गिने हिन्दुओं के प्रति प्रथम कर्तव्य पर आग्रह रखना चाहिए। इस नाजुक सवाल के उचित और सम्मानपूर्ण निपटारे पर ज्यादातर हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्नों की सफलता का आधार रहेगा।

सहयोगी और असहयोगी एक-दूसरे के विरुद्ध रक्षा प्राप्त करने के लिए सरकार पर आधार रखना जितना जल्दी बन्द कर दें, उतना ही हम दोनों के लिए बेहतर है; और उतना ही जल्दी और स्थायी इस सवाल का निपटारा हो सकेगा। इस दृष्टि से कोहाट के अधिकारियों की लापरवाही स्वागत करने योग्य है। हिन्दुओं ने अधिकारियों की मदद न माँगी होती और अपने घरों में बैठकर तथा कुछ भी बचाव किये बिना अथवा अपने और अपने आश्रितों के जान-माल का बलपूर्वक बचाव करते-करते जलकर खाक हो गये होते तो इतिहास भिन्न प्रकार से और अधिक सम्मानपूर्ण ढंग से लिखा जाता। जाति-जाति के झगड़ों में निपटारा करने के लिए सरकारी सहायता की किसी प्रकार की आशा कोई न रखे; ऐसा प्रस्ताव यदि सरकार करे तो मैं तो उसका स्वागत करूँ। यदि प्रत्येक पक्ष अपनी स्वतन्त्रता पर हमला होने पर स्वयं ही अपनी रक्षा करना सीख ले तो हम स्वराज्य के रास्ते पर ठीक-ठीक लग जायेंगे। ऐसा करना आत्म-रक्षा और स्वाभिमान कायम रखने अर्थात् स्वराज्य की रक्षा की बढ़िया

तालीम हो जायगी । रक्षा करने के दो मार्ग हैं । उत्तम और सबसे ज्यादा कारगर तो यह है कि कुछ भी बचाव न करके सब जोखिम उठाकर अपने स्थान पर डटे रहें । इससे घटिया परन्तु उतना ही सम्मानपूर्ण रास्ता यह है कि अपने बचाव में बहादुरी से लड़ें और जीवन को बड़े-से-बड़े खतरे में डालें । इस प्रकार दोनों पक्ष व्यवस्थित ढंग से जी भरकर थोड़ी-सी लड़ाई कर लेंगे तो एक-दूसरे के सिर फोड़ने की निरर्थकता दोनों की समझ में आ जायगी । उन्हें यह भी समझ में आयेगा कि इस प्रकार लड़ना ईश्वर का मार्ग नहीं, परन्तु शैतान की राह है ।

रावलपिंडी में कोहाट के आश्रितों को मैंने जो वचन दिया था, उसे यहाँ दोहराकर यह लेख पूरा करूँगा । कोहाट के मुसलमानों से हार्दिक निमंत्रण न मिले, तब तक वे कोहाट जाने से इनकार करेंगे, तो मैं अपने पहले से अंगीकृत कार्य समाप्त करके तुरन्त ही मौलाना शौकत अली के साथ रावलपिंडी जाकर दोनों जातियों के बीच का सम्बन्ध मीठा बनाने का प्रयत्न करूँगा; अथवा उसमें हम असफल हुए तो रावलपिंडी के हिन्दुओं को जीवन में उचित धंधा दिलाने में मदद दूंगा ।

नवजीवन, ता० २१-१२-१९२४

परिशिष्ट : ४

अस्पृश्यता

बेलगाम में अस्पृश्यता-निवारण परिषद् में मैंने जो भाषण दिया था, उसके नोट भाई महादेव देसाई ने लिये थे। उनमें मेरे विचार लगभग पूरी तरह आ जाते हैं, इसलिए उन्हें यहाँ दे रहा हूँ।

मो० क० गांधी

'अस्पृश्यता के बारे में मेरा कुछ भी कहना बेकार है। मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि मुझे इस जन्म में मोक्ष प्राप्त न हो तो अगले जन्म में भंगी के घर पैदा होने की मेरी इच्छा है। मैं वर्णाश्रम को मानता हूँ और उसके विषय में जन्म और कर्म दोनों को मानता हूँ, परन्तु यह मानने से इनकार करता हूँ कि भंगी कोई पतित योनि है। मैंने तो अनेक भंगियों को देखा है, जो पूज्य हैं, और ब्राह्मणों में ऐसे अनेक देखे हैं, जिनकी पूजा करना बड़ी कठिन बात हो जायगी। मैं ब्राह्मण के रूप में जन्म लेकर ब्राह्मणों की अथवा त्यागियों की जितनी सेवा कर सकूँगा, उससे अधिक मैं भंगी के रूप में जन्म लेकर भंगी की सेवा कर सकूँगा। मैं भंगी की कई ढंग से सेवा करना चाहता हूँ। मैं उन्हें ऐसी शिक्षा देना नहीं चाहता कि वे ब्राह्मणों से घृणा करें। घृणा से मुझे अत्यन्त दुःख होता है। मैं भंगियों का उत्कर्ष चाहता हूँ, परन्तु पाश्चात्य पद्धति से अधिकार प्राप्त करने की शिक्षा देना अपना धर्म नहीं समझता। इस प्रकार कुछ भी प्राप्त करना हमारा धर्म नहीं। मारपीट से प्राप्त की हुई चीज दुनिया में टिक नहीं सकेगी और वह जमाना आता हुआ मैं अपनी आँखों देख रहा हूँ, जब मारपीट से कुछ भी हासिल नहीं हो सकेगा।

मैं हिन्दू-धर्म की उन्नति चाहता हूँ; अरे अछूतों को अपना बनाना चाहता हूँ। इसलिए कोई भी अन्त्यज अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में जाता है, तब मुझे भारी धक्का लगता है। मगर हम क्या करें ? हम

हिन्दू पतित हो गये हैं। हममें से त्यागवृत्ति चली गयी, प्रेमवृत्ति चली गयी, सच्ची धर्मवृत्ति चली गयी। गीता में तो ब्राह्मण और अन्त्यज को समान समझने को कहा गया है। समान का अर्थ क्या? यह नहीं कि ब्राह्मण का धर्म और भंगी का धर्म एक हो जाता है। परन्तु दोनों को हम समान न्याय दें, इस हद तक समानता होनी ही चाहिए। मैं भंगी की आवश्यकताएँ पूरी करूँगा। भंगी का दुःख तो यह है कि हम उन्हें उनकी मामूली-से-मामूली जरूरतें भी मुहैया नहीं करते। भंगी को भी सोने को चाहिए, उसे साफ हवा और पानी चाहिए, उसे भी स्वच्छ भोजन चाहिए—इतनी वातों में तो वे ब्राह्मणों के समान हैं। जिस भंगी को सेवा की जरूरत है, उदाहरण के लिए जिस भंगी को साँप ने काटा है, उसकी मैं सेवा ही करूँगा। परन्तु भंगी को अपना जूठा खिलाऊँ, तो मैं ही पतित वनूँगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का महापाप है।

हाँ, एक प्रकार की अस्पृश्यता का हिन्दू-धर्म में जरूर स्थान है। एक मनुष्य मैले को हाथ लगाये और स्नान करके स्वच्छ होने तक अछूत भले ही हो। मेरी माँ मल-मूत्र साफ करने का काम करती, तव स्नान किये विना किसीको छूती नहीं थी। मैं वैष्णव-सम्प्रदाय का ठहरा, इसलिए इतनी अस्पृश्यता को—कर्म की क्षणिक अस्पृश्यता को—मैं मानता हूँ, परन्तु जन्मगत अस्पृश्यता मैं नहीं मानता। मैं तो जिस माता ने किसी समय मेरे मल-मूत्र उठाये थे, उसका जव स्मरण करता हूँ, तव वह मेरे लिए अधिक पूज्य वन जाती है। इसी प्रकार भंगी की सेवाओं का विचार करता हूँ, तव वह मेरे लिए पूज्य वन जाता है।

मैंने कभी नहीं कहा कि अन्त्यजों के साथ वेटी-व्यवहार या रोटी-व्यवहार रखा जाय, यद्यपि मैं तो रोटी-व्यवहार रखता हूँ। वेटी-व्यवहार के लिए मेरे पास गुंजाइश नहीं। मैं वानप्रस्थाश्रम का पालन कर रहा हूँ—संन्यास पालन कर रहा हूँ या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कलियुग में संन्यासधर्म का पालन करना वड़ा कठिन काम है। मैं तो प्राकृत प्राणी हूँ, वेदाभ्यास मैंने किया नहीं और मैं मोक्ष के लिए योग्य हूँ या नहीं, इस वारे में सन्देह है, क्योंकि मैंने राग-द्वेप का पूर्ण त्याग नहीं किया। वेद का उच्चारण मैं वैसा नहीं कर सकता, जैसा पण्डित मालवीयजी करते हैं, इसलिए मोक्ष नहीं मिलेगा, सो वात नहीं, परन्तु जव तक मुझमें

राग-द्वेष है, तब तक मोक्ष नहीं मिलेगा । इसलिए मैं संन्यासी भले ही न होऊँ, परन्तु मेरी स्थितिवाला हिन्दू सारे संसार के साथ रोटी-व्यवहार रखे, तो इसमें मैं कोई दोष नहीं देखता । परन्तु जो दोष दूर होना चाहिए, वह तो अस्पृश्यता है । उसमें रोटी-व्यवहार का समावेश नहीं ।

मैंने अस्पृश्यता-निवारण को कांग्रेस का एक कार्य माना है, सो केवल राजनैतिक हेतु के लिए नहीं । यह हेतु तो तुच्छ है, स्थायी नहीं । स्थायी बात तो यह है कि हिन्दू-धर्म, जिसे मैं सर्वोपरि मानता हूँ, उसमें अस्पृश्यता का कलंक नहीं हो सकता । स्थूल स्वराज्य के लिए मैं अन्त्यजों को धोखा नहीं देना चाहता, इस लालच में उन्हें फँसाना नहीं चाहता । मेरा तो खयाल है कि हिन्दुओं ने अस्पृश्यता से चिपटे रहकर बड़ा पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए । मैं अस्पृश्यों की 'शुद्धि' जैसी कोई चीज ही नहीं मानता । मैं तो अपनी शुद्धि करने में ही विश्वास रखता हूँ । मैं स्वयं अशुद्ध हूँ, फिर किसी और की शुद्धि कैसे कर सकता हूँ? मैंने अस्पृश्यता का पाप किया है, तो मुझे ही शुद्ध होना चाहिए । इसलिए हम जो अस्पृश्यता-निवारण का काम करते हैं, वह केवल आत्मशुद्धि का कार्य है, अस्पृश्यों की शुद्धि का नहीं । मैं तो हिन्दू-धर्म में घुसी हुई इस शैतानियत को नेस्तनाबूद करने की बात करता हूँ, मेरे पास अस्पृश्यों को फुसलाने की बात नहीं है ।

परन्तु हिन्दू-जाति के लिए खाने का प्रश्न अलग है । मेरे परिवार में मर्यादा-धर्म का पालन करनेवाले हैं, ये कुटुम्बी दूसरे किसीके साथ नहीं खाते, उनके लिए खाने-पीने के बरतन और आग भी अलग चाहिए । मैं नहीं मानता कि इस मर्यादा में अज्ञान, अंधकार या हिन्दू-धर्म का क्षय होगा । मैं स्वयं इस बाह्याचार का पालन नहीं करता । मुझसे कोई कहे कि हिन्दू संसार को इसका अनुकरण करने को कहो, तो मैं तो इनकार ही करूँगा । मालवीयजी मेरे लिए पूज्य हैं, मैं उनका पाद-प्रक्षालन करूँगा । परन्तु वे मेरे साथ खाते नहीं । इससे कोई वे मेरे प्रति घृणा नहीं करते । हिन्दू-धर्म में इस मर्यादा के लिए अचल स्थान नहीं । मगर एक खास स्थिति में उसे स्तुत्य माना है । रोटी-बेटी की मर्यादा में जिस हद तक संयम है, उस हद तक वह भले ही रहे । परन्तु किसीके साथ खाने में ही पतन हो जाता है, यह हमेशा सच नहीं । मेरा लड़का कहीं भी कुछ भी खाये-

पिये, यह मैं नहीं चाहता, क्योंकि आहार का आत्मा पर असर पड़ता है। लेकिन वह संयम अथवा सेवा की सुविधा के लिए कहीं भी विशेष पदार्थ खाय तो इसमें मैं नहीं मानता कि वह हिन्दू-धर्म का त्याग करता है। खाने-पीने के सम्बन्ध में जो मर्यादा हिन्दू-धर्म में है, उसका सर्वथा क्षय मैं नहीं चाहता। संभव है, यह मर्यादा छोड़ने का युग आये। ऐसा हुआ तो हमारा नाश नहीं हो जायगा। आज तो मेरा हृदय जो कुछ मनवा रहा है, मैं वहीं तक जाने को तैयार हूँ। मेरी विचार-श्रेणी में इस युग में रोटी-बेटी की मर्यादा का लोप नहीं हो सकता। मेरी इस वृत्ति के कारण मेरे कुछ मित्र मुझे दंभी मानते हैं, परन्तु इसमें कोई दंभ नहीं। स्वामी सत्यदेव और मैं अलीगढ़ जा रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा : 'आप यह क्या कर रहे हैं ? ख्वाजा साहब के यहाँ खायँगे ?' मैंने उनसे कहा : 'मैं खाऊँगा। आप न खायँ तो यह आपके लिए मर्यादा है, मेरे लिए ख्वाजा के यहाँ खाद्य पदार्थ भी न खाना पतितता है। परन्तु आप खायें तो आपका पतन होगा, क्योंकि आप मर्यादा पालन करते हैं।' स्वामी सत्यदेव के लिए ब्राह्मण बुलवाया गया और उसने भोजन बनाया। मौलाना अब्दुल बारी के वहाँ भी ऐसी ही व्यवस्था होती है, यहाँ तक कि हम जाते हैं, तब ब्राह्मण बुलवाया जाता है और उसे हुक्म होता है कि तमाम चीजें भी वह बाहर से ही लाये। मैंने मौलाना से पूछा कि इतनी सावधानी की क्या जरूरत ? वे कहते हैं : 'मैं दूसरों को भी नहीं मानने दूँगा कि मैं आपको भ्रष्ट करना चाहता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि हिन्दू-धर्म के अनुसार बहुतों को हमारे साथ खाने में आपत्ति है।' मुझे मौलाना के प्रति आदर है। वे सादे हैं, भोले हैं, कभी-कभी भूल कर देते हैं, परन्तु वे खुदापरस्त हैं और खुदा से डरनेवाले हैं।

मुझे बहुत-से कहेंगे कि तू सनातनी कहाँ से हो गया ? काशी विश्वनाथ का दर्शन तो करता नहीं और ढेढ़ की लड़की को गोद लिया है। मुझे प्रश्नकर्ता के अज्ञान पर दया आती है।

अन्त्यज भाइयो, आपके साथ लम्बी बातें नहीं करनी थीं; फिर भी कर लीं; क्योंकि आपके साथ मुझे मुहब्बत है। आपके बारे में जो पाप होता है, उसके लिए मैं आपसे माफी माँगता हूँ। लेकिन आपको अपनी उन्नति की भी शर्त समझनी चाहिए। मैं पूना गया था। वहाँ एक अन्त्यज

भाई ने खड़े होकर पूछा कि 'हिन्दू-जाति हमें न्याय नहीं देगी तो हम तो मारकाट से काम लेंगे ।' मुझे यह सुनकर दुःख हुआ था । क्या हिन्दू-जाति का या आपका इससे उद्धार हो जायगा ? क्या इससे अस्पृश्यता दूर हो जायगी ? उपाय तो केवल यही है कि हम धर्मान्ध हिन्दुओं को समझायें और वे जो कष्ट दें, उसे वर्दाश्त करें । आप पाठशालाओं में जाने का हक माँगें, मन्दिरों में जाने का अधिकार माँगें, चारों वर्ण जहाँ-जहाँ जा सकते हैं, जो-जो पद या स्थान भोग सकते हैं, वह सब भोगने का अधिकार आप माँगें, यह ठीक है । आपको कोई भी ऐहिक स्थिति अप्राप्य न हो, यह अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ है । परन्तु यह सब आप प्राप्त करें, तो पाश्चात्य ढंग से नहीं, मगर हिन्दू-धर्म में जो ढंग कल्याणकारी है, उससे प्राप्त कीजिए । यदि यह मान लें कि शरीर-वल से काम बनता है, तब तो इसका अर्थ यह होता है कि राक्षसी साधनों द्वारा हम धर्म-कार्य साधना चाहते हैं । आपमें यह राक्षसी वृत्ति न घुसे और आप सच्चे भागवत धर्म का पालन करें, यही आपसे मेरी माँग है । ईश्वर आपको ऐसी सन्मति दे, जिससे अस्पृश्यता का निवारण क्षणभर में हो जाय ।

ता० ११-१-१९२५, नवजीवन

परिशिष्ट : ५*

कोहाट के हिन्दू

पिछले सितम्बर मास की दुःखद घटना के तथ्यों पर मौ० शौकत अली तथा मैंने क्या-क्या निर्णय किये हैं, उन्हें देखने के लिए पाठक इस वार के 'यंग इंडिया' के पन्नों का अवलोकन करेंगे। ऐसी इच्छा रखनेवालों को मुझे निराश करना पड़ रहा है, इसके लिए मुझे अफसोस है, क्योंकि मौ० शौकत अली अभी मेरे साथ नहीं हैं और उनकी नजर से निकले विना मुझे कुछ छपवाना नहीं चाहिए। फिर भी पाठकों से इतना तो कह ही सकता हूँ कि अपने निर्णयों की चर्चा मैंने पण्डित मोतीलालजी के साथ, फिर पण्डित मालवीयजी के साथ और हकीम अजमलखाँ साहब, डॉ० अनसारी तथा अली भाइयों के साथ कर ली है। ये निर्णय मैंने दिल्ली से साबरमती आते हुए रेल में अभी-अभी लिखकर पूरे किये हैं। मेरे लिखे हुए निर्णय मौ० शौकत अली को तुरन्त भेज दिये जायंगे और उनकी तरफ से इनका अनुमोदन, संवर्धन या संशोधन जो भी हो, उसके साथ मैं इन्हें छपवाने की आशा रखता हूँ। परन्तु हमारी जाँच के परिणामों के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं कि कोहाट के हिन्दुओं को क्या करना चाहिए। मैंने जो सलाह कोहाट के हिन्दुओं को पहले दी थी, वही अब दे सकता हूँ कि मैं उनकी जगह होऊँ तो किसी सरकारी हस्तक्षेप के विना जब तक मुसलमानों के साथ सम्मानपूर्ण सुलह न हो जाय, तब तक कोहाट वापस न जाऊँ। यह अब सम्भव नहीं है, क्योंकि दुर्भाग्य से जो मुसलमान कार्यसमिति इस समय कोहाट के मुसलमानों का संचालन कर रही है, उसके प्रतिनिधि हमारे पास नहीं आये थे और किसी प्रतिनिधि को भेजने की कार्यसमिति को इच्छा भी नहीं थी। हिन्दुओं की नाजुक स्थिति मैं समझ सकता हूँ। वे अपनी सम्पत्ति खोना नहीं चाहते। मैं

* देखिए २७८ पृष्ठ।

और मौलाना साहब दोनों पक्षों में सुलह कराने में असफल सिद्ध हुए हैं। इतना ही नहीं, सुलह के लिए बातचीत करने को प्रमुख मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने में भी हम असफल रहे हैं; और निकट भविष्य में भी सफल होने की कोई आशा है, यह कहने की स्थिति में मैं अभी तो नहीं हूँ। ऐसे हालात में हिन्दू जो मार्ग वांछनीय समझें, उसे अपनाने को स्वतन्त्र हैं। कुछ भी अच्छा परिणाम लाने में सफल न होने पर भी मैं तो एक ही रास्ता सुझा सकता हूँ। 'तुम अपना स्वाभिमान कायम रख सको, इस ढंग से मुसलमान तुम्हें वापस न ले जायँ, तब तक कोहाट वापस न जाओ।' परन्तु मैं जानता हूँ कि जो लोग अपने ही पैरों पर खड़े रह सकते हैं और जिन्हें दूसरों की सीख की जरूरत न हो, उन्हींके लिए यह सलाह उपयोगी है। दूसरों को इसमें कोई गरमी नहीं मिल सकती। कोहाट के आश्रितों की स्थिति अपने पैरों पर खड़ा रहनेवालों जैसी नहीं है। मैंने अपना मत पंडित मालवीयजी को बता दिया है। वे आज तक इनके मार्गदर्शक रहे हैं और यही उचित है कि हिन्दू उनकी सलाह के अनुसार करें। लालाजी रावलपिंडी आये थे, परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें वहीं रोगशय्या पकड़नी पड़ी। मेरी अपनी पक्की राय मैं मौ० शौकत अली को जो नोट भेज रहा हूँ, उसमें आ जाती है। परन्तु मैं पहले से ही कह दूँ कि उससे हिन्दुओं को सान्त्वना नहीं मिलेगी। मैं तो टूटी नाव ठहरा। मुझ पर आधार रखना व्यर्थ है।

परन्तु आश्रितों को कोहाट के बाहर होने की हालत में क्या करना चाहिए, इस बारे में मेरी सलाह जाहिर करने में कोई बाधा या संकोच नहीं हो सकता। मुझे जरूर कहना पड़ेगा कि मजबूत हाथ-पैरवाले और हट्टे-कट्टे स्त्री-पुरुष दान पर निर्वाह करें, इसमें उनकी सत्त्व-हानि है। उन्हें अपने लिए कोई न कोई धन्धा ढूंढ़ना ही चाहिए और मुश्किल आये तो स्थानीय मनुष्यों की सहायता से खोजना चाहिए। मैंने तो कातने, पींजने और बुनने का काम सुझाया है, परन्तु वे कोई भी दूसरा उपयोगी उद्योग पसन्द करें अथवा उनके लिए पसन्द किया जाय, उसे वे कर सकते हैं। हेतु इतना ही रहा है कि जो शरीर को काम में लगा सकते हैं, ऐसे कोई पुरुष या स्त्री धर्मादे से पेट न भरें। अच्छी व्यवस्थावाले प्रत्येक राज्य में काम करने की नीयतवाले मनुष्य के लिए हमेशा पर्याप्त धन्धे

होने ही चाहिए । आश्रित जितने समय राष्ट्र के खर्च पर गुजर कर रहे हैं, उतने समय के पल-पल का हिसाव उन्हें देना ही चाहिए । 'खाली दिमाग शैतान का घर होता है' यह केवल वाजारू कहावत नहीं है । इसमें गम्भीर सत्य छिपा है और इसकी प्रत्येक मनुष्य अपने लिए परीक्षा कर सकता है। गरीव, अमीर, ऊँच, नीच में भेद नहीं होता । विपत्ति! ये सव समान रूप में लँगोटिया मित्र वन गये । और अच्छी स्थितिवाले सम्पन्न आश्रितों को चाहिए कि वे सार्वजनिक सहायता न लेते हों तो भी किसी उपयोगी ढंग से हाथ का काम करके दूसरों के लिए मिसाल कायम करें । जिस देश के लोग विपत्ति के समय कुछ-न-कुछ उद्योग करना जानते हों, उसकी स्थिति कितनी उत्तम होगी ? यदि आश्रित कातने, पींजने और वुनने के धन्धे में लग गये होते तो उनके जीवन को वहुत ही तेजस्वी स्वरूप मिल जाता । उस सूरत में आश्रितों का निवास एक उद्योग भवन वन जाता और उनको कितने ही समय टिकाये रख सकता था । यदि वे तुरन्त ही लौट जाने का निश्चय न करते हों तो अव भी देर नहीं हुई । कच्ची भोजन-सामग्री देना भूल की वात है । यह वात सच है कि इससे व्यवस्था-समिति को कम असुविधा होती है, परन्तु उससे वहुत ही खरावी होती है । इतना ही नहीं, आश्रितों में दुर्व्यवस्था और अनियमितता वढ़ती है । इन्हें तो सिपाही की-सी नियमित जिंदगी वितानी चाहिए और सवेरे उठने, नहाने, धोने, प्रार्थना करने, खाने और काम करने के और रात को सोने के समय अच्छी तरह निश्चित करके उनका पालन करना चाहिए । उनमें रामायण का पाठ या ऐसा ही कोई और स्वाध्याय न होने का कोई भी कारण नहीं । इन सव वातों के लिए विचार, चिन्तन, ध्यान और लगन की जरूरत है । इतना प्राप्त कर लें तो वड़ी विपत्ति को सहज ही वड़े लाभ में वदला जा सकता है ।

मो० क० गांधी

नवजीवन, ता० १५-२-१९२५

परिशिष्ट : ६*

कोहाट

१. गांधीजी का वयान

[कोहाट हत्याकाण्ड सम्बन्धी मेरा और मौलाना शौकत अली का वयान मैं इतनी देर से प्रकाशित कर रहा हूँ। इससे जल्दी प्रकाशित करना असम्भव था, क्योंकि आजकल मैं और मौलाना शौकत अली दोनों अलग-अलग भ्रमण करते रहते हैं और एक जगह रहना नहीं हो सका। हमारे इन वयानों को अव इतनी देर से जारी करने में कोई सार है या नहीं, अथवा उसका कोई सुपरिणाम हो सकता है या नहीं, इस वारे में मुझे भरोसा नहीं है। परन्तु इसमें वचन-पालन जितना सुपरिणाम तो निहित ही है। एक और अप्रत्यक्ष सुपरिणाम भी इससे निकलेगा। एक ही तथ्य पर से हम दोनों ने अलग-अलग और महत्त्वपूर्ण मतभेदोंवाले अनुमान लगाये हैं। और साक्षियों के हमारे सामने दिये हुए सवूत पर हमने जितनी मात्रा में आधार रखा है, उसमें हमारे वीच अन्तर है। हमारे वीच का मतभेद जव हमने देखा, तव हमें दुःख हुआ और हमने एक-दूसरे के अधिक निकट आने का प्रयास किया। यह सोचकर कि हमारे लिए दिशासूचक सिद्ध होगा, हमने अपने मतभेद हकीम साहव और डॉ० अनसारी के सामने भी पेश किये। सौभाग्य से पंडित मोतीलालजी भी हमारी चर्चा में हाजिर थे। चर्चा के परिणामस्वरूप हमें ऐसी कोई चीज नहीं मिली, जिससे हम अपने दृष्टिविन्दुओं में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने को ललचायें। ये चर्चाएँ दिल्ली में हुई। वाद में मैंने और मौलाना शौकत अली ने कुछ घण्टे साथ सफर करने का और यह देखने का निश्चय किया कि फिर एक वार हमारे दृष्टिविन्दुओं की जाँच करके हमारे कथन नये सिरे से तैयार किये जा सकते हैं क्या।

---

* देखिए २८१ पृष्ठ।

परन्तु थोड़े-बहुत परिवर्तन करने के सिवा हम एक-दूसरे के बहुत नजदीक आ नहीं सके । इन वयानों को विलकुल प्रकाशित ही न करने की हकीम साहव की सलाह और कुछ हद तक पंडित मोतीलालजी द्वारा समर्थन में प्राप्त सूचनाओं का भी हमने विचार किया । परन्तु हम अथवा खासकर मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि जो लोग अव तक मुझे और अली भाइयों को हमेशा अनेक सार्वजनिक प्रश्नों में एकमत देखते रहे हैं, उनके लिए यह भी जानना जरूरी है कि हमारे वीच भी किसी-किसी मामले में मतभेद हो सकता है और फिर भी हम एक-दूसरे के प्रति जान-वूझकर पक्षपात अथवा तथ्यों का जान-वूझकर तोड़-मरोड़ करने का आरोप नहीं लगाते । इसी तरह इससे हमारे वीच के प्रेम में भी कोई कमी नहीं आ सकती । हमारे वीच के मतभेदों का खुला इकरार आपस की सहिष्णुता के मामले में पदार्थ-पाठ सिद्ध होगा । जनता को मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना साहव ने और मैंने एक-दूसरे के निकट आने के प्रयत्न में कोई कसर नहीं रखी । परन्तु हमारे प्रामाणिक मतों को दवा देने की हमारी इच्छा नहीं थी । हमने अपने मूल मसविदों में फेरवदल तो किये हैं, परन्तु एक ने भी किसी मामले में अपने निश्चित मतों को नहीं छोड़ा है । हम दोनों ने कहीं-कहीं कोई शब्द या वाक्य-रचना को हलका किया है, जिससे किसीकी भावना को ठेस न लगे, परन्तु इसके अतिरिक्त मूल लिखावट में कोई मुद्दे के परिवर्तन नहीं हुए ।

मो० क० गांधी]

मौ० शौकत अली और मैं ता० ४ फरवरी के दिन रावलपिंडी गये । वहाँ हमें कोहाट के हिन्दुओं से और उन मुसलमानों से मिलना था, जिन्हें मौ० साहव ने पहले से लिख दिया था और जिनके वारे में ऐसी धारणा थी कि वे रावलपिंडी आयेंगे । लालाजी हमसे एक दिन वाद रावलपिंडी पहुँचे । परन्तु दुर्भाग्य से वे वुखार का आरम्भ लेकर आये थे और जव तक हम रावलपिंडी रहे, तव तक वे वरावर विस्तर पर रहे ।

मुसलमानों में मौलवी अहमदगुल और पीरसाहव कमाल प्रमुख थे, जिनके वयान हमने लिखे । हिन्दुओं के तो लिखे हुए और छपे हुए वयान तैयार थे । इनमें उन्हें कुछ जोड़ना नहीं था । मुसलमानों की 'मुसलिम कार्यसमिति' जो कोहाट में काम कर रही है, हमारे पास नहीं आयी, आने

से इनकार कर दिया। उन्होंने मौ० शौकत अली को तार भेजा कि 'अब तो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच समझौता हो गया है। हमारा खयाल है कि इस सवाल को अब दुबारा उखाड़ना नहीं चाहिए। इसलिए यहाँ के मुसलमानों ने प्रतिनिधियों को रावलपिंडी नहीं भेजा, इसके लिए दरगुजर कीजिए।'

मौलवी अहमदगुल और उनके साथ आये हुए दूसरे सज्जन जो रावलपिंडी आये, वे दोनों उपर्युक्त कार्यसमिति के सदस्य थे, परन्तु उन्होंने बताया कि वे उस कमेटी के सदस्यों के नाते नहीं, परन्तु खिलाफत कमेटी के सदस्यों के नाते ही हमारे पास आये थे।

इस स्थिति में प्रत्यक्ष जगह पर जाकर पूरी जाँच किये बिना और दूसरे बहुत-से साक्षियों की गवाही लिये बिना बारीक बातों पर कोई निर्णय करने का काम कठिन था। और यह हमसे हो नहीं सकता था। कोहाट जाने की हमें मनाही थी। इसी प्रकार बारीक बातों में जाकर सारा झगड़ा फिर से ताजा करना हमारा उद्देश्य भी नहीं था। यदि किसी तरह दोनों पक्ष फिर से मेल कर सकें तो वह मेल कराना ही हमारा हेतु था। इससे हम मुख्य-मुख्य तथ्यों का स्पष्टीकरण करने में ही लगे रहे।

कोहाट में ९ सितम्बर को और उसके बाद में हुए दंगों के बहुत कारण थे। उनमें से एक यह भी था कि हिन्दू पुरुषों और विवाहिता हिन्दू स्त्रियों को धर्मभ्रष्ट किया जाता था और इनके धर्म-परिवर्तन (मेरी राय के अनुसार ऐसे धर्म-परिवर्तन वास्तविक धर्म-परिवर्तन नहीं कहलाते) के विरुद्ध हिन्दू रोष प्रकट करने लगे और उसके विरुद्ध कार्रवाई करने लगे तो इस बात से मुसलमान क्रुद्ध हुए थे। दूसरा कारण था कोहाट के पराचाओं (मुसलमान व्यापारियों) की हिन्दू व्यापारियों को व्यापार में से निकाल बाहर करने की इच्छा। और तीसरे, सरदार माखनसिंह के लड़के द्वारा एक विवाहिता मुसलमान स्त्री का अपहरण करने की बात चली तो उस पर मुसलमानों में रोष फैला।

इन सब कारणों का इकट्ठा असर यह हुआ कि दोनों जातियों के बीच बड़ी अनबन और कटुता फैल गयी। इस बारूद के ढेर में दियासलाई बन जानेवाली चीज थी सनातनधर्मसभा के मंत्री जीवनदास द्वारा रावलपिंडी में प्रकाशित किये गये और कोहाट में लाये गये उस प्रसिद्ध परचे

की कविता। उक्त परचे में श्रीकृष्ण के और हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी कितने ही भजन छापे गये थे, परन्तु उनके साथ उपर्युक्त बहुत ही आपत्तिजनक और मुसलमानों की भावना को अवश्य ठेस पहुँचानेवाला काव्य भी था। वह जीवनदास का लिखा हुआ नहीं था; वैसे ही यह बात भी नहीं थी कि वह मुसलमानों को चिढ़ाने के लिए ही उपर्युक्त परचा कोहाट में लाया हो। सनातनधर्मसभा का इस परचे की तरफ ध्यान दिलाया गया तो सभा ने इस आपत्तिजनक काव्य के लिए तुरन्त मुसलमानों को लिखित माफीनामा भेज दिया। इतना ही नहीं, परचे की जो भी प्रतियाँ बेचनी बाकी रही थीं, उनमें से वह कविता निकलवा दी। मुसलमानों को इतने से संतोष हो सकता था। परन्तु हुआ नहीं। परचे की मुसलमान प्रमाणों के अनुसार ५०० और हिन्दू सबूत के मुताबिक ९०० से अधिक प्रतियाँ चौपाल पर लायी गयीं; और डिप्टी कमिश्नर और मुसलमानों की एक बड़ी भीड़ के सामने उनकी सार्वजनिक होली की गयी। एक परचे के पुट्ठे पर श्रीकृष्ण का चित्र था। इसके अलावा जीवनदास को गिरफ्तार किया गया। यह घटना ३ सितम्बर १९२४ की है। ११ तारीख को उसे अदालत के सामने खड़ा किया गया। हिन्दुओं ने अदालत का मुकदमा वापस लिवाने और घर में समझौता कराने की कोशिश की। ऐसा समझौता कराने पेशावर से एक खिलाफत का प्रतिनिधिमण्डल भी बातचीत के लिए कोहाट आया। मुसलमान बोले : 'हम शरीअत के अनुसार जीवनदास का न्याय करेंगे!' हिन्दुओं ने यह स्वीकार नहीं किया, परन्तु खिलाफतवाले जो भी निपटारा कर दें, वह मंजूर करने की तैयारी बतायी। परन्तु समझौता नहीं हुआ और बातचीत टूट गयी। इसलिए हिन्दुओं ने जीवनदास के छुटकारे के लिए अर्जी दी। उसे ८ सितम्बर को जमानत लेकर और कोहाट छोड़कर चले जाने के हुक्म के साथ छोड़ दिया गया। वह तुरन्त कोहाट छोड़कर चला भी गया। मुकदमे की तारीख से पहले ही इस प्रकार निपटारा हो जाने के कारण मुसलमानों के क्रोध का पार नहीं रहा। ८ तारीख की रात को उन्होंने एक भारी सभा की। उसमें बेहद उत्तेजना थी। वक्ताओं ने वहाँ तीखे भाषण किये। सभा में यह निश्चय किया गया कि सब इकट्ठे होकर डिप्टी कमिश्नर के पास जायें और जीवनदास को फिर से गिरफ्तार करने और सनातनधर्मसभा के और भी कुछ

सदस्यों की गिरफ्तारी की माँग करें। यदि डिप्टी कमिश्नर न माने तो हिन्दुओं से इसका पूरा बदला चुकाया जायगा, ऐसी धमकियाँ भी सभा में दी गयीं। आसपास के गाँवों में सन्देश भेजे गये कि वे सब सबेरे के समय आकर सभा के समुदाय में शामिल हों। दूसरा दिन हुआ और पीर कमाल साहब के कथनानुसार लगभग दो हजार क्रोध से तमतमाये हुए मुसलमानों की भीड़ चौपाल पर गयी। डिप्टी कमिश्नर ने अनुरोध-स्वरूप कहलवाया कि इतने समुदाय के बजाय उनमें से एक छोटी मण्डली चौपाल पर आकर जो कहना हो सो कहे। यह अनुरोध नामंजूर कर दिया गया और उसे चौपाल के बाहर खड़ी भारी भीड़ के आगे आकर बात करनी पड़ी। उसने भीड़ की माँग स्वीकार की और विजय से फूली हुई भीड़ बिखर गयी।

हिन्दू पिछले सप्ताह में ६ तारीख को ही डर के मारे घबरा उठे थे। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर को पत्र लिखकर मुसलमानों में फैले हुए जोश और उत्तेजना की सूचना दी। परन्तु डिप्टी कमिश्नर ने उनकी सुरक्षा के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया। ८ तारीख की रातवाली मुसलमानों की सभा में जो कुछ हुआ, उससे भी हिन्दू वाकिफ थे। इसलिए ९ तारीख को सबेरे अपने पर मँडराते हुए खतरे की चेतावनी देनेवाले कितने ही तार उन्होंने अधिकारियों को भेजे। तो भी सरकारी अधिकारियों ने कोई ध्यान नहीं दिया। तारों में जीवनदास को फिर न पकड़ने की भी प्रार्थना की गयी थी। चौपाल के आगे से बिखरने के बाद भीड़ ने क्या किया, यह मुद्दा खूब विवादग्रस्त हो गया है। मुसलमानों का कहना है कि उसके बाद हिन्दुओं ने पहली गोली चलायी और एक मुसलमान लड़के को मार दिया और दूसरे को घायल कर दिया। इससे भीड़ बिगड़ गयी और परिणामस्वरूप उस दिन मकान जलाये जाते रहे और लूटपाट भी हुई। हिन्दुओं का कहना है कि पहली गोली भी मुसलमानों ने ही चलायी, हिन्दुओं ने तो बाद में और आत्मरक्षा के लिए गोली चलायी, और आग लगाने तथा लूटपाट करने की सारी हरकतें मुसलमानों की पहले से की गयी गुप्त योजना के अनुसार और निश्चित किये गये संकेत होने के बाद हुई थीं।

इस मुद्दे पर स्पष्ट प्रमाण न होने से इस बारे में मैं निश्चित निर्णय

पर नहीं पहुँच सकता । मुसलमानों की दलील यह है कि हिन्दुओं ने पहले गोली न चलायी होती तो जो कुछ जान-माल की ख्वारी हुई, वह कुछ न होती । मैं यह दलील नहीं मान सकता । मेरे मतानुसार तो हिन्दुओं ने गोली न चलायी होती तो भी किसी मात्रा में तो ऐसी ख्वारी हुए विना रह नहीं सकती थी । मुझे शंका नहीं कि भले ही इन्होंने पहली गोली चलायी हो, परन्तु ऐसा होने के पहले ही भीड़ ने सरदार माखनसिंह का उपनगर में स्थित रिहायशी मकान जलाया था और उनके वाग को वरवाद किया था। फिर भी यह तो निःसंशय वात है कि हिन्दुओं ने भी गोली चलाकर कुछ मुसलमानों की जान ली और कुछ को जख्मी किया । मैं तो मानता हूँ कि जीत से फूली हुई भीड़ चारों ओर विखर गयी थी और रास्ते में उसने मकानों और दूकानों के प्रति विरोध प्रकट करनेवाली छेड़छाड़ और उत्पात किया था । इस स्थिति में हिन्दू, जो मेरे ऊपर कहे अनुसार घवराये हुए तो थे ही और हर क्षण विपत्ति मँडराती देख रहे थे, ऐसे दृश्य देखकर काँप गये हों और भीड़ को डराकर भगा देने के लिए किसीने गोली चलायी हो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा । परन्तु ऐसा विरोधी रवैया तो मुसलमानों में उवाल ही पैदा करता, क्योंकि वे हिन्दुओं की तरफ से इस प्रकार के विरोध के आदी नहीं थे । पीर कमाल साहव ने मुझे वताया कि सरहद के मुसलमान अपने को नायक (रक्षक) और हिन्दुओं को 'हमसाया' (आश्रित) मानते आये हैं । ऐसी हालत में हिन्दू जितना अधिक विरोध प्रकट करते गये, उतनी ही भीड़ की क्रोधाग्नि अधिकाधिक धधक उठी । इस दुर्घटना के लिए कौन कितना जिम्मेदार है, यह वात निश्चित करने में मेरी दृष्टि से तो इस वात का अधिक महत्त्व नहीं रहता कि पहली गोली किसने चलायी । वेशक, यदि हिन्दुओं ने अपनी रक्षा विलकुल न की होती या पहली गोली इनके चलाने की वात सच हो तो ऐसी पहल न की होती तो मुसलमानों की छेड़छाड़ और उत्पात थोड़ी देर में थककर शान्त हो जाता । परन्तु हिन्दुओं से, जिनके पास हथियार थे और जो उनका जैसा-तैसा उपयोग भी जानते थे, इतनी अधिक आशा नहीं रखी जा सकती थी । मुसलमान गवाहोंने ९ तारीख के दिन मरे या घायल हुए हिन्दुओं की संख्या के वारे में सन्देह प्रकट किया है । फिर भी मुझे यकीन हो गया है कि

९ तारीख को बहुत-से हिन्दू मुसलमानों के हाथों मरे थे या जख्मी हुए थे। कुल संख्या निश्चित करना कठिन है। यहाँ इस बात का उल्लेख करते हुए मुझे खुशी है कि इस खूँरेजी के दौरान कुछ मुसलमानों ने हिन्दुओं की रक्षा की और उन्हें आश्रय दिया।

यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि सितम्बर की १० तारीख को मुसलमानों की क्रोधाग्नि की सीमा नहीं थी। यह सही है कि हिन्दुओं के हाथ कत्ल हुए मुसलमानों की अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण अफवाहें चारों ओर फैलायी गयी थीं और चारों दिशाओं के गाँवों के देहाती मुसलमान शहर की दीवार में रास्ते बनाकर और दूसरी तरह से कोहाट में घुसे थे। सारे शहर में रक्तपात और लूटपाट हुई थी, जिसमें सरहदी पुलिस खुलकर शामिल हुई थी और जिसे अफसर या रोक सकनेवाले देख रहे थे। यदि हिन्दू अपने-अपने घरबार छोड़कर छावनी में न भाग गये होते तो शायद ही कोई बच पाता। इस बात पर भी खूब जोर दिया गया है कि मुसलमानों का भी नुकसान हुआ है और देहाती मुसलमान एक बार लूटने लगे तो फिर वे यह छाँटने नहीं बैठते कि यह माल हिन्दू का है और यह मुसलमान का। इस बात में जो सचाई है, उससे मैं इनकार नहीं करता। फिर भी हिन्दुओं की जो हानि हुई है, उसके साथ मुसलमानों की हानि की किसी प्रकार भी तुलना हो सकती है, यह मानने से मैं इनकार करता हूँ। और यहीं मुझे यह भी आदरपूर्वक बता देना चाहिए कि खिलाफत के जिन स्वयंसेवकों का धर्म इस अवसर पर हिन्दुओं की रक्षा करना और उन्हें अपने सगे कुटुम्बियों के समान समझकर उनकी मदद करना था, उनमें से कुछ ने इस धर्म पर पानी फेर दिया और वे लूट म शामिल ही नहीं हो गये, बल्कि पहले की उत्तेजना में भी उन्होंने भाग लिया।

परन्तु इससे भी अधिक बुरी बात तो अभी कहनी बाकी ही है। इन दंगों के दिनों में हिन्दू मन्दिरों और गुरुद्वारे को नुकसान पहुँचाया गया और मूर्तियाँ तोड़ी गयीं। इसके सिवा हिन्दुओं को जबरदस्ती धर्म-भ्रष्ट करने के अथवा कथित धर्म-परिवर्तन अर्थात् सलामती की खातिर धर्म-परिवर्तन करने की बात के बहुत-से मामले हुए। कम-से-कम दो हिन्दुओं की (एक के निश्चित रूप में और दूसरे के सबूत पर से होने-

वाले अनुमान के अनुसार) इसलाम धर्म स्वीकार करने से इनकार करने पर घातक ढंग से हत्या की गयी । एक मुसलमान गवाह ने उपर्युक्त धर्म-परिवर्तन के मामले इस प्रकार बयान किये : 'हिन्दू मुसलमानों के पास आये और अपनी चोटियाँ कटवा डालने और जनेऊ तोड़ देने के लिए कहने लगे; या जिन मुसलमानों के पास जाकर इन्होंने आसरा माँगा, उन्होंने इनसे कहा कि 'तुम अपने को मुसलमान घोषित करो और हिन्दुत्व की निशानियाँ मिटा दो तो ही तुम्हारी रक्षा हो' ।' मुझे भय है कि यदि मैं हिन्दुओं का बयान सच मानूँ तो यथार्थ सत्य, जैसा मैंने ऊपर बताया, उससे अधिक ही कटु है । साथ ही उन मुसलमान मित्र के साथ न्याय करने के लिए मुझे इतना भी कहना चाहिए कि उन्होंने यह भी नहीं माना था कि हिन्दू उपर्युक्त काम करते ही धर्मभ्रष्ट हो चुके । परन्तु सौम्य-से-सौम्य दृष्टि से विचार करें तो भी यह घटना मुसलमान और हिन्दू दोनों को बराबर ही नीचा दिखानेवाली है । उन मुसलमानों ने अपने पास आये हुए कायर हिन्दुओं को बहादुरी सिखाई होती और उनके हिन्दू रहते हुए और शरीर पर हिन्दुत्व के चिह्न कायम रखते हुए भी उनकी रक्षा की होती तो उनका यश हमेशा गाया जाता; और उन हिन्दुओं ने भी भले ही बाहरी दिखावे के लिए भी धर्मत्याग करने की अपेक्षा मौत को बेहतर समझा होता तो धर्मवीर और शूरवीर के रूप में वंश-परम्परा उनका यशोगान करती और अकेली हिन्दू-जाति ही क्या, सारी मनुष्य-जाति उनके नाम पर गर्व करती ।

अब सरकार के रवैये के बारे में मुझे दो शब्द कहना है ।

स्थानीय अधिकारियों ने इस दुर्घटना के मौके पर निर्दय बेफिक्री, नालायकी और कमजोरी दिखायी है ।

एक तो वह आपत्तिजनक कविता निकाल देने के बाद परचा जलाना भूल थी ।

पहली बार जीवनदास को पकड़ना ठीक था, परन्तु उसे ११ तारीख से पहले छोड़ देना हिसाब की भूल थी ।

एक बार छोड़ देने के बाद उसे फिर पकड़ना तो महादोष था ।

अपने जान-माल के खतरे में होने की हिन्दुओं की ९ सितम्बर को

दी गयी और ९ तारीख को दुवारा दी गयी चेतावनियों पर बिलकुल ध्यान न देना अधिकारियों का स्पष्ट अपराध था।

अन्त में जब दंगे हुए, उस समय भी रक्षा नहीं की गयी, यह महा अपराध था।

भागे हुए निराश्रितों को उनके कोहाट छोड़ देने के बाद भी कुछ खाने को पहुँचाने का बन्दोबस्त नहीं किया गया और उनके रावलपिण्डी पहुँचने के बाद भी उन्हें अपने ही साधनों पर निर्भर रहने को अकेला छोड़ दिया गया, यह अमानुषिक था।

भारत सरकार ने इस दुर्घटना की और इससे सम्बद्ध अधिकारियों के आचरण की जाँच कराने के लिए एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त नहीं किया, यह उसकी अपने स्पष्ट कर्तव्य के प्रति घोर लापरवाही थी।

भविष्य के विषय में भी मुझे खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि अभी तो भविष्य, भूतकाल से अधिक उज्ज्वल दिखाई नहीं देता। 'मुस्लिम कार्यसमिति' ने अपने प्रतिनिधियों को हमारी जाँच में अपना कथन पेश करने को नहीं भेजा, यह बड़े अफसोस की बात है। जो समझौता हुआ बताया जाता है, वह भी दोनों जातियों के लोगों के विरुद्ध अदालतों में मुकदमा चलाने की धमकी के दबाव में किया गया है। एक मजबूत सरकार ऐसा समझौता कराने में कैसे शामिल हो सकती है, यह समझ से बाहर की बात है। यदि इस डर से कि देहाती मुसलमान दुवारा ऊधम मचायेंगे, अदालतों के मुकदमे वापस लेना सरकार ने ठीक समझा हो, तो उसे साहसपूर्वक ऐसी स्पष्ट घोषणा करके मुकदमे वापस लेने थे और फिर दोनों पक्षों में मित्रतापूर्ण और शोभास्पद समझौता कराना था। अभी का समझौता बुनियाद में ही दूषित है, क्योंकि इसमें नष्ट हुई और हानि पहुँची हुई सम्पत्ति वापस दिलवाने के बारे में कुछ भी आश्वासन नहीं दिया गया। और इसमें यह दोष भी है कि जीवनदास पर, जिसे होली का नारियल बनाया गया है, अब भी मुकदमा चलाना बाकी रखा गया है।

इस स्थिति में यदि सच्ची दिलों की सफाई और सच्चा समझौता करना हो तो यह जरूरी है कि कोहाट के मुसलमान हिन्दू निराश्रितों को सम्मानपूर्वक वापस बुलायें और उनकी रक्षा का और उनके मन्दिरों और गुरुद्वारों को फिर से बनवाने में मदद देने का उन्हें आश्वासन दें।

परन्तु सबसे अधिक महत्त्व का आश्वासन तो यह देना रहा है कि भविष्य में किसी भी प्रकार भ्रष्ट करके धर्म-परिवर्तन करने के प्रयत्न न हों और हों तो ऐसे धर्म-परिवर्तनों को जाति मंजूर न करे, सिवा ऐसे मामलों के, जिनमें जातियों के बड़े लोग मौजूद रहे हों और जिनमें ऐसा धर्म-परिवर्तन करनेवाला ऐसा हो, जो इस बात का अर्थ पूरी तरह समझ सके कि वह क्या कर रहा है। मैं स्वयं तो धर्मभ्रष्ट करने या शुद्धि करने की सभी प्रवृत्ति बन्द कराना चाहता हूँ। धर्ममान्यता सभी के लिए अपना-अपना निजी मामला है। कोई भी वयस्क पुरुष या स्त्री अपना धर्म किसी भी समय और जितनी बार भी चाहे उतनी बार बदलने को स्वतन्त्र है। परन्तु इस मामले में मनुष्य अपने चरित्र की छाप डालकर जो करे, उसके सिवा और तमाम प्रचार-कार्य मेरा बस चले तो मैं एकदम बन्द ही करा दूँ। धर्म-परिवर्तन तो अपने हृदय-परिवर्तन का और शुद्ध बुद्धि से सम्बद्ध मामला है। और मनुष्य के मन-बुद्धि को तो एक चारित्र्य ही हिला सकता है। सरहदी प्रान्त में, जहाँ हिन्दू निरे दुनियवी आर्थिक लाभ के लिए ही और हथियारों की तालीम के बिना, शरीर-बल में और हथियार चलाने में अपने से कई गुनी बढ़कर विशाल मुसलमान आबादी के बीच में केवल 'आटे में नमक' की तरह रहते हैं, वहाँ सच्चे हृदय-परिवर्तनवाले धर्म-परिवर्तनों की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थिति के बीच बोदे-पोचे मनुष्य को सांसारिक लाभों के लिए इस्लाम को स्वीकार करने का मोह होना अनिवार्य है।

ऐसा आश्वासन दिया जाय या न दिया जाय, अथवा जैसा मैं कह चुका हूँ, दिल की सफाई या हृदय-परिवर्तन सम्भव हो या न हो, परन्तु मेरे लिए तो इस मामले में अपनाने का मार्ग स्पष्ट है। जब तक पर-राज्य हमारे सिर पर मौजूद है, तब तक कहीं न कहीं उसके साथ सम्बन्ध आना तो अनिवार्य जैसा है। तथापि जहाँ-जहाँ हो सके, वहाँ-वहाँ उसके साथ सब प्रकार का स्वेच्छापूर्वक सम्बन्ध तो यथासम्भव त्यागना ही होगा। यही स्वतन्त्रता की भावना विकसित करने और स्वतन्त्रता सिखाने का रास्ता है। और जब बहुत लोग ऐसी स्वतन्त्र भावना रखनेवाले बन जायें, उस दिन समझ लीजिए कि हम स्वराज्य कायम करने को तैयार हैं। मैं तो प्रत्येक प्रश्न का हल स्वराज्य के हिसाब से ही सुझा सकता हूँ।

इस कारण से मैं तो आज के व्यक्तिगत लाभ भविष्य के सार्वजनिक लाभ के लिए छोड़ दूंगा। इसलिए यदि मुसलमान दोस्ती का हाथ बढ़ाने से इनकार करें और कोहाट के हिन्दुओं को अपना सर्वस्व खोना पड़े, तो भी मैं तो यही कहूँगा कि जव तक उनके और मुसलमानों के वीच पूरी तरह सच्चा समझौता न हो और उन्हें विश्वास न हो जाय कि वे ब्रिटिश सरकार की वन्दूकों की रक्षा के विना ही मुसलमानों के साथ वरावरी में रह सकेंगे, तव तक वे कोहाट वापस जाने का सारा विचार छोड़ दें।

परन्तु मैं जानता हूँ कि यह तो मैंने आदर्श की वात की है और यह कम सम्भव है कि हिन्दू इसका अनुसरण करेंगे। फिर भी मेरे पास और कोई सलाह नहीं है। मेरे खयाल में तो यही एक व्यावहारिक सलाह है, जो मैं इस समय दे सकता हूँ। यदि वे इसकी कद्र न कर सकें तो उन्हें जैसा सूझे, वैसा ही करें। अपनी ताकत का सही अन्दाज खुद उन्हींको हो सकता है। वे कोहाट में कोई देशभक्तों या देशसेवकों के रूप में नहीं रहते थे; और अव भी देशसेवकों के रूप में नहीं, परन्तु अपने घरवार और सम्पत्ति फिर से खड़ी करने के लोभ से कोहाट लौटना चाहते हैं, यह मैं समझता हूँ। वे वेशक वही करें, जो उन्हें आसान दिखाई दे। केवल एक ओर मेरी सलाह के अनुसार करने और दूसरी ओर सरकार के साथ भी समझौते की वातचीत जारी रखने की दो चीजें एक साथ करने का ममत्व न रखें। वे कोई असहयोगी नहीं, वे तो हमेशा ब्रिटिश सरकार का आसरा लेते आये हैं, यह भी मैं जानता हूँ। मैं तो परिणाम की तरफ उँगली वता देता हूँ। फिर जो मार्ग उन्हें पसन्द हो, उसे ग्रहण करने को वे स्वतन्त्र हैं।

मुसलमानों को भी मेरी सलाह उतनी ही सरल है।

हिन्दू अपनी जाति के लोगों के धर्मभ्रष्ट होने के मामले में उद्विग्न हों, इसमें अथवा हिन्दू पति अपनी विवाहिता स्त्रियों को वापस लेने के लिए कदम उठायें, इसमें मुसलमानों को चिढ़ने का कोई कारण नहीं था।

मैं जानता हूँ कि सरदार माखनसिंह का लड़का स्त्री-अपहरण के अभियोग से वरी हो गया तो भी वहुत मुसलमान इस घटना को अव तक सच्ची मानते हैं। परन्तु दलील की खातिर उक्त युवक को दोपी मान लें

तो भी उसके अपराध के लिए एक सारी जाति से ऐसा भयंकर बदला लेना किसी भी तरह बचाव करने लायक बात नहीं है ।

अत्यन्त आपत्तिजनक कवितावाला परचा खासकर कोहाट जैसे स्थान पर लाना सचमुच निंद्य कृत्य था । परन्तु सभा ने लिखित माफी माँगकर इस बारे में पर्याप्त प्रायश्चित्त किया । फिर भी ऐसी माफी काफी नहीं मानी गयी और सनातनधर्मसभा को इससे आगे बढ़कर उस परचे की तमाम प्रतियाँ उनके ऊपर छपी श्रीकृष्ण की तसवीरों सहित जला डालने को विवश किया गया । उसके बाद हिन्दुओं पर जो कुछ बीती, वह सब जरूरत से बेहद ज्यादा थी । जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, मैं इस बारे में निश्चित निर्णय नहीं कर सका कि पहली गोली किसने चलायी; परन्तु यह मान लें कि हिन्दुओं ने पहली गोली चलायी तो भी घबराहट में और आत्मरक्षा के लिए होने के कारण उसे न्याय्य नहीं तो भी क्षम्य माना जाना चाहिए; और इसलिए उसके जवाब में किया गया हत्याकाण्ड भी सर्वथा अनुचित था । इस प्रकार इस घटना के मामले में मुसलमान ही हिन्दुओं की मौजूदा हालात में जो कुछ सम्भव हो वह क्षति-पूर्ति कर देने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं । और मुसलमानों को हिन्दुओं के डर से सरकार का सहारा या सहायता ढूँढ़ने की बिलकुल जरूरत नहीं है । हिन्दू चाहें तो भी उनका बाल बाँका नहीं कर सकते । परन्तु मैं फिर निराधार बात में चला गया । मुझे तो कोहाटी मुसलमानों के वर्तमान सलाहकारों से परिचय तक करने का सौभाग्य नहीं मिला । इसलिए उन्हें स्वयं ही अच्छे-से-अच्छा निर्णय कर लेना है कि उनकी जाति के लिए और भारत के लिए किसमें भला है ।

यदि दोनों पक्ष सरकार की मध्यस्थता चाहते हों तो मेरी सेवा उनके लिए बिलकुल बेकार है, क्योंकि मैं ऐसे हस्तक्षेप को वांछनीय माननेवालों में नहीं हूँ । और इसलिए सरकार के साथ ऐसी बातचीत में मैं कोई भाग नहीं ले सकता । फिर यह सच है कि मुसलमानों से न्यायपूर्ण व्यवहार प्राप्त करने का हिन्दुओं का हक है और यह हक उन्हें माँगना ही चाहिए, तो भी सरकार से तो दोनों को बचना ही होगा, क्योंकि उसका काम ही दोनों जातियों को एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काकर आपस में लड़ाते रहना है । सरहदी प्रान्त निरंकुश शासनवाला है—जहाँ अधिकारियों की इच्छा

ही कानून है । ऐसी स्थिति में हिन्दू प्रतिनिधित्व प्राप्त करना दोनों जातियों के लिए गर्व करने की चीज होनी चाहिए । परन्तु जब तक दोनों जातियाँ एक-दूसरे का विश्वास न करें और ऐसा प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की आकांक्षा जाति में सामान्य न बन जाय, तब तक ऐसा कहाँ से हो सकता है ?

तिरुपुर
ता० १९ मार्च १९२५ — मोहनदास करमचन्द गांधी

२. मौ० शौकत अली का बयान

कोहाट के अभागे मामले की खबर मैंने पहले-पहल सुनी और महात्मा-जी ने २१ दिन का रोजा किया तथा दिल्ली में 'एकता परिषद्' हुई, उस दिन से लगाकर रावलपिण्डी में हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच मैंने आखिरी दिन बिताया, तब तक इस मामले का मैंने पूरे गौर से विचार किया है । मौजूदा हालात में यथासम्भव सारी जाँच-पड़ताल करने के बाद मैं एक राय पर पहुँचा हूँ । और यद्यपि मैं और महात्माजी कुल मिलाकर सहमत हैं, फिर भी किसी हद तक फर्क होने से और खासकर इस मामले की कुछ बातों पर मेरे जोर देने से मुझे अपना बयान अलहदा लिखना मुनासिब मालूम हुआ है । साथ ही अपनी राय के सिलसिले में कुछ मामलों पर छोटी-छोटी तफसील में जाना और लम्बी दलीलें पेश करना भी मैंने जरूरी नहीं समझा ।

यह तो जानी हुई बात है कि जहाँ-जहाँ हिन्दू-मुसलमान लड़े हैं या लड़ रहे हैं, वहाँ-वहाँ जाकर बीच में पड़ने से मैंने हमेशा इनकार किया है । मेरी राय के अनुसार ऐसे स्थानों के हिन्दू-मुसलमानों ने बाहर के उन हिन्दू-मुसलमानों की, जो भाईचारे और शान्ति से एक-दूसरे के साथ रहने के निश्चयवाले हैं, सहायता और सहयोग माँगने का तमाम हक खो दिया है। प्रत्येक पक्ष अमन और इत्तिफाक के लिए नहीं, परन्तु अपनी-अपनी तरफ मददगार जुटाने के लिए ही उत्सुक होता है । और दोनों पक्षों के फसाद करानेवाले लोग औरों को भी अपने जैसे ही बनाना चाहते हैं ।

फिर एक घटना हो जाने के बाद पीछे से की गयी जाँच-पड़ताल में मुझे तो कोई दिशा ही नहीं सूझती । पूरी चालबाजी से मामले के तथ्य

तैयार करके पेश किये जाते हैं और हमारे बीच में पड़ने का कोई अर्थ नहीं है। प्रत्येक पक्ष सामनेवाले का ही सारा कसूर वताता है और इसलिए विपरीत निर्णय स्वीकार करने से साफ इनकार करता है। अक्सर दोष भी दोनों का होता है और ऐसे कसूर का ठीक न्याय करके यह ठहराना कि कौन कितना दोषी है, कठिन ही नहीं, परन्तु लगभग असम्भव होता है; और इससे कुछ मतलब भी पूरा नहीं होता। सच पूछिए तो इसके विपरीत गयी-गुजरी ताजा होती है और अखवारों व सभाओं की सहायता से दोनों पक्ष वार-वार लड़ाई लड़ते ही रहते हैं।

यह कोहाट का ही एक ऐसा मामला है, जिसमें मैंने भाग लिया और मैंने साफ-साफ देख लिया कि ऐसे मामलों के वारे में, जैसा मैं शुरू मे कह चुका हूँ, मेरे दिल का मूल रवैया कितना सही है। निष्पक्ष हिन्दू तथा मुसलमान मित्रों से मैंने जो पहले सुना था, उस पर से ही मैं इस राय पर पहुँचा था कि अखवारवालों के एक भाग ने इस मामले को जैसा एक रंग में रँगा है, यह वैसा नहीं होना चाहिए। और कोहाट से सम्बद्ध सारे तथ्य जानने के वाद और उस समय जो लोग वहाँ मौजूद थे, उनसे अधिक जान-पहचान करने के पश्चात् मेरी यह शुरू की राय अधिक ही मजवूत हुई है। दूसरे स्थानों के विषय में तो मैं कुछ नहीं कह सकता, परन्तु इस कोहाट के मामले में तो जो कुछ हुआ, उसके लिए यदि मुसलमान ज्यादातर जिम्मेदार हैं तो हिन्दू भी ऐसे-वैसे कसूरवार नहीं है।

नीचे के मामलों पर हम गौर करें।

पंजाव और संयुक्त प्रान्त में फैल रहा साम्प्रदायिक विप कोहाट मे पहुँच गया था और वहाँ भी हिन्दू-मुसलमानों में पहले जैसा इखलास नहीं रहा था। मेरे सुने अनुसार तो कोहाट में भी दोनों पक्ष एक-दूसरे के विरुद्ध वेलगाम गाली-गलौच वरसा रहे थे।

सरहदी प्रान्त में रहनेवाले अज्ञान और कम पढ़े-लिखे खान लोग अपने मान-मरतवे के मामले में वड़े ऐंठवाले हैं; और यद्यपि वे अपनी खुद की ही भूलों और वेवकूफियों से ख्वार हो गये हैं, फिर भी झूठी शान रखनेवाले हैं। अधिक होशियार और वेहतर तालीम पाये हुए हिन्दू इन लोगो को अव पीछे छोड़ गये हैं और अपनी किफायत और व्यवहारकुशलता से आवादी में खास दरजा भी भोगने लगे हैं। उन्होंने रुपया कमा लिया है

और इस अमीरी को कभी-कभी जरा शेखी के साथ दिखाते हैं। इस प्रकार दोनों जातियों के बीच का पुराना सम्बन्ध बदल गया है और सरकारी अफसर इन मुसलमान खानदानों को ज्यादा नामर्द और ज्यादा कमजोर बनाने में इस हालत का पूरी तरह फायदा उठा रहे हैं। यही लोग सरकार के लिए खतरा माने गये हैं—हिन्दू नहीं। कोहाट में असहयोग शुरू करनेवाले भी मुसलमान ही थे और इसके लिए जो कुछ सहना पड़ा, वह भी इन्हींको। परन्तु असल में यह कर्मचारी वर्ग ही यहाँ की जनता के लिए सच्चा खतरा है और इसीसे हिन्दू-मुसलमान दोनों को बचना होगा।

इस प्रकार जब दोनों जातियों में विष फैला हुआ था, तब यह गाली-गलौच से भरा परचा आ पहुँचा, जिसमें काबे और रसूल की (खुदा की उन पर हमेशा दुआ हो) सरासर बेइज्जती की गयी थी। यह परचा कोहाट सनातनधर्मसभा के मन्त्री जीवनदास के लिए खास तौर पर छापा गया था। ऐसे परचे का कोहाट के मुसलमानों पर ही नहीं, परन्तु किसी भी मुसलमान आबादी पर कैसा खतरनाक असर होगा, यह कहने की जरूरत नहीं है। यहाँ मुझे कलकत्ते की घटना याद आती है। 'इण्डियन डेली न्यूज' में लड़ाई के दिनों में पेरिस का एक पत्र छपा था। उसमें उसके संवाददाता ने लिखा था कि 'अफ्रीका के अरबों को पेरिस की नालियाँ साफ करने के काम में लगाया गया था; वे अपने साफ करने के मैले की तरफ उतने ही प्यार और इज्जत की निगाह से देखते थे, जितनी इज्जत से वे अपने पैगम्बर की कब्र के सामने देखते हैं।' इस पत्र पर कलकत्ते में और सारे हिन्दुस्तान में मुसलमानों में जो क्रोध की भावना फैल गयी थी, उसका वर्णन करना कठिन है। चारों ओर मुसलमानों की क्रोधाग्नि धधक उठी और उपर्युक्त लेख की निन्दा करने को कलकत्ते में एक विराट् सभा की गयी। सरकार ने इसमें रुकावट डाली और सभा के लिए जुलूसों में आनेवाले लोगों पर गोली चलायी, जिससे बहुत लोग मरे और घायल हुए। इस पर से मैं अच्छी तरह अन्दाज लगा सकता हूँ कि उपर्युक्त परचे से कोहाट के मुसलमानों की भावना भी कितनी उबल पड़ी होगी। ऐसे लेखों की बात दबाये हरगिज नहीं दबती। और इसके लिए मैं मौलवी अहमदगुल को दोष नहीं दे सकता।

हिन्दुओं का मामला पूरी तरह और पूरी सावधानी से तैयार किया

गया है। कोहाट में उनके कितने ही उमदा तालीम पाये हुए व्यक्ति हैं, जिनमें कुछ बैरिस्टर और वकील हैं। इसके सिवा वाहर की सारी हिन्दू-जाति में से कितने ही प्रमुख और निहायत होशियार लोगों की सहायता का लाभ इन लोगों को मिला है। मुसलमानों का पक्ष अभी तक पूरा प्रकाश में ही नहीं आया। उनमें दो दल हो गये हैं। दोनों किसी समय तो असहयोगी थे, परन्तु अब अलग-अलग हो गये थे और एक-दूसरे के प्रतिपक्षी थे। उनके वीच में एका होना नामुमकिन वात थी और वाहर के किसी मुसलमान की सलाह की उन्हें मदद नहीं थी। मेरे वुलाये ये लोग आ गये, यही मैं गनीमत समझता हूँ और इसके लिए उनका शुक्रगुजार हूँ। अपने को समझौता करानेवाली मुस्लिम कार्य-समिति कहलानेवाले उस सरकार से मिले हुए मण्डल की तरह ये लोग भी आने से इनकार कर सकते थे। परन्तु ऐसा न करके ये आये और अपने वयान दिये। सैयद पीर कमाल जीलानी और मौलवी अहमदगुल के वयानों में मुद्दे का वहुत कम फर्क था और इन दोनों ने अपनी गवाही में इस वात से साफ इनकार किया है कि ता० ९ सितम्बर को हिन्दुओं पर चारों तरफ से हमला करने या उनके विरुद्ध जिहाद वोल देने की कोई भी तैयारी की गयी थी या ऐसा करने का खयाल था। मुसलमानों ने तो जीवनदास के अचानक छुटकारे की खवर सुनने के वाद ८ तारीख की रात को डिप्टी कमिश्नर के पास फकत जाने का प्रस्ताव किया था। वेशक, डिप्टी कमिश्नर के, जो मुसलमानों को एक और हिन्दुओं को दूसरे वचन देता जा रहा था, ऐसी दोहरी चाल चलने के विरुद्ध मुसलमानों में रोष की भावना जरूर थी।

हिन्दुओं को सैयद पीर कमाल जीलानी के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी। उनकी शिकायत खिलाफत सेक्रेटरी मौलवी अहमदगुल के खिलाफ ही थी। ता० २५ अगस्त १९२४ तक के हालात से मालूम होता है कि तव तक मौलवी गुल का वर्ताव ठीक था। उपर्युक्त परचे के किस्से के वाद ही उन्होंने अपना संतुलन खोया और वे सरकार की तरफ गये। मौजूदा सड़ी हुई हालत में और साम्प्रदायिक फूट के कारण पंजाव में और अन्यत्र भी कितने ही पुराने और साहसहीन हिन्दू और मुस्लिम कार्यकर्त्ता अपना सब्र खो वैठे हैं और मौलवी अहमदगुल भी मुस्लिम आम लोगों का

हमला सहने योग्य मजबूत नहीं रह सके। चाहते तो ये अथवा और कोई भी प्रमुख व्यक्ति यह सारा मामला बचा ले सकता था। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा कोई व्यक्ति उनके बीच था नहीं। दीवान अनन्तराम ने इनसे कहा कि वे ठीक इसी मौके पर सख्त बीमारी में न फँसे होते तो ये सारी दुःखदायी घटनाएँ कभी नहीं हो पातीं। शेष भारत के अपने अनुभव पर से मैं मौलवी अहमदगुल के दरजे के शख्स से बहुत आशा नहीं रख सकता। फिर भी मुझे इतना तो अवश्य लगता है कि यदि ये आम लोगों की राय अपने पक्ष में न रख सके तो अन्त में इन्हें अलग रहना चाहिए था। परन्तु सरकारी पक्ष में हरगिज नहीं जाना चाहिए था। यह सब होते हुए भी हिन्दुओं का इनके बारे में जो कहना है, वह सब तो मैं किसी भी तरह स्वीकार नहीं कर सकता।

हमें कोहाट की इन घटनाओं को अपने पैमानों से हरगिज नहीं नापना चाहिए। ऐसा करना उचित नहीं है। वहाँ की हालत हमारे यहाँ जैसी नहीं। हमारे यहाँ तो साधारण माफीनामा काफी हो जाता और परचे जलाना बिलकुल जरूरी न होता। परन्तु कोहाट के मुसलमानों में तो माफीनामा और परचों की होली दोनों भी पर्याप्त नहीं माने गये। यदि दोनों जातियों में एकाध भी सच्चा सुलह करानेवाला मौजूद होता तो आसानी से सारा समझौता हो जाता। पेशावरवाले शान्ति-मण्डल में हाजी जानमुहम्मद, अमीचन्द बोंबवाल, सैयद लाल बादशाह और अलीगुल थे। उन्होंने सुलह कराने के लिए बहुतेरी कोशिशें कीं, परन्तु उनमें उन्हें कामयाबी हासिल नहीं हुई।

९ तारीख का दिन जिहाद का एलान करने के लिए मुसलमानों ने तय किया था और इसके सन्देश पहले से भेज दिये गये थे, हिन्दुओं की यह बात मुझे मंजूर नहीं है। सरहद के पठान लड़ने की हिकमत जानते हैं और अपनी जिन्दगी नाहक फेंक देने के शौकीन नहीं होते। अगर हिन्दुओं का कत्लेआम करने का सचमुच इनका इरादा होता तो इसके लिए दुश्मन को मालूम हो, ऐसा दिन और दिनदहाड़े का वक्त उनके लिए बहुत अनुकूल नहीं हो सकता था। वे तो अचानक छापा मारने का ही इन्तजाम करते। और पहले दिन अर्थात् ९ सितम्बर को तो मारकाट भी दोनों तरफ लगभग बराबर ही थी और सारे हालात को देखते हुए

जान पड़ता है कि मुसलमानों की बरबादी भी ज्यादा नहीं तो हिन्दुओं के बराबर ही थी। इसी प्रकार दिल्ली में मुझे कही गयी मुसलमानों के पक्ष की यह बात भी मैं नहीं मानता कि हिन्दू, मुसलमानों पर सबक देनेवाले हमले की तैयारी कर रहे थे। उनका कहना यह था कि हिन्दू काफी हथियारबन्द होकर और मदद के साथ एक अचानक हमले से मुसलमानों को मात करने की आशा रखते थे और मानते थे कि बाद में पुलिस और सेना बीच में पड़ेगी और मामला अदालतों में फैसले के लिए जायगा तो सब देख लिया जायगा। कोहाट के मुसलमानों ने साफ कहा कि ऐसी बात असम्भव थी।

मेरी राय के अनुसार ९ सितम्बर को लड़ाई हुई और मकान जलाये गये, यह इत्तफाकिया घटना थी और इसमें पहले से निश्चित कोई योजना नहीं थी। ८ तारीख को जीवनदास के अचानक छूटने से हिन्दुओं का प्रबल पक्ष मुसलमानों पर प्राप्त इस विजय के लिए सार्वजनिक रूप में हर्ष प्रकट करते हुए घूमा होगा। दूसरे दिन सवेरे जब डिप्टी कमिश्नर ने मुसलमानों की भावना की गहराई देखी और जीवनदास को छोड़ने में अपनी की हुई भूल का खयाल आने पर उसे फिर से पकड़ने और इसी तरह सनातनधर्मसभा के दूसरे सदस्यों को भी गिरफ्तार करने का उसने हुक्म दिया, तब मुसलमानों के प्रबल पक्ष को अपनी भारी जीत पर खुशी जाहिर करने की अपनी बारी आयी मालूम हुई होगी और इस प्रकार फसाद का श्रीगणेश हुआ होगा।

पहली गोली किसने चलायी? मुसलमानों का कहना है कि बाजार में सरदार माखनसिंह के घर के पास एक मुसलमान लड़के को और एक अन्य मनुष्य को गोली से मार दिया गया। हिन्दुओं का कहना है कि पराचाओं ने पहले तीन गोलीबार किये और एक हिन्दू स्त्री को मार डाला और दूसरी को जख्मी कर दिया। हिन्दुओं का यह भी कहना है कि ये तीन गोलीबार मुसलमान हमले के पहले से नियोजित संकेत थे। यह पिछली बात मैं नहीं मानता, क्योंकि यह हिन्दुओं की फैलायी हुई बात का ही एक भाग है। उस बात के लिए मुझे जरा भी सबूत नहीं मिला। ८ सितम्बर की रात को एक रोषभरी सभा में मुसलमानों ने अगले दिन सुबह डिप्टी कमिश्नर के पास जाने का निश्चय किया था।

उन्होंने यह तय किया था कि यदि डिप्टी कमिश्नर प्रतिकूल निर्णय दे तो पीछे क्या करना, यह देख लिया जायगा। डिप्टी कमिश्नर ने उनकी सारी माँग पूरी तरह मान ली। उसने अकेले जीवनदास की ही नहीं, सनातनधर्मी सदस्यों की भी गिरफ्तारी का हुक्म दिया। इससे भीड़ को अपना चाहा सब कुछ मिल जाने की पूरी खुशी हुई, क्योंकि उन्होंने जिसे अपने दीन की इज्जत माना था, उसका वन्दोबस्त हो गया था। इसके वाद हिन्दुओं का कत्ल शुरू करने में कोई मुद्दा नहीं था। मुझे पूरा यकीन है कि ९ तारीख को जो गोली चली और जो मकान जलाये गये, वह बिलकुल अकस्मात् था। बारूद का ढेर तो पड़ा ही हुआ था, उसमें अकस्मात् दियासलाई पड़ गयी और प्रवल ज्वाला धधक उठी। असल में हिन्दू या मुसलमान किसीका ऐसा कोई इरादा नहीं था और मुसलमानों को तो अपनी भारी जीत के बाद कुदरती तौर पर ही ऐसी कोई इच्छा नहीं हो सकती थी।

हिन्दू और मुसलमान दोनों से ही सुनकर मैं प्रसन्न हुआ कि इस सवाल को फिर से ताजा करने में कुछ भी लाभ नहीं है। दोनों पक्षवालों ने यह वात हमारे सामने वार-वार कही और मेरा खयाल है कि आज भी दोनों ओर दोष का बँटवारा किये विना इज्जत और दोस्तीभरी सुलह की जा सकती है। मुसलमानों का कहना है कि १० सितम्वर को हिन्दुओं को कोहाट से निकाल देने का उनका बिलकुल इरादा नहीं था और न उन्होंने हिन्दुओं को मजबूर ही किया था। ग्रामीण पुलिस, सरहदी पुलिस और तमाम ब्रिटिश अफसर वहाँ मौजूद थे। और १० तारीख को जो कमवख्त लूट हुई और मकान जलाये गये, उसके लिए तो सरकार ही जिम्मेदार है। ये लोग चाहते तो सब कुछ रोक सकते थे। परन्तु वे ऐसा करना चाहते नहीं थे। सरहद पर का यह हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा इनके लिए तो एक खुदाई दुआ जैसा हो गया, ताकि वे सरहद के मुसलमानों और पंजाव तथा भारत के हिन्दुओं की भावनाओं में और कटुता भर सकें और दुनिया में जाहिर करें कि हिन्दू-मुसलमान अव आपस में कैसे खुल्लमखुल्ला लड़ रहे हैं और उनके बीच एकता कैसी असम्भव चीज है। ऐसा करके वे यह भी सिद्ध करेंगे कि शान्ति कायम रखने के लिए ब्रिटिश जैसी मजबूत सरकार का शासन कितना जरूरी है।

मुसलमानों की यह भी शिकायत है कि साधन-सम्पन्न हिन्दू नेताओं की मदद से कोहाट के हिन्दुओं ने सरकार पर दबाव डालकर अपने लिए कुछ खास हक प्राप्त कर लिये हैं। आइंदा यहाँ आधी पुलिस हिन्दू रहेगी। हिन्दू मुहल्लों में होकर किसी मुसलमान स्त्री या पुरुष को जाने-आने नहीं दिया जायगा। कूचाबन्दी (नाकाबन्दी) की जायगी; अफसरों में तीसरा भाग हिन्दुओं का रहेगा, और ऐसी और रिआयतें होंगी। उन्होंने यह भी बताया कि हिन्दुओं की मदद से सरकार ९७ फी सदी मुसलमान आबादी की आजादी के हकों को कम करने पर तैयार हो गयी है। उसने सैयद पीर कमाल जीलानी और दूसरे तीन व्यक्तियों से ८०,००० रुपये के मुचलके माँगे हैं, क्योंकि पीर साहब तथा उनके मित्र इस बात से इनकार करते हैं कि कोहाट में काम करनेवाली वह 'मुसलिम कार्यसमिति' वहाँ की मुस्लिम आबादी की सही भावनाएँ पेश करती है। सरहद प्रान्त के मुसलमानों की हालत गुलामों से शायद ही बढ़िया है और बाकी हिन्दुस्तान के जैसे हक प्राप्त करने के मामले में देश की भावनावाले सारे भारत को उनकी सहायता करने की जरूरत है। इन्हें कौंसिलों में, म्युनिसिपैलिटियों में, जिला बोर्डो में, युनिवर्सिटियों वगैरह में अपनी आवाज चाहिए। उनकी शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया जाता और उनका अज्ञान अपार है। कोहाट में, पेशावर में और सरहद के प्रान्त में म्युनि-सिपैलिटियों में सरकार के मनोनीत सदस्य होते हैं और ९७ फी सदी मुसलमानों के बराबर ही स्थान ३ प्रतिशत हिन्दुओं को दिये जाते हैं अर्थात् आधे सदस्य सरकार नामजद करती है।

मेरी राय के अनुसार तो सम्मानपूर्ण सुलह हो सकती है और इसके लिए दोनों जातियाँ उत्सुक भी हैं। इन खासा मजे के लोगों को उनके अज्ञान से और उनके अनाड़ी तरीकों से, जो उनके अपने लिए और देश के लिए भी खतरा है, बचा लेने के लिए देश को अपनी आवाज उठानी चाहिए। खास तौर पर इस मामले में भारत के मुसलमानों की जो लापरवाही है, वह तो अपराध से कम नहीं।

दंगे के दिनों के दौरान हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करने की घटनाएँ होने की जो बात कही जाती है, उसके बारे में मेरी राय साफ है। यह इसलाम के जौहर के खिलाफ है। इसलिए ऐसा हुआ हो तो बहुत बुरा

हुआ। परन्तु ऐसा होने की मुझे प्रतीति नहीं है। ऐसा हुआ दीखता है कि कुछ हिन्दुओं ने सलामती के लिए मुसलमान मित्रों से अपनी चोटियाँ वगैरह काट देने को कहा। ऐसे लोग अब भी दूसरों के जैसे ही हिन्दू हैं। बहुत मुसलमानों ने हिन्दू पड़ोसियों के प्राण बचाने के लिए झूठ बोला और भीड़ से कह दिया कि ये मुसलमान हो गये हैं। ऐसी घटनाएँ धर्मभ्रष्ट करने की हरगिज नहीं कही जा सकतीं। सैयद पीर कमाल जीलानी और पीर अहमदगुल दोनों साहबों ने उन्हें स्पष्ट कहा कि इस समय जैसी हालत में इसलाम को अपनाने की किसीकी सचमुच इच्छा हो, तो भी ऐसा उम्मीदवार अमन के और कोई खतरा न हो ऐसे सुरक्षा के समय में जब तक दुबारा ऐसी इच्छा प्रकट न करे, तब तक उसे कोई नहीं मानेगा।

पीर कमाल साहब ने दो ऐसी घटनाएँ बयान कीं, जिनमें बेगुनाह और निहत्थे हिन्दुओं को उनके इसलाम कबूल करने से इनकार करने पर कत्ल कर दिया गया। ये सचमुच खेदजनक घटनाएँ हैं और ऐसी क्रूर हत्या करनेवाले कड़ी-से-कड़ी निन्दा के पात्र हैं। और विवाहिता हिन्दू स्त्रियों और दूसरों के धर्मभ्रष्ट होने का सवाल तो जिम्मेदार मुस्लिम उलमाओं और नेताओं के साथ चर्चा करने का होने के कारण मेरे लिए यहाँ राय देना जरूरी नहीं। वैसे यह तो सभी पक्षों की मान्य की हुई बात है कि दंगों के दिनों के दौरान विवाहिता अथवा अन्य कोई स्त्री अपने-आप अथवा दूसरे के धर्मभ्रष्ट करने से इसलाम में दाखिल नहीं हुई।

कोहाटी मुसलमानों से, जिनकी यहाँ सबसे बड़ी आबादी है, मेरी प्रार्थना है कि वे अपने हिन्दू भाइयों से मेल कर लें और हिन्दू भाइयों से भी अर्ज करता हूँ कि वे अपने मुसलमान पड़ोसियों से चिपटे रहें और उन्हें आश्वासन दे दें कि वे उनके पूरे शरीफ पड़ोसी और सच्चे दोस्त और मददगार हैं।

जैसे मैं कह चुका हूँ, कोहाट की यह घटना केवल इकतरफा मामला नहीं था और इसलिए मैं तो उसके लिए हिन्दू-मुसलमान दोनों को कसूरवार ठहराता हूँ। फिर भी एक मुसलमान के नाते मुसलमानों को ही अधिक दोषी मानना अपना कर्तव्य समझता हूँ। वे आबादी और शारीरिक शक्ति दोनों में हिन्दुओं से बढ़कर हैं, इसलिए भारी उत्तेजक संयोगों में भी उन्हें

अधिक धैर्य और सहिष्णुता रखनी चाहिए थी। मुझे दुःख है कि हलके भीतरी टंटों के जोश में उन्हें वह धीरज रखने की नहीं सूझी।

अन्त में मुझे कहना चाहिए कि जहाँ महात्माजी और मेरे जैसे निष्पक्ष व्यक्ति ऐसे मामलों का फैसला देने में अलग हो जाते हैं, वहाँ दूसरे इससे अधिक सफल क्या हो सकते हैं? हमें तो काजी बनना छोड़कर सुलह के सिपाही बनना होगा।

नवजीवन का अतिरिक्त अंक
ता० २९-३-१९२५

शौकत अली

१. व्यक्तियों की सूची

२. स्थानों की सूची

३. प्रमुख शब्दों की सूची

●

४. गांधीजी द्वारा प्रेषित पत्रों की सूची

अली, मुहम्मद
३१-१२-'२४ — १५७

काका कालेलकर
१४-११-'२४ — ८०

जवाहरलाल नेहरू
१२-११-'२४ — ७४

'दि वर्ल्ड टुमॉरो'
१४-११-'२४ — ७९

प्रिय मित्र
१४-११-'२४ — ८०

प्रिय मित्र और भाई
१- १-'२५ — १५८

चापट, एस० वी०
२७- २-'२५ — ३४४

बेसण्ट, श्रीमती
१८-१०-'२४ — २१

मोकरवेर, डॉ०
२८- २-'२५ — ३४४

मोतीलाल नेहरू
३०-१०-'२४ — ४३
१२-११-'२४ — ७४

राजगोपालाचारी
१४-११-'२४ — ७९

राजा साहब
१८-११-'२४ — ८३

लाला लाजपतराय
१२-११-'२४ — ७५
१७-११-'२४ — ८२

श्वेब
१२-११-'२४ — ७७

स्वामीजी
१४-११-'२४ — ८१

....
१०- २-'२५ — २८१

●

महादेव
मेरा
अतिरिक्त शरीर
था।
उसको मेरा
वारिस होना था,
पर
मुझे उसका
वारिस होना
पड़ा।

—मो० क० गांधी